THE NOVELS AND SHORT STORIES OF AJNEYA [A STUDY]

अज्ञेय के उपन्यास और कहानियाँ: एक अध्ययन

THESIS SUBMITTED TO
THE UNIVERSITY OF COCHIN
FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

A. ARAVINDAKSHAN

PROF AND HEAD OF THE DEPT
DR. N. E. VISWANATH IYER

SUPERVISOR
DR P. V. VIJAYAN (READER)

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF COCHIN
COCHIN - 22

1977

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide reord of work carried out by A. Aravindakshan under my suprvision for Ph.D. and no part of this has hitherto bee submitted for a degree in any University.

Dep of Hindi
Unirsity of Cochin
COCIN - 682022

Dr. P.V.VIJAYAN
SUPERVISING TEACHER

ACKNOWLEDGEMENTS

This work was carried out in the Department of Hindi, Unirsity of Cochin, Cochin-22, during the tenure of scholarip awarded to me by the Cochin University. I sincerely expls my gratitude to the Cochin University for this help and couragement.

A. ARAVINDAKSHAN

प्राक्कथन

अज्ञेय के कथा साहित्य पर बहुत कम विचार विमर्श हुए हैं । उनकी कविताओं के चयन के साथ साथ कुछ आलोचकों ने कथा साहित्य पर भी विचार किया है । उनके उपन्सों और कहानियों के संबन्ध में प्रौढ रूप से एक आध आलोचना ही हमें उपलब्ध हुई । रामस्वरूप चतुर्वेदी की प्रौढ रचना है 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या', गंगाप्रसाद विमल द्वारा संपादित ग्रन्थ 'अज्ञेय का रचना संसार' । डा. विजयमोहन सिंह की : रचना है 'अज्ञेय कथाकार और विचारक' जिसमें उपन्यासों और कहानियों पर ही अधिविचार किया गया है । अज्ञेय के समूचे साहित्य पर प्रकाशित एक शोध प्रबंध है 'अज्ञेका साहित्य : प्रयोग और परम्परा' । प्रस्तुत ग्रन्थ में गहराई कम और विस्तार अधिक है । अज्ञेय की कविताओं पर प्रकाशित एक प्रौढ रचना है चन्द्रकान्त महादेव बांदिवडेकर की 'अज्ञेय की कविता का मूल्यांकन' । स्पष्ट है कि अज्ञेय के उपन्यासों और ।नियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन पर्याप्त मात्रा में नहीं हुआ है । इन्हीं कारणों से मैं अपने शोधप्रबन्ध का विषय अज्ञेय का कथा साहित्य चुना । जिसमें मैं ने अज्ञेय के उपयों और कहानियों का अपने ढंग से अध्ययन करने का प्रयास किया है । तटस्थ रूप सेअज्ञेय के उपन्यासों और कहानियों पर प्रकाश डालना ही इस प्रबन्ध का उद्देश्य रहा है

स्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है । पहला अध्याय है 'अज्ञेय का व्यक्ति: एक अध्ययन' । इस प्रकरण में व्यक्तित्व संबन्धी परिभाषाओं पर विचार करने पश्चात् रचनाकार के रचना व्यक्तित्व और निजी व्यक्तित्व पर विशेष बल दिया गया है कृति के सन्दर्भ में निजी व्यक्तित्व को प्रमुखता दी गई है जो रचना व्यक्तित्व के रूप परिणत हो जाता है । तदनन्तर अज्ञेय के अन्य रचनात्मक पक्षों पर भी थोडा बहुत ।ा डाला गया है । लेकिन इससे हमारा मतलब अज्ञेय के व्यक्तित्व एवं दर्शन का प्रस रचनाओं में किस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है, यह देखना मात्र है । अतः विस्तार।प में जाने का प्रयास नहीं हुआ है ।

सरा अध्याय है 'हिन्दी उपन्यास साहित्य अज्ञेय तक' । अज्ञेय पूर्व उपन्यासो पर प्रकाश डालना ही हमारा ध्येय रहा है । इसलिए हमने उपन्यास के सैद्धान्तिक विश्लेषण गे वाछनीय नही समझा । हम ने प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासो को मुख्य प्रवृत्तियो के आधारार समझने का प्रयत्न किया है । इसी प्रकरण मे हमने औपन्यासिक पात्रो की विशेष मत्ता मानते हुए प्रेमचन्द के मुख्य पात्रो पर विचार किया और उसके माध्यम से लेखक के ष्टिकोण पर भी प्रकाश डाला है । प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यासकारो की नाम सूचिप्रस्तुत करना हमारा मन्तव्य नही था । हम ने मात्र ऐतिहासिक महत्व रखने वाले उपन्सकारो का ही उल्लेख आवश्यक समझा है । प्रेमचन्दोत्तर काल के प्रमुख उपन्यासक के रूप मे जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी पर विचार किया है । उपर्युक्त उपन्यासक का अध्ययन इसलिए किया है कि दोनो अज्ञेय के समकालीन है और उनकी रचनाएँ अ साहित्य की पृष्ठभूमि मे पडी है । एक और बात स्मरणीय है कि इस प्रकरण मे पचन्दोत्तर काल के उपन्यासकार के रूप मे यशपाल का अध्ययन नही हुआ है । क्योंकि ह विचार मे यशपाल की औपन्यासिक प्रवृत्ति प्रेमचन्द का ही एक विकसित रूप है ।

अ के तीनो अध्याय 'अज्ञेय के उपन्यासो का आलोचनात्मक मूल्याकन' शीर्षक प्रकरण के अन्तर्गताते है । सबसे पहले 'शेखर एक जीवनी' का अध्ययन हुआ है । प्रस्तुत उपन्यास च्यार खण्डो मे विभाजित करके अध्ययन किया गया है । वह इस प्रकार है — शेखर एक नी मे विद्रोह के परिकल्पना, शेखर एक जीवनी मे प्रेम की परिकल्पना शेखर एक जीवनी अहं का तत्व, शेखर एक जीवनी मे मनोविज्ञान । पहले खण्ड मे शेखर के विद्राही व्यत्व की चर्चा है । दूसरे खण्ड मे शेखर और अन्य स्त्री पात्रो के बीच के प्रेम सबन्ध निरूा है । तीसरे खण्डमेशेखर के अहं को विश्लेषित किया है । चौथा खण्ड मनोविज्ञान आधारित है । मुख्य रूप से फ्रायड, जुग, एडलर आदि प्रारंभिक मनो - विज्ञान के वानो के सिद्धातो के आधार पर 'शेखर' का विश्लेषण किया गया है ।

चौअध्याय 'नदी के द्वीप' - एक आलोचनात्मक मूल्याकन' है । व्यक्तिवाद पर प्रकाश ते हुए 'नदी के द्वीप' की व्यक्तिवादी चेतना की भूमिका का विश्लेषण किया गया। इस उपन्यास के मुख्य चार पात्र है - रेखा, भुवन, गौरा और चन्द्रमाधव। इन चारो पको चार संवेदना के रूप मे स्वीकार कर अलग अलग संवेदनाओ का अध्ययन

प्रस्तुत किया गया है ।

पांचवां अध्याय 'अपने अपने अजनबी - एक आलोचनात्मक मूल्यांकन' है । प्रस्तुत उपन्यास एक दार्शनिक उपन्यास होने के कारण भूमिका के तौर पर हमने भारतीय दर्शन के कतिपय पहलुओं पर प्रकाश डाला है । इसमें कर्म, मुक्ति, पुनर्जन्म जैसी बातों और ईश्वर की परिकल्पना पर भी विचार किया है । तदुपरान्त पश्चिमी दर्शन विशेषकर अस्तित्ववादी दर्शन के पहलुओं पर प्रकाश डाला है । दोनों दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् उपन्यास में चित्रित मृत्यु साक्षात्कार संबन्धी समस्या पर विचार किया गया है ।

छठा अध्याय 'हिन्दी कहानी - अज्ञेय तक' शीर्षक में है । भारतीय कथा साहित्यिक परम्परा पर संक्षेप में प्रकाश डालने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंच गए हैं कि हिन्दी कहानी की पुष्ट परम्परा का आरंभ प्रेमचन्द से होता है । हमने अज्ञेय तक के कहानी साहित्य को चार धाराओं में विभाजित किया है । सामाजिक धारा के अन्तर्गत प्रेमचन्द और उनके समकालीन कहानीकार आते हैं । सांस्कृतिक-ऐतिहासिक धारा में प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा और उनके समकालीन कथाकार की मुख्य कहानियों की चर्चा की गयी है । मनोवैज्ञानिक धारा में हमने जैनेन्द्रकुमार और इलाचन्द्रजोशी की कहानियों को समाहित किया है । साम्यवादी धारा में यशपाल की कहानियों की चर्चा है । इस प्रकरण के अन्तिम भाग में कहानी क्षेत्र में अज्ञेयकेपादार्पण पर प्रकाश डाला गया है ।

सातवें अध्याय में अज्ञेय की कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत है । इस प्रकरण में अज्ञेय की प्रतिनिधि कहानियों को ही मात्र आधार के रूप में अपनाया है । उनकी कहानियों को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है । राजनीतिक आन्दोलन संबन्धी कहानियां, अहंवादी कहानियां और मनोवैज्ञानिक कहानियां । प्रथम खण्ड में उनकी क्रान्तिकारी जीवन संबन्धी कहानियों को और कतिपय सामाजिक कहानियों को शामिल किया गया है । दूसरे खण्ड में व्यक्तिवादी चेतना से ओतप्रोत कहानियां चर्चित है । तीसरे खण्ड में मनोवैज्ञानिक कहानियों की आलोचना । तत्पश्चात् अज्ञेय की कुछ विशिष्ट कहानियों का मूल्यांकन किया गया है ।

आठवाँ अध्याय 'अज्ञेय की कथा साहित्य की शिल्पविधि' है । उसमें शिल्प के स्वरूप और परिभाषा पर नए कोण से विचार किया गया है । शिल्प को रचना की आत्यन्तिक स्थितिक या समग्र रचनात्मक स्थिति के रूप में मानकर प्रस्तुत अध्याय में अज्ञेय के औपन्यासिक शिल्प और कहानी-शिल्प पर विचार किया गया है । इसलिए मेरा प्रयत्न प्रचलित परिपाटी के अनुसार उपन्यास और कहानियों के तत्वों की खोज करनेवाले अध्येताओं को तृप्त नहीं करेगा । मैं ने यहाँ पर प्रचलित लीक छोडकर चलने का प्रयत्न किया है ।

अन्तिम अध्याय में उपर्युक्त अध्ययन के निष्कर्षों से उपलब्ध सामग्रियों को उपसंहार के रूप में हमने प्रस्तुत किया है । आधुनिक हिन्दी साहित्य की समृद्धि में विश्व साहित्य की आलोक किरणों को आत्मसात कर चलनेवाले महान साहित्यकार अज्ञेय का योगदान चिरस्मरणीय है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का कार्यान्वयन कोचीन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के गुरुवर डा.पी.वी.विजयन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है । उनकी प्रेरणा एवं समयानुकूल निर्देश मुझे विशेष रूप से सहायक रहा है । नए साहित्य को नए कोण से जानने एवं नए सन्दर्भ में परखने का निर्देश उन्हीं से मुझे प्राप्त हुआ है । आधुनिक साहित्य के अध्ययन में लगे हुए डा.विजयन जी का निर्देश इस प्रकार के एक नए विषय केलिए हमेशा प्रेरणादायी सिद्ध हुई है । मैं इस अवसर पर उनके चरणों पर अपनी कृतज्ञता के फूल चढा रहा हूँ और हमेश आभारी रहूँगा कि उन्होंने नए साहित्य की ओर मेरा ध्यान भी आकर्षित किया है ।

विभागाध्यक्ष एवं आचार्य डा.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर के प्रति भी मैं आभारी हूँ । वे मुझे समय समय पर आवश्यक निर्देश देते रहे हैं । विभाग के अन्य गुरुजनों और शोध छात्रों के प्रति भी मैं विशेष कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहायता मिली है ।

कोचीन विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे छात्र-वृत्ति देकर मेरे शोधकार्य में सहायता पहुँचाई है ।

टंकण यंत्र की अशुद्धियों केलिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ।

कोचीन - 22
25.1.1977

ए. अरविन्दाक्षन

विषयानुक्रमणिका

पहला अध्याय — पृष्ठ संख्या

अज्ञेय का व्यक्तित्व - एक अध्ययन — 1 - 33

व्यक्तित्व की परिभाषा - अज्ञेय• जीवन की रूपरेखा - व्यक्तित्व की विशेषता एक अकेला विशिष्ट व्यक्तित्व - अज्ञेय का साहित्यकार - अज्ञेय का रचना व्यक्तित्व - अज्ञेय के रचना व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम - निष्कर्ष

दूसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यास साहित्य - अज्ञेय तक — 34 - 111

उपन्यास एक सामान्य विश्लेषण - उपन्यास और समाज - उपन्यास और पात्र - पात्र एवं शिल्प - हिन्दी उपन्यास : विकास के विभिन्न सोपान प्रारंभिक उपन्यासों की साहित्यिक मान्यताएं - प्रथम सोपान के प्रमुख उपन्यास एवं उपन्यासकार - परीक्षा गुरु और उसकी परम्परा - ऐतिहासिक उपन्यास तिलस्मी उपन्यास - प्रथम सोपान युग बोध — उपलब्धियां - द्वितीय सोपान : तत्कालीन परिस्थितियां - प्रेमचन्द का आगमन : व्यक्तित्व की एक विशेष झलक - प्रेमचन्द के पात्र - तीसरा सोपान एक सामान्य परिचय - जैनेन्द्र कुमार और उनके औपन्यासिक पात्र - इलाचन्द्र जोशी के कुछ विशिष्ट पात्र - जैनेन्द्र एवं जोशी की औपन्यासिक उपलब्धियां

तीसरा अध्याय

अज्ञेय के उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन

शेखर एक जीवनी — 112 - 169

शेखर एक जीवनी में विद्रोह की परिकल्पना - शेखर एक जीवनी में प्रेम की भावना - शेखर एक जीवनी और अहं का तत्व - शेखर एक जीवनी में मनोविज्ञान ।

<u>चौथा अध्याय</u> पृष्ठ संख्या

नदी के द्वीप आलोचनात्मक मूल्यांकन 170 - 197

व्यक्तिवाद एक परिचय - नदी के द्वीप में व्यक्तिवादी चेतना

रेखा-स्वाधीन आत्मान्वेषी नारीत्व की सूक्ष्म संवेदना - भुवन -

पुरुष की नैसर्गिक प्रेम संवेदना - गौरा-समर्पित प्रेम संवेदना - चन्द्रमाधव - वैवाहिक सुख-भोग की असफल संवेदना - निष्कर्ष ।

<u>पांचवां अध्याय</u>

अपने अपने अजनबी - आलोचनात्मक मूल्यांकन 198 - 238

भारतीय दर्शन की कुछ मोटी रेखाएं - ब्रह्म और जीव - कर्म-पुनर्जन्म और मुक्ति - भारतीय दर्शन में मृत्यु की परिकल्पना - अस्तित्ववादी दर्शन शून्यतावाद - संत्रास बोध - निरर्थकता बोध - ईश्वरीय अस्तित्व का निषेध - वरण की स्वतंत्रता - अस्तित्ववाद में मृत्यु की परिकल्पना - भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण - अपने अपने अजनबी - मूल्यांकन - निष्कर्ष ।

<u>छठा अध्याय</u>

हिन्दी कहानी - अज्ञेय तक 239 - 273

कथा साहित्य और भारतीय परम्परा - सरस्वती पत्रिका - इन्दु पत्रिका सामाजिक धारा - प्रेमचन्द - प्रेमचन्द की किसान जीवन संबन्धी कहानियां प्रेमचन्द की विशिष्ट कहानियां - नारी जीवन संबन्धी कहानियां - ऐतिहासिक सांस्कृतिक धारा - प्रसाद - विशिष्ट कहानियां - प्रसाद की कहानी में ऐतिहासिकता - वृन्दावनलाल वर्मा - मनोवैज्ञानिक धारा जैनेन्द्र कुमार की मनोवैज्ञानिक कहानियां - इलाचन्द्र जोशी - साम्यवादी धारा - यशपाल - निष्कर्ष ।

सातवाँ अध्याय

अज्ञेय की कहानियाँ एक अध्ययन 274 - 306

अज्ञेय पूर्व कहानियाँ - अज्ञेय की कहानियों का वर्गीकरण - राजनीतिक आन्दोलन संबन्धी कहानियाँ - अहंवादी कहानियाँ - मनोवैज्ञानिक कहानियाँ - अज्ञेय की कुछ विशिष्ट कहानियाँ - अज्ञेय की कहानियाँ : उपलब्धियाँ और संभावनाएँ - निष्कर्ष ।

आठवाँ अध्याय

कथा साहित्य की शिल्प-विधि

अज्ञेय के ~~उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन~~ 307 - 332

शिल्प - स्वरूप और परिभाषा - अज्ञेय का औपन्यासिक शिल्प कहानियों का शिल्प - भाषा की सर्जनात्मकता - निष्कर्ष ।

उपसंहार 333 - 338

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची 339 - 347

—

पहला अध्याय

अज्ञेय का व्यक्तित्व : एक अध्ययन

कृतित्व के अध्ययन केलिए कृतिकार के व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक है। क्योंकि रचना में रचनाकार का व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है। अज्ञेय के कथासाहित्य का अध्ययन उनके व्यक्तित्व के अध्ययन के बिना अधूरा रह जाएगा। अतएव हम अज्ञेय के कथा साहित्य के अध्ययन की भूमिका के रूप में उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करना उचित समझते हैं। अज्ञेय के व्यक्तित्व के विश्लेषण के पूर्व यह विचारणीय है कि व्यक्तित्व से क्या अभिप्राय है।

व्यक्तित्व की परिभाषा -

व्यक्तित्व के समानार्थक शब्द के रूप में अंग्रेज़ी का पर्सनालिटी शब्द स्वीकारा गया है। 'पर्सनालिटी' शब्द 'पर्सोना' शब्द से बना है जो ग्रीक रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा मुख पर रखने वाला एक मुखौटे केलिए प्रयुक्त था। यही मुखौटा बाद में रोम के लोगों के बीच प्रयुक्त होने लगा।[1] इससे पता चलता है कि 'पर्सोना' शब्द से 'पर्सनालिटी' शब्द बना जो बाहर प्रकटित रूपाकार के लिए प्रयुक्त शब्द है। लेकिन यहाँ हमारा तात्पर्य उसके शाब्दिक अर्थ से नहीं बल्कि उसके आन्तरिक अर्थ से है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Persona - Beginning with the etymology of the word 'Persona' which orginally denoted the theatrical mask worn in the Greek Drama and later used by the Romans.
Robert W. Lundine - 'Personality - An experimental approac p.3.

व्यक्तित्व व्यक्ति की समग्रता को सूचित करता है । व्यक्ति की पूर्णता का आलोक व्यक्तित्व में से प्राप्त होता है । इस समग्रता या पूर्णता के कई पक्ष होते हैं । व्यक्तित्व शब्द के अन्तर्गत उसके अंतरंग एवं बहिरंग पक्ष समाहृत है । लेकिन व्यक्ति के सन्दर्भ में उसका अंतरंग पक्ष ही प्रबल है ।

अंतरंग पक्ष का एक अंश जो व्यक्तित्व के बाह्य स्फुरण के रूप में अभिव्यक्त होता है उसे हम 'मोटीव' कह सकते हैं । आन्तरिक चेष्टाओं का एक समीकृत रूप 'मोटीव' होता है । मानसिक वृत्ति के विभिन्न अंगों को – जैसे आवश्यकता (नीड्स) आग्रह (वाण्ड्स) आवेग (इम्पल्सस्) आदि को इस 'मोटीव' के अन्तर्गत मान सकते हैं । उपर्युक्त सारी प्रवृत्तियाँ चेतन और अर्धचेतन मन की ओर अग्रसर होता है । अतः यही 'मोटीव' व्यक्तित्व के संगठन में अपना योगदान देता है ।

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को विभिन्न कोणों से परखने का प्रयत्न किया है । यहाँ विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित व्यक्तित्व की कुछ परिभाषाओं पर प्रकाश डालना अपेक्षित समझता हूँ ।

व्यक्तित्व को उसके विशाल अर्थ में हम व्यक्ति के चरित्र का विशेषण बता सकते हैं । यह उनके विचारों एवं अभिव्यक्तियों में, उनकी स्थिति एवं इच्छाओं आदि पर आरोपित करके प्रस्तुत किया जाता है । अतः उसको व्यक्ति के जीवन - दर्शन के नाम से

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. The motivation of a person depends on the strength of his motives. Motives are some times defined as needs, wants, drives or impulses within the individual. Motives are directed toward goals which may be conscious or sub consciou

   Paul Hersy ¦ Management of organizational
   Kenneth H. Blanchard ¦ behaviour : Utilising human resours
   (Sec. Ed.) p.10

भी अभिहित किया जा सकता है[1]। व्यक्तित्व के एक दूसरे पक्ष पर प्रकाश डालते हुए रोस स्टग्नेर और चार्ल्स एम. सोले का कथन है कि साधारण मनोविज्ञान में सुविधा केलिए एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर जो असर पड़ता है उसीको व्यक्तित्व मानते है[2]। उपर्युक्त परिभाषा व्यक्ति और व्यक्ति के सन्दर्भ में लागू हो सकती है। वास्तव में यह व्यक्ति को समाज के सन्दर्भ में खोजने का प्रयास माना जा सकता है। वे आगे लिखते है कि साधारण मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का प्रयोग व्यक्ति के सामाजिक चेतना को सूचित करने तथा व्यक्ति के साथियों एवं उसके सहचरों पर जो प्रभाव पड़ता है उसी केलिए प्रयुक्त है। वैज्ञानिक मनोविज्ञान में व्यक्तित्व आन्तरिक प्रेरक शक्तियों, जैसे धारणाएं, भावों एवं प्रेरणाओं केलिए तथा प्रिय और अप्रिय व्यक्तियों के साथ जो प्रतिक्रिया होती है, उसी केलिए प्रयुक्त होता है[3]।

आगे भिन्न भिन्न मनोवैज्ञानिकों के व्यक्तित्व पर किए गए सिद्धांतों पर विचार करेंगे। डोन सी. डिकमेमर ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है कि व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति के शारीरिक गठन, चरित्र, बुद्धि और उपलब्धियां आदि समाविष्ट है।

- -

1. Personality can be broadly defined as the total quality of an individuals behaviour and it is revealed in his habit of thought and behaviour, his attitudes and interests, his manner of acting and his personal philosophy of life.
   Donald G.Marquis ‖ Psychology - A study of mental life
   Robert S. Woodworth ‖ pp.87-88

2. Popular psychology generally uses the term personality as a short hand way of identifying one individuals impact upon others. Fiction and journalism are full of dramatic terms for describing.
   Ross Stagner ‖ Basic psychology - A perceptual
   Charles M. Solley ‖ Homeostatic Approach - pp.567-68.

3. In popular psychology the term personality is used to refer an individuals social stimulas value, the impression on his friends and acquintances. Scientific psychology defines personality as a pattern of inner forces including percepti emotion, motivation and cognitive style as well as specific responses such as persons loved, feared and disliked.
   Ibid p.604

वह आज जो है और जो होना चाहता है उसको भी जोड सकते हैं। विशेषकर उसके अन्तर्गत वह दूसरों के साथ कैसा संबन्ध स्थापित करता है और वह दूसरों का संबन्ध किस प्रकार अनुभव करता है, यह सब आता है[1]। डिंकमेयर केलिए व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के जीवन की समग्रता है।

ग्रिगेरी ए. किंपिल एवं नोरमेन गामेस अपनी राय व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि व्यक्तित्व चरित्र का एक खास संगठन है और यही उसे दूसरे व्यक्तियों से पृथक करता है, साथ ही दूसरे, अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हैं[2]। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकवेत्ता आलपोर्टस् ने अपने बहुचर्चित ग्रन्थ 'व्यक्ति-मनोविज्ञान' (सैकोलोजी आफ इन्डिविड्वल) में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए लिखा है – व्यक्तित्व व्यक्ति में ही निहित एक गत्यात्मक संगठन है जो उसके मानसिक एवं शारीरिक स्थिति का परिस्थिति के साथ निभने की ओर संकेत करता है[3]। ह्यूबर्ट बोनर व्यक्तित्व के संबन्ध में लिखते हैं – हमारे अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति की सुगठित इच्छाएँ एवं क्षमताएँ ही है अथवा उस चरित्रगत विशेषता है

- -

1. Personality includes the whole individual, his phisique, temporment, skills, interests, hopes, appearances, feelings, habits, intellegence and achivements. It includes both what he is today and what he hopes to be. In particular includes the way in which he relates himself to others and the reacti he encounters.
   DoncC. Dink meyar. Child development - The emerging self pp.309-10.

2. Personality is the unique organization of fairly permanant characterstics that sets the individual apart from the other individual and at the same time determines how others respon to him.
   Gregory A. Kimble } Principlas of general psychology. p.462
   Norman Gamez }

3. Persónality is the dynamic organization with in the individu of the psychophisical systems that determine his unique adjustments to the enviornment.
   Quoted from 'Personal and social development - psychology of effective behaviour - Louis S. Levine - p.44

जिससे वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है और क्षमताओं का साक्षात्कार करता है[1]।

उपर व्यक्तित्व सबन्धी धारणाएं व्यक्त की गई है, जिनमें व्यक्ति को व्यक्ति के स्तर पर एवं समाज के सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया गया है ।

यहाँ हमारा तात्पर्य व्यक्तित्व के रचनात्मक पक्ष से है । इसलिए व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष पर विस्तार से विचार करना आवश्यक है । व्यक्तित्व अहं का प्रस्फुटन है । अहं (सेल्फ) व्यक्तित्व से संपर्क रखता है । साधारणतः सब लोगों की अपने बारे में एक धारणा होती है । वह जिस प्रकार है उसका एक बिम्ब या धारणा, अपने मनचक्षुओं से देखता है - शारीरिक रूपाकार के स्तर पर और उसके स्वभाव और क्षमताओं के रूप में अहं यह निश्चित कर लेता है कि उसे दूसरों के सामने कैसे प्रकट होना है और किन किन विश्वासों के बूते पर उसका खड़ा होना अपेक्षित है[2]। अतः अहं व्यक्तित्व का एक मुख्य अंग है, व्यक्तित्व की रचना का मुख्य उपादेय भी है ।

- -

1. In our description personality is the organised needs and abilities of an individual or characteristic manner in whic he satisfies his needs and actualises his potentialities.

   Hubert Bonner -PSychology of personality. p.36

2. .... Of the concepts that relate to the personality, the self is most easily understood,for every one possesses an image or idea of what he is like. He mayssee himself in the mirror of his minds eye in terms of psysical appearanc and manner in terms of traits, habits, abilities and atti-tudes. .... The self is the person as he is known t that person, it is that person of his own personality of which the individual is aware through his knowledge, belie impressions and sensations, it is his image of himself as physical and social being he wants to be seen as by other person and what he believes he should be like.

   Louis S. Levine. Personal and social development : The psychology of effective behaviour. pp.44-45.

अनुभूत्यात्मक संवेदनाएं साहित्य के रूप में पुनर्रचित होती हैं । यह संवेदना कलाकार के अहं की ही अभिव्यक्ति होती है । कलाकार के निजी व्यक्तित्व के माध्यम से अनुभूतियाँ संवेदना के रूप में परिणत होती हैं और तब एक रचना व्यक्तित्व भी उभरता है । अब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न सामने आता है कि कौन सा व्यक्तित्व कलाकार केलिए महत्व पूर्ण है । यह बात स्पष्ट है कि दोनों में अन्तर है, परन्तु दोनों कलाकार में जुटे हुए रह हैं । दोनों के आपसी संपर्क के होते हुए भी पहले एक की निर्मिति होती है बाद में दूसरे की । गंगाप्रसाद विमल रचना व्यक्तित्व को अधिक महत्व देते हुए लिखते हैं - रचनाओं के माध्यम से जिस रचना व्यक्तित्व का रूप बनता है, वह उनके निजी व्यक्तित्व से अनेक आधारों पर अलग अवश्य है । परन्तु व्यक्तित्व की तमाम संगतियों का समन्वित रूप रचना व्यक्तित्व अपने में समाहित कर लेता है[1] । रचना व्यक्तित्व के जरिए साहित्यकार की पहचान होती है, ऐसा दावा पेश करके वे रचना व्यक्तित्व को प्रथम स्थान देते हैं । यह बात सही है । लेकिन निजी व्यक्तित्व से ही रचना व्यक्तित्व का निर्माण होता है । निजी व्यक्तित्व से एकदम अलग हटकर रचना व्यक्तित्व का बनना असंभव है । और एक बात यह भी है कि निजी व्यक्तित्व की जानकारी के बिना रचना व्यक्तित्व अस्पष्ट ही रह जाता है । इसलिए निजी व्यक्तित्व, जो साहित्यकार के अन्तर्गत सुरक्षित है, जो साक्षात् है उसी को प्रमुखता देनी चाहिए । निजी व्यक्तित्व से रचना व्यक्तित्व के बनने के कारण उसमें लेखक के अहं का पूर्ण साक्षात्कार कभी कभी संभव नहीं है । इसलिए निजी व्यक्तित्व, जो उनकी 'रियल पर्सनालिटी' होती है, साहित्य के अध्यायन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है ।

व्यक्तित्व के सामान्य स्वरूप के इस विश्लेषण से यह विदित है कि व्यक्तित्व को रूपायित करनेवाले तत्व क्या क्या हैं । माता-पिता, पारिवारिक वातावरण, शिक्षा दीक्षा, जीव की विभिन्न परिस्थितियाँ इन सब से प्रभावित होकर लेखक के व्यक्तित्व का निर्माण होता है इसलिए स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के अध्ययन में जीवन रेखा का अध्ययन सहायक है ।

---

1 गंगाप्रसाद विमल - प्रेमचंद आज के संदर्भ में (प्रथम संस्करण) पृ.15

अज्ञेय के जीवन की रूपरेखा - अज्ञेय के व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए उनके जीवन की मोटी रेखाओं पर प्रकाश डालेंगे । सन् 1911, 7 मार्च को अज्ञेय का जन्म हुआ । भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के एक उच्च अधिकारी डा. हीरानन्द शास्त्री के पुत्र के रूप में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन का जन्म हुआ जो हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अज्ञेय के नाम से लब्धप्रतिष्ठ है । इनका नाम अज्ञेय क्यों पड़ा यह भी काफी दिलचस्प है । 'अज्ञेय' लेखक का उपनाम न होकर छद्मनाम है । जैनेन्द्रकुमार से अज्ञेय का परिचय जेल से शुरू होता है जहां अज्ञेय एक क्रान्तिकारी के रूप में आये थे और जैनेन्द्र सत्याग्रही के रूप में । जब जैनेन्द्र मुक्त हुए तो उन्होंने अज्ञेय की एक कहानी 'हंस' में प्रकाशनार्थ प्रेमचंद को भेजी और जब उन्होंने लेखक का नाम पूछा तो वात्स्यायन की नज़रबन्दी के कारण जैनेन्द्र ने लिख भेजा : नाम तो अज्ञेय है (अर्थात् नाम बताना संभव नहीं है) प्रेमचंद ने इस वाक्य को शब्दशः स्वीकार कर कहानी पर लेखक का नाम 'अज्ञेय' छाप दिया[1] । अज्ञेय ने भी यह स्वीकार किया है कि उन्हें यह छद्मनाम परिस्थितिवश मिल गया था ।

कर्तारपुर (जालन्धर) के शोणत सारस्वत कुल में पैदा होने के कारण ब्राह्मणत्व की आबोहवा में उनका बचपन बीता था । पिता पुराने ढंग के संस्कृत के पंडित थे । उनके कठोर शिक्षण एवं अनुशासन में बालक सच्चिदानन्द वात्स्यायन का बचपन बीता । उनके व्यक्तित्व निर्माण में माता की अपेक्षा पिता का अंशदान ज्यादा है । 'अज्ञेय के चरित्र में जं एक सहज पौरुष है और जिसके कारण उन्हें कभी कभी गलत समझा जाता है, वह पैतृक दाय ही है । एक अद्भुत बात यह है कि जन्म से लेकर अब तक इनकी जीवन यात्रा का ही एक पर्याय बना रहा इनका अनुशासित और गत्वर आवेग । इस यायावारी वृत्ति ने जहां इन्हें अनासक्ति दी, वहां स्वावलम्बन और नए परिग्रह जोडने का उत्साह भी[2] । यह व्यवस्थ प्रियता बचपन में हठी चरित्र के रूप में स्थिर थी । खासकर वे माता के हर शब्द का विरोध

- -

1 डा. भारतभूषण अग्रवाल - हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव (प्र. संस्करण 1971) (लेखक के फुटनोट से उद्धृत) पृ. 203

2 सम्पादक विद्यानिवास मिश्र - आज के प्रिय कवि अज्ञेय (परिचय) पृ. 5-6

करने के आदी थे । एक दिलचस्प घटना की याद दिलाते हुए अज्ञेय अपने बचपन के दिनों के बारे में लिखते हैं - 'मैं कोई छः वर्ष का था जब बड़े भाइयों केलिए गर्मसूट बनवाए गए थे । जब कच्ची सिलाई के बाद सूट फिटिंग केलिए लाए गए तब मैं भी खड़ा देख रहा था । सूट में कोट और जोधपुरी ब्रीचेस थी और भाईयों पर सूट फब रहे थे, मैं मुग्ध भाव से देख रहा था । माता-पिता ने मेरे मुग्ध भाव को लुब्ध-भाव समझकर पूछा क्या मैं भी बनवाना चाहता हूँ ? और मेरे उत्तर देने के पहले ही माता ने कहा - भाइयों को देखकर रिर्स हुई होगी और पिता ने उत्तर दिया - होती ही है - बच्चा ही तो है' मेरे कुछ कहने के पहले ही न केवल ईर्ष्या का आरोप मुझपर कर दिया गया, वरन् उसे स्वाभाविक मान लिया गया, इससे मुझे क्लेश हुआ । मैं ने गंभीरता से कहा कि मुझे नहीं बनवाना है, तो उसे झेंप समझा गया, और इस पर आंसू आ गए तो यह प्रमाणित ही मान लिया गया कि ईर्ष्या की है। मेरे इनकार करते रहने पर भी सूट का नाप दे दिया गया और जब भाइयों के कपड़े बनकर आए तब साथ में मेरा सूट भी था । वैसे कपड़े पहनकर मुझे प्रसन्नता न होती यह नहीं कह सकता, पर उन कपड़ों को पहनकर नहीं हुई क्योंकि गलत समझ जाने की कसक अभी थी; उस पर जब कहा गया कि गुस्सा अभी बना हुआ है कि मेरे लिए भी पहले क्यों नहीं आर्डर दिया गया था, तब अन्याय भावना और तीखी हो गई । उन सूटों में भाइयों के साथ बैठकर फोटो खिंचवाया था, जो अभी है । इतना तो याद है, पर उस अवसर के बाद वह सूट मैं ने फिर पहना हो ऐसा याद नहीं पड़ता ।[1]

पहले का चार वर्ष (1911 से 1915 तक) लखनऊ में बीता था । स्कूली शिक्षा बहुत मिली । लेकिन घर पर ही पढ़ाई ठीक तरह से चलती थी । 1915 से 1919 तक जम्मु में रहा । यहीं से संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन आरंभ हुआ । फारसी एक मौलवी से और अंग्रेजी अमेरिकन पादरी से सीख लिया करता था । 1919 में पिता के साथ नलन्दा आया और यहीं सन् 1925 तक रहा ।

पिता के पुस्तकालय का पूर्ण रूप से सदुपयोग इन्होंने किया । अंग्रेज़ी कवियों का - वेर्डसवर्थ, टैनिसन, लांगफेलो आदि का अध्ययन किया । शेक्सपियर, मार्लो,

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - आत्मनेपद : प्रथम संस्करण (1960) पृ. 183-84

वेब्स्टर आदि के नाटकों का और जार्ज एलियट, थैकरे, तोलस्टाय, तुर्गनेव, ह्यूगो आदि के उपन्यासों से काफी परिचय प्राप्त किया । साहित्य से संपर्क रखते हुए इस अवधि में वात्स्यायन अपने को अकेला पाते थे । पिता के दफ्तर चले जाने के बाद वे इतने अकेले थे कि इसी कारण उन्हें अपने अहं को विकसित कराने का खूब मौका मिला और वे अपने आप को स्वतंत्र भी मानते थे । अज्ञेय के अपने शब्दों में, क्योंकि हम सब का बाल्यकाल अधिकतर वन-पर्वतों या देहाती प्रदेशों में बीता, सभी ने स्वतंत्र या आत्मनिर्भर स्वभाव पाया, प्रायः सभी किसी हद तक अन्तर्मुख हो गए - अनुभव अधिक करते हैं, भाव प्रदर्शन कम । जब मेट्रिक की तैयारी कर रहे थे, तब उन्होंने माँ के साथ जालियाँवाला बाग की घटना के आसपास पंजाब की यात्रा की थी और उन्होंने स्वतः अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह की भावना को आत्मसात् किया था । उन्होंने 1925 में पंजाब से मेट्रिक की परीक्षा दी और उसी वर्ष वे इन्टरमीडियेट साइंस पढने मद्रास क्रिश्चन कोलेज में दाखिल हुए ।

सन् 1927 में लाहौर के फारमेन कालेज में बी.एस.सी. में भर्ती हुए । इसी कालेज में नव-जवान - भारत सभा के संपर्क में आए और 'हिन्दुस्थान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के प्रमुख सदस्य आज़ाद, सुखदेव और भगवतीचरण बोहरा आदि नेताओं का परिचय प्राप्त हुआ । इस कोलेज में बि.एस.सी. तक तो ये सक्रिय रूप से क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रविष्ट नहीं हुए थे । 1929 में प.मोत्तीलाल नेहरु की अध्यक्षता में कांग्रेस का जो अधिवेशन लाहौर में हुआ, उसी में ये स्वयंसेवक अफसर के रूप में मौजूद थे ।

सन् 1929 में बी.एस.सी.करके अंग्रेज़ी एम.ए.में दाखिल हुए । वात्स्यायन का क्रान्तिकारी जीवन यहाँ से शुरु होता है । उनका सात वर्ष का जीवन इसी सिलसिले में बीता और कई दफे वे गिरफ्तार भी किए गए । दिल्ली हिमालय 'टायलेट्स' के नाम से बम फैक्टरी बनाने में तल्लीन हुए । इस फैक्टरी के वात्स्यायन वैज्ञानिक सलाहकार थे । उनको कई बार कडी सज़ा दी गई । उन्हें कई बार नज़रबन्द रखे गए । वे सन् 1936 में क्रान्तिकारी जीवन से निवृत्त होकर आए । क्रान्तिकारी के जीवन बिताने पर भी वे युद्ध को हमेशा अनिवार्य नहीं मानते थे । जब उसकी आवश्यकता होती है तब वह किसी भी तरह का हो, करना पडता है । वे लिखते हैं - युद्ध को मैं बुरा मानता हूँ तो युद्धोपजीवी [illegible]

उचित और अनिवार्य समझता हूं कि एक काम हो - और मै चाहता था कि फासिस्ट संकट से भारत का बचाव हो - तो उस काम को करने केलिए इसलिए तैयार न होता कि वह घटिया काम है, एस पोछा है और बडा पाप है । युद्ध काल मे भारत की रक्षा केलिए सारे उद्योग करना अनिवार्य था । युद्ध समाप्त होने पर वर्दी पहने रहना अनिवार्य नही है । शान्ति-कालीन सैनिक कहलाना मै कलंक मानता हूं[1] ।

जेल से वापस लौटकर वे और भी निराश होने लगे क्योंकि उनके क्रान्तिकारी जीवन के कुछ साथी पदच्युत हो गए थे । इसलिए वे अपने आप आत्मपीडन का अनुभव करते रहे । इसी कारण वे अपने को घोर सामाजिकता में डुबोना नहीं चाहते थे । 'कभी कभी स्वाग समारोहों के बाद लौटने पर ऐसा अनुभव करते है किसी यंत्रणा से गुज़रकर आए है[2] ।

सन् 1936 के बाद वे जीवन के क्षेत्र मे उतर आए । सबसे पहले आश्रम खोलने की बात उनके मन में थी जो पिता के डांट की वजह से खत्म हुई । अज्ञेय का इस विषय मे वक्तव्य द्रष्टव्य है - जेल से आने के बाद मै एक आश्रम बनाने की आदर्शवादी झोंक मे था; एक परिचित ने उस केलिए ज़मीन और उस पर बनी हुई इमारत सुलभ कर दी थी । पिता से परामर्श करने पर उन्होंने बताया, वह अगर भाडा ले या लगान देकर पट्टे पर दें तो ठीक है, मुफ्त दे तो न लो । मेरे पूछने पर उन्होंने कारण बताया, तुम वयस्क हो, और सोच समझकर जो करोगे उसमें बाधा देना नहीं चाहता, पर मै ने मन ही मन सोच रखा था कि मेरी कोई सन्तान कभी दान न लेगी[3] ।

सन् 1937 के अन्त तक 'विशाल भारत' मे शामिल हुए, बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह के कारण । लेकिन कुछ व्यक्तिगत कारणों से वे अधिक समय तक टिक न सके

- -

1 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.220

2 सम्पादक विद्यानिवास मिश्र - आज के प्रिय कवि अज्ञेय (परिचय) पृ.10

3 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.179 - 80

और बाद मे 'आल इन्डिया रेडियो' दिल्ली मे काम किया । 1940 मे उनकी शादी हो गई । लेकिन दाम्पत्य जीवन एक चुभन ही बन सका ।

सन् 1942 मे फासिस्ट विरोधी भावना से प्रेरित होकर अज्ञेय ने अखिल भारती फासिस्ट विरोधी लेखक संघ' का आयोजन किया । इसी सम्मेलन के बाद प्रगतिशील सम्मेलन का एक अलग शाखा बनी । सन् 1943 मे युद्ध मे शरीक हो गए । लेकिन बाद मे युद्ध से मुक्ति माँग ली । क्योंकि उनकी राय मे युद्ध एक सहज मानव स्थिति नही है । ' मै भर्ती होने के पहले भी सोच सकता था । सेना के अनुभव इससे आगे भी कुछ है । आपको मालूम है कि मै आतंकवादियों के साथ रहा हूँ, इसलिए स्पष्ट है कि मेरे विचार अहिंसावादी तो नही रहे होंगे - यहाँ मै अहिंसा का प्रचलित अर्थ ले रहा हूँ, क्योंकि मै अपने को कट्टर अहिंसावा मानता रहा हूँ । कोरी सैद्धान्तिक बहस मे नही पड़ना चाहता । पर सेना के अनुभव ने युद्ध के बारे मे मेरा दृष्टिकोण बदल दिया है । कह नही सकता कि यह केवल अस्थायी मानसिक प्रभाव है या कि अनुभव-जात बौद्धिक निष्कर्ष, किन्तु आज तो मानता आया हूँ कि आगामी युद्ध मे - प्रत्येक युद्धान्त आगामी युद्ध के बीज बो देता है, उसे शान्ति समझना प्रवंचना है । - मै शान्तिवादी हूँगा । फिर चाहे किसी भी देश का प्रश्न क्यों न हो और भारत मे गृह-युद्ध क्यों न होता हो । मेरा यह मत गांधी जी की अहिंसा से भिन्न है यह अवश्य कहूँगा ।

सन् 1945 मे वे युद्ध से मुक्त होकर अलग हो गए । '46 पिता की मृत्यु हो गई और वे पुत्र को साहित्य साधक के रूप मे देखना चाहते थे । '47 मे इलाहाबाद आकर 'प्रतीक' का सम्पादन प्रारंभ किया सन् '52 तक 'प्रतीक' चलता रहा । इस बीच उन्होंने भारत के कोने कोने मे घूमने का कार्य किया और भारत को समझने मे सफलता पाई ।

सन् 1955 से लेकर उनकी विदेश यात्रा की एक दौर शुरु होती है । पहली बार 'युनेस्को' के निमंत्रणानुसार पश्चिम यूरोप की यात्रा पर गए । '57 मे जापान और उसके बाद

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय : आत्मनेपद पृ.22 ।

अमेरिका । इस प्रकार विदेश यात्रा का सिलसिला लगातार बनी रही । '58 में स्वदेश लौट आए दिल्ली में अपना निवास स्थान बनाया । अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन जैसे साहित्य संगोष्ठियों में भाषण देता रहा । सन् 1960 में दुबारा विदेश यात्रा पर निकले, इस यात्रा के दौरान 'काल यास्पेर्स' जैसे महान दार्शनिकों से मुलाकात हुई । '61 में कालिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्यापक होकर गए और '64 तक वहीं रहे । अमेरिका में रहकर भी भारतीय संस्कृति का उन्होंने गहरा अध्ययन किया ।

अज्ञेय सन् '65 से लेकर एक वर्ष तक 'दिनमान' का सम्पादन कार्य में लग गए । '66 में फिर वे विदेशी यात्रा पर निकले । इस यात्रा के दौरान उन्होंने पूर्वी यूरोप, रूमेनिया, यूगोस्लेविया, रूस और मंगोलिया आदि राष्ट्रों की यात्रा की । इसी साल आयोजित भारत के विभिन्न स्थानों के साहित्य परिषद समारोह में भाग लिए - बिकानेर, अजमेर, शिमला, दिल्ली और एर्णाकुलम आदि जगहों पर भारतीय उपलब्धि के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी साहित्य पर व्याख्यान दिया । उन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि अंग्रेज़ी न भारतीय भाषा है न हो सकती है । वह अधिक से अधिक भारत के अभारतीय जन की भाषा है । भारत का तादात्म्य अंग्रेज़ी से नहीं । भारतीय भाषाओं में भी जो साहित्य पाश्चात्य साहित्य में अपना प्रामाण्य ढूँढता है वह सहज नहीं है और इसलिए वह बराबर आतंकित है कि कहीं अर्थ न खो जाए । वस्तुतः साहित्य में विशुद्ध रूप से स्वतः प्रामाण्य भारतीय साहित्य की कसौटी है; लारेंस और काफ़्का से अधिक कालिदास और तुलसीदास में इस साहित्य का प्रामाण्य है[1]।

जानवरी '67 में आस्ट्रेलिया में 'एशियाई देशों में साहित्य विनिमय' विषय पर आयोजित संगोष्ठि में भारत के प्रतिनिधि के रूप में अज्ञेय ने भाग लिया ।

अज्ञेय की जीवनी विविध प्रकार के संचित अनुभवों एवं विविध कार्य कलापों का एक क्रमीकृत कोष माना जा सकता है, जो निरन्तर विकासमान था । इसलिए उनके जीवन एवं व्यक्तित्व में एक प्रकार का क्रमीकरण आ गया । विभिन्न संस्कृतियों से परिचित होने के कारण उसमें एक सुदृढता एवं विस्तार आ गया ।

- -

1 सम्पादक - विद्यानिवास मिश्र - आज के प्रिय कवि अज्ञेय (परिचय) पृ.25-26

व्यक्तित्व की विशेषता - अज्ञेय में हम एक विशेष प्रकार के व्यक्ति को पाते हैं । यह विशेषता दूसरे साहित्यकारों में नहीं लक्षित होती । यही उन्हें साहित्यकारों के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान भी प्रदान करती है । इसे अज्ञेय का अहंवादी दृष्टिकोण बताया गया है । इसी कारण उन्हें कटु आलोचना का सामना करना पडा है । लेकिन उनके दृष्टिकोण को व्यक्तिवादी की अपेक्षा व्यक्तित्ववादी कहना अधिक उचित लगता है । इस दृष्टिकोण की पृष्ठ भूमि में एक उभरे हुए व्यक्तित्व की छायाएं स्पष्ट होती हैं । एक सुदृढ एवं विकासमान व्यक्तित्व से हमारा परिचय हो जाता है । सामाजिकता और व्यक्ति के सन्दर्भ में अज्ञेय का कथन है - 'संक्षेप में यह कहूं कि मैं व्यक्ति का अपने प्रति भी उत्तरदायित्व मानता हूं, समाज के प्रति भी । यह कोई नई बात नहीं । पर मैं अपने प्रति उत्तरदायित्व को प्राथमिक मानता हूं और समाज के प्रति दायित्व उसी से उपपन्न । यहां से मतभेद का क्षेत्र आरंभ हो जाता है । और आगे मैं लेखक का बहैसियत लेखक के एक आन्तरिक निजी उत्तरदायित्व भी मानता हूं और एक अतिरिक्त सामाजिक उत्तरदायित्व भी - वह भी गौण या उपपन्न ही'[1] । इसी कारण वे अपने को किसी राजनीतिक दल के सदस्य नहीं मानते । उनके अनुसार कलाकार के पक्ष में राजनीति स्थानादि केलिए आकर्षक हो सकती है । अहं के संप्रेषण के सन्दर्भ में राजनीति हमेशा गला घोटने केलिए कटिबद्ध है । इसलिए अज्ञेय एक दफे सांस्कृतिक स्वातंत्र्य के विषय को लेकर जो सम्मेलन हुआ जो वस्तुतः दिल्ली में होना था, राजनीतिक परिस्थिति वश बम्बई केलिए स्थानापन्न किया गया । अज्ञेय ने, खुद इस सम्मेलन का सचिव होते हुए भी भाग नहीं लिया । वास्तविकता के उपर अवास्तविकता जब बलपूर्वक छा जाती है तब ऐसे अवसरों पर अज्ञेय अपने को वहां से आगे ले जाते हैं । क्योंकि वे अपने को पूर्ण रूप से स्वतंत्र रखना चाहते हैं । स्वाभाविकता की कमी जब महसूस की जाती है तब उसे स्वाभाविक मानकर चलने केलिए उनका अहं कभी तैयार न था । वे कहते हैं - जो कुछ करता रहा हूं, उस पर लज्जित नहीं हूं, उसे गलत भी नहीं मानता । इधर कुछ मित्रों ने सुझाया कि इस प्रकार शक्ति का अपव्यय होता है और जितनी शक्ति मैं ने इन या ऐसे दूसरे कामों में लगाई उसका इससे अच्छा उपयोग भी हो सकता था । मैं यह मान लेता हूं । सोच भी रहा हूं कि भविष्य में ऐसी झंझट में न पडूं । पर इसे आप सामाजिक बोध कह कीजिए, चाहे खुदाई फौजीदारी, कि जब मुझे स्पष्ट कुछ दीखता है जिसे दूसरे नहीं देख रहे हैं - या देखते हैं तो

- -

1 अज्ञेय आत्मनेपद - पृ. 204

जोखम के डर से कह नहीं रहे है - तो उसे कहे बिना नहीं रह जाता ।[1]

अज्ञेय के इस उभरे हुए व्यक्तित्व का परिस्थिति जन्य कारण भी है । अज्ञेय को जहाँ कहीं भी जीवन बिताने का अवसर मिला वहाँ सब उन्होंने एक अर्से तक एकान्त जीवन बिताया और वे अपने अहं को पुष्ट करते रहे और वे अपने को विकास करना ही व्यक्ति के विकास मानते है । जहाँ व्यक्तियों का विकास न हुआ हो वहाँ सामाजिक या सास्कृतिक क्रान्ति से क्या लाभ ? इसलिए अज्ञेय ने अपनी परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाया । 'मुझे जो शिक्षा-दीक्षा मिली, उसमें संतुलन को - जीवन, कर्म और भावाभिव्यक्ति के सहज संयम को - विशेष महत्व दिया जाता रहा । और परिस्थितियों ने इतना अधिक एकान्त दिया कि एक आत्मनिर्भरता अभ्यास नहीं, चरित्र का एक अंग बन गई: चिन्तन और अनुभूति कम नहीं हुई, पर कोई अनुभूति तत्काल दूसरों पर प्रकट हो दी जानी चाहिए या चेहरे पर झलक आनी चाहिए, सामाजिकता की ऐसी कोई परिभाषा भी सीखने को न मिली । अब, जब इतना एकान्त नहीं है, तब उस संस्कार की छाप तो है ही । लोग मुझे अच्छे लगते है, पर भीड नहीं उतने ही जितने से एक साथ सीधे निजी संपर्क हो सके जितनों मे सभी मुक्त मान से अपने को अभिव्यक्त दे सकें और एक की अभिव्यक्ति दूसरे की बाधा न बने । समाज मे जीवी बनकर आऊं या रहूं, यह मुझे अच्छा लगता है; अभिनेता बनकर रहूं, यह गलत है । जहाँ अभिनेता बनकर आना अनिवार्य हो वहाँ भरसक आता ही नहीं; क्योंकि वह फिर उस अर्थ मे समाज नहीं है - वहाँ आदान प्रदान की एक सी मुक्ति नहीं बहती है । लेखक, या कवि या साहित्यकार के नाते विशिष्ट रूप मे दूसरे के सामने आने मे मुझे संकोच ही नहीं, ग्लानि भी होता है । क्योंकि वैसा कुछ वैशिष्ट्य है तो साधना के क्षेत्र मे । समाज को उससे कुछ मतलब है तो तब जब मेरी रचना उनके सम्मुख है और मैं नहीं हूं । अगर मैं, या मैं भी सम्मुख हूं तो फिर उस विशिष्टता छोड देना चाहिए या ओट कर देना चाहिए क्योंकि तब मै समाज का अंग बना रहना चाहता हूं, एक प्रदर्शित जन्तु नहीं ।[2]

अतः इसमें सन्देह नहीं है कि अज्ञेय को जिन अर्थ मे व्यक्तिवादी या अहंवादी कहा गया है, उसी अर्थ मे वे ये दोनों नहीं है और उसका एक आत्यन्तिक पक्ष है । उस

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.207

2 वही पृ.173

आत्यन्तिक स्थिति में वे विशिष्ट होते हुए विशिष्ट नहीं है । तब उनकी रचनाएं साधारण बन जाती है यानी आरोपों या दलीलों या कहे दावों का एक ढेर न बन कर चिन्तन और अनुभूति को अधिक से अधिक आत्मसात् करने की इच्छा कूट-कूट कर भरी हुई मिलती है ।

अज्ञेय के व्यक्ति के बाहरी रूप में ज़रूर अन्तर्विरोध है । लेकिन उसे उनके व्यक्तित्व क उभरता हुआ पक्ष मानना इस अर्थ का द्योतक है कि अज्ञेय उनकेलिए ज्ञेय नहीं हुए है । व्यवस्थाप्रियता एवं सुरुचि और शालीनता जो उनके व्यक्ति पक्ष के कुछ मुख्य अंग है । लेकिन इन्हीं अंगों को पाश्चात्य संस्कार का उनपर प्रभाव माना गया । लेकिन जितने वे विदेशी दीखते है उतने वे भारतीय है । भारतीय संस्कृति के जो कुछ व्यावहारिक तत्व है एक संस्कार के रूप में बचपन से ही उन्हें मिले थे । उन्होंने अपने एक खत में जो विद्यानिवास मिश्र को लिखा था, सूचित किया है - मन यहां (विदेश से लिखा हुआ पत्र) नहीं है देश में है । यों कोई विशेष आकुलता भी नहीं है, शायद जहां हूं वहां अकुलाहट हो ही नहीं सकती, पर न केवल एक भी सूत्र नहीं है जो यहां से तनिक सा भी बांधे, एक भी प्रणाली ऐसी नहीं है, जो यहां की मिट्टी में धंसी है । और वहां से कुछ रस खींच सकती हो । यह पौधा जीता हो तो देश से लाए हु संचय के सहारे और नया कुछ पाएगा भी तो वहीं लौटकर ही । मैं यहां आकाश जीवि महसूस करता हूं ।[1] अज्ञेय का संस्कार पूर्ण रूप से भारतीय ही है और इस अपने में ये कोई हीनता-ग्रन्थी का अनुभव भी नहीं करते बल्कि इस चिरन्तन संस्कार में पलने का गौरव भी महसूस करते हैं । लेकिन भारतीय में जो जड तत्व है उसे फेंक निकालने में नहीं हिचकते । भारतीयता के चिरन्तन सत्य की खोज करते हुए वे कहते है – हिन्दू देवताओं को छोडकर किसी के दिन इतने लम्बे नहीं होते । यों अमर तो सभी देवता होते हैं, लेकिन दूसरों के देवताओं के दिन रात साधारण मानव दिन-रात ही होते हैं, और उनकी जीवन चर्या की कल्पना में अपने यथार्थ काल से परे नहीं ले जाती । लेकिन भारत के देवताओं के जीवन की कल्पना ऐहिक काल की भावना को मिटाकर ही की जाती है । और जब हमारा काल ही यथार्थ नहीं रहता, तब उस काल में होने वाले व्यापार भी अयथार्थ हो जाते है । हमारे यथार्थ दुख-क्लेश, हमारी यथार्थ आशा-आकांक्षा, मानव के उद्योग परिश्रम मानवी व्यापार मात्र अयथार्थ हो जाते हैं । और यथार्थ से स्खलन का प्रभाव मानवी

- -

1 सम्पादक - विद्यानिवास मिश्र - आजके प्रिय कवि अज्ञेय (परिचय) पृ.21-22

संबन्धों पर भी पडता है : हमारे लिए हमारे पडोसी भी यथार्थ नही रहते, बल्कि किसी हदतक स्वयं ही किसी हदतक अपनेलिए यथार्थ नही रहते - क्योंकि ब्रह्मा के एक निमिष-पात मे हमारे कल्पान्त विलीन हो जाते है, उसके सामने क्या हमारा क्षुद्र जीवन हमारी अपेक्षा मे एक रोग कीटाणु का जीवन जितना नगण्य है, उससे भी तो नगण्य हम हो जाते है । और फिर ब्रह्मा के निमिष पात की हम जन कल्पना करते है, तो ब्रह्मा के मानवाकार ही कल्पना करते है - अर्थात् एक कल्पित-सा कल्पनीतीत - अतिमानव ब्रह्म के सामने यथार्थ ऐहिक मानव न कुछ के बराबर है । अपनी इस नगण्यता से ही स्वीकार की भावना उत्पन्न होती है - दुख के प्रति स्वीकार दैन्य के प्रति स्वीकार, उत्पीडन के प्रति स्वीकार, यहां तक कि दासता के प्रति स्वीकार, वह दासता दैहिक हो या मानसिक[1] । भारतीय संस्कार की ऐसी विशेषताओं का जब पर्दाफाश किया जाता है तब अज्ञेय कुछ लोगों के लिए परम्परा - द्रोही हो जाते है । कोई भी संस्कृति पूर्णतः उच्च कोटि की नही है । इसलिए जिस सनातन सत्य मे जड़-तुल्य भावनाएं है तो तुरंत उसका जड़-हनन की आवश्यकता पड़ जाती है । दैन्यता के प्रति जो स्वीकार भावना है वह 'स्वयं जड़ है और जाड्य उत्पन्न करने वाली निकलता कि भारतीय संस्कृति अग्राह्य है या कि भारतीय परम्परा त्याज्य है । परिणाम तो यह निकलता है उसके संबन्ध मे हमारी धारणाएं भ्रान्त है और त्याज्य है । दूसरे यह भी परिणाम निकलता है कि जिसे हम भारत की आत्मा समझते है वह वास्तव मे आत्मा और अनात्मका, जीवित और जड़ का एक पुंज है, जिसकी परीक्षा की आवश्यकता है, परीक्षा करके जड़ को अलग रख देना होगा - चाहे पुरातत्व संग्रहालय मे ही - और जीवित को आगे बढाना होगा'[2]। प्रश्न यह है कि सही पहचान की जरूरत ही मुख्य है । दूसरी संस्कृति से जीवित मूल्यों के प्रति आग्रह रखना तब किस अर्थ मे बुरा होता है ? जब पहचान की कसौटी मे खरी उतरती है तब उसको, चाहे वह आधार-विहीन अर्थ मे संग्रहीत किया हो, सही अर्थों मे अपनाया जा सकता है । अज्ञेय का दृढ विश्वास भी है - 'मै असन्दिग्ध भाव से इतना जानता हूं और कहना चाहता हूं कि भारतीयता को कल्याण कर बना सकती है'[3]। तब कुछ आरोप उट-पटांग लगते है - अज्ञेय परम्परा विद्रोही है - अज्ञेय विदेशी संस्कार से अभिभूत है अज्ञेय भारतीयपन को नकारता है ।

- -

1 अज्ञेय आत्मनेपद - पृ. 101-102

2 वही पृ. 103

3 वही पृ. 104

अविराम रूप से चली आनेवाली एक परम्परा को उन्होंने यों ही स्वीकार नहीं किया, आ पैनी दृष्टि से देखा तो बहुत कम स्वीकार किया । अतः स्वाभाविक रूप से समाज के ठेकेदारों नज़र में वे परम्परा - विद्रोही हुए । अपने कर्तव्य पालन में उन्होंने अपने व्यक्तित्व का हनन नहीं किया तो उन्हें विदेशी सभ्यता से अभिभूत मानने लगे । उनका दृष्टिकोण सतही स्तर पर नैतिक (नैतिकता नहीं) नहीं । इसलिए उनपर अनैतिकता का आरोप लगाया गया । अज्ञेय का व्यक्ति अपने को वितरित करता है – 'मानव का जो अंश सर्वाधिक असंपृक्त, अनासक्त है । वही सब से अधिक सहता है - वही सबसे अधिक तीव्रता से अपने अस्तित्व का अनुभव करता है वह अंश ही सब से अधिक वह मानव है '[1] । अतः स्पष्ट रूप से व्यंजित होता है कि अज्ञेय का व्यक्ति हमेशा एक खोज में रत रहता है । यह खोज मात्र उनके सृजनात्मक क्षेत्र तक सीमित न होकर, सामाजिक एवं वैयक्तिक सीमाओं की ओर भी संचरण करती है । अतः वह विकसनशी है और जडत्व से उन्मोचन भी चाहती है । सर्जनात्मकता ही उसका मूल स्वर है ।

.... कुछ ऐसे वन विहग होते हैं कि खुले में ही विचरते रहने देना चाहि इसी में उसका स्वास्थ्य है, और इसी में उनके संभाव्य आहेरी बने रहते हैं, पकडे जाकर वे रोगी, रवाज भरे बुच्चे हो जाएंगे[2] । अज्ञेय ऐसे इनगिने वन-विहगों में आते हैं जिन्होंने अपना रास्ता खुद बनाया और उसी पर चलने को अपना भला समझते है । इस प्रकार अपने लिए एक खुली राह - पूर्वाग्रह विहीन राह बना लेना किसी साधारण व्यक्ति केलिए संभव नहीं । जो 'टैप' न 'व्यक्ति' होता है उसकेलिए यह संभव है । इसलिए वे लिखते हैं 'तो तुमने अपना रास्ता खुद-चुना' वे इसी आस्था विहीन पथ के वन विहग रहे है, इसलिए अज्ञेय को उद्दत, अग्राह्य अरसिक अ नामों को अपने उपर लेना पडा । इन नामकरणों के पीछे कभी पूर्वाग्रह रहा है और कभी नासमझी ।

<u>एक अकेला विशिष्ट व्यक्तित्व</u> - अज्ञेय का व्यक्तित्व अपने में पूर्णतः अकेला है । इस अपनेप के कारण उन्हें अहंवादी ठहराया गया । लेकिन अज्ञेय अपने लिए यह नाम उपयुक्त ही समझते

- -

1 अज्ञेय-आत्मनेपद - पृ.25।

2 अज्ञेय-भक्ती -(पहला संस्करण - 1972) पृ.9

3 वही पृ.10

क्योंकि मैं अपनी दुनिया में रहने का आदी हूँ और गहरे में कहीं जानता और मानता आया हूँ कि वह दुनिया मैं ही बनाता हूँ, मैं ने ही बनाई, मैं ही मिटाउँगा जब इसलिए लोग अहंवादी या अयथार्थवादी कहते हैं तो क्लेश भले ही हो, आश्चर्य नहीं[1]। इसलिए नहीं कि उनकी दुनि आस्थाओं की दुनिया नहीं। इस एकान्त जीवन के, अकेली दुनिया के किसी भी कोने में दूसरों के, या दूसरे किसी पूर्वाग्रह के स्पर्श के बिना जीना ही जीवन का मुख्य ध्येय समझते हैं। उन जीवन पूर्णतः मनुष्य बनकर जीने में था - सौ फीसदी मनुष्य बनने में। 'अज्ञेय की लोकप्रियत का राज जहाँ तक मैं जान सका हूँ उनका कवि से अधिक मनुष्य बनने का दावा है। मनुष्य के रूप जब कभी कोई चुनौती उन्हें मिली है, तो उन्होंने कविता का शरण न लेकर उस चुनौती को व्यक्ति के रूप में स्वीकारा है चाहे क्रान्तिकारी रूप में, चाहे फासिज्म-विरोधी रूप में, या स्वाधीनता के पक्षधर के रूप में आग में कूदे बिना उनसे रहा न गया। जिन लोगों को वे अप्रिय हैं उन लोगों को भी अज्ञेय से विरोध इसलिए नहीं कि अज्ञेय उनका विरोध करते हैं, बल्कि इसलिए कि विरोध करने के बजाय वे चुप रहते हैं[2]'। विरोधी को उन्होंने स्वीकार कर लिया था। क्योंकि उनके लिए जीवन एक यज्ञ है। यज्ञ या साधना में वे अपने को पूर्ण रूप से निमग्न करना चाह है। 'अगर अपने से बड़े विचार, अइडिया केलिए जीता हूँ तो स्पष्ट है कि मेरा जीवन एक यज्ञ है उस विचार या आदर्श केलिए अर्पित आहूति मैं हूँ[3]। लेकिन इस आदर्श जीवन से मतलब पूर्णतः आदर्शवादी जीविका से नहीं बल्कि जीवन दर्शन के कुछ पहलुओं को आदर्श की च सीमा पर पहुँचाने में है। इस आदर्शवादिता का संबन्ध सचाई से है। अज्ञेय अपने पाठकों व भी साथ ले जाना चाहते हैं, पर सब तरह के पाठकों को नहीं जिनमें आज की संवेदनाएँ हो - 'मुझे आज का सहृदय चाहिए और आज चाहिए। संख्या में अधिक पाठक न मिले, कोई बात नहीं, एक ही मिले, पर उसका हृदय आज का हो, मेरे युग के संवेदना से संपन्न, उसकी क से व्यथित। उसमें शाश्वत कुछ होगा तो इसी के बीच में से होगा, यह नहीं होगा तो फिर कभी कुछ नहीं होगा - निरवधि काल में भी नहीं - केवल आत्मप्रवंचना होगी[4]।

- -

1 अज्ञेय - भवन्ती पृ. 10

2 सम्पादक - विद्यानिवास मिश्र - आज के लोकप्रिय कवि - अज्ञेय (परिचय) पृ.4

3 अज्ञेय - भवन्ती - पृ.71

4 वही पृ.73

साहित्यकार मे एक प्रकार की आदर्शवादिता हमेशा बनी रहती है । चाहे वह प्रगतिवा हो या प्रयोगवादी । अज्ञेय की आर्शवादिता की अभिव्यक्ति उनकी साहित्यिक रचनाओ मे हो ग है तो रुढिवादी या परम्परावादी अर्थ मे नही बल्कि एक नई परम्परा की शुरुआत केलिए । अज्ञेय के ये शब्द उद्धृत कर सकते है - 'मै कहू कि मै उन अल्पसंख्यको मे से हू कि दूसरा विकल्प अपनाते है और मानते है कि वही उचित है । जो मुझे कहने के योग्य जान पडा है उसे मै कहू ऐसी स्थिति मे मै भरसक अपने को नही डाला है । उसको कम ही लोग समझेगे, इसलिए उससे या उसमे पानी मिलाकर उसे वितरित करू, यह प्रयत्न मै ने भरसक नही किया है । जो मुझे नही कहना है, जो मेरे निकट अयोग्य, अनुपयुक्त, असार, असुन्दर या असत्य है वह कहने की विवशता या प्रलोभन मे पडू, इससे मै भरसक बचा हू । मै जानता हू कि इससे भिन्न म अपनाया होता तो एक अर्थ मे कही अधिक 'सफल' हुआ होता । उस सफलता के न मिलने मुझे दुख नही है, क्योकि वह मेरी अभीष्ट ही नही थी । मै यह भी जानता हू कि अनेक प्रका की युक्तियो के अलावा जब के नाम पर भी मेरी इस - इसे चाहे तो प्रवृत्ति कह लीजिए, चाहे आदर्श, चाहे हठ, चाहे साधना - का विरोध हुआ है । ऐसा विरोध भी परिस्थितियो की देन है और मुझे उसे ग्रहण करना चाहिए, यह मै ने माना'।[1]

साहित्यकार केलिए परिवेश और अनुभूति ये दोनो मुख्य प्रेरक स्थितियाँ है । लेकिन इस बढकर एक और स्थिति यह भी है जो प्रथम दोनो स्थितियो से मुख्य मानी जा सकती है, वह है अहं की खोज जो सत्य के निकट है । इसे हम सत्य की खोज कह सकेते है । जो साहित्यका इस खोज के पथपर निरन्तर अपने को बढाते हुए आगे निकलते है उनको साधारण दृष्टि मे असफलता ही दीखती है। लेकिन वे वस्तुतः असफल नही है । अज्ञेय इस अर्थ मे अपने को असफल नही मानते यद्यपि उन्हे असफल ठहराया गया है । वे लिखते है - कह लीजिए कि आत्मसम्मान का अतिरंजित भाव है, या अहंकार है, या कोरी सिद्धांतवादिता या अनावश्यक संवेदनशीलता कि मिज़ाज़ ज्यादा नाज़ुक है या चमडी बहुत पतली है । कह लीजिए कि ऐसे राजनीति मे सफल नही हो सकता, और आज सफलता का अर्थ राजनीतिक सफलता ही है । मै मानता हू कि मै असफलता के पथ पर हू । लेकिन भीतर से कुछ कहता है कि उस पथ के अ

- -

1 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.159

पर पहुँचकर जब पीछे देखूँगा तो कुल मिलाकर अपनी असफलता पर ग्लानि नहीं होगी, न अपने को यह आश्वासन देना आवश्यक जान पडेगा कि इसकी पूर्ति अगले जन्म मे या लोक मे होगी इस लोक की उतनी मात्र उपलब्धि यथेष्ट होगी ऐसा मुझे प्रत्यय है[1]। इस कथन मे अज्ञेय की निराशा नही है बल्कि उनके दृढ विश्वास और उसी पर अडिग रहने का साहस भी दीखता है। यह खोज उनके बाल्यकाल से लेकर आज तक उसी प्रकार निरन्तर गतिशील रही है और यह सत्य की खोज है वही उनके व्यक्तित्व का मुख्य प्रेरणा-बिन्दु है।

अज्ञेय का साहित्यकार - उपर बताया जा चुका है कि अज्ञेय का व्यक्तित्व अपने मे पूर्णतः अलग और स्वतंत्र है। साहित्यकार के नाते उन्होने अपने व्यक्तित्व का हनन न करते हुए ही साहित्यिक कृतियों की रचना की है क्योंकि उनकेलिए साहित्य नए मूल्यों की खोज है। इसलिए अपने दायि के प्रति विमुखता को वे वांछनीय भी नही समझते है। तमाम साहित्यकारों के प्रति वे कहते है जो जिस किसी भी दल का हो, साहित्यकार के नाते एक दायित्व है उसे निभाए। अज्ञेय का कथन है - ' मै जल्दी हडबडाता या घबराता नही हूँ न समस्या से भागने की ही मेरी प्रवृत्ति है। जब - तब खतरे की घण्टी बजाना या किवाड - झरोके बन्द करके अर्गला चढाना मुझे घृण्य है। खुली आँखें, बँधी मुटि्ठयाँ, अवचलित बुद्धि, स्पन्दनशील हृदय, इन्हे मै मानव गुण भी मानता हूँ और मानवता के प्रति दायित्व भी। आसन्न को कभी अनदेखा नही करता इसलिए अपने को अरक्षित भी नहीं मानता, अपना भले ही पाउं। इसलिए मै कहना चाहता हूँ कि उन तमाम लेखकों के सामने, जो लेखन कर्म का सम्मान करते है, जो उसे उपजीव्य बनाकर भी, उसके प्रति अपना एक नैतिक दायित्व समझते है, जो एक बनी बनाई लीक मे पड़कर हाके जाना नही चाहते, जो कला को स्वाधीन चेतना की स्वाधीन अभिव्यक्ति मानते है, एक बहुत बडा प्रश्न और एक महान कर्तव्य है। उन्हे उसका सामना करना है और एक साथ मिलकर करना है'[2]।

अज्ञेय लेखक की हैसियत से हमेशा अपने अहं के साथ न्याय करते आये है। व्यक्तित्व का संपूर्ण प्रतिस्फुरण एवं विकास वे लेखक केलिए अनिवार्य रूप से अपेक्षित घोषित करते है। लेखक को वह स्थिति और वातावरण खोजना और गढ़ना है जिसमे स्वाधीन व्यक्तित्व पनप सके, उ साधनों को पाना और बनाना है, जिनके द्वारा वह व्यक्तित्व अभिव्यक्त हो सके। उसे न सम

---

1 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ. 176 - 177

2 वही पृ 123

मे विलीन हो जाना है, न निरे स्वच्छन्दतावाद मे पलायित होना है, न सर्वसत्तावाद स्वीकार करना है, न संपूर्ण अराजकता । वह उत्तरदायित्व मुक्त नही है; पर उसका उत्तरदायित्व न तो अधिकार की अभ्यस्त पुरानी पीढी का अपने अधिकार के प्रति उत्तरदायित्व है, न परिवर्तन-कामी बीच की पीढी का अपने प्रति उत्तरदायित्व । उसका दायित्व है स्वाधीन विवेक के प्रति यद्यपि मै इसकी कठिनाइयाँ ही गिनता आया हूँ । लेकिन अगर वही एक रास्ता है तो उसकी कठिनता या दुर्गमता भी ऐसी बाधा नही हो सकती जिसे उलांघ न सकें[1] ।

साहित्यकार काल-बोध एवं युग बोध से वंचित नही रह सकते । इसलिए वह हमेशा एक स्पन्दन का अनुभव करता है और अपने हृदय के स्पन्दन के साथ मिलाकर सह-स्पन्दन की उपस्थिति भी पैदा करता है । इसकेलिए वह मुक्त ही है । एक तो कवि इसलिए मुक्त है कि वह परम्परा को बदलता चलता है - चल सकता है यानी परम्परा से नही, केवल पुरानी परम्परा से मुक्त हो सकता है, परम्परा को निरन्तर नया रूप देते रहकर । और जब तक वह परम्परा मे कुछ जोडता चलता है, तब तक वह नया होता चलता है और मुक्त होता चलता है यह प्रक्रियागत उन्मोचन ही मुक्ति है, दूसरी कोई मुक्ति कवि की नही हो सकती - याने कवि रहते कोई मुक्ति नही हो सकती[2] ।

जो साहित्यकार युग-बोध की पहचान के बावजूद अपने दायित्व बोध के प्रति किंचित भी विमुखता प्रकट नही करता है उसका नए मूल्यों की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक है । अतीत-गन्धी प्रतिष्ठितमूल्यों के प्रति न्याय करने के साथ साथ नए मूल्यों की सर्जना मे उसका रत हो जाना भी स्वाभाविक है । तब मूल्यगत व्यापकता विस्तार पाता है । जो साहित्य या काव्य अपने समय की चिन्ताओं को, सन्देहों को व्यक्त करता है - मूल्यों का संकट पहचानकर उन नए मूल्यों को पाने को छटपटाता है, जो इस संकट के पार बचे रह सकते है वही आज का साहित्य है, जिस संकट की बात मै ने की है, वह कवि का ही न रहकर कविता - साहित्यकार का ही रहकर साहित्य का होता है, तो इसी अर्थ मे[3] ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ. 114

2 अज्ञेय - भवन्ती - पृ. 22

3 वही पृ. 78

अतः अज्ञेय के पक्ष मे साहित्यकार और साहित्य एक खोज के पथ पर स्थिर है । उसके आगे और पीछे परम्परा है । परिवेश है । मूल्य गत संकट भी है । तब स्वाभाविक रूप से पहचान की समस्या उठती है । मृत-प्राय मूल्यों को जानना है और उसको अस्वीकार करना है । गत्यात्मक मूल्यों को पहचानते हुए मूल्यगत संकट के स्पन्दन को छूकर देखे, अनुभव करे, स्वायत्त करे तभी सत्य और अहं का सम्मिलन संभव है और साहित्यकार सर्जना की मुख्य प्रेरक व्यक्ति से साक्षात्कार कर सकते है, याने युग सत्य एवं व्यक्ति सत्य से सामंजस्य स्थापित कर सकते है ।

<u>अज्ञेय का रचना व्यक्तित्व</u> - रचनाकार का निजी व्यक्तित्व कभी यथार्थ कभी अयथार्थ रूप मे रूपायि होकर रचना मे अभिव्यक्त होता है । रचना व्यक्तित्व के बहुत से पक्ष है । रचना व्यक्तित्व के अन्तर्गत अनुभूत्यात्मक सत्य की अपेक्षा परिवेश गत सूक्ष्मता एवं सामाजिक बोध का एहसास भी होत है । सामाजिक यथार्थ व्यक्तित्व से छनकर संप्रेषित होता है, तभी वह कृति का अंग है, सृजनात्मक संप्रेषण है । वही तो और कैसे वह कृति मे आता है[1] ।

कृति या रचना मे निजी व्यक्तित्व का प्रस्फुटन और सामाजिक सत्य का गहरा प्रभाव समा रूप से सम्मिलित होकर अभिव्यक्त होते है । लेकिन अहं का पक्ष याने आत्मा पक्ष - निजी व्यक्ति का अधिक प्रभाव हमे लक्षित होगा । 'कृतिकार का उद्देश्य या लक्ष्य केवल अनुभव का संप्रेषण सहज बोध द्वारा अपनी अनुभूतियों से व्यापकतर अनुभवों मे प्रवेश, उन अनुभवो की पकड, और उनका संप्रेषण - यही उसका लक्ष्य है । यह पूरा हो जाता है तो उसे तृप्ति होती है, वही आत्माभिव्यक्ति का संतोष है, यद्यपि आत्माभिव्यक्ति लक्ष्य नही था । और यह पूरा हो जाता है तो समाज प्रभावित भी होता है, यद्यपि समाज को प्रभावित करता भी लक्ष्य नही था । फिर वह प्रभाव कैसा, अच्छा है या बुरा, यह इस बात पर निर्भर नही कि कृतिकार ने अपने सामने उद्देश्य क्या रखा था, यह इस बात पर निर्भर है कि वह स्वयं है क्या ? कृति द्वारा प्रभाव जो मै चाहता हू उसका नही पडता जो मै हू उसका पडता है[2] । कृति कृतिकार को रचती है रचन मे रचना व्यक्तित्व की अपेक्षा निजी व्यक्तित्व इसलिए ज्यादा झलकता है कि रचनाकार रचना के माध्य से अपने को पहचानना चाहता है । अज्ञेय का कथन है कि मै इसलिए लिखता हू कि स्वयं जान

- -

1 अज्ञेय
2 अज्ञेय - भवन्ती पृ. 80

चाहता हूँ कि क्यों लिखता हूँ - लिखे बिना इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता है । वास्तव में सच्चा उत्तर यही है । लिखकर ही लेखक उस अभ्यन्तर विवशता को पहचानता है जिसके कारण उसने लिखा - लिखकर ही वह मुक्त हो जाता है । मैं भी उस आन्तरिक विवशता से मुक्ति पाने केलिए, तटस्थ होकर उसे देखने और पहचानने केलिए लिखता हूँ ।[1]

एक आन्तरिक विवशता और विवशता जन्य संघर्ष के कारण रचनाकार अपने में असंतुलित होकर खुद अभिव्यक्त होना चाहता है और जो अभिव्यक्त होता है वह रचनाकार का मिला जुला रूप होता है - जिसे हम रचना व्यक्तित्व के नाम से अभिव्यक्त कर सकते हैं । रचना व्यक्तित्व निजी व्यक्तित्व का एक संशोधित एवं सधा हुआ रूप है क्योंकि इसमें लेखक अपना प्रतिरूप पाता है । 'साहित्यिक कृति सर्वदा तो नहीं किन्तु बहुधा आत्मविश्लेषण अथवा आत्माविष्कार का साधन भी होती है । रचना प्रक्रिया में ही रचयिता स्वयं अपने को नए अथवा सही रूप में पहचनता है । इस प्रकार जितनी कृतिकार द्वारा रची जाती है उतनी स्वयं कृतिकार को भी रचती है'[2] ।

अज्ञेय के रचना - व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम - हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उपन्यासकार एवं कवि के रूप में अज्ञेय शीर्षस्थानीय हो गए हैं । लेकिन उनके रचना व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम हैं जो कवि एवं उपन्यासकार के अलावा और कई रूपों में द्रष्टव्य हैं ।

अज्ञेय का कवि - इसका दो रूप प्रबल हैं । वे एक पहुँचे हुए कवि होने के साथ साथ एक कवि - व्यवस्थापक भी हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि के समान अज्ञेय का एक व्यवस्थापक के रूप में अज्ञेय की उपलब्धियाँ वस्तुतः हिन्दी साहित्य की सन् 30 से लेकर सन् 50 तक की उपलब्धियाँ हैं । अज्ञेय की यह उपलब्धि 'तारसप्तक' से लेकर शुरु होती है ।

कवि के रूप में अज्ञेय छायावादोत्तर काल में साहित्य के प्रांगण में प्रविष्ट हुए और तारसप्तक सम्पादन के साथ कविता में प्रयोग करन शुरु किया । छायावाद के रूमानी वातावरण

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.236

2 [illegible] (प्रथम संस्करण) - (अज्ञेय और लेखक के बीच

का उनकी कविता मे समावेश होते हुए भी उन्होने भावावेग की स्थिति को कवि केलिए अनिवार्य नही समझा । इसलिए उन्होने परम्परा को तोडा था और काव्य के शब्द एवं भाव को नई अर्थवत्ता प्रदान की । अज्ञेय का रचना व्यक्तित्व परम्परा से परिग्रह जोडने के आग्रह पर स्थित है और इसलिए वह नए आयामो की खोज करता है । तारसप्तक इसका वह पहला कदम है जिससे उन्होने खोज की साथ ही व्यवस्थापक का रूप की धारण किया । सात विभिन्न कवि - प्रतिभाओ को उन्होने एकसूत्र मे बाधा । क्योकि अज्ञेय को अन्वेषको की खोज थी । उन्होने यह व्यक्त भी किया है । ' वे किसी एक स्कूल के नही है, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नही है, अभी राही है - राही नही, राहो के अन्वेषी उनमे मतैक्य नही है, सभी महत्वपूर्ण विषयो पर उनकी राय अलग अलग है'[1] । प्रयोगशीलता के नमूने इनमे किसी न किसी रूप मे पाए जाने के कारण, रूढि से अछूत रहने के कारण एक दल के रूप मे बंध गए । क्यो कवि प्रयोगशीलता की ओर संचरण कर रहे है इस उत्तर अज्ञेय देते है – 'यो समस्याएं अनेक है – काव्य विषय की, सामाजिक उत्तरदायित्व की, संवेदना के पुनः संस्कार की, आदि किन्तु उन सब का स्थान उनके पीछे है, क्योकि वह कवि-कर्म की मौलिक समस्या है, साधारणीकरण और कम्यूनिकेशन (सम्प्रेषण) की समस्या है । और कवि को प्रयोगशीलता की ओर प्रेरित करने वाली सबसे बडी शक्ति यही है । कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमे नही है - शब्दो के साधारण अर्थ से बडा अर्थ हम उसमे भरना चाहते है, पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन मे उतार देने के साधन अपर्याप्त है'[2] । यही चाह उन्हे अन्वेषण के पथ पर अग्रसर होने को मजबूर करता रहा ।

तारसप्तक के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद शब्द रूढ हो गया और यहा तक वह रूपवाद संज्ञा मे प्रयुक्त होने लगा । लेकिन अज्ञेय इसका विरोध करते है - 'तो प्रयोग अपने आप इष्ट नही है, वह साधन है । और दोहरा साधन है । क्योकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनो को जानने का भी साधन है । अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है'[3] ।

- -

1 अज्ञेय (सम्पादक) तारसप्तक - दूसरा संस्करण (1969) भूमिका से - पृ.12

2 वही अज्ञेय का वक्तव्य - पृ.276

3 अज्ञेय (सम्पादक) दूसरा सप्तक (द्वितीय संस्करण) भूमिका से - पृ.7

'तीसरे सप्तक' के सम्पादन के समय अज्ञेय के सामने काव्य की नई प्रवृत्तियाँ मौजूद थी - नई कविता । इसके बावजूद भी अज्ञेय ने सात कवियों की कविता का 'तीसरे सप्तक' में सम्पादित किया । उन्होंने यह देखा कि 'संकलित कवियों में अपने कवि-कर्म के प्रति गंभीर उत्तरदायित्व का भाव हो, अपने उद्देश्यों में निष्ठा और उन तक पहुँचने के साधनों के सदुपयोग की लगन हो । जहाँ प्रयोग हो वहाँ कवि मानता हो कि वह सत्य का ही प्रयोग होना चाहिए । यों काव्य में सत्य क्यों कि वस्तुत सत्य का रागाश्रित रूप है, इसलिए उसमें व्यक्ति-वैचित्र्य की की गुंजाइश तो है ही बल्कि व्यक्ति की छाप से युक्त होकर भी वह काव्य का सत्य हो सकता है । क्रीडा और लीला भाव भी सत्य हो सकते हैं - जीवन की ऋजुता भी उन्हे जन्म देती है और संस्कारिकता भी । देखना यह होता है कि वह सत्य के साथ खिलवाड़ या 'फ्लर्टेशन' मात्र न हो'[1] । अतः अज्ञेय के कवि - व्यवस्थापक में जीवन के वस्तु-सत्य को जानने और उसे संप्रेषित करने का आग्रह सर्वदा रहा है ।

अज्ञेय का पहला प्रयोग रूढियों को तोडने केलिए कटिबद्ध रहा - शब्दों में - अर्थ व्यंजना में - कविता की परिणति में -

'अगर मैं तुम को
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हाई कुईं
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही,
ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच'[2]

---

1 अज्ञेय (सम्पादक) तीसरा सप्तक (तृतीय संस्करण) भूमिका से - पृ.12

2 अज्ञेय 'पूर्वा (पहला संस्करण) कलगी बजरे की' शीर्षक कविता - पृ.244

वस्तु - सत्य में उनका प्रयोग विद्रोह के निकट है -

यह जो मिट्टी गोड़ता है,
कोदई खाता है और गेहूं खिलाता है,
उसकी मैं साधना हूं ।
यह जो मिट्टी फोड़ता है
मड़िया में रहता है और महलों को बनाता है
उसकी मैं आस्था हूं
यह जो कज्जल - पुता खानों में उतरता है
पर चमाचम विमानों को आकाश में उड़ाता है,
यह जो नंगे बदन, दम साध, पानी में उतरता है
और बाज़ार के लिए पानीदार मोती निकाल लाता है
यह जो कलम घिसता है
चाकरी करता है पर सरकार को चलाता है
उसकी व्यथा हूं [1]'

वे आगे लिखते हैं -

शिक्षा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है
जो भी जहां भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है -
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर शिल्पि स्रष्टा
उसकी मैं व्यथा हूं [2] ।

अज्ञेय में जो अन्वेषण है वह उनके अपने व्यक्तित्व का ही अन्वेषण है । इसी कारण से रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा कि 'अपने से बाहर आने की बात व्यक्तित्व को आधुनिक बनाने का

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय इन्द्र धनु रौन्दे हुए थे (प्रथमावृत्ति) 'मैं वहां हूं' शीर्षक कविता - पृ. 19

उपक्रम है, स्वप्निल आदर्शवाद से प्रयाण है । यह व्यक्तिवाद नही, व्यक्तित्ववाद है जहाँ व्यक्ति और समाज एक दूसरे के विरोध मे नही, एक दूसरे को पुष्ट करने केलिए है । अज्ञेय केलिए मानवीय व्यक्तित्व की समस्या बराबर केन्द्र मे रहती है[1] ।

'दूर.... दूर.... दूर.... मै वहाँ हूँ ।
यह नही कि मै भागता हूँ :
मै सेतु हूँ
जो है और जो होगा दोनो को मिलाता हूँ....
मै हूँ, मै यहाँ हूँ
पर सेतु हूँ, इसलिए
दूर.... दूर.... दूर..... मै वहाँ हूँ[2]'।

विद्रोह के बाद एक तरह का पृथक्त्व भाव अज्ञेय की कविता के दूसरे चरण की विशेषता मानी जा सकती है । कथा साहित्य मे उनकी विद्रोह प्रवृत्ति प्रारंभिक चरण की विशेषता है । जीवन के प्रति आस्था जनित साक्षात्कार विकसित होकर अज्ञेय स्वयं सृजनात्मकता के रहस्य को पकड़ने आगे निकलते रहे । इस समय की उनकी कविताओं मे एक प्रकार की रहस्योन्मुखता दिखाई पड़ती है जो वस्तुतः रहस्यवादिता नही है –

मै भी एक प्रवाह मे हूँ -
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नही है,
मै उस असीम शक्ति से
संबन्ध जोडना चाहता हूँ -
अभिभूत होना चाहता हूँ
जो मेरे भीतर है[3] ।

वाक्य-विन्यास एवं भाव मे रोमान्टिकता का होते हुए भी इस कविता मे रोमान्टिकता की ओर कोई खिंचाव नही है 'अज्ञेय के समूचे कृतित्व मे सर्जनात्मकता की ओर यह पहला

---

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या (प्रथम संस्करण) पृ.7

2 अज्ञेय - इन्द्रधनु रौन्दे हुए ये - मै वहाँ हूँ शीर्षक कविता - पृ.19

3 अज्ञेय - 'पूर्वा' - रहस्यवाद शीर्षक कविता - पृ.79

महत्वपूर्ण संकेत है । रचनाकार की आरंभिक गैररोमान्टिक वृत्ति उसे रहस्यवाद की ओर उन्मुख करती है, और उस नए रहस्यवाद में वह ईश्वर को सर्जनात्मक शक्ति के रूप में देखना चाहता है छायावाद से भिन्न अज्ञेय में ईश्वर की परिकल्पना धार्मिक और दैवी रूप में न होकर ऐहिक सर्जनात्मक रूप में है और विराट सृष्टि स्वतः उस जगत् स्रष्टा की सर्जनात्मकता का प्रमाण है, जहाँ से मानव अपने सृजनात्मक संचरण को संभव बनाता है..... इस सृजनात्मक रहस्यवाद में अनुभूति का संक्रमण आवेग में नहीं होने पाता क्योंकि उसका संस्पर्श विचार से होता है[1] । 'शेखर' से लेकर 'अपने अपने अजनबी' तक के औपन्यासिक विकास में भी एक आस्थाजनित साक्षात्कार को साधने की एक प्रवृत्ति है जो उपन्यासों में पीडा के अनुभव के साथ होता है । 'शेखर' में पीडा और वेदना कम नहीं है जो स्वयं लेखक ने स्वीकार किया भी है । 'नदी के द्वीप' में पीडा का तत्व उसकी मूर्धन्यावस्था में है । रेखा उसका अछूता उदाहरण है । रेखा भुवन से कहती है, 'हम अपने भीतर पकाकर व्यथा को सौन्दर्य बनाते हैं - यही सृष्टि का रहस्य है'[2] ।

कविता में इसका झलकता उदाहरण 'चक्रान्तशिला', 'असाध्य - वीणा' शीर्षक लंबी कविताओं में उपलब्ध है । इन दोनों कविता में एक मौन साधना है, एक अपरिमेय निष्ठा है

> पर सबसे अधिक
> वन के सन्नाटे के साथ मौन हूँ, मौन हूँ -
> क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूँ
> जोडता है मुझे विराट से
> जो मौन है, अपरिवर्त, अपौरुषेय है
> जो सब को समोता है
> मौन की ही सूत्र
> किसी अर्थ को मिटाए बिना
> सारे अर्थ क्रमगत
> सुमरिनी में पिरोता है[3] ।

---

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी : अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - पृ.21

2 अज्ञेय - नदी के द्वीप (पाँचवां संस्करण) पृ. [illegible]

3 अज्ञेय - आँगन के पार द्वार - (प्रथम संस्करण) चक्रान्त शिला शीर्षक कविता - पृ.40

मौन साधना और समर्पण के साथ व्यक्तित्व पूर्णता की ओर संचरण करने लगता है, सर्जना की उपादेयता की सीमा को छू लेती है । 'असाध्य-वीणा' सर्जनात्मकता के रहस्य के अनजाने कोणों तक जाने का प्रयास है ।

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा -
नहीं स्वयं अपने को शोध रहा था ।
सघन निविड में वह अपने को
सौंप रहा था उस किरीटी-तरु को
कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभिमंत्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे ?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन भर की साधना रही
भूल गया था केशकम्बली राज-सभा को
कम्बल पर अभिमंत्रित एक अकेलेपन में डूब गया था'[1]।

प्रियंवद कह रहा है -

श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैं ने
सब कुछ को सौंप दिया था
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी -
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है ।[2]

- -

1 अज्ञेय - आँगन के पार द्वार - असाध्य-वीणा शीर्षक कविता - पृ.77 - 78

2 वही - पृ. 87

आस्था जनित प्रीतिकर सत्ता की स्थापना के द्वारा शून्यता को अर्थवत्ता से भरना चाहता है । यही दृष्टिकोण एक भिन्न रूप में 'अपने अपने अजनबी' में अभिव्यक्त हुआ है । जीवन रूपी प्रवाह केलिए एक उन्मेष प्रदान करने का प्रयास भी मौजूद है साथ ही साथ अज्ञेय की कविता में समर्पण का भाव भी सन्निहित है ।

अज्ञेय के कृति-व्यक्तित्व का पूर्ण रूप प्राप्त होने केलिए उनकी अन्य साहित्यिक प्रयासों की ओर भी देखना पडता है । आधुनिक युग में गद्य के विकास के साथ अनेक प्रकार की गद्य विधाओं का जन्म हुआ । इस सन्दर्भ में अज्ञेय के दो यात्रा वर्णन विशेष उल्लेखनीय है 'अरे यायावर रहेगा याद जिसका रचनाकाल है सन् 1953, दूसरा 'एक बूंद सहसा उछली' जो सन् 1960 में प्रकाशित हुआ ।

पहला यात्रा-वर्णन, 'अरे यायावर रहेगा याद' की पट-भूमि भारतीय ही है । इस रचन की कलात्मक उपलब्धि निर्विवाद है । लेकिन यात्रावर्णन के माध्यम से वे एक चिन्तन परंपरा को विकसित करने में असमर्थ निकले । अरे यायावर रहेगा याद' का अज्ञेय अधिक से अधिक सौंदर्य प्रेमी है - नागकेसर के फूल तब पूर्ण विकसित हो चुके थे, पखुडियाँ झरने लगी थीं और केसर की मादक गन्ध छोटी पहाडियों और उपत्यकाओं को लाँघती हुई शून्य में फैल रही थी । तीसरे पहर बडे बडे शुभ्र बादल उठते थे और बच्चों की तरह नाना प्रकार के जन्तुओं का रूप धर की क्रीडा करते हुए आकाश के प्रांगण के पार निकल जाते थे । मन्दिर श्रेणी के नीचे बिछे हुए सरोवर का नील विक्षुब्ध हो उठता था और मानो उसे पहचानने केलिए किनारे के अशोक-वृक्ष के दो चार खिले फूल झर कर उस पर आ गिरते थे[1] । लेकिन इसी सिलसिले में प्रकाशित उनका दूसरा यात्रा - वृत्तान्त एक भिन्न कोटि की है । कलात्मक उपलब्धि की सुरक्षा करते हुए चिन्तन परं को उजागर करते हुए अज्ञेय ने संस्कृति के पहलुओं पर अधिक ध्यानावस्थित दीखते हैं । इसलिए पहली रचना से एक दम भिन्न एवं प्रौढ रचना का रूप भी धारण किया है । अपनी उद्देश्य-शुद्धि का व्यक्त करते हुए उनके दृष्टिकोण के सबन्ध में अज्ञेय लिखते हैं -'यह पुस्तक मार्ग-दर्शिका नहीं है । इसके सहारे यूरोप की यात्रा करनेवाला यह जान लेना चाहे कि कैसे वह

---

1 अज्ञेय - अरे यायावर रहेगा याद (जुलाई 1953) पृ. 193

कहाँ से कैसे मौसम केलिए कैसे कपडे उसे ले जाने होगे - या कि कहाँ कितने मे उसका खर्च चल सकेगा, तो उसे निराशा होगी[1]। अतः एक बून्द सहसा उछली एक संवेदना की संरचना है जिसमे मानव को समझने समझाने की प्रवृत्ति छिपी हुई है। इटली के संबन्ध मे लिखते लिखते अज्ञेय की स्मरण-शक्ति वहाँ के विद्रोही कवि 'लाउरो उ बोसिस' की ओर डूब जाती है 'लाउरो को विश्वास था कि जीते रहने की अपेक्षा मरकर मै अधिक उपयोगी हो सकूँगा। उसका यह विश्वास व्यर्थ नही गया। अपने गीति नाट्य इकारो मे उसने लिखा था -

किन्तु मेरा स्वप्न, वह सत्य होगा, शस्त्र - युक्त होगा,
और वह रणसंकुल के मध्य मे होगा।
और कवि का स्वप्न कवि मे उर्ज्जीवित करता है।
नए प्राण, नई सामर्थ्य गति, एक नई पार्थिव शक्ति।

लाउरो स्वयं सागर और आकाश के रहस्यमय नीलिमा मे खो गया लेकिन यह सामर्थ्य गति यह पार्थिव शक्ति बराबर क्रियामाण रही[2]।

दोनों यात्रा-वर्णनो मे, विशेषकर दूसरी रचना 'एक बूंद सहसा उछली' मे लेखक के चिन्तन एवं विचार स्फुट रूप मे व्यक्त हुआ है। अतः अज्ञेय का चिन्तक व्यक्तित्व का उभरता रूप स्पष्ट रूप से व्यक्त होता ही है।

आलोचनात्मक रचनाओ मे अज्ञेय की तारसप्तक केलिए लिखी भूमिकाएं विशेष महत्वपूर्ण की है। लेकिन अलावा इसके उनकी 'आधुनिक साहित्य का परिदृश्य' और 'त्रिशंकु' नामक रचनाएं लेखक के आलोचक रूप को प्रस्तुत करता है। आधुनिक साहित्य का परिदृश्य पूर्ण रूप से आलोचनात्मक लेखों का संग्रह है। 'त्रिशंकु' की विशेषता यह है कि इसमे लेखक व्यक्तित्व को स्पष्ट करनेवाले चिन्तक के रूप भी अभिव्यक्त हुआ है। लेखक के अनुसार यह ग्रंथ 'युद्धोत्तर कालीन साहित्य अथवा साहित्यिक समस्याओ पर लिखित एक विश्लेषणात्मक निबन्ध संग्रह है[3]।

----

1 अज्ञेय - एक बून्द सहसा उछली (प्रथम संस्करण) 'निवेदन' पृ.13

2 वही पृ.40

3 अज्ञेय - त्रिशंकु (प्रथम संस्करण) भूमिका से

इसके अधिकतर लेखों में लेखक ने अपने स्वः का विश्लेषण किया है, चिन्तन को रूपायित किया 'हमने कहा कि कला एक अपर्याप्तता की भावना के प्रति व्यक्ति का विद्रोह है । इसका अभिप्राय क्या है ? कला संपूर्णता की ओर जाने का प्रयास है, व्यक्ति की अपने को सिद्ध करने की चेष्टा है । अर्थात् वह अन्ततः एक प्रकार का उन्मादन है, जिसके द्वारा व्यक्ति क अहं अपने को अक्षुण्ण रखना चाहता है, सामाजिक उपादेयता यद्यपि भौतिक उपादेयता से श्रेष्ठ ढंग की उपादेयता का अनुभव करना चाहता है । अतएव सृष्टि के प्रति कलाकार में एक दायि भाव रहता है – अपनी चेतना के गूढ़तर स्वर में वह स्वयं अपना आलोचक बनकर जाँचता रहता है कि जो उसके विद्रोह का फल है, जो समाज को उसकी देन है....[1]'।

'आत्मनेपद' अज्ञेय का विश्लेषणात्मक निबन्धों का संग्रह है जिसमें अज्ञेय स्वयं को अन्वेषित करने की चाह मिलती है । अपनी ही कविताओं एवं उपन्यासों के संबन्ध में वक्तव्य संग्रहीत है । अज्ञेय के व्यक्तित्व का खुला हुआ रूप आत्मनेपद में से हमें मिलता है । आत्मनेपद अज्ञेय के आत्मदान की खुली अभिव्यक्ति है । क्योंकि अज्ञेय के अहं का विश्लेषण खुद अज्ञेय ने ही किया है ।

अज्ञेय के चिन्तन में कभी कभी भटकने की प्रवृत्ति भी दीखती है । भटकने की इस प्रवृत्ति में एक प्रकार की विनोदमयता भी मौजूद है । 'सब रंग और कुछ राग' शीर्षक ललित निबन्धों का संग्रह अज्ञेय की इस प्रवृत्ति का प्रमाण है । इसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है – 'पहले भी सब रंग ही रंग नहीं था, थोड़ा राग-रोष भी उसमें व्यंग्य था; नए निबन्धों में इसका कसैलापन थोड़ा अधिक है शायद[2]'। व्यंग्य और लालित्य के साथ गए इसी प्रकार का एक और निबन्ध-संग्रह है 'आलवाल' । लेकिन दोनों ग्रन्थों में लेखक के रचना व्यक्तित्व का पक्ष दुर्बल समझना ही अधिक संगत लगता है ।

अज्ञेय के रचना - व्यक्तित्व की चर्चा के सिलसिले में उनके सद्यप्रकाशित दो ग्रन्थों की चर्चा अनुचित नहीं है । लेखक के पत्रों, यत्र, तत्र लिखित छोटी छोटी खण्ड विचारधाराओं का

- -

1 अज्ञेय – त्रिशंकु (प्रथम संस्करण) पृ.3।

2 सच्चिदानन्द वात्स्यायन (रचयिता – कुट्टिचात्तन) सब रंग और कुछ राग (द्वितीय

संग्रहीत रूप है प्रस्तुत दोनों ग्रन्थ – 'भवन्ती' एवं 'अन्तरा' ।

'भवन्ती' की भूमिका में लेखक ने इसकी लेखन-प्रक्रिया के संबन्ध में सूचना दी है – 'जिन छोटे-छोटे प्रकरणों को जोडकर यह पुस्तक बनी है, वे प्रायः सभी छोटे-छोटे युद्धों के इतिहास है प्रत्येक के पीछे एक 'यंत्रणा भरी प्रक्रिया रही है'[1] । 'अन्तरा' के निवेदन में अज्ञेय ने लिखा – 'अन्तरा में ऐसे स्थल है जहाँ व्यंग्य में तीव्र आक्रोश भी है, पर वहाँ भी मेरा वार अधर्म नहीं है बल्कि अधर्म युद्धों के विरोध में ही है, मैं चाहता हूं कि पाठक इसे पहचाने[2] स्पष्ट है उपर्युक्त दोनों रचनाएँ अज्ञेय के फुटकल चिन्तन के संग्रहीत रूप होते हुए भी उनमें अज्ञेय ने अपने को, परिवेश को तराशने का सफल प्रयास किया है ।

अज्ञेय के व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को पहचानने केलिए उनके रचना - व्यक्तित्व की वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्तियों पर प्रकाश डाला गया है । तब हम पाते है कि अज्ञेय में यह प्रयास हमेशा बना हुआ है कि अपने निजी व्यक्तित्व और रचना व्यक्तित्व में एक प्रकार का सामंजस्य स्थापित हुआ है । इस प्रयास में वे सफल भी है । 'विशिष्ट और अपनी विशिष्टता में से अलग, एकमात्र अपनी खोई हुई – असम्प्रवादी - आत्मवत्ता को खोजने और महसूसने की जटिल प्रक्रिया का एक गहन दायित्व के रूप में – एक अस्तित्ववादी अनिवार्यता के रूप में – साक्षात्कार'[3] अज्ञेय में सुलभ है ।

<u>निष्कर्ष</u> - अज्ञेय का व्यक्तित्व सामान्य नहीं है विशिष्ट है । उनका विशिष्ट व्यक्तित्व उनकी कृतियों में विभिन्न मात्राओं में द्रष्टव्य है । व्यक्तित्व का एक विकसित रूप उनकी रचनाओं में उपलब्ध होता है । वस्तुतः वे अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्तित्व को विकसित करने की कोशिश में लगे हुए है ।

- - - - - - -- - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - भवन्ती (पहला संस्करण) 'निवेदन' पृ.5

2 अज्ञेय - अन्तरा (पहला संस्करण) 'निवेदन' पृ.8

3 रमेशचन्द्र शाह समानान्तर (प्रथम संस्करण) पृ.54

दूसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यास साहित्य : अज्ञेय तक

उपन्यास : एक सामान्य विश्लेषण - हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास पर दृष्टिपात करने के पहले उपन्यास का सामान्य विश्लेषण उचित प्रतीत होता है । अतः आगे के पृष्ठों में संक्षेप में उपन्यास का विश्लेषण किया जाएगा । हिन्दी में उपन्यास शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के 'नोवल' शब्द से व्यवहृत साहित्य विधा के लिए किया जाता है । गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत 'नोवल' का स्थान प्रथम गणनीय है ही । वैसे तो उपन्यास एवं कहानी कथा साहित्य के अन्तर्गत है । साहित्य परंपरा पर दृष्टिपात करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि कथा साहित्य का प्रथम रूप पद्यमय ही रहा है ।

कथा साहित्य परंपरा की पूर्व पीठिका की चर्चा यहाँ आवश्यक प्रतीत नहीं होती । स से पहले उपन्यास की रूपगत एवं भावगत विशेषताओं पर विचार किया जायेगा । आधुनिक जी परिवेश को लिपिबद्ध करने के लिए साहित्यकारों ने कथा साहित्य का सहारा लिया जो सर्वथा आधुनिक युग के अनुरूप था । इसी कथा साहित्य का प्रारंभिक रूप राजा - रानी की कथा में मिलता है । उसी ढाँचे में आधुनिक साहित्यकार की, जीवन के प्रति एक धारणा है जिसका एक वास्तविक रूप उपन्यास है । लेकिन इस कथन से यह सन्देह हो सकता है कि प्रारंभिक काल के उपन्यासों में लेखकों का जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण था वह वास्तविक था या नहीं ? परन्तु एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य है कि जीवन के प्रति वास्तविक धारणा का उदय इन साहित्यकारों के हृदय में भी हुआ - याने स्वप्निल रंगीनियों से मुक्त होकर वास्तविकता की ओर संचरण करने की प्रवृत्ति जब इन में प्रवृत्त हो उठी तब उपन्यास जैसी विधा का जन्म हुआ । लेकिन प्रारंभ कालीन उपन्यासकार अपने को पूर्ण रूप से मध्ययुगीन प्रभावों से दूर नहीं रख सके, यह अलग बात है ।

हम उपन्यास की रूपगत व्याख्या करने केलिए किसी विशेष युग के उपन्यास को नहीं ले सकते; क्योंकि युग के अनुकूल उपन्यास का रूप बदलता रहा है । अतः उपन्यास के रूप निर्धारण केलिए हम न श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' को ले सकते न धर्मवीर भारती के 'सूरज का सातवाँ घोडा', या कृष्ण सोबती के 'सूरजमुखी अँधेरे के' को । अर्थात् समस्या सिर्फ इस बात की है कि हम उपन्यास को किसी ठोस सिद्धांतों के दायरे में नहीं रख सकते । इस केलिए जितने प्रमाणित सिद्धांत व्यवहृत है वे सब युगानुरूप परिवर्तित है । पुरानी पीढी के आलोचकों के अनुसार उपन्यास के मुख्य तत्व है कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देशकाल या वातावरण, भाषा शैली एवं उद्देश्य है । उपर्युक्त सैद्धान्तिक धारणाएँ आधुनिक दृष्टि के अनुकूल नहीं है । समय के साथ ये धारणायें भी बदलती रही है । प्रेमचन्द जैसे उपन्यासकारों ने उपर्युक्त सिद्धांतों का यथासंभव पालन किया है, लेकिन जैनेन्द्र जैसे बाद के साहित्यकारों ने इन सिद्धांतों का मोह छोडा है ।

विल्यम् हड्सन के अनुसार उपन्यास का अस्तित्व वहाँ है, जहाँ सब कहीं के, सब समय के स्त्री-पुरुषों ने अपने जैसे स्त्री-पुरुषों में रुचि ली हो और वह भी मनुष्य की आकांक्षाओं और कार्य-व्यापारों की विशालता में[1] । उपर्युक्त परिभाषा इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें मानवीय कार्यव्यापारों पर बल दिया गया है । लेकिन हड्सन ने उपन्यास के लिए निम्नांकित

---

1. We have already seen that the novel owes its existence to the interest which men and women, everywhere and at all times have taken in men and women and in the great panorama of human passion and action.

William Henry Hudson - An Introduction to the Study of Literature (Second edition) p.129

तत्वों का होना वांछनीय समझा है[1]।

(1) कथावस्तु (प्लोट)

(2) पात्र (चरित्रचित्रण) - कैरेक्टरस

(3) कथोपकथन - डायलोग

(4) वातावरण - सीन - टाइम आफ आक्शन

(5) शैली - दि एलिमेन्ट आफ स्टैल

(6) जीवन - दर्शन-फिलोसोफी आफ दि ओदर

प्रसिद्ध अंग्रेज़ी उपन्यासकार एवं अलोचक ई.एम.फोस्टर ने उपन्यास का प्रथम एवं अनिवार्य अंग 'कथा' कहा है[2]। 'कथा' के बिना उपन्यास का अस्तित्व ही नहीं के बराबर है। सब प्रकार के उपन्यासों केलिए पात्र भी मुख्य है। उन्होंने पात्र केलिए पीपिल शब्द का प्रयोग किया है[3]। परन्तु फोस्टर के अनुसार कथा और कथावस्तु में अन्तर है। उदाहरण

- -

1. In the first place, the novel deals with events and actions with things are suffered and done, and these constistute we commonly call the plot. Secondly such things happen to people and are suffered or done by the people, and the men and women who thus carry on the action from its dramatic personae or characters. The conversation of these characters introduces a third element, that of the diologue, often so closely connected with chracterisation as to be an integrated part of it. Fourthly the action must take place and the characters must do and suffer, somewhere and at some time and thus we have a scene and a time of action. The element of style may be put next on our list, But this still remains a sixth componet to which too much importance can hardly be attached. Directly or indirectly and whether the writer himself is concious of it or not, every novel must necessarily present a view of life and some problem of life, that is it must exhibit incidents, character's passion and mottives as to reveal more or less distinctly the way in which the author looks out upon the world and his general attitudes towards it.
   - W.H. Hudson - An Introduction to the study of literature pp.130-31.

2. The Novel tells us story - that is the fundamental aspect without it could not exist. That is the highest factor common to all novels.

   E.M. Forster - Aspects of the Novel (Reprinted 1961) p.27

3. Since the actors in a story we usually human, convinient to entitle this aspect 'people'

   Ibid. 43.

देते हुए उन्होंने व्यक्त किया है - 'राजा का निधन हुआ, बाद में रानी का भी' - यह कथा है (स्टोरी) 'राजा का निधन हुआ, दुःख की वजह से रानी की भी मृत्यु हुई ; यह कथावस्तु है (प्लोट) कथा में पाठक पूछता है - 'फिर क्या हुआ'? कथावस्तु से परिचित व्यक्ति का प्रश्न यह होगा - 'क्यों' ?[1] इस प्रकार फोस्टर ने उपन्यास के लिए कथा, कथाबीज, एवं पात्र को मुख्य स्थान प्रदान किया है ।

डा.सुरेश सिन्हा अपने बृहत् ग्रन्थ 'हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास' में उपन्या केलिए निम्नलिखित तत्व अपेक्षित मानते है । वे इस प्रकार है[2] । (1) कथानक (2) पात्र एवं चरित्र चित्रण (3) कथोपकथन (4) देशकाल एवं वातावरण (5) प्रकृति चित्रण (6) विचार दर्शन (7) औपन्यासिक प्रवृत्ति (8) भाषा और शैली ।

लेकिन उपर्युक्त सिद्धांत निर्धारण में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है । उपन्यास को इन सब तत्वों के भीतर बाँधने की कोई आवश्यकता नहीं है । अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उपन्यास केलिए कथानक एवं पात्र ये दोनों तत्व एक दूसरे के पूरक है - आवश्यक तत्व है । कथानक पात्रों के जीवन संबन्धी गाथा है और इस गाथा का संचालक पात्र स्वयं है ।

कला एवं साहित्य मनुष्य सृष्टि के अन्तर्गत आते है । मानवेतर क्षेत्र साहित्य और कला के लिए बहिष्कृत भी है । साहित्य मनुष्य के मस्तिष्क की एक विशेष प्रक्रिया का परिणाम है इसलिए साहित्य का विषय प्रथमतया मनुष्य से संबन्धित ही रहता है ।

साहित्यिक विधायें विशेषकर उपन्यास में सामाजिक प्राणी मनुष्य की ही कथा की प्रधानत है । अतः उपन्यास के पात्र समाज के स्त्री-पुरुष है । इनकी कथा चारित्रिक विशेषताओं के

---

1 If it is in a story we say 'and then?' If it is plot we ask 'why?' That is the fundamental difference between these two aspects.
E.M. Forster - Aspect of the Novel. p.83

2 डा.सुरेश सिन्ह - 'हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास' (प्रथम संस्करण) पृ.11

ज़रिये, वैयक्तिक भावनाओं के साथ उपन्यास के विस्तृत फलक में प्रस्फुटित होती है । इसी विचार धारा से मिलते - जुलते विचार निम्नांकित पंक्तियों में अभिव्यक्त है । —'यहाँ तक उपन्याय कला के क्षेत्र के विस्तार की बात है, वह सारे मानव जगत की सीमा से कुछ कम नहीं है । उपन्यासकार स्त्री-पुरुषों का अध्ययन करता है, वह उनके कार्यों एवं विचारों पर ज़ोर देत है, उनकी गलतियों और कमियों पर, उनकी महानता और निस्सारता पर, निस्सीम सुन्दरता पर तथा नित परिवर्तित मानसिक अवस्थाओं पर, उन पर पड़ने वाली प्रेरणाओं पर, उनके उद्वेगों पर, अरुचियों, आशाओं और आकांक्षाओं पर प्रकाश डालते है । इन सब के अलावा उसको स्त्री-पुरुषों से कार्य करना है उदाहरण केलिए उपन्यासकारों में किसी को भी एक प्राकृतिक दृश्य का चित्रकार नहीं कहा जा सकता । मनुष्य अपने उपन्यास के पात्रों की श्रृंखलाओं का एक सहायक ही है । भूभाग, समुद्र आकाश तथा वायु ये सब मात्र ऐसे साधन है, जिनको रंगमंच के चित्रे को अधिक प्रमुखता लाने के उद्देश्य से निकाले गए हैं । उपन्यास का सर्वप्रमुख नियम ही यह है कि मानुषिक रुचि बाकी सब बातों पर समा लेता है'[1]।

- -

1. As for the field with, which the art of fiction occupies itself, it is, if you please nothing less than of humanity. The Novelist studies men and women, he is concerned with their thoughts and actions, their errors and follies, their greatness and meanness, the countless forms of beauty and constantly varifying moods to be seen among them, the force which act upon them, the passion, prejudices, the hopes and fears which full them this way and that way and that he has, to do above all, and before all with men and women. None for instance, among novelist can be called a landscape painter or a painter of sea-pieces or a painter of fruit and flowers, save only instrict to the group of characters with whom he is dealing landscape, sky are mearly, accesseries introduced in order to set of and bring into greater prominence the figures on the stage. The first rule in fiction is the human interest must absolutely absorb everything else.

   Ed. George L. Barnett - 'Nineteenth Century British Novelists on the Novels' (1971) pp.229-30

इस उद्धरण का अन्तिम वाक्य विचारणीय है । बाहरी साज-सज्जा को मनुष्य की इच्छा की प्रभावोत्पादकता केलिए उपयोगी माना गया । आखिरी छोर ह्यूमन इन्टेरेस्ट को पूर्णरूप से अन्तस्थित करता है । अतः पात्र और उनके चरित्र चित्रण को उपन्यास का प्रमुख अंग माने तो कोई त्रुटि नही है । उपर्युक्त उद्धरण पर बल देने पर एक और तत्व लक्षित होते है जो उपन्यास केलिए आंशिक रूप से आवश्यक माना जा सकता है और उसे हम वातावरण (देशकाल) कह सकते है ।

<u>उपन्यास के प्रमुख अंग</u> उपर्युक्त पर्यवेक्षण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि उपन्यास के ये मुख्य तत्व है - (1) पात्र (मनुष्य जिसमे स्त्री एवं पुरुष समान रूप से प्रमुख है (2) कथानक, (3) वातावरण । लेकिन अंतिम दोनो अंश प्रथम पर आधारित एवं आश्रित है । ' पात्र और उनके चरित्र-चित्रण के बिना उसका (लेखक का) उपन्यास 'उपन्या नही कहला जा सकता, चाहे कुछ भी कहलाए । क्योंकि उपन्यास का मूल आधार मानव और उसका चरित्र है'[1]।

<u>उपन्यास और समाज</u> उपन्यास का मुख्य आधार मानव से संबन्धित है । परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है कि इसके साथ परोक्ष रूप से सही सामाजिक मूल्यों का उत्स मिला जुला रहता है । क्यों कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है ।

सामाजिक मूल्यों का प्रभाव साहित्य मे होना अपेक्षित है । जहां तक उपन्यास का संबन्ध है उसमे मनुष्य की कथा का विस्तार के साथ अंकन किया जाता है । सामाजिक उन्नति एवं अवनति का यथार्थ चित्रण उपन्यास मे होता है । प्रसिद्ध उपन्यासकार ई.एम.फोस्टर ने लिखा है - 'उपन्यास - लेखन समाप्त करने का एक कारण यह रहा है कि दुनिया का सामाजिक पक्ष बहुत कुछ बदल रहा है । मै तो पुरानी अवस्थाओं का आदी हो गया हूं । यद्यपि मै दुनियां की नई अवस्थाओं पर विचार कर सकता हूं फिर भी उसे कथा साहित्य के माध्यम से

---

1 डा.रणबीर रांग्रा - 'हिन्दी उपन्यासों मे चरित्र चित्रण का विकास' (प्रथम संस्करण) पृ.15

व्यक्त नही कर पाउंगा[1] । फोस्टर के इस कथन से यह बात साबित होती है कि उपन्यासकार को समय के साथ चलना चाहिए, नही तो उसकी रचनाओ समयानुकूल नही समझी जायेगी वैसे श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' के समय की सामाजिक अवस्था से बिलकुल भिन्न सामाजिक अवस्था 'शेखर एक जीवनी' के रचनाकाल की रही है । अतः सामाजिक मूल्यो के बदलने के साथ साथ उपन्यासकार को अपनी रचनात्मक प्रतिभा को विकसित करना है क्योंकि इस प्रतिभा की परिचालिका शक्ति समाज ही है । कहा जा सकता है कि लेखक को समकालीन प्रश्नो को उजागर करने का भी दायित्व भी उपन्यास के द्वारा निभाना है ।

उपन्यास मे पात्रो की सृष्टि सामाजिक मूल्यो पर अधिष्ठित है । अतः लेखक का व्यक्तित्व, समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण, लेखक पर पड़ी सामाजिक प्रतिक्रिया इन सब का औपन्यासिक चरित्र - चित्रण से संबन्ध है । चरित्र - चित्रण के अवसर पर उपर्युक्त बातो पर ध्यान देने की जरुरत पड़ती है । उपन्यास का मिश्रित शिल्प भी इन्ही के आधार पर रचित है यहाँ शिल्प से हमारा तात्पर्य रचना प्रविधि से है जो मात्र बाह्य रुप का विवरण न होकर आन्तरिक संवेदना से संबंन्धित है ।

<u>रचना प्रविधि और सामाजिक पक्ष</u> प्रथमतः शिल्प प्रविधि का संबन्ध लेखक से होता है । लेखक की अभिव्यक्ति के प्रेरणापक्षो मे समाज का प्रबल हाथ है । अतः उपन्यास की रचना प्रविधि मे जो अन्तर हमे दिखाई पड़ता है वह सामयिक है । शिल्प प्रविधि पात्रो के निर्माण से होकर उनकी कथा एवं परिवेश को स्पर्श करती हुई वातावरण के साथ उजागर होती है । हम शिल्प प्रविधि को उपन्यास के सम्मिश्रित गुंजाइस (टोटल इफेक्ट) कहे तो गलती नही होगी ।

<u>उपन्यास और पात्र</u> : साधारण मनुष्य और उपन्यासो मे चित्रित पात्रो मे अन्तर बताते हुए ई.एम.फोस्टर कहते है कि 'उपन्यास का पात्र ठीक विक्टोरिया रानी की तरह है तो वह विक्टोरिया रानी ही हो जायगी । उस अवसर पर यह पात्र संस्मरणात्मक रुप का आभास देता

---

1. 'I think one of the reasons why I stopped writing Novels is that the social aspect of the world chanved so much. I had been accustomed to write the old fashioned with its home and its' family and its' comparative pease. All that went and though I can think about the new world I cannot put into fiction'
Ed. Boris Ford :- The pelican guide to English literature - The Modern age - Vol. VII (Reprinted 1970) p.14

संस्मरण इतिहास है और वह वास्तविक घटनाओं पर आधारित है । उपन्यास घटनाओं पर आधारित है और उसके साथ उपन्यासकार की चित्रवृत्ति घटनाओं के प्रभाव को बदल देती है, और कभी कभी रुपान्तरित भी कर देती है ।[1] अतः वास्तविकता का आभास देते हुए उपन्यासकार अपनी कल्पना एवं परिवेश से ऐसे पात्रों को गढ लेता है । लेकिन उपन्यास घटनाओं पर आधारित होते हुए भी पात्र निर्माण में लेखकीय चित्तवृत्ति को प्रमुख स्थान देना पडेगा । इसके बदलने के साथ पात्र का समूचा रुप भी बदलता है । इतने पर भी लेखक का उत्तरदायित्व मात्र पात्रों के सृष्टि कर्म तक ही सीमित है । सृष्टि कर्म के बाद पात्र अपना रास्ता बना लेता है याने वह जीवन्त व्यक्ति की प्रतिनिधि बनकर उपस्थित होता है, अपने अलग व्यक्तित्व के साथ ।

<u>उपन्यासकार और पात्रों का अस्तित्व</u> बताया जा चुका है कि पात्र उपन्यासकार की अपनी सृष्टि है । लेकिन यहां प्रश्न यह है कि लेखक और पात्र का संबन्ध कहां तक सीमित है और कैसे ? एक बात सही है कि लेखक के जीवन दर्शन, व्यक्तित्व और कथा बीज के मूल तन्तु का प्रभाव आद्यन्त पात्रों पर छाया रहता है । फिर भी पात्र लेखक के हाथ की पुतली नहीं है । पात्रों का स्वतंत्र अस्तित्व है साथ ही वे स्वयं भी स्वतंत्र हैं । जिस समय एक पात्र का प्रवेश एक उपन्यास में होता है तब से लेकर वह उपन्यासकार के हाथ से निकलकर अपनी राहों को खुद खोज लेता है । पूरी स्वतंत्रता के साथ वह जहां चाहे जा सकता है जो चाहे कर सकता है । लेखक उसके साथ चलना उस पात्र के अस्तित्व की जड़ों को उखाडने के समान है । पात्र - प्रस्तुतीकरण के बाद लेखक का कार्य समाप्त हो जाता है । उपन्यास का विस्तृत प्रांगण पात्रों की रंगभूमि है ।

उदाहरणार्थ हम कुछ ऐसे पात्रों पर विचार करेंगे जो पूरी स्वतंत्रता के साथ पूरे उपन्यास में छाये हुए हैं । एर्नेस्ट हेमिंग्वे का उपन्यास 'दि ओल्ड मान आण्ड दि सी' का बूढा

- -

1. If a character in a novel is exactly like queen Victoria not rather than but exactly like-then it actually is queen Victoria and the Novel, or all of it that the character touches becomes a memoir. A memoir is history, based on evidence. A novel is based on evidence + or - x, the unknown quantity being the temperament of the novelist and the quantity always modifies the effect of the evidence and some times transforms it.
E.M. Forster 'Aspects of the novel. p.44

मछुआरा । नाम उसका सैन्टियागो है । सैन्टियागो और एक छोटे लड़के के वार्तालाप के साथ उपन्यास का आरंभ होता है । यह एक ऐसा प्रारंभ है जिसके साथ हमें यह महसूस होता है कि सैन्टियागो और हमारे बीच का संबन्ध बहुत पुराना है । उपन्यासकार पात्र एवं पाठक के बीच संबन्ध बनाए रखने की चेष्टा में सफल रहे हैं । यहां लेखक मौन है । यही उसकी सफलता है । वैसे इस उपन्यास का अन्त भी रोचक है । सैन्टियागो द्वारा पकड़ी मछली की हड्डियों की लंबी-चौडी बातचीत का मात्र जिक्र हमें मिलता, है न सैन्टियागो वहां मौजूद है, न उससे संबन्धित बातें । यही उपन्यासकार का 'टेक्नीक' है ।

एक दूसरा उपन्यास है अलबेर कैमू का 'आउट सैडर'। प्रस्तुत उपन्यास का नायक का नाम मेरसा जो अलजियर्स में एक साधारण क्लार्की की नौकरी करता है । एक साधारण फ्रेंच अलजीरियन मध्यवर्ग का युवा है वह । खुद अपना भोजन पकाता है और फ्लैट में चैन से रहता है । हफ्ते के अन्तिम दिनों में वह अपनी प्रेमिका के साथ घूमता है, सिनेमा देखता है मौज करता है । लेकिन उसके हृदय में साधारण मनुष्य में होने वाली भावनाएं बहुत कम हैं वह जीवन की सचाई, मृत्यु, यौन भावना आदि को एक अजनबी के समान बाहर से देखता है अपने को एक ट्रेजडी में पाकर भी वह अन्य मनस्क होकर ही रहता है । वह अपने को इतने स्वतंत्र समझता है और अपने चारों ओर की परिस्थितियों को इतना खोखला समझता है इसका आभास हमें उपन्यास के प्रथम वाक्य से ही मालूम हो जाता है[1] । 'शायद कल ही उसकी मृत्यु हुई होगी यही सोचकर वह उपन्यास में प्रवेश करता है । इस पात्र की अन्यमनस्कता ही यहां व्यंजित है । यह सब होते हुए भी मेरसा बिना किसी रुकावट के साथ आगे बढ़ता रहता है । लेखक की अपनी आवाज़ कहीं भी गूंजती नहीं है ।

संक्षेप में उपन्यास में पात्रों की अपनी राह हो, और वह भी उनकी अपनी बनाई हुई हो । उसका संबन्ध लेखक से न होकर सदैव पाठक से होना है ।

- -

1. Mother died tody or, may be yesterday, I can't be sure. The telegram from the home says - your mother passed away, funeral tomannor. Deep sympathy. whichleaves the matter doubtful. it could have been uesterday.
Albert Camus. 'The out sider' (Translated by -Stuart Gilbert) (Reprinted 1974) p.13.

<u>पात्र एवं शिल्प</u> - 'उपन्यास की शिल्पविधि अथवा कारीगरी की जटिलता का निर्धारण कथाकार के दृष्टिकोण पर निर्भर है, कथाकार का, कथा के साथ जो दृष्टिवाचक संबन्ध होता है वही आखिर उपन्यास का शिल्प निर्धारण करता है।[1] अर्थात् जीवन के प्रति कथाकार का अपना दृष्टिकोण है। इसी दृष्टिकोण के अनुसार पात्रों का सृजन भी होता है। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' उपन्यास मे सुमन के मुंह से जो कुछ प्रेमचंद ने कहलवाया है उससे एक दम भिन्न है जैनेन्द्र की मृणाल के शब्द। यहां दो भिन्न साहित्यकारों के जीवन दर्शन के प्रतिनिधि पात्र हैं। इन्ही पात्रों के जीवन का संपूर्ण रूप है उपर्युक्त उपन्यास, इसलिए पात्रों के जीवन दर्शन और उनके व्यक्तित्व से शिल्प काफी संबन्ध रखता है कि उनमे इसी वजह से बाहरी एवं भीतरी रूप गठन तक मे अन्तर आ जाता है। पात्र स्वयं इसके जिम्मेदार होते हैं। बीसवीं शताब्दी के आरंभ मे उपन्यासकारों ने जिस तरह के पात्रों का सृजन किया उस तरह का पात्र आज माननीय नहीं, क्यों कि वे आज समाजानुमोदित नहीं है। आज की नई संस्कृति मे, नए वातावरण मे नई विचारधाराओं को उद्घोषित करने वाले पात्र ही रुचते हैं। अतः नई स्फूर्ति के साथ उपन्यासकारों ने अपने पात्रों का निर्माण किया। क्योंकि उन्हें वर्तमान स्थिति से ज़रा आगे की ओर देखने की क्षमता होनी चाहिए।

<u>पात्रों का वर्गीकरण</u> भारतीय परंपरागत वर्गीकरण मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है। पात्रों[2] से यहाँ मेरा मतलब उपन्यास के समूचे पात्रों से है। मेरी दृष्टि मे प्रधान पात्र तथा गौण पात्र एवं नायक नायिका भेदोपभेद करना संगत नहीं लगता है। इस तरह का वर्गीकरण उपरी

---

1. The whole intricate question of method in the craft of fiction. I take to be goverened by the question of point of view, the question of relation in which the narrator stands to story.
Percy Lubbock - The Craft of fiction(Reprinted 1963) p.251

2 'उपन्यास के कथानक से उनके संबन्ध की घनिष्टता के आधार पर पात्रों के दो भेद किए जा सकते हैं - प्रधान पात्र तथा गौण पात्र। प्रधान पात्र वे है जिनके माध्य से तथा चरित्र के विकास से उपन्यास का कथानक मुख्य रूप मे बंधा रहता है, जो कथानक को गति देते रहते हैं तथा उससे विकास पाते रहते हैं। जिन पात्रों से उपन्यास की कथा मुख्य रूप से संबन्धित नहीं होती तथा जिनका समावेश साधन के रूप मे होता है वे गौण पात्र कहलाते हैं।'

डा. रणवीर रांग्रा - 'हिन्दी उपन्यासों मे चरित्र चित्रण का विकास' पृ.54

सतह तक सीमित रह जाता है । पात्र चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, उसका उपन्यास में चाहे कम अवधि तक प्रस्तुतीकरण हो चाहे लम्बी अवधि तक, पात्र स्वयं पूर्ण है और उसका स्वतंत्रत अस्तित्व भी है । वर्गीकरण की कसौटी पात्र के स्वभाव निर्धारण पर आश्रित रहनी है । फिर भी इस दृष्टि से न हो कि वे अच्छे हो या बुरे । इन सब से बढ़कर उनकी एक पूर्णता है उनकी एक अपूर्णता है ।

उदाहरण के लिए 'गोदान' मे उपर्युक्त दृष्टिकोण के अनुसार (प्रधान एवं गौण) होरी, धनिया, रायसाहब आदि को प्रथम श्रेणी मे और बाकी जितने पात्र है - मेहता, मालती, गोबर, झुनिया आदि दूसरी श्रेणी में आ जाते हैं । लेकिन पूर्णता की दृष्टि से देखें तो गोबर, झुनिया आदि पात्र भी कुछ कम नही है । गोबर, होरी की परंपरा की अगली कडी है । उसमे 'प्रगतिशील' चिंतन मौजूद है । उसी प्रकार झुनिया में भी । झुनिया एक बालविधवा है । जिस समाज में विधवा का न कोई स्थान है, उसके विचारो का न कोई मूल्य है, उसी समाज क सामना वह धैर्य के साथ करती है । गोबर को दिल दे बैठती है और उसी को अपना जीवन साथी बनाना भी नही भूलती । यह उसके चरित्र की महानता है ।

यहां एक बात ध्यान रखने को है कि वर्गीकरण का मानक उपन्यास में पात्रों की जीवित अवधि नही है । सभी पात्रों का एक साथ उपन्यास मे पूर्णरूप से छाकर रहना भी असंभव है । पात्रों को गौण और प्रधान मानना इसी दृष्टिकोण के अनुसार असंभव है । उपर जिन दो पात्रों का उल्लेख किया गया है उन्हे किसी भी स्थिति मे गौण नही मान सकते । उनमे पूर्णता है, अतः वे प्रधान हैं ।

ई.एम.फोस्टर की परिकल्पना में पात्र दो प्रकार के हो सकते है । फ्लैट और ×और राउंड । फोस्टर का वर्गीकरण हमें इसलिए संगत मालूम पड़ता है कि उनकी दृष्टि पात्रों के व्यक्तित्व पर पड़ी है । समूचे उपन्यास मे पात्रों के महत्त्व को देखकर उन्होने वर्गीकरण किया है उनका कथन है कि 'सत्रहवीं' शती मे फ्लैट चरित्रों (पात्रों) को हास्य कथापात्रों के अन्तर्गत मा जाता था या कभी कभी टइप भी कहा जाता था और कभी कभी कैरिकेचर्स । सच्चे अर्थ में इन पात्रों का सृजन एक ही तथ्य या विशेषता पर आश्रित रहता था । जब इन मे एक से अधिक

विशेषताओ का आभास होता है तब 'राउंड' पात्रो का प्रारंभ इन मे देखा जा सकता है[1]। इसी वर्गीकरण से मिलते-जुलते दूसरा वर्गीकरण रणवीर रांग्रा ने भी किया है। – 'चरित्र के विकास की दृष्टि मे प्रायः दो प्रकार के पात्र लक्षित होते हैं। एक जिनपर उनके आसपास के वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा इन्हे स्थिर (स्टाटिक) पात्र कहते है। दूसरे पात्र ऐसे होते है जिनपर उनके परिपार्श्व का प्रभाव पडता है और कथानक के विकास के साथ साथ जिनके चरित्र का भी विकास होता रहता है। ऐसे पात्रो को विकसनशील पात्र कहते है[2] राउंड पात्रो की तरह फ्लैट पात्रो को भी एक उपलब्धि मानना नहीं चाहिए। हास्य पात्रो के रूप मे उनका स्थान है। जीवन की कटु परिस्थिति एवं संकटपूर्ण वातावरण के बीच फ्लैट पात्र ऊब पैदा करता है। हर वक्त वह यह कहते हुए प्रवेश करता है 'बदला' अथवा 'मानव राशि के लिए मेरा खून खौल उठता है .... जीवन की जटिल परिस्थिति मै राउंड पात्र हमारे भावों को चलायमान कर सकता है[3]। अतः जितने पात्र अपने स्वाधीन व्यक्तित्व से

- - -

1. We may devide characters in 'flat' and 'round' - flat characters were called 'humours' in the seventeenth century, and are sometimescalled 'types' and sometimes 'caricatures' Intheir pure forms they are constructed round in a single idea or quality, when there is more one factor in them we get the beginning of round'.

   E.M. Forster - 'Aspects of the Novel' p.65

2 रणवीर रांग्रा - 'हिन्दी उपन्यासो मै चरित्र चित्रण का विकास' पृ.59

3. 'For we must admit that flat people are not in themselves as big acivements as round ones, and also that they are best when they are comic. A serious or tragic flat charecter is apt to be love. Each time he enters crying 'Revenge' - or'my heart' blends for humanity' ..... It is only round people who are fit to put from tragically for any length of time and can move us into any feeling.'

   E.M. Forster - 'Aspects of the Novel. p.70

संपृक्त है उन्हे हम 'संवेदनशील' कह सकते है । इन्ही संवेदनशील पात्र हमारे भावों के साथ चलने मे समर्थ होंगे । दूसरी श्रेणी के पात्र, जिनके कार्य से संवेदना की उत्पत्ति नही होती, उन्हे हम 'निसंवेदनशील' कह सकते है ।

उदाहरणार्थ भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास'चित्रलेखा' के पात्र पूर्ण होते हुए भी संवेदनशील नही कहे जा सकते । लेखक अपनी समस्या - पाप और पुण्य की समस्या - के उद्घाटन के लिए कभी - कभी लंबे चौडे भाषण इनके मुख से सुनाते है । फोरस्टर के अनुसार वे 'फ्लैट' पात्र ही ठहरते है । उसी प्रकार यशपाल के प्रसिद्ध उपन्यास 'झूठा सच' का एक प्रमुख पात्र जयदेवपुरी आरंभ मे अपने व्यक्तित्व का असर छोड़कर ही चलता है । लेकिन उपन्यास के दूसरे भाग मे जयदेवपुरी का व्यक्तित्व खोखला लगता है और उसकी बहिन तारा का व्यक्तित्व बहुत ही उज्वल रूप मे चित्रित है । उपन्यास के अंत मे तारा का व्यक्तित्व एक वटवृक्ष के समान सारे उपन्यास को ढक लेता है । यद्यपि तारा मे परिस्थिति के अनुसार जीवन को बनाए रखने की प्रवृत्ति विद्यमान है - लेखकीय सोद्देश्यता ही इसका कारण है ।

हिन्दी उपन्यास विकास के विभिन्न सोपान -

प्रथम सोपान - हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम की ओर दृष्टिपात करने पर हम इस बात से अभिज्ञ हो जाते है कि उपन्यास की कहानी सिर्फ सौ साल के अन्तराल से गुज़री है । इस सौ साल के अन्तर विकास के विभिन्न सोपानों को पार करता हुआ उपन्यास आज के रूप मे परिवर्तित हो पाया है । विकास की इन मंजिलों के पीछे वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का भी हाथ प्रबल है ।

उपन्यास की विधा आधुनिक युग की उपज है । इस नई उपज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है जो अंग्रेज़ों के आगमन के साथ दृष्टिगोचर होने लगा । जैसे सामाजिक जीवन, एवं संस्कृति के स्तर मे उन्नति होने लगी । कला के क्षेत्र मे, विशेषकर साहित्य मे आधुनिकीकरण का आभास होने लगा । हिन्दी मे उपन्यास विधा का आविर्भाव हिन्दी साहित्य के पुनर्जागरण (रिनेसांस) रूप मे माना जा सकता है ।

खडीबोली का उदय अंग्रेज़ों की देन - भारत में आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति का प्रसार अंग्रेज़ों के सम्पर्क का परिणाम है । लेकिन भारतीय जन-मानस में इसी के साथ एक प्रकार के सांस्कृतिक भावावेश का जागरण भी हुआ और इसका आरंभ हम सन् 1857 से मान सकते हैं । इस जागरण के प्रेरक कई कारण थे । उस राज्यक्रान्ति के बाद अंग्रेज़ अपना शासन यहाँ दृढ करने में आंशिक रूप से सफल हुए । 'अंग्रेज़ों ने अपनी आर्थिक शैक्षणिक और प्रशासनिक नीति में परिवर्तन किया । इस देश के लोग भी नए सन्दर्भ में कुछ नया सोचने और करने केलिए बाध्य हुए । साहित्य मनुष्य के बहुतर सुखदुख के साथ पहली बार जुडा । यह प्रक्रिया भारतेन्दु के समय में हुई - वह भी गद्य के माध्यम से । नया युग अपनी अभिव्यक्ति के लि नई भाषा की खोज कर रहा था । ब्रज भाषा इसकेलिए उपयुक्त नहीं थी । खडी बोली गद्य आधुनिक चेतना के फलस्वरूप सक्षम बन पड़ा'[1] ।

एक ओर अंग्रेज़ी लोग अपनी साम्राज्यवादी नीति के ज़रिए आगे बढ़ते जा रहे थे तो दूसरी ओर वे अपने धार्मिक आन्दोलन के द्वारा जन मध्य में ईसाई धर्म का प्रचार एवं प्रसार चाहते थे । ईसाई धर्म के प्रचारणार्थ उन्होंने खडीबोली गद्य को ही उपयुक्त समझा । इसी समय भारत में रेल, प्रेस, समाचार पत्र आदि का आविर्भाव भी हो पाया था । इससे खडी बोली को फिर से विकसित करने का मौका भी मिल रहा था । अनेक शैक्षणिक संस्थाएं भी खोल गई । शिक्षा केन्द्रों और उनके शासन की आवश्यकताओं और नवीन साहित्य, ईसाई धर्म, प्रेस समाचार पत्र आदि शक्तियों के फलस्वरूप प्रचलित नवीन भावों, विचारों आदि के द्वारा खड़ी बोली गद्य का प्रोत्साहन, विकसित होने का अवसर अवश्य प्राप्त हुआ । कलकत्ता में फोर्ट विल्यम कालेज की स्थापना के साथ शैक्षणिक संस्थाओं में खडीबोली के अध्ययन की व्यवस्था की ग इस प्रकार विकसित खडीबोली हिन्दी ने युगीन साहित्य का माध्यम बनकर अपना स्थान स्थिर कर दिया । भारतेन्दु को इसका श्रेय मिलता है । क्योंकि उन्होंने इसको युगीन साहित्य की भाषा बनाने का निरन्तर प्रयत्न किया था । 'जिस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आविर्भाव हुआ वह हिन्दी का नवोत्थान युग था । अपना अलसाया जीवन छोडकर हिन्दी भाषा भाषी फिर से गतिशील हुए । इस कार्य में पाश्चात्य सभ्यता का काफी हाथ था । इस तथ्य से इनका

- -

1 सम्पादक - डा.नगेन्द्र } हिन्दी साहित्य का इतिहास (प्रथम संस्करण)
सह-सम्पादक - डा.सुरेशचन्द्रगुप्त } पृ.434

नही किया जा सकता । यद्यपि समाज का ढांचा बहुत ढीला हो गया था, फिर भी जन साधारण के बीच साहित्य को लाने के कार्य मे अंग्रेज़ो की नीति जितनी सहायक सिद्ध हुई उतनी अन्य किसी प्रेरणा नही ।

समाज का स्वरूप - भारत मे अंग्रेज़ लोगो की साम्राज्य स्थापना के पूर्व मुसलमान (अन्तिम मुग सम्राटो का) सलतनत अपनी पतन की पराकाष्ठा तक पहुंची थी । विलसिता एवं अनियंत्रित शासन व्यवस्था के कारण राजनीति की नीव टूट चुकी थी । राजशासन की नीव के टूटने पर साधारण जनता की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी । राज्य भर मे अत्याचारो एवं बगाव का ही सिलसिला बना रहा । इन्ही परिस्थितियो मे अंग्रेज़ लोग व्यापार के बहाने यहा आकर, अपने साम्राज्य की स्थापना मे सफल हुए । परन्तु अंग्रेज़ो के शासन से भी सामान्य जनता के जीवन की दुर्गति दूर नही हुई ।

समाज मे सब प्रकार की रूढ़िवादिता एवं ढकोसलाएं अपनी जड़े जमाती रही । धार्मिक क्षेत्र मे ईसाई लोग हिन्दु धर्म के विरुद्ध प्रचार करने मे व्यस्त थे । मुसलमान धर्म एवं हिन्दु ध एक दूसरे को अपना शत्रु भी समझते थे । सामन्तिय वातावरण की बुराईया अभी शेष थी । जागीरदार और ठेकेदार अंग्रेज़ी राज्याधिकारियो की चमचागिरी करके साधारण लोगो का गला घोटने केलिए तैयार रहते थे । इस प्रकार साधारण जनता कई प्रकार के अत्याचारो से पीड़ित थी ।

इस समय उपर्युक्त कुरीतियो को दूर करने केलिए एक आन्दोलन की ज़रूरत थी । आन्दोलन जिसमे समाज से कुप्रथाओ को उखाड फेकने की शक्ति हो, साधारण लोगो की आस्थाओ को सुरक्षित रखने की क्षमता हो । क्योकि परस्पर विरोधी तत्वो मे समन्वय लाने के लिए आन्दो अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता था ।

हिन्दु समाज, जातियो तथा परस्पर विरोधी पन्थो मे विभक्त होने के कारण विश्रृंखलित था । शाक्तो, वैष्णवो तथा 'तांत्रिको' का संघर्ष अब भी उसी प्रकार चल रहा था जिस प्रकार

---

1 डा. नगेन्द्र } हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.456
डा. सुरेशचन्द्र गुप्त }

तुलसी के समय मे चलता था । इसका प्रभाव हिन्दु समाज पर पडा । हिन्दु जाति और हिन्दु समाज को तुलना मे ईसाई धर्म तथा यूरोपीय समाज अधिक सरल, सुसंगठित, एकीकृत उ तत्कालीन परिस्थितियों मे प्रगतिवादी प्रतीत होता था । विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा तथा बहुपत्नीत्व की प्रथाओं का ज़ोर था जिसके कारण यूरोपीय, विशेषतायः मिशनरी हिन्दु सम का उपहास करते थे'।[1]

सुधारवादी आन्दोलनों का उदय   भारत मे नवजागरण के उदय का श्रेय सचमुच अंग्रेज़ो को ही देना चाहिए । उनकी शिक्षा प्रणाली से नवयुवकों मे नयी चेतना का आविर्भाव हुआ । समाज की कुप्रथाओं के विरुद्ध आन्दोलन खडा करने का कार्य उस समय विभिन्न संस्थाओं ने अप उपर ले लिया । '   आधुनिकता के समर्थक बहुसंख्यक शिक्षितो ने यह अनुभव किया कि पराधीनता मे भी हमे अपनी प्राचीन संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए । अतः उन्होने उसे आधुनिक वैज्ञानिक भाषा और अर्थ प्रदान करने की सफल चेष्टा की । इस दिशा मे राजा-राममोहन राय का प्रयत्न श्लाघ्य है   उपनिषदों को प्रमाण मानकर उन्होने हिन्दु धर्म की वैज्ञानिकता प्रतिपादित की । सन् 1813 से 1930 के सक्रिय सार्वजनिक जीवन मे उन्होने समाज जागरण का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया ।[2]

इन आन्दोलनों के पीछे सामन्तीय वातावरण का प्रभाव नही था, बल्कि एक तरह से मध्यवर्ग के शिक्षित व्यक्ति ही इन्ही आन्दोलनो का बागडोर सम्हालते थे । मध्यवर्गीय चेतना के आन्दोलन होने के कारण इसके हज़ारो की तादाद मे समर्थक एवं सहायक मिले और इस आन्दोलन ने एक बृहताकार रूप को भी धारण किया । '........ अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव तथा पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के संपर्क के फलस्वरूप देश भर मे एक ऐसे मध्यवर्ग का उदय होना आरंभ हुआ जिसके सदस्यों मे प्रान्त, जाति और धर्म की विभिन्नता होते हुए भी भावों और विचारों की महत्वाकांक्षाओं और आदर्श की समानता दिखाई देने लगा'।[3] इस जटिल परिस्थिति मे जिन संस्थाओं ने सुधारवादी आन्दोलन का कार्य अपने उपर लिया था उनमें है ब्रह्म-समाज, आर्यसमाज, थियोसफिकल सोसइटी तथा रामकृष्ण मिशन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय

---

1 गौरीशंकर भट्ट - भारतीय नवजागरण तथा आन्दोलन (प्रथम संस्करण) पृ.27-28

2 सम्पादक - विनयमोहन शर्मा - हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (अष्टम भाग)पृ.1

3 रणवीर रांग्रा - 'हिन्दी उपन्यास मे चरित्र चित्रण का विकास' - पृ.103

ब्रह्मसमाज - इस संस्था का स्थापक राजाराममोहनराय है जिनका नाम आधुनिक भारत में अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है । वे अंग्रेज़ी शिक्षा से काफी प्रभावित थे, लेकिन उसका अंधानुकरण करना वे नहीं चाहते थे । उस प्रतिभावान को यह मालूम था कि भारतीय संस्कृति एवं धर्मग्रन्थों में नवीन चिन्तन धाराओं का स्त्रोत विद्यमान है और यहां के लोग इसे भूलकर कुमार्ग पर चल रहे हैं । राजाराममोहनराय का महत्व इस बात में है कि उन्होंने सन् 1928 इस प्रकार की एक चिन्तन प्र णाली को जनमानस में प्रवाहित करके अपनी संस्कृति को उद्घोषित करने का स्तुत्य कार्य किया । हिन्दु धर्म जो आराधना के विषय में विविध मार्गों को अपनाया चुका था और जिनके बीच विरोधी तत्व घर कर गये थे, उनके हृदय में एकेश्वर भावाना को जगा का परिश्रम किया । इस प्रकार वे एक ऐसे धार्मिक परिवेश को उजागर करना चाहते थे जिनसे हिन्दु समाज एकता की लीक न छोड दे । यद्यपि कबीर जैसे महात्मा संत एकेश्वरवादी भावन का समर्थन करते हुए मूर्तिपूजा के विरुद्ध बहुत पहले ही अपने मत को प्रकट कर चुके थे, फिर भी उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करके समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का काम राममोहनराय ने सबसे पहले किया था ।

राजाराममोहनराय की मृत्यु के पश्चात् इसका भार श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने ऊपर ले लिया । देवेन्द्र नाथ ठाकुर, अक्षयकुमार दत्त, केशवचन्द्र दत्त आदि समाज सुधारकों के द्वारा इसका विकास अत्यन्त द्रुतगति से होता गया । नारी समूह के उद्धार के क्षेत्र में इस संस्था का परिश्रम सराहनीय है । पर्दा प्रथा का अन्त, बालविवाह निषेध, विधवा विवाह का प्रोत्साहन और स्त्री-शिक्षा आदि बातों पर ज़ोर दिया इस समाज के प्रयत्नों 1872 का एक्ट 3 बना, जिसने बाल-विवाह और बहु विवाह प्रथा को अवैध घोषित कर दिया तथा विधवा विवाह और अन्तर्जातीय विवाह को घोषित किया[1] ।

आर्यसमाज आर्यसमाज के प्रवर्तक महानविभूति स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पुराने धर्म को नए समाजानुमोदित स्थिति के अनुकूल परिणत करने का प्रयास किया । उन्होंने हिन्दु धर्म के विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाला, बल्कि उसके अच्छे अच्छे सिद्धान्तों को भी आत्मसात करने व प्रशंसनीय कार्य जारी रखा । उन्होंने वेदों की ओर लौट चलने का नारा लगाया, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि वे पुराने संस्कारों के आदी थे । उन्होंने भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 डा.रणवीर रांग्रा - 'हिन्दी उपन्यासों में चरित्र चित्रण का विकास' - पृ.105

करना चाहा । उन्होंने अपने ग्रन्थों के माध्यम से उपदेशों का प्रचार किया । अपने सिद्धांतों का प्रचार अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में करना उनका लक्ष्य था । अतएव वे भारत के कोने कोने में घूमते रहते थे । प्रसिद्ध इतिहासकार मजुमदार के शब्द स्मरणीय है – दयानन्द निसंशय हिन्दू समाज के एक गतिशील शक्ति साबित हुआ । जनता की तरफ उनका जो आकर्षण था, बडी सफलता से सबको उसका स्वागत भी किया और सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक सुधारवादों के लिए मार्गदर्शक भी था ।[1] 'इससे भारतीय समाज में जागृति की एक नई लहर और बौद्धिक चेतना की एक नई दीप्ति आई, जिसका प्रभाव साहित्य और भाषा पर पड़ना भी स्वाभाविक था ...... आर्यसमाज भक्ति आन्दोलन की भांति भावात्मकता पर आश्रित आन्दोलन था, अपितु बौद्धिकता पर आश्रित था ।[2]

<u>रामकृष्ण मिशन</u> रामकृष्णपरमहंस द्वारा स्थापित इस संस्था का स्वामी विवेकानन्द के समय काफी प्रचार हुआ था - भारत में ही नहीं, बल्कि बडी ज़ोरों से विदेशों में भी । भारतीय संस्कृति को उद्घोषक थे विवेकानन्द । बहुत ही सरल उपासना पद्धति के आगे उन्होंने जाति व्यवस्था एवं अन्य कुप्रथाओं को नागण्य समझा । बहुत से विदेशी उनके अनुयायी बन गये । सबसे पहले उन्होंने लोगों को आत्मविश्वास का सबक सिखाया । आपस में भातृभाव का संचार एवं एक विस्तृत लोक धर्म की स्थापना ही उनका उद्देश्य था । वास्तविक ज्ञान के अभाव से झगडने वाले निरीह भारतीयों के प्रति उनमें गहरी सहानुभूति थी । उन्होंने भारतीय संस्कृति की वास्तविकता की झलक दिखाने का भरसक प्रयत्न किया ।

<u>थियोसफिकल सोसइटी</u> - अमेरिका में स्थापित इस संस्था की एक शाखा एनि बसेन्ट ने भारत में खोल दी । मद्रास में प्रथमतः इसका प्रवर्तन शुरु किया । उन्होंने भारतीयों को अपने गौरवमय अतीत की ओर आस्था रखने का संकेत दिया । सांस्कृतिक जागरण के साथ-साथ उन्होंने सामाजिक व्यवस्था में क्रान्ति फूंक दी । नारी के उद्धार के लिए उन्होंने विशेष योजनाएं बनायी

---

1. 'Dayananda undoubtedly proved a dynamic force in Hindu Societ His appeal to the masses which was atterded to with spendid success was an eye opener to all reformers, social, religions and political'.

   R.C. Majumdar - An advanced History of India. p.883.

2 डा. गणपति चन्द्रगुप्त - 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' (प्रथम संस्करण) पृ.83

उपर नवजागरण युग मे भारत मे वर्तमान कुछ ऐसी सुधारवादी संस्थाओ का परिचय मात्र दिया गया है । इन्ही संस्थाओ के आविर्भाव के साथ यद्यपि सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र मे प्रगति के पूर्णरूप नही दिखाई पडे, फिर भी एक अभूतपूर्व स्फूर्ति लक्षित रही जिससे भारतीय समाज एक दम सडने-गलने की अवस्था से बचकर नये विचारो से परिचित हो गया । एक हद तक साहित्य के क्षेत्र मे भी इसका प्र भाव पड गया । जिस मध्यवर्ग का साहित्य मे स्थान नही था उसे स्थान मिल गया । उन्नीसवी सदी के पहले इस संस्था का कोई अस्तित्व नही था । ये संस्थाएँ विशेष रूप से भारत मे हिन्दी की भी सेवा मे रत दिखाई पडते थे ।' स्वामिजी (दयानन्द सरस्वती) के अनुयायी हिन्दी को आर्य भाषा कहते थे आर्य समाजियो केलिए हिन्दी या 'आर्य भाषा' का पढना आवश्यक ठहराया। युक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलो और पंजाब मे आर्य समाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार बडी तेज़ी से हुआ[1]' ।

<u>युगीन उपन्यास : साहित्यिक परिस्थितियाँ</u> - आधुनिक युग गद्य का युग है । भारतीय साहित्य विशेषकर हिन्दी साहित्य अंग्रेज़ी साहित्य के संपर्क से बहुत अधिक लाभान्वित हुआ । कलकत्ता मे फोर्ट विल्यम् कालेज के जान गिलक्राइस्ट द्वारा देशी भाषा की गद्य पुस्तके छापने की योजना की गई । यहा से लेकर हिन्दी गद्य - खडीबोली गद्य का विकास होता रहा। रामचन्द्रशुक्ल के अनुसार ललूलाल, सदलमिश्र, इंशाअल्ला खाँ, सदासुख लाल आदि चार व्यक्तियो की रचनाएँ खडीबोली का प्रथम स्थानीय है[2] । लेकिन उपन्यास साहित्य के संपर्क मे इनकी रचनाएँ नही आ सकती और इनको उपन्यास का आदि रूप भी नही मान सकते, यद्यपिइसमे 'कथा' विद्यमान रही हो ।

विश्वविद्यालीय स्तर पर देशी भाषा का अध्ययन का कार्यक्रम होने पर भी अंग्रेज़ी भाषा का अध्ययन एवं अध्यापन कार्य ज़ोरो से होता रहा । 'शासन मे भी अंग्रेज़ी का महत्व बढ गया । अतः अंग्रेज़ी के ज्ञान के बिना उंचो नौकरियो का मिलना भी कठिन हो गया । इस तथ्य को अनुभव मे रखकर मध्यवर्ग अंग्रेज़ी की ओर अधिक आकर्षित हुआ । अंग्रेज़ी साहित्य

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 रामचन्द्रशुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास (संशोधित और परिवर्द्धित सोलहवा संस्करण) पृ.424

2 वही पृ.

के संपर्क मे सब से पहले बंगाली साहित्य ने निकटता प्राप्त कर ली और उसमे उपन्यास लेखन भी शुरू होने लगा था । अंग्रेज़ी एवं बंगाली साहित्य के संपर्क के कारण हिन्दी मे उपन्यासो का सृजन संभव हुआ।¹ लेकिन जैसे पहले बताया जा चुका है कि सुधारवादी दृष्टिकोण साहित्यिक रचनाओ को काफी अरसे तक प्रभावित करता रहा । अतः इन प्रारंभकालीन लेखको के सामने एक आदर्श समाज था, जो सुधारवादी प्रवृत्तियो का लक्ष्य था। 'भारतीयपन' को बनाए रखने केलिए उन्होने साहित्यिक रचनाओ मे अपनी मान्यताओ को प्रकट किया । (लेकिन इसी दृष्टिकोण ने बाद मे संकुचित रास्ता पकड लिया - इसका विवेचन यथासमय किया जायगा)

<u>प्रारंभ कालीन उपन्यासो की साहित्यिक मान्यताएँ</u> – उन्नीसवी सदी के प्रारंभ मे सबसे पहले जब उपन्यास साहित्य का जन्म हुआ तब उसमे मानवोचित भावो को स्थान देते हुए मानव की उन्नति के लिए समर्पित करने की लालसा उपन्यासकारो के मन मे उत्पन्न हुई । भारतीय संस्कृति पर अधिष्ठित एक आदर्श समाज को रूपायित करना लेखको ने अपना ध्येय समझा । इसके लिए उपन्यास को ही सबसे उत्तम साहित्यिक विधा मानी । राजा रानी की कथा का पल्ला छोड़कर समाज के साधारण मनुष्यो को पात्र बनाकर उपन्यास का शिल्प गढ लिया गया । लेकिन सबसे बड़ी कमी यह थी कि पुरुष पात्र एवं नारी पात्रो का एक मानरूप के अलावा और किसी नये रूप की सूझे उन्हे नही थी । किसी भी परिस्थिति मे विचलित न होनेवाली स्त्री इस युग के उपन्यासो मे बड़ी मात्रा मे मिल सकती है ।

अपने संकुचित दायरे मे खडे होकर समाज सुधार का नारा लगाने के अलावा उन्होने उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु माना । उपन्यास के शिल्प के संबन्ध मे इन्हे कोई ज्ञान नही था, न कोई आकांक्षा । उनका शिल्प कथा कहने की प्रवृत्ति तक सीमित रहा । अतः इस प्रवृत्ति मे ऊब की मात्रा अधिक थी लेकिन अपनी मनोरंजनात्मकता के फल स्वरूप उन्हे अपने पाठको के हृदय को केन्द्रीकृत कर रखने की क्षमता प्राप्त थी । अतः इन उपन्यासो मे असंगतियो एवं अस्वाभाविकता का आ जाना संभाव्य था ।

---

1 सम्पादक - विनयमोहन शर्मा - हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (अष्टम भाग) पृ.13

उत्सुकता एवं कुतूहलता की कमी भी इन उपन्यासो मे नही थी । मनोरंजकता के लिए इसकी भी आवश्यकता थी । उपन्यास साहित्य के इस प्रथम सोपान मे खडे होकर उपन्यासकारो ने वस्तुतः दो प्रकार के उपन्यास प्रस्तुत किये । (1) आदर्शमूलक उपन्यास (2) मनोरंजन प्रधान उपन्यास । ऐसे उपन्यासो के लेखको का अंतिम लक्ष्य समाज ही था, क्यो कि परिवार समाज की इकाई है । पारिवारिक जीवन सच्चरित्रता उत्पन्न किये बिना समाज के व्यापक जीवन मे उसकी आशा करना व्यर्थ था । उन्होने ऐसे नायको और पात्रो का निर्माण किया, जो चरित्रवान और सद्वृत्त है और जो हिंसा - द्वेष आदि से रहित सुचरित्र के बल पर दुष्टो पर विजय प्राप्त करते और उन्हे सन्मार्ग पर लाते है[1] । - निरी उपदेशात्मकता इनका मूलमंत्र था । दूसरा विभाग मनोरंजन - इस दृष्टि से तिलस्मी, ऐयारी एवं जासूसी उपन्यासो की एक परंपरा का सूत्रपात किया गया । इन उपन्यासो मे संकुचित सामाजिक पक्ष भी क्षीण रहा । ये उपन्यास मन की ऊपरी सतह पर मात्र एक तुष्टि प्रदान कर सकते थे । जो मनोरंजनात्मकता इस से उपलब्ध होती थी वह भी बहुत सस्ती थी ।

हिन्दी उपन्यास का विकास - प्रथम सोपान के कुछ प्रमुख उपन्यास और उपन्यासकार -

आलोच्य युग को विभिन्न विद्वानो ने विभिन्न नामो से अभिहित किया है । अधिकतर आलोचको ने समूचे उपन्यास साहित्य को तीन कालो मे विभक्त किया है । लेकिन मेरे मतानुसार यह वर्गीकरण संगत नहीं जान पड़ता । इन आलोचको ने उपन्यासकार प्रेमचंद्र को केन्द्र बनाकर पूर्व प्रेमचन्द युग नाम उचित समझा है — जैसे डा. कैलाश प्रकाश एवं डा. सत्यपाल चुघ आदि आलोचक का वर्गीकरण है[2] । प्रस्तुत वर्गीकरण पूर्वाग्रह पूर्ण लगता है । कारण यह है — (1) प्रेमचन्द के प्रथम मौलिक उपन्यास सेवासदन का प्रकाशन सन् 1918 मे हुआ (इसके पहले वे दो-तीन उपन्यास लिख चुके थे । (2) सन् 1918 के बाद भी ऐसे उपन्यास लिखे गये जिनको उपर्युक्त आलोचको ने 'पूर्व प्रेमचन्द युग' मे स्थान दिया है । उदाहरण केलिए गहमरी का 'गाडी मे लाश' का प्रकाशन सन् 1920 मे और किशोरी लाल गोस्वामी का 'गुप्त गोदना' का सन् 1922 मे ।

---

1 सम्पादक - विनयमोहन शर्मा - हिन्दी उपन्यास का बृहत इतिहास (अष्टम भाग) पृ. 24

2 (क) डा. कैलाश प्रकाश - प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास (1962)

(ख) डा. सत्यपाल चुघ - प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासो की शिल्पविधि (प्रथम संस्करण)

अगर इनकी प्रवृत्तियों के आधार इस प्रकार वर्गीकृत किया हो तो भी ठीक नहीं ठहरता । प्रेमचन्द के अन्तिम उपन्यास गोदान का प्रकाशन सन् 1936 में हुआ । लेकिन जैनेन्द्र का, जिसको प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में स्थान मिला है, 'परख' जिसका प्रकाशन काल 1929 है । इसलिए हमारे विचार में किसी प्रसिद्ध लेखक को केन्द्र बनाकर किसी साहित्य विधा का काल विभाजन करना अनुचित एवं अवैज्ञानिक है ।

इन प्रारंभकालीन उपन्यासकारों को रामचन्द्र शुक्ल जैसे आलोचकों ने भारतेन्दु युग के अन्तर्गत माना है । नाटक एवं काव्य के क्षेत्र में अवश्य भारतेन्दु ने कुछ मौलिकता दिखाई । लेकिन इसी वजह से इन सारे उपन्यासकारों को 'भारतेन्दु युग' के अन्तर्गत समझना संगत नहीं है । जहाँ तक उपन्यासकारों का सवाल है कि श्रीनिवास दास ने सचमुच एक परंपरा चलाई । लेकिन उनके नाम से उस युग के नामकरण का मैं समर्थन नहीं करता ।

मैं ने विभिन्न सोपानों में प्रमुख उपन्यासों को समेट लेने का प्रयत्न किया है । यहाँ प्रकाशन काल एवं लेखक मुख्य नहीं है । प्रत्येक सोपान में प्रतिनिधि लेखकों के उपन्यासों का पात्रगत एवं शिल्पगत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । एक तरह से यह प्रवृत्तिगत अध्ययन के निकट आ सकता है । इन्हीं मुख्य प्रवृत्तियाँ ही इसके विकास का सूचक है । आज हमारे सामने जो उपन्यास है वह इन पिछले उपन्यासों से परोक्ष रूप से ही सही प्रेरणा प्राप्त करता हुआ आगे बढकर इस रूप में परिणत हो गया है ।

<u>परीक्षागुरु और उसकी परंपरा</u> : 'परीक्षागुरु' को हिन्दी साहित्य का पहला उपन्यास माना गया है । लेकिन इस विषय में मतभेद अवश्य है । ईशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से उपन्यास साहित्य की शुरुआत मानने वाले आलोचक भी हमारे यहाँ हैं, यद्यपि यह तर्क खण्डित हो चुका है । डा.सुरेश सिन्हा ने 'परीक्षा गुरु' को नहीं, श्रद्धाराम फिल्लोरी कृत 'भाग्यवती' को पहला मौलिक उपन्यास माना है । उनका कथन इस प्रकार है - 'श्रद्धाराम फिल्लोरी हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यासकार है । वे पंजाब के प्रसिद्ध समाजसेवी एवं धार्मिक नेता थे । उनका एक ही उपन्यास प्राप्त होता है फिर भी उसमें अत्यन्त कुशल उपन्यास शिल्प का परिचय दिया है'[1]। 'रानी केतकी की कहानी' को औपन्यासिक परंपरा में जोड़ने का

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 डा.सुरेश सिंहा - हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास' पृ.48

प्रयास रणबीर रांग्रा को सही मालूम होता है । उनका कथन है पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह इसी प्रकार की अन्य रचनाएं प्राचीन साहित्य परंपरा और आधुनिक हिन्दी उपन्यास में एक मजबूत कड़ी का काम करती है । इसलिए हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए इनकी और इनके रचयिताओ की उपेक्षा नही की जा सकती स्पष्ट है कि वे औपन्यासिक परंपरा की कडी को बहुत पहले से मानने का पक्ष मे हैं ।

फिल्लौरी कृत भाग्यवती का रचनाकाल सन् 1877 है तथा श्रीनिवास दास कृत परीक्षा गुरु का समय 1882 है । परंपरा की दृष्टि से दोनों एक ही श्रेणी में आ जाते है और जहाँ तक शिल्प का सबन्ध है दोनो मे स्पष्टतः कोई भिन्नता नहीं, बल्कि एक स्वरूपता अधिक है । लेकिन पात्रगत दृष्टि से देखने पर परीक्षा गुरु से बढकर भाग्वती के पात्रों मे सजीवता है ।

परीक्षागुरु मे प्रमुख कथापात्र मदनमोहन विलासी एवं लंपट प्रकृति का है । परिस्थिति वश उसे कुछ दोस्तो की सोहबत भी मिल जाती है और अपनी प्रकृति में अग्रासर होते हुए कुमार्ग पर चलने लगता है । उसका एक मित्र ब्रजकिशोर हमेशा उसे सच्चे रास्ते पर लाने का कार्य करता रहता है । मदनमोहन की पत्नी एक साधारण कथापात्र है न उसका स्वरूप है न अस्तित्व । जब अन्त में मदनमोहन को जेल तक जाने की नौबत आती है और उसका दोस्त वहाँ भी सहायता पहूंचने केलिए आता है । उसके मुह से पत्नी की पतिपरायणता की बातें सुनकर उसका मन बदल जाता है ।

मुख्य रूप से इस उपन्यास मे चार पात्र हैं । (1) मदनमोहन, (2) ब्रजकिशोर, (3) मदनमोहन की पत्नी (4) मदन का दोस्त । इन सब का उपन्यास में इस वजह से कोई स्थान नहीं है कि उनके व्यक्तित्व का पक्ष बहुत ही दुर्बल है । वैसे तो वे सब लेखक के हाथ के पुतले है । लेखक जहाँ चाहे ले सकते है, जहाँ चाहे खड़ा कर सकते है ।

लेकिन 'भाग्यवती' का पात्र खुद भाग्यवती 'परीक्षागुरु' के पात्रों से बढ़कर सजीवता का प्रतीक है, चाहे फिल्लोरी का सुधारवादी दृष्टिकोण सब कहीं गुंजायमान हो । विवाहित

- -

1 डा. रणवीर रांग्रा - हिन्दी उपन्यासों मे चरित्र चित्रण का विकास - पृ. 111-112

होकर अपने पति के साथ जीवन बितानेवाली पति द्वारा निर्वासित हो जाने पर भी, खुद अपना रास्ता बना लेती है । वह कर्मठ युवती है । प्रयत्नशील रहना मनुष्य का कर्म समझती है और अपने रास्ते पर आगे बढ़ती रहती है । इस पात्र की यह विशेषता है कि इसमें गत्यात्मकता है और वह अपने जीवन दर्शन के मुताबिक चलती है । अतः मदमोहन एवं ब्रजकिशोर से बढ़कर इसमें महानता है । 'परीक्षागुरु' अंग्रेज़ी ढंग का पहला उपन्यास माना गया है । इसमें विद्वानों में काफी मतभेद नहीं है । एक कल्पित कथानक को उन्होंने भी पहले पहल फिल्लौरी के समान सामाजिक वातावरण में खडा किया । लेखक की दावा है कि 'अपनी भाषा में अब तक जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें अक्सर नायिका - नायक वगैरह का हाल ठेठ से सिलसिलेवार लिखा गया है - जैसे कोई राजा, बादशाह, सेठ - साहूकार का लड़का था । उसके मन में इस बात से यह रुचि हुई और इसका यह परिणाम निकला । ऐसा सिलसिला इसमें कुछ नहीं मालूम होती ...... अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी ।[1] प्रस्तुत उपन्यास इसलिए 'नईचाल' का माना जा सकता है कि इसी परंपरा में बाद में बहुत उपन्यास लिखे गये ।

सुधारवादी दृष्टिकोण उपर्युक्त दोनों दान्यासों में उपलब्ध हैं । अंग्रेज़ी शिक्षा का कुप्रभाव नवयुवकों पर पड़ गया था और कहीं इस कुप्रभाव के कारण वे कुमार्ग के आदी हो जाते थे, इसी के विरुद्ध समाज सुधारकों ने आवाज़ उठाई, उपन्यासकारों ने लेखनी चलाई । श्रीनिवास दास भी इसी दृष्टिकोण के कायल थे । उससे बच निकलना भी उनके लिए कुछ असंभव था ।

लेकिन फिल्लौरी जैसे सुधारक भी थे, उसी को उन्होंने उपन्यास में भी प्रतिफलित किया। उनके अनुसार स्त्री शिक्षा आवश्यक थी । जो नए जीवन परिवेश में स्त्री को अपने पैरों पर खडे होने की शक्ति देती है । इसलिए 'भाग्यवती' को पढी लिखी नायिका के रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया । यद्यपि उपन्यास के अन्तिम अंश में आदर्शवादी पक्ष की ओर झुकाव है फिर भी 'परीक्षा गुरु' की तुलना में 'भाग्यवती' के औपन्यासिक शिल्प का अधिक महत्व है

---

1 श्रीनिवासदास - परीक्षा गुरु (भूमिका से)

आगे इसी परंपरा में आनेवाले, इस प्रथम सोपान के उपन्यासों पर विचार करना भी यहाँ वांछनीय समझता हूँ ।

<u>बालकृष्ण भट्ट के उपन्यास</u> - अपने को अंग्रेज़ी शासन की परतंत्रता से मुक्त करने की लालसा भट्ट में बहुत पहले ही विद्यमान थी । वे सच्चे अर्थ में देशभक्त थे । जब राज्यक्रान्ति हुई तो उन्होंने कालेज की नौकरी तक छोड दी । लोकमान्य तिलक के कारावास के विरोध में प्रयाग में सभा हुई थी । बालकृष्ण भट्ट उसके सभापति थे । शिक्षा के डयरेक्टर ने उन्हें चेतावनी देने केलिए बुलाया, भट्ट जी ने बिना आगे - पीछे सोचे हुए नौकरी पर लात मार दी । यह घटना 1907 की है[1] ।

'नूतन ब्रह्मचारी' भट्ट जी का पहला उपन्यास है और पूर्णतः यह एक सुधारवादी उपन्यास है । इसके निवेदन में लेखक का कथन है 'हमारे इस पुस्तक को पढ़ने से पाठकों को अवश्य मालूम हो जायगा कि बालकों को पढाने केलिए यह कितनी शिक्षाप्रद और शिक्षा विभाग में जारी हो जाने से हमारे कोमल बुद्धिवाले बालकों को कितनी उपकारी हो सकती है'[2] इस कथन पर पूरी तरह से आश्रित होकर ही प्रस्तुत उपन्यास की सृष्टि हुई है । - ब्राह्मण विट्टलराव का पुत्र का डाकुओं के प्रति असाधारण स्वभाव का चित्रण अंकित है । उसके भोलेपन से आकर्षित होकर डाकू का बिना लूट - मार किये जाना, मुखिया डाकू का, घायल होकर विनायक के सामने प्रस्तुत होना और पश्चाताप की अग्नि में जलना आदि घटनाओं को भावुकता के स्पर्श के साथ इस उपन्यास में रुपायित किया है ।

बालोपयोगी इस छोटे से उपदेश प्रधान उपन्यास में पात्रावतरण और शिल्प का कोई महत्व नहीं है । दया, करुणा आदि भावों को जागृत करानेवाली एक कल्पित कथा का मात्र रूप इससे हमें उपलब्ध होता है । इसका रचनाकाल सन् 1886 है ।

सौ अजान एक सुजान, भट्ट का दूसरा उपन्यास है जो 'परीक्षा गुरु' की परंपरा में आनेवाले उपन्यास है । यहाँ तक कि परीक्षागुरु का दूसरा संस्करण माना जाय तो भी इसमें

- -

1 डा. रामविलास शर्मा - 'प्रेमचन्द और उनका युग' (संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण) पृ. 21

2 बालकृष्ण भट्ट - 'नूतन ब्रह्मचारी' (निवेदन से)

कोई असंगति नहीं है । उपन्यास का नामकरण भी इसी आशय से हुआ है ।

हीराचन्द के दो बिगडे हुए पोते, उन्हें सुधारने केलिए चन्दु नामक एक व्यक्ति नियुक्त किया जाता है । कथानक का विकास इसी सिलसिले पर होता है (कथानक का विकास कहना बिलकुल असंगत है, घटनाओं की वृद्धि कह सकते हैं) और स्वाभाविक रूप से दुष्पात्रों में चरित्र परिवर्तन भी आवश्यक है ।

भट्ट जी के उपन्यासों में न पात्रों का व्यक्तित्व उभरा हुआ है, न शिल्पगत विकास का आभास । जैसे उन्होंने अपनी उद्देश्य परकता का परिचय पहले ही सूचित किया है, उसी से एक पग भी आगे जाने की कठिनाई इन उपन्यासों में हमें प्राप्त नहीं होती । पंचतंत्र की कथाओं का प्रभाव इन उपन्यासों में पाया जाता है ।

<u>किशोरी लाल गोस्वामी</u> - प्रेमचन्द के अगमन के पूर्व अपने उपन्यासों के माध्यम से गोस्वामी हिन्दी साहित्य में अपना स्थान जमाने में सफल हुए । यह उनके उपन्यासों की साहित्यिक महत्ता की वजह से नहीं बल्कि उनके उपन्यासों के लिए बडी संख्या में पाठक मौजूद थे । यह उनके पक्ष में एक महत्वपूर्ण बात थी कि उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा भी चलाई ।

प्रथमतः उनके सामाजिक उपन्यासों पर विचार करेंगे जो 'परीक्षा गुरु' की परंपरा में आते हैं । गोस्वामी परंपरा वादी थे और साथ ही सनातनवाद के समर्थक भी थे । वे अंग्रेज़ी शिक्षा को नैतिक पतन का सूचक समझते थे । स्त्री शिक्षा का भी उन्होंने समर्थन नहीं किया । उन्होंने एक बार लिखा था ' अपने देश के भाइयों से इन बात का सविनय अनुरोध करता हूं कि वे सबसे पहले कन्याओं के सुधार करने का प्रयत्न करें, क्यों कि यदि सुकन्या समय पाकर सुगृहिणी होगी तो वही एक दिन सुमाता भी होगी । उसका सुपुत्र भी अवश्य होगा । [1]

'लीलावती या आदर्शसती' ऐसी दो बहिनों की कहानी है कि जिसमें छोटी बहन का चरित्र इतना निम्न एवं पतित रूप में चित्रित किया है क्यों कि उसने पाश्चात्य सभ्यता एवं

---

1 किशोरीलाल गोस्वामी - माधवीमाधव का मदन मोहिनी - पृ. 120

शिक्षा अपनाई थी । उसकी बडी बहिन लीलावती का ललित किशोर के साथ सुखमय दांपत्य जीवन का चित्र पहले प्रस्तुत किया है । लेकिन उसकी बहिन कलावती पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार जीवन बितानेवाली है । वह बालकृष्ण नामक एक व्यक्ति के साथ 'सिविल मैरिज' करके पाश्चात्य सभ्यता की नकल करके जीती है । इसलिए उसके चरित्र मे कृत्रिमता का आरोप लगाकर उसे चरित्रहीन सिद्ध किया गया है । यहाँ तक कि उसे अन्त मे भिखारिणी बना दिया है । और वह खुदखुशी करने केलिए लाचार कर दी जाती है और स्वाभाविक रूप से लीलावती का चरित्र उज्वल घोषित भी किया गया है ।

उपर्युक्त उपन्यास को किसी भी अवस्था मे सुधारवादी नही कहा जा सकता क्यो कि इसमे कलावती के चरित्र मे जान-बूझकर कृत्रिमता लाई गई है । पाश्चात्य सभ्यता मे घृणित अंश थोडे - बहुत हो, फिर भी सुधार के लिए मात्र उसी पर केन्द्रित करके चरित्रो को मुर्दा बनाने की प्रवृत्ति यहाँ दृष्टि गोचर होती है ।

सन् 1903 मे प्रकाशित 'चपला' भी एक सामाजिक उपन्यास है । 'इसमे भी उपर्युक्त उपन्यास की ही तरह एक अच्छे पात्र (लेखक के अनुसार) एवं बुरे पात्र की परिकल्पना की गई है । साथ ही मनोरंजनार्थ तिलस्मी वातावरण का भी स्पर्श है, जो कुतूहलता को बनाए रखने के लिए है ।

माधवी माधव वा मदन मोहिनी, राजकुमारी आदि गोस्वामी के अन्य सामाजिक उपन्यास है जिसमे क्रमशः उनका नारी संबन्धी दृष्टिकोण परिचय उपलब्ध होता है । उन्होने अपने सनातन धर्म के सिद्धातो के अनुरूप ही साहित्यिक रचनाओ को भी गढ लिया है

मेहता लज्जारामशर्मा - 'उपन्यास' उनके अनुसार मनोरंजन की वस्तु है फिर भी उन्होने इसलिए तिलस्मी वातावरण का सहारा नही लिया । उनका कथन है - 'उपन्यास अवश्य मनोरंजन के लिए है, किन्तु मेरा यह सिद्धात है कि इसके साथ पाठको को किसी न किसी तरह अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए .... इसलिए उपन्यास ऐसा बनना चाहिए जिसमे प्रजा के सच्चे चरित्र का बोध हो, जिन्हे पढने से पाठक के चरित्र सुधरे और वे दुराचारो से छूटकर सदाचार मे प्रवृत्त हो[1] ।

---

1 मेहता लज्जाराम शर्मा - आदर्श दंपति (भूमिका से)

इसी कथन के अनुसृत होकर उनका एक उपन्यास - 'आदर्श दंपति' जो सन् 1904 में प्रकाशित हुआ । न इसकी घटनाएं प्रधान है न चरित्र । आदर्शपूर्ण चरित्रों के जीवन में घटित होनेवाली कुछ ऐसी घटनाओ पर विजय दिखाते हुए उन्होंने आदर्श भारतीय नारी का रूप व्यक्त किया - सुन्दरी नामक पात्र इसी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है ।

उनके अन्य उपन्यासों में - बिगडे का सुधार, कपटी मित्र, आदर्श हिन्दु, सुशील विधव आदि हैं । शर्मा ने अपने को आर्य समाजी धारणाओं के पक्का घोषित किया है । लेकिन 'सशील विधवा' (1906) में विधवा विवाह की निन्दा की है । अतः शर्मा के समाज-सुधार भी एक अरसे तक गोस्वामी के उपन्यासो के निकट कहा जा सकता है ।

इसी परंपरा में अयोध्यासिंह उपाध्याय के उपन्याय के उपन्यास आते है - ठेठ हिन्दी का ठाठ या दबेबाला । (1899) दूसरा उपन्यास अधखिला फूल प्रकाशित हुआ ।

सत् पात्रों की कोटि में देवहूति एवं देवस्वरूप और खल पात्रों की कोटि में कामिनी मोहन, बासमति आदि आते है । पतिव्रता नारी परिस्थिति के चक्कर मे पड़कर भी विचलित नही होती बल्कि 'देवी' बन जाती है और समाज को 'ऐसी देवियों की ज़ुरूरत है । जो अर्थहीन परिकल्पना का उस समय बोलबाला था और जिस सुकुंचित दृष्टिकोण से जनित पात्रों का रूप उनके सामने था उसी से एक कदम आगे वे नही बढ सके ।

इन उपन्यासों की तुलना में ब्रजनन्दन सहाय का उपन्यास 'राधाकान्त' में कुछ नवीनता दिखाई पड़ती है क्योंकि इसमें नवीन विचारधाराओं के साथ अग्रसर होने की इच्छा है । यह उपन्यास निबन्धात्मक शिल्प के निकट है और आत्मकथानक शैली में अभिव्यक्त हुआ है आर्थिक समस्याओं को भी आंशिक रूप से उभारा गया है । जो कि उपर्युक्त परिस्थिति में थोडा सा नवीन कहलाया जा सकता है । नवीन भाव बोध से परिचित होते हुए भी पात्रों के चरित्र चित्रण में विकास नही हो पाया है । इसी प्रकार उनके एक दूसरे उपन्यास 'आरण्यबाला का स्त्रीपात्र भी अपनी जीविका चलाने खुद परिश्रम करने निकलती है । लेकिन अन्तिम भाग परंपरावाले उपन्यासो की तरह समाप्त होता है ।

यहाँ मोटे तौर पर कुछ ऐसे सामाजिक उपन्यासों पर विचार किया जिससे इस सोपान के औपन्यासिक शिल्प (पात्रगत विकास संबन्धी) एवं उनकी धारणाओं का परिचय मिल सके। इस समय बडी मात्रा में सामाजिक उपन्यास लिखे गए, लेकिन न पात्रों में कोई भेद था, न जीवन दर्शन में।

उपर्युक्त उपन्यासकारों एवं अन्य कुछ लेखकों के ऐतिहासिक उपन्यासों एवं तिलस्मी - जासूसी उपन्यासों का उल्लेख यहाँ अपेक्षित है जो कि इस समय में पाई जाने वाली एक औपन्यासिक प्रवृत्ति भी है। अतः इन दोनों प्रकार के उपन्यासों को इसी सोपान के उपन्यासों के अन्तर्गत माना है। कारण यह है कि प्रवृत्तिगत भिन्नता का होते हुए भी उपलब्धि की दृष्टि में कोई भिन्नता नहीं है।

ऐतिहासिक उपन्यास (प्रथम सोपान) - इस परंपरा में किशोरी लाल गोस्वामी का नाम स्मरणीय है - एक नई प्रवृत्ति के प्रोद्घाटक एवं प्रतिष्ठापक के रूप में। इसे हम प्रयोग नहीं कह सकते, लेकिन विकास की एक कड़ी मान सकते हैं। उनका कथन देखिए - 'हमने अपने बने बनाए उपन्यासों में 'ऐतिहासिक घटना को गौण, अपनी कल्पना को मुख्य रखा और कहीं कहीं तो इतिहास को दूर ही से नमस्कार भी दिया है ...... इसलिए लोग इतिहास न समझे और इसकी संपूर्ण घटना की इतिहासों में खोजने का उद्योग भी न करें[1]

स्पष्ट है कि इनके उपन्यास को ऐतिहासिक नाम से अभिहित करना भी गलत है। मात्र ऐतिहासिक नामों की सहायता से अपनी कल्पना को रुपायित किया है। वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की नकल नहीं, फिर भी ऐतिहासिक उपन्यासों में उपेक्षित सामाजिक पक्षों पर बल देते हुए इतिहास की एकोन्मुखता को दुहराने की प्रवृत्ति रहती है। लेकिन इतिहास के साथ साथ चलकर ही यह संभव है। लेकिन गोस्वामी के तथाकथित उपन्यास एक अर्थ में मात्र कल्पना की खिलवाड है।

गोस्वामी के कतिपय ऐतिहासिक उपन्यास   तारा व क्षत्रकुलकमलिनी - इसकी कथावस्तु मुगलकालीन बादशाहों एवं राजपूतों की कहानी से संबन्धित है। जोधपुर का राजा राजसिंह

---

1 किशोरी लाल गोस्वामी - तारा व क्षत्रकुलकमलिनी (प्रथम भाग) (निवेदन से)

के पुत्र अमरसिंह राज्याधिकार से वंचित रहने के कारण पत्नी एवं पुत्री तारा के साथ राज्य सीमा के बाहर जाते हैं । मुगल दरबार में जहाँगीर की मृत्यु के साथ शाही खानदान में शोरगुल मच जाता है और आखिर शाहजहाँ को गद्दी मिल जाती है । इसमें अमरसिंह की सहायता भी शाहजहाँ को मिली थी ।

अमरसिंह की पुत्री तारा अपने यौवन के आरंभ के साथ ही आगरा के राजा राजसिंह से प्रेम कर बैठती है । दारा एवं सलामत खाँ की दृष्टि भी तारा पर थी । लेकिन तारा का विवाह राजसिंह से ही होता है । इस उपन्यास को इसलिए ऐतिहासिक कहा जा सकता है कि इसके पात्रों के नामकरण इतिहास के अनुसार ही हुआ है – शाहजहाँ, अमरसिंह, जहाआरा, दारा राजसिंह आदि इतिहास के लिए सुपरिचित हैं ।

इस उपन्यास की अधिकतर घटनाएँ इतिहास के साथ मेल नहीं खाती हैं । कुछ अनुश्रुतियों के साथ उपन्यास लिखा गया है । शाही महल में होने वाले कुचक्रों एवं षड्यत्रों को काफी सफलता के साथ उन्होंने चित्रित किया है ।

<u>कनक कुसुम व मस्तानी</u> - यह सन् 1902 में ही प्रकाशित दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है । लेकिन इसकी कथावस्तु एकदम काल्पनिक है जो बाजीराव पेशवा के जीवनकाल के साथ जोडकर ऐतिहासिकता का रंग चढाने का एक विफल परिश्रम मात्र है ।

<u>सुलताना रज़िया वा रंगमहल में कोलाहल</u> यह सन् 1904 में प्रकाशित, गोस्वामी जी का काफी चर्चित ऐतिहासिक उपन्यास है । दिल्ली के सलतनत पर बैठनेवाली पहली महिला थी सुलताना रज़िया । इस उपन्यास में रज़िया को एक अतृप्त नारी के रूप में अंकित किया गया है वह याकूब नामक व्यक्ति को अपने दिलेदार के रूप में नियुक्त करती है।एक बार वह उसके सामने प्रेम निवेदन भी करती है । लेकिन याकूब सौजिन नामक रज़िया की सहेली का प्रेमी था । इसलिए रज़िया का निवेदन ठुकरा देता है । इस उपन्यास में ऐतिहासिकता के प्रसंग में एक बात सच निकलती है कि रज़िया के सरदारों ने इसलिए विद्रोह किया था कि वे याकूब को अस्तबल के दारोगा के रूप में नियुक्त करने के विरुद्ध थे ।

आंशिक रूप में इतिहास के साथ हो कर बैठने के साथ साथ इसकी विशेषता इस बात में भी है कि एक ऐसी अतृप्त नारी की मनसिक कुंठाओं को चित्रित करने में वे सफल रहे जो सुलताना बनने पर भी अपने मन में सुलगती आग को बुझा न सकी । लेकिन प्रथम भाग में ही लेखक एक प्रहसन कर्ता के रूप में घोषित करते है - पाठक, देखा आपने, रज़िया के इश्क का नतीजा देखा आपने । अफसोस उस बेचारी ने अपनी जबानी मुफ्त खो दी, उसने न सलतनत का मज़ा उठाया और न जवानी का[1] । इस प्रकार कई भागों में घोषणायें आ गई है । इसलिए औपन्यासिकता के प्रभाव में कमी महसूस होती है ।

'हृदय हारिणी व आदर्शराणी एवं 'लवंगलता व आदर्शबाला' दोनों एक ही ऐतिहासिक वृत्त के परिवेश में सृजित उपन्यास है । बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के अत्याचारों का चित्र इस का मुख्य विषय है । इसके साथ लेखक ने अपनी गढी - गढाई काल्पनिक कथावस्तु के माध्यम से उपन्यास का शिल्प गठन किया है । इसमें लेखक की मन पसंद नायिकाओं का निदर्शन भी हमें मिलता है, जो पूर्णतः आदर्शात्मक है ।

'मल्लिकादेवी व बंग सरोजिनी' जो सन् 1905 में प्रकाशित एक और मुख्य ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें दिल्ली के बादशाह गयासुद्दीन बलबन और बंगाल के नवाब तुगरल खाँ के समय के इतिहास के साथ कथा वस्तु जुडी हुई, जो काल्पनिक अधिक है । इतिहास में जो बात थी, उसके विरुद्ध उन्होंने तुगरल खाँ की बेटी और बलवन के पुत्र की शादी कराके, बलबन द्वारा तुगरलखाँ को माफी देने का चित्रण किया है । इतिहास में बलवन के लखनावर्त का हत्याकाण्ड प्रसिद्ध है और बंगाल में तुगरल खाँ का अत्याचार भी । घटनाओं की कमी इस उपन्यास में नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक घटना में उलट फेर ज्यादा है ।

<u>किशोरी लाल गोस्वामी और ऐतिहासिक उपन्यास</u> - इतिहास का रंग चढाते हुए पहले पहल उपन्यास साहित्य में गोस्वामी ने ऐतिहासिक उपन्यासों की एक परंपरा चलाई, जो उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में विकास की एक कडी है । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की थोडी बहुत विशेषताएं उपलब्ध होती है वे निम्न प्रकार की हैं -

---

1 किशोरीलाल गोस्वामी - सुलताना रज़िया वा रंगमहल में कोलाहल (प्रथम भाग) पृ.93

(1) ऐतिहासिकता का अभाव (हलके ऐतिहासिक प्रसंग का मात्र चित्रण) (2) स्त्री कथा-पात्रों की प्रमुखता (अपनी आदर्शात्मकता का परिचय उन्ही के द्वारा लेखक ने दिया है) (3) सारे के सारे पात्र आदर्शात्मक है (सनातन धर्मी विचारधारा का परिचय) (4) कुतूहलता को बनाए रखने केलिए कही कही तिलस्मी घटनाओं का प्रयोग ।

ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा मे ब्रजनन्दन सहाय का 'लालचीन' बहुचर्चित उपन्यास है । इस उपन्यास मे दक्षिण के बादशाह गयासुद्दीन और तुर्क गुलामों का सरदार तुगलचीन से संबन्धित कथा है । उपन्यास का लालचीन इतिहास का तुगलचीन ही है । लालचीन अप पुत्री लुत्फुन्निसा की सहायता से शासन अपने हाथ मे ले लेता है । पिता की सहायता करने केलिए यद्यपि लुत्फुन्निसा षड्यंत्र मे भाग लेती है, फिर भी उसे शाही जीवन से नफरत पैदा होती है, वह आराम से भाग जाती है । वह कहती है कि मै राज्य नही चाहती थी, किन्तु आप को सदा चाहती रही[1] ।

गोस्वामी के उपन्यासों की अपेक्षा ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यास का औपन्यासिक महत्व अधिक है । चरित्र-चित्रण मे एक हद तक स्वाभाविकता झलकती है विशेषकर लालचीन और उनकी बेटी लुत्फुलिसा के चरित्र के प्रसंग मे ।

<u>तिलस्मी उपन्यास</u> : फारसी मे लिखित 'तिलस्म होशरुबा' का बहुत प्रचार था । प्रस्तुत ग्रन्थ का इतना बोलबाला था कि निम्नश्रेणी के पाठक से लेकर उचे स्तर के पाठकों तक इसको बडी चाव से पढ लिया जाता था । वैसे तो उपन्यास साहित्य का प्रारंभिक काल होने के कार कुछ उपन्यासकारों ने इसीसे प्रभावित होकर उपन्यासों मे भी इसका प्रयोग किया क्योंकि प्रसिद्धि के लिए उस समय यह काफी था । इसी कारण देवकीनन्दन खत्री का चन्द्रकान्ता उपन्यास इस परंपरा का सबसे लोक प्रिय उपन्यास बन गया ।

<u>चन्द्रकान्ता</u> इस उपन्यास की कथावस्तु सामाजिक न होकर मध्ययुगीन परिवेश मे सृजित है । तिलस्मी एवं ऐयारी वातावरण से कुतूहलता की प्रवृत्ति इसमे सब कही दर्शित है । इसके लिए विजयगढ, नौगढ, आदि कल्पित रजवाडों की कल्पना की गयी है जहाँ राजकुमार वीरेन्द्रकुमार और राजकुमारी चन्द्रकान्ता की प्रेम कहानी की परिकल्पना की गयी है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 ब्रजनन्दन सहाय - लालचीन - पृ.292

इस प्रकार की रचनाओं में घटनाओं की भरमार रहती है, जो सिलसिलेदार होती है । 'चन्द्रकान्ता उपन्यास की सबसे बडी विशेषता युग चित्रण का अभाव है । जब यह उपन्यास लिखा गया था उस समय देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक अवस्था कैसी थी इसका पता इस रचना से नही मिलता । इतना तो निश्चित है कि अपने काल का चित्रण अभीष्ट नही है, अप्रस्तुत रूप से भी समकालीन संकेत दुर्लभ हैं।[1] यह बात व्यक्त होती है कि पाठकों का मनोरंजन करना मात्र लेखक का उद्देश्य प्रतीत होता है जिसमें वे सफल भी रहे

इसी सफलता के कारण दूसरा उपन्यास चन्द्रकान्ता संतति भी प्रकाशित हुआ । 'चन्द्रकान्ता संतति' में दूसरी पीढी के रूप में चन्द्रकान्ता के दो पुत्र इन्द्रजीतसिंह, आनंदसिंह और खलनायक के रूप में तेजसिंह के पुत्र भैरासिंह और तारसिंह भी आते हैं ।

संतति के अन्त में खत्री ने गदाधार सिंह नामक ऐयार की कल्पना की है । उससे अपनी जीवनी लिखने के लिए कहता है, वही बाद में 'भूतनाथ' उपन्यास के रूप में प्रकाशित हुआ है । लेकिन इसको समाप्त करने के पहले ही खत्री की मृत्यु हुई और इसे उनके पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने समाप्त किया था ।

देवकी नन्दन खत्री के अन्य तिलस्मी उपन्यासों में काजर की कोठरी, कटोरा खून, कुसुम कुमारी, नरेन्द्र मोहिनी आदि भी प्रसिद्ध हैं । इसी परंपरा में अन्य लेखकों के जितने उपन्यास निकले, वे सब खत्री के उपन्यास के सामने फीका हो रहे ।

<u>जासूसी उपन्यास</u> तिलस्मी उपन्यासों का एक दूसरा रूप है जासूसी उपन्यास, जो अंग्रेजी उपन्यास से काफी प्रभावित है । इस परंपरा में गोपालरामगहमरी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । जैसे तिलस्मी उपन्यासों का उद्देश्य मनोरंजन था, उसी प्रकार जासूसी उपन्यास उसी लीक पर आगे बढ़े । फिर भी आदर्शात्मक चरित्रों का निर्माण लेखकों के मन में था जिसका उद्देश्य सुधारवादी दृष्टिकोण रहा है 'अच्छे और सदाचारी पात्रों का शुभ परिणाम देखकर पाठक अपना आचरण सुधारें, कर्तव्य स्थिर करें । दुराचारिणी, कुपथगामी लोगों के दीनहीन और दुःख पूर्ण दृश्य विचारकर अवगुण को त्यागें । यही मंगल उद्देश्य को लेकर अच्छे औपन्यासिक और

---

1 डा.कैलाश प्रकार - प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास - पृ.288

और नाटक का अभिप्राय होता है ।   जगत मे होने वाली घटनाओं को इस प्रकार गुंफित करना कि पढनेवाले उसे सच्चा समझकर उसकी बातों पर आस्था रखकर पढे और मूल उद्देश्य को सफल बनावें, इसी मे ग्रंथकार का परिश्रम सफल होता है जिसको पढकर पाठ के मन मे वह भाव उपजे कि यह तो कोरी गप्प है, ऐसा हो नहीं सकता, तब यह समझना चाहिए कि उपन्यासकार के सारे परिश्रम पर पानी फिर गया । इसमें स्पष्ट ध्वनित होता है कि आंशिक रूप से समाज सुधार की इच्छा जासूसी उपन्यासों मे विद्यमान है । लेकिन कथाव मे कल्पना की उंची उडान एवं वायवीपन के सिवा और कुछ नही होता । साथ ही इसमें थ्रिल बनी रहती है ।

यह हम बता चुके है कि जासूसी उपन्यासों की परंपरा गहमरी से शुरू होती है और उनके करीब 150 उपन्यास भी प्राप्त बने है - इनमें कुछ अनूदित भी है । मेम की लाश, ठनठन गोपाल, खूनी का भेद, काशी की घटना आदि गहमरी के प्रमुख जासूसी उपन्यासों मे है

यहाँ इतना बता देना चाहता हूं कि प्रथम सोपान के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों मे उपन्यास साहित्य के विकास की कडी हमें स्पष्ट दिखाई पडती है । इसी अवसर पर लिखि तिलस्मी - ऐयारी उपन्यास प्राचीन किस्सा गोई की परंपरा के अधिक निकट है, जो प्रतिष्ठा की दृष्टि से अधिक प्रचा मिलने पर भी उसे उपन्यास की कोटि मे मानना एक दृष्टि से औचित्य की कमी महसूस होती है ।

<u>प्रथम सोपान   युग बोध</u> - उपन्यास विधा हिन्दी साहित्य के लिए नई है । लेकिन कथा साहित्य की जड भारतीय साहित्य परंपरा की अपनी है । अंग्रेज़ी साहित्य के संपर्क से इस नई विधा का जन्म हुआ; इस बात मे तर्क की आवश्यकता नही जान पड़ती । युगीन परिवेश सबसे पहले उपन्यास मे व्यक्त होने लगा - लेखकीय जीवन दर्शन के आधार पर ।

सन् 1857 की असफल क्रान्ति के बाद भारतीय जनता के हृदय मे अपनी संस्कृति एवं परंपरा के प्रति अभूतपूर्व ममता का भाव जाग पडा । इस समय रचित पद्य कृतियों मे भी इसी भावना से ओतप्रोत अंश काफी दिखाई पडते है । उपन्यास का इसी समय जन्मा हुआ

- -

1   गोपाल राम गहमरी - मेम की लाश (भूमिका से)

एक नई विधा होने पर भी वह आंशिक रूप से मानव जगत की ओर अपना झुकाव दिखाने में सफल हुआ ।

आपने समय के सुधारवादी आन्दोलन की पहली किरण का आलोक भी उपन्यासकारों ने अपनाया । उपन्यासों में नये ढंग (सामाजिक उपन्यासों में) के पात्र अवतरित किये गये । सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाने पर भी लेखक मूल रूप से परंपरा वादी ही रहे । समाज में स्थित बाल - विवाह, अनमेल विवाह आदि कुप्रथाओं को उखाड फेंकने और स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह आदि पर ज़ोर देने का नारा तो गुंजायमान था, लेकिन पूर्ण रूप से उपन्यासकारों ने इसका समर्थन नहीं किया । लेकिन इसके बदले कुछ लेखकों ने इसके विरुद्ध आवाज़ भी बुलंद की । उदाहरण के लिए किशोरीलाल गोस्वामी ने स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध विचार व्यक्त किया और अपने उपन्यासों में ऐसे कथापात्रों को श्रेष्ठता दी जो सनातन धर्मी थे । एक बात सही है कि अंग्रेज़ी सभ्यता के विरुद्ध सब उपन्यासकारों ने एकमत होकर लिखा । लेकिन जिस शिक्षा के फलस्वरूप वे नये ढंग से सोचने विचारने के समर्थ हुए उसके वे एक दम विरुद्ध थे ।

<u>युगीन उपन्यासों का शिल्प</u> : उपन्यास के लिए मैं ने पात्र को सर्व प्रथम पहलु स्वीकार किया है । लेकिन इन उपन्यासकारों की दृष्टि में पात्र का कोई महत्त्व नहीं था । उनके सामने अपने मन पसन्द संस्कार और उससे प्रभावित जीवनदर्शन और सामाजिक धारणाएं मात्र थी । मनोरंजन उनका एक दूसरा उद्देश्य था । पूर्व निश्चित कथा तन्तुओं के भीतर उन्होंने पात्रों का सृजन किया जिनका न कोई महत्व उपन्यास में है । समूचे उपन्यास में नायक, नायिका, खलनायक आदि का होना इनकेलिए आवश्यक प्रतीत होता था । जैसे पुराने नाटकों में कथाबीज से लेकर फलागम तक की प्रक्रिया होती थी, उसी प्रकार कथाबीज के प्रारंभ से ही हमें यह स्पष्ट मालूम होता था इसका उद्देश्य क्या है, इसका अन्त कैसा हो । पात्रों से बढ़कर उपन्यासों में स्वयं लेखक प्रथम स्थानीय बनकर आते थे और समय - समय पर उपन्यास में वक्ता बनकर खडा होता था । इसी बनी बनाई लीक से एक भी उपन्यासकार आगे नहीं बढ सका ।

<u>उपलब्धियाँ</u> उपन्यास इस प्रारंभिक अवस्था में बहुत कम संभावनाओं के साथ प्रस्तुत हुआ था प्रथम सोपान के सामाजिक उपन्यासों को एक हद तक उपलब्धि मान सकते हैं जिनसे द्वितीय सोपान के उपन्यासकार पूर्णतः प्रेरणा प्राप्त न करने पर भी, सामाजिकता को निभाने के कार्य में थोडी बहुत मात्रा में सफल रहे । ऐतिहासिक उपन्यास को मात्र एक विचलित ढंग का लेखन

समझना है । तिलस्मी ऐयारी और जासूसी उपन्यासों को एक उपलब्धि नहीं मान सकते । ऐसी एक लेखन-प्रणाली उपन्यासकारों ने अपनायी, जिसके साथ साहित्य जगत में उन्हें प्रतिष्ठा मिली । साहित्यिक महत्ता के नाम पर सस्ते मनोरंजन की वस्तु को एकत्रित करके देने के कारण ऐसा संभव हुआ ।

भाषा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण उपलब्धि हुई । खड़ी बोली गद्य का अवश्य विकास हुआ । अयोध्यासिंह जैसे लेखक भाषागत सुधार में भी अवश्य ध्यानरत थे । इस युग को खड़ी बोली का विकास काल कहना उचित है ।

उपलब्धियाँ छोटे पैमाने तक सीमित रहने पर भी, यह निर्विवाद है कि उपन्यास ने अपना एक रूप बनाया साथ ही वह अन्य साहित्य विधाओं से बढ़कर पाठकों को आकर्षित करने में समर्थ हुआ ।

<u>द्वितीय सोपान</u> <u>तत्कालीन परिस्थितियाँ</u> अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार करते हुए अंग्रेज़ी शासक खुद अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे थे । अपने राष्ट्र के प्रति ममत्व की भावना एवं आज़ाद होने की प्रबल इच्छा भारतीय जन हृदय में प्रज्वलित होने लगी । भारतीयों को जगाने में आनी बेसन्ट ने जो कार्य किया वह सचमुच सराहनीय है । उन्होंने अपनी पुस्तक 'इंग्लेन्ड, इन्डिया, अफगानिस्तान' में खुलकर पहली बार अंग्रेज़ी शासन सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाई[1] । उनके द्वारा स्थापित थियोसॉफिकल सोसाइटी के बारे में लिखा जा चुका है । राजनैतिक क्षेत्र में पैर रखने के पहले उन्होंने भारतीयों को खुद अपने धर्म एवं जाति में आस्था रखने की प्रेरणा दी । उन्होंने कहा 'अगर एक बार फिर से भारतीय जनता वेदों और उपनिषदों के अध्ययन में लगे, भारतीय घरों में वेद मंत्रों के सच्चे अर्थ की पहचान हो और उस अनन्त शक्ति की पूजा में फिर से एक बार ध्यान दे तो ज़रूर भारत निद्रा से जाग उठेगा और दुनिया के अन्य

---

1. We exploited Hindustan not for her benefit, but for the benefi fof your younger sons, our restless adventures, our quarrelsome and neer - do well surplus population. At least for the common sake of honesty let us drop our hypecratical mask and acknowledge that we seized India from the lowest and paltriest of desires. (Anne Besent - England, India,Afganista

Shivarao : Indias freedom movement (1972) p.38

राष्ट्रो के सामने अपना शीर्ष उपर उठाएगा । भारतीय जनता की अपने अतीत की ओर उन्मुख करने के साथ साथ वे सामाजिक सुधार के कार्य भी लगातार करती रही । सन् 1918 जुलाई 11 को लन्दन मे भारतीयो की ओर से एक उज्वल भाषण देते हुए उन्होने कहा था - भारत सिर्फ यह मांगता है कि उसे भी एक राष्ट्र के रूप स्वीकारा जाय, स्वयं स्थापित सरकार के अधीन मे अपनी शासन व्यवस्था हो और ब्रिटीश साम्राज्य के एक हिस्से के रूप मे से बदलकर अपनी सरकार की स्थापना की योजना की जाय, इसके अलावा और कुछ नही मांगता[2] ।

<u>इन्डियन नाशनल कांग्रेस</u> आनी बसेन्ड के आगमन के पहले ही भारत की जनता जाग चुकी थी । इसका उदाहरण है कि सन् 1885 मे इन्डियन नाशनल कांग्रेस की स्थापना हुई थी । कांग्रेस का उदय मात्र राजनीति के क्षेत्र मे नही बल्कि भारत के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्र मे । नवीन धारणाओ एवं नई आशाओ को जन्म देने मे काफी उपयोगी सिद्ध हुआ । इसकी स्थापना से लेकर बीस वर्ष बाद जब यह पूरी तरह से भारत के प्रशासन कार्य मे जम गया वही से राजनीतिक विद्रोह करने की प्रेरणा भी पैदा हुई थी[3] । कांग्रेस के प्रादुर्भाव को देशव्यापी क्रान्ति मानते हुए पट्टाभि सीतारामय्या लिखते है - 'ऐसा नही मानना चाहिए कि राजनैतिक प्रेरणाओ ने कांग्रेस को जन्म दिया । यह सच है कि राजनैतिक तथ्य इसके पीछे वर्तमान रहा, फिर भी इस संगठन को देशव्यापी क्रान्ति भी समझना

- -

1. When once more in every Indian household are heard the teachings of vedas and upanishaths, when once more in every household understood the true meaning of the hymns and of the worship of the supreme - then India will begin to wake the sleep of centuries and once more hold up her head amongst the nations of the world'.
   Shiva Rao - Indias freedom movement. p.39

2. India asks only that she shall be recognised as a nation, shall be given self - government, and shall form an integrated part of empire composed of self governing communities, she asks not more than that.
   Ibid. p.41

3. A new era in the political life of India began with the foundation of the Indiannational congress towards very end of the year 1955 for more than twenty years after that it completely dominated the political life of India and gave shape and form to the ideas of administration and constitutional reforms which formed the chief planks of the political agitation of India.
   R.C. Majumdar - 'History of freedom movement' Vol.I. (1963) p.387.

चाहिए[1] । अतः कांग्रेस एक संगठित भारत मे पूर्ण रूप से व्याप्त क्रान्ति का प्रतीक था । राष्ट्रीय चेतना का एक दम उदय भी इसी क्रान्ति की प्रेरणा समझनी चाहिए । इसकी पहचान अंग्रेज़ लोगो को हो गई थी । दि टैमस् मे इसका स्पष्ट विरोध भी किया था[2] । लेकिन कांग्रे के अभ्युत्थान के साथ भारतीय जनता भी जागृत होती गयी । भारत के कोने कोने मे से बडे बडे नेता प्रतिनिधि बन कर आए और उनके एक होने का यह लाभ हुआ कि उन्हे भारतीयता का बोध हुआ, राष्ट्र के प्रति धर्म एवं जाति की परवाह किये बिना श्रद्धा एवं भक्ति की भाव जगाने का अवसर भी मिला[3] । इसी एकता की भावना सामाजिकता के क्षेत्र मे भी काफी सुधार ः मे समर्थ हुई ।

गांधी जी के आने के बाद इस कार्य मे और भी उन्नति हुई । वे धार्मिक क्षेत्र मे भी एकता लाने का भरसक प्रयत्न करते रहे । आफ्रिका मे वे भारतीयो के लिए लडे और काफी हिम्मत के साथ आगे बढे । आफ्रिका से वापस आकर उन्होने भारत की राजनीति मे कदम रखा जो एक महत्वपूर्ण घटना है । गांधीजी ने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया । साथ ही वे उन्हे राजनीति मे शामिल कराने, उची पदवियां देने के पक्ष मे थे । कांग्रेस के कार्यक्रमो मे इसी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. It was not merely the political forces and the sense of political subjection that gave birth to congress. The Congres doubtless had its political objectives, but it also was an organ and exponent of the movement of national renaissance.
   B. Pattabhi Sitaramayya - History of Indian National Congress Vol. I. (Second reprinted) p.11
2. Both at home and in India with a few honourable exceptions regarded the congress as the greatest enemy of British rule in India and its' demands as almost outragious. 'The times' reminded the congress India was won by force and must be governed by force and it the British were to withdraw, it would be in favour not if the most fluent tongue of of the most ready pen, but the strongest and sharpest as sword.
   R.C. Majumdar . History of freedom movement. p.412
3. The annual session of the Congress, bringing together the leading representative men from the remote parts of India, gave reality to the ideal of Indian Unity, developed patriotic feeling among all classes of divorce race and creeds of India and awakened political consiousness among a steadily increasing circle of educated Inxian.

   Ibid. p.416

विशाल दृष्टिकोण का परिचय देते हुए उन्होने दूसरे गोल मेज़ समावेश (राउण्ड टेबिल कोन्फ्रेन्स) मे कहा था।[1]

गांधीजी के आगमन के साथ, कांग्रेस की कार्यवाई ज़ोरों से बढने लगी। जैसे राजनैतिक क्षेत्र मे कांग्रेस ने अपनी शक्ति का परिचय दिया, उसी प्रकार धर्म के क्षेत्र मे जितनी संकुचित विचार प्रथाएं कायम थी उसे दूर करने मे कांग्रेस ने सफलता प्राप्त की, पहले स्त्री को समाज के कार्य क्षेत्र मे उतर कर काम करने की स्वतंत्रता नही थी। उसके विपरीत अब उन्हे दूसरों के समान देश मे होने वाले परिवर्तन के साथ हाथ बंटाने का अवसर दिया गया। सारे लोगों को समान अधिकार देने और सभी लोगों को समान दृष्टि से देखे बगैर देश मे क्रान्ति लाना भी असंभव था। कांग्रेस के प्रवर्तक इस बात से अनभिज्ञ नही थे। समाज से छूआछूत को दूर करना कांग्रेस ने अपना पहला कार्यक्रम बना लिया।[2] गांधीजी का अपना योगदान इसमे भी महत्वपूर्ण है।

व्यक्तिगत रूप से गांधीजी मानवता के पूजारी थे। अतः उन्होने स्वराज्य की स्थापना के लिए देश व्यापी एकता की जुरत समझी और उसके लिए लोगों के बीच वर्तमान भेद भाव को

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. As you know the late Mohammed Ali, whose presence also we miss today, was a president of the congress and at present we have few musalmans the members of the working committee which consists of fifteen members. We have had a woman as a president Dr. Anne Besent was the first and Mrs. Sarojini Naidu followed. We have her as a memver of the working committee and so if we have no distinction of class and creed, we have no distinction of sex either'.
   B. Pattabhi Sitaramayya - History of Indian National Congress. p.21.
2. But in 1920 the congress took a large step and brought removal of untouchability as a plank in the political platform, made it an inportant item of the political programme. Just as the congress considered Hindu Muslim Unity, there by meaning unity among all classes to be indispensible for the attainment of 'Swaraj'. So also did the congress considered the removal of curse of untouchability as an indispensible condition for the attainment of full freedom.

   Ibid. p.21

मिटाने की आवश्यकता भी महसूस की । अपने एक साप्ताहिक समाचार पत्र यंग इन्डिया मे गांधी जी ने इस प्रकार लिखा 'अछूत प्रथा को अपनी परिपाटियों मे दूसरा स्थान नही देना चाहिए । उसको मिटाने के पहले स्वराज्य की कल्पना सारहीन प्रतीत होती है । मै स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अछूत प्रथा को मिटाना अनिवार्य मानता हूँ ।[1]

यह सचमुच संतोष की बात है कि सन् 1905 से लेकर सन् 1920 तक की अवधि मे भारत ने काफी अरसे तक उन्नति प्राप्त की - राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र मे । इस उन्नति के प्रोद्घाटक समाज के एक नये वर्ग थे जिन्हे हम मध्यवर्ग कह सकते है । उस समय तक समाज मे मध्यवर्ग का निशान नाम मात्र के लिए था । एक शासित वर्ग - ब्रिटीश लोग जिनके गुणगायक जमीन्दार समाज के अधिप बनकर विराज रहे थे । शासित वर्गो का न कोई अस्तित्व था न कोई पूछ-ताछ । अतः कांग्रेस के आविर्भाव के साथ इस वर्ग का भी जनम हुआ और कांग्रेस का आविर्भाव एक क्रान्तिकारी घटना है ।

<u>साहित्यिक परिस्थितियाँ</u> यह पहले बताया जा चुका है कि सुधारवादी प्रवर्तन का प्रारंभ होते हुए भी 1880 से लेकर 1910 तक की साहित्यिक रचनाओं मे परंपरावादी आस्था ही कायम रही। पिछले सोपान के उपन्यासकार इसके उदाहरण है । कविता के क्षेत्र मे महावीर प्रसाद द्विवेदी मैथिलीशरण गुप्त आदि के आगमन, उपन्यास और कहानी मे प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण घटना है । उपन्यास बिलकुल मानवतावादी दृष्टिकोण के काबिल हो गये । इसके पीछे प्रेमचन्द का परिश्रम ही मुख्य है । कलापक्ष के सौन्दर्य तत्व को बढाने मे प्रेमचन्द जैसे साहित्यकार को चैन का अनुभव नही हुआ । मनुष्य के उद्गारों को साहित्य मे पहले कम स्थान मिला था यह उसकेलिए सुअवसर हो गया । जैसे गांधी जी मानवीय मूल्यों के उद्घोष कर्ता रहे प्रेमचन्द भी अपने उपन्यास मे मानव मूल्यों के प्रवक्ता बने - एक नये वर्ग का प्रतिलिपि बनकर । अतः गांधी जी और प्रेमचन्द प्रेमचन्द और गांधीजी ये दोनो ही समानार्थ शब्द माने जाते है । अपनी धारणाओं को एक राजनीति के क्षेत्र मे कार्यान्वित करता है दूसरा

---

1. Unthouchability cannot be given a secondary place in the programmes, with-out the removal of the taint swaraj is a meaningless term......... I consider the removal of untouchability as a most powerful factor in the process of the attainment of swaraj.

Shiva Rao - Indias freedom movement. p.55

उन्ही धारणाओं को साहित्य मे अभिव्यक्ति देता है । दोनों मे समर्थता भी समान है, दोनों मे दुर्बलताएँ भी समान है[1] ।

<u>प्रेमचन्द का आगमन</u> : <u>व्यक्तित्व की एक झलक</u> : अनुभव कलाकार के लिए परम आवश्यक वस्तु है । परिस्थिति उनके लिए प्रेरणा प्रदान करती है । वर्तमान मे खडे होकर भविष्य की ओर दृष्टिपात करने की शक्ति मात्र कलाकार मे मौजूद रहती है । एक सफल कलाकार का अपना जीवन दर्शन होता है जिसको वह अपनी रचना के द्वारा व्यक्त करता है ।

प्रेमचन्द ने अनुभव को कला की सीमा मे बाँधकर अपनी सृजनात्मकता का परिचय दिया उनके सृजन की पृष्टभूमि जर्जरित मानवीय उद्गारों से बनी हुई है, और उसी जर्जरता के वे स्वयं एक भागीदार भी थे । उन्होंने एक ऐसे जीवन को देखा और अनुभव किया, जिससे उनकी दुःख मन कराह उठा और अन्त तक उन्होंने उसी जीवन मे संतुष्टि की खोज की ।

'जब प्रेमचन्द सात साल के थे तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया । जब पन्द्रह साल के थे तब उनकी शादी कर दी गई और सोलह साल के होने पर उनके पिता का भी देहान्त हो गया । जैसा कि लोग कहते हैं, लडकों की यह उम्र खेलने-खाने की होती है, लेकिन प्रेमचं को तभी घर संभालने की चिन्ता करनी पडी । तब वह नवे दर्जे मे पढते थे और उनकी गृहस मे तो सौतेले भाई, सौतेली माँ और खुद उनकी स्त्री थी[2] ।

जीवन का एक भयानक रूप उनके सामने खडा था । लेकिन फिर भी मुँह मोड़कर भागने की प्रवृत्ति उनमे नहीं थी । वे शहर मे किसी एक वकील के लडके को पढाते थे साथ ही साथ अपनी पढाई जारी रखी । अपने दुःखमय जीवन से मुक्त होने केलिए उन्होंने अपने मन को पढने लिखने के काम मे लगा दिया । प्रेमचन्द के जीवन मे घटित एक मजबूरी का चित्र खुद उनके शब्दों मे इस प्रकार है – 'जाडों के दिन थे । पास एक कौडी न थी । दो दिन एक एक पैसे का चबेना खाकर काटे थे । मेरे महाजन ने उधार देने से इनकार कर दिया था । संकोचवश मै उससे माँग न सका था । चिराग जल चुके थे । मै एक बुकसेलर की दूकान पर

- -

1 डा. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - पृ. 138

2 डा. रामविलास शर्मा - प्रेमचन्द और उनका युग – पृ. 18

एक किताब बेचने गया । एक चक्रवर्ती गणित - कुंजी दो साल हुए खरीदी थी, अब तक उसे बडे जतन से रखे हुए थे, पर आज चारो ओर निराश होकर मै ने उसे बेचने का निश्चय किया किताब दो रुपये की थी, लेकिन एक रुपये पर सौदा ठीक हुआ[1] ।

सन् 1919 मे प्रेमचन्द ने बी.ए.किया । उसके बाद वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के इन्सपेक्टर बने । लेकिन उस नौकरी पर मन न लगने के कारण अन्त मे इस्तीफा दे दिया । प्रेमचन्द का लेखन कार्य 1901 से प्रारंभ हो गया था । वे पहले नवाब राय के नाम से उर्दु मे लिखते थे । अपनी रचना 'सो-जेवतन' को अपनी आखो के सामने जलाने के लिए वे मज़बूर हुए । उसी घटना के बाद एक नये साहित्यकार का जन्म हुआ - 'प्रेमचन्द' ।

प्रेमचन्द ने नौकरी से छुट्टी पाने के बाद एक मारवाडी स्कूल मे काम किया । लेकिन वहा के हेडमास्टर से निबट लेना उनके लिए असंभव था । उन्हे अपने एक 'प्रेस' के बोर मे अधिक चिन्ता थी । 'ज़माना' के संपादक मुंशी दयानारायण' निगम' को लिखित पत्र से इसका पता चलता है ।

अन्त मे प्रेमचन्द ने मर्यादा, जागरण, जमाना आदि प्रत्रिकाओ का संपादन कार्य अपने उपर ले लिया था । अपनी पत्रिका हंस को चलाने मे उन्हे बडा कठिनाई महसूस होने लगी इसके बारे मे उन्होने जैनेन्द्र कुमार को लिखा - 'चिन्ता का केन्द्र यही था कि हंस कैसे चलेगा, नही चलेगा तो क्या होगा । हंस केलिए तब भी जीने की आस उनके मन मे थी और हंस न जिएगा यह कल्पना उन्हे असह्य थी[2] ।

प्रगतिशील साहित्य संघ की स्थापना उनके प्रयत्न से संभव हुई । साहित्य को मानसिव एवं बौद्धिक एकता का साधन मानते हुए प्रेमचन्द ने इस प्रकार के एक संघ की स्थापना की, जिसके ज़रिये भारत भर के लोग साहित्य की महत्ता को समझे, साहित्यिक रचना को मानवता की उन्नति केलिए न्योछावर करे और पुरानी रूढमूल, सडे हुए विचारो का विरोध कर नई सामाजिक क्रान्ति केलिए आवाज़ उठवे । इन्ही क्रान्तिकारी विचारो का इस संघ के माध्यम से उन्होने प्रचा किया, जो गांधीजी के विचारो के बहुत करीब थे ।

---

1 मदन गोपाल - कलम का मज़दूर प्रेमचन्द (प्रथम संस्करण) पृ.25

2 डा.रामविलास शर्मा - प्रेमचन्द और उनका युग - पृ.23

बिना अनुभव के भी साहित्यिक रचनाएं संभव है । लेकिन प्रेमचन्द के बारे में इतना कहना काफी है कि उनकी रचनाओं और जीवनानुभवों में काफी निकटता है । यह विचित्र संयोग है कि प्रेमचन्द के निजी जीवन के अनुभवों और रचनाओं के जीवन के बीच प्रवाहित होने वाले अनुभवों में ज़्यादा फर्क नहीं है [1] ।

हम देख चुके है कि प्रेमचन्द का लेखन समय सन् 1900 से प्रारंभ होता है । भारत के इतिहास में यह संघर्ष पूर्ण समय रहा था । प्रेमचन्द के सामने एक ऐसा समाज था जिसका जिक्र किये बिना उनकी साहित्यिक प्रतिभा शान्त नहीं होती थी । क्यों कि प्रेमचन्द उसी समाज के सदस्य थे । शहरी जीवन से परिचित होते हुए भी उन्होंने ऐसे पात्रों को मुख्य स्थान दिया जो उनके अचेतन में छुटपन से ही स्थायावस्थित होकर बैठे थे । लहमी (प्रेमचन्द के गांव) के किसान, वहां के निम्न वर्गीय लोग, शोषक महाजन तथा जमीन्दार, शोषित किसान एवं मजदूर ।

प्रेमचन्द के व्यक्तित्व में सहनशीलता की चरम सीमा दिखाई पडती है । लेकिन दूसरों के दुःख एवं दर्द को सहने की क्षमता उनमें बहुत कम थी । किसानों के जीवन से वे भली भांति परिचित थे । महाजनों एवं ठेकेदारों के प्रपीड़न को सहने वाले अनेकों किसानों को उन्होंने देखा था । इसलिए उनका किसान पात्र किसी एक आंचल विशेष का प्रतिनिधि न हो भारतीय किसान का प्रतीक है जो किसी छोटी आशाओं को प्रफुल्लित होने का सपना देखते हुए एक दिन हमेशा केलिए बिदा लेता था ।

इसी प्रकार समाज के क्रूर हाथों से पिसने वाले एक वर्ग को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रमुख स्थान दिया - नारी वर्ग । कांग्रेस के उदय के साथ नारीवर्ग अपनी परंपरागत प्रवृत्ति से विमुक्त हुआ । लेकिन प्रेमचन्द ने अनुभव किया कि यह मुक्ति एक सीमित वर्ग से संबन्धित है जिसमें मध्यवर्गीय नारी का स्थान नहीं है । अतः इसी समस्या को उन्होंने प्रमुखता दी थी 'सेवासदन' की सुमन, 'निर्मला' की निर्मला, 'गाबन' की जालपा आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण है ।

इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द के सामने 'स्वराज्य' की प्राप्ति का प्रश्न था । गांधी जी का

- - - - - - - - - - -

1 गंगाप्रसाद विमल - 'प्रेमचन्द आज के सन्दर्भ में' - पृ. 14

प्रभाव उनपर प्रबल था जो विवाद रहित है । गांधी जी के अनुसार 'स्वराज्य' की कल्पना तब तक अर्थ हीन थी जब तक भारत के लोगों के बीच एकता और ममत्व के भाव का अभाव हो । उन्होंने सामाजिक कुरीतियों को तथा जातिभेद, छुआछूत की भावना को दूर करने का आदेश दिया । गांधीजी की इसी विचारधारा से प्रभावित होकर उन्होंने अपने उपन्यासों में आदर्श का झीना आवरण चढा दिया । लेकिन यह आदर्शवादिता कोरी भावुकता की उपज नहीं थी बल्कि जीवन के यथार्थ बोध की परिचायिका थी ।

गांधी जी के सिद्धान्तों से काफी प्रभावित होने के कारण प्रेमचन्द भी अपने पात्रों में सीमातीत क्रान्तिकारिता का परिचय नहीं दे पाये । इसका यह अर्थ नहीं कि उनके पात्र क्रान्तिकरी नहीं है वस्तुतः सेवासदन की स्थापना करनेवाली सुमन भी एक क्रान्तिकारी कल्पना है । 'गबन' की विलास प्रिय जाल्पा भी अन्त में क्रान्ति की ओर झुकती है । उसी प्रकार 'रंगभूमि का सूरदास भी एक क्रान्तिकारी कथापात्र है ।

प्रेमचन्द की क्रान्तिकारिता ने कहीं कहीं व्यंग का रूप धारण किया है । समाज के सभ्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रेमचन्द ने नहीं छोडा । उन पर प्रेमचन्द ने कटु व्यंग्यों के बाण छोडे हैं । जैसे सेवादसन के वकील पद्‌मसिंह शर्मा, गोदान का रायसाहब आदि प्रेमचन्द के निशानें से बच नहीं पाये । मुखौटा पहनने वाले इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों से प्रेमचन्द नफरत करते थे उनके चित्रण करते समय प्रेमचन्द उनके मन वचन की पारस्परिक विसंगतियों को उभारकर हास्यास्पद रूप में प्रस्तुत करते है व्यंग्य द्‌वारा वे ऐसे पात्रों की कलई खोलने के साथ उनकी दुर्गति कराके तथा उन पर हंसकर पाठकों की न्याय भावन को तुष्ट करते है[1] ।

<u>प्रेमचन्द का दृष्टिकोण उपन्यास के सन्दर्भ में</u> यह बात विदित है कि प्रेमचन्द ने अप अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास को माध्यम बनाया उनके अनुसार 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र मानता हूं । मानव चरित्र पर प्रकाश डालता और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है[2] । एक दूसरे सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि वह साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अबलंबित हो[3] । अतः यहां प्रेमचन्द ने साहित्य

---

1 डा.शशिभूषण सिंहल - हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां (प्रथम संस्करण) - पृ.43

2 डा.रामविलास शर्मा - प्रेमचन्द और उनका युग - पृ.138

3 वही पृ 3

की परिभाषा मे मनुष्य को महत्व दिया, उपन्यास के सन्दर्भ मे 'मानव चरित्र' को महत्व दिया है । स्पष्ट है प्रेमचन्द के सामने जीवन अपने विस्तार के साथ प्रस्तुत था । प्रेमचन्द के पहले जितने लोग उपन्यासकार के रूप मे हिन्दी साहित्य मे लब्ध प्रतिष्ठित हुए, वे उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु मानते थे । उपन्यास को मनोरंजन के माध्यम की अपेक्षा महत्वपूर्ण विधा मानने वालो मे प्रेमचन्द प्रथम है । क्यो कि प्रेमचन्द ऐसे अनुभवो के बीच मे पले थे और उन्ही परिस्थितियो से गुज़रे थे । अनुभूत जीवन को उसी रूप मे अभिव्यक्त करना उनका उद्देश्य था । 'मानव चरित्र' का चित्र प्रेमचन्द का एक अन्वेषण है, उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का अलग सन्दर्भ है । एक तो उन रचनाओ मे आत्म मन्थन है, उनमे मनुष्य और मनुष्यता के अन्वेषण की प्रक्रिया मिलती है[1] । इस अन्वेषण मे उन्होने समाज के जर्जरित नारीवर्ग से लेकर किसानो तक का वर्णन किया, मध्यवर्ग की मजबूरियो, उनकी समस्याओ को स्थान दिया । इस अन्वेषण की राह एक लम्बी परंपरा से बिछुडने की राह है, वह नई संस्कृति की ओर ले चलने वाली राह और नये समाज के रंगमहल का राजपथ भी है । इस राह से गुज़रने वाली राही को कुण्ठित नारी की कराहती सांस की धीमी आवाज़ सुनने को मिलेगी, किसानो के मोहभंग और उनके टूटे सपनो के भग्नावशेष भी देखने को मिलेगे ।

प्रगतिशीलता की ओर - प्रपीडन की गुलामी की जंजीर मे पड़कर भारत के लोगो को यह महसूस हुआ कि एक देश व्यापी संगठित क्रान्ति की ज़रूरत है और इसी विचार ने समूचे भारत के राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रो मे अभूतपूर्व परिवर्तन किया । साहित्य के मूल्यो मे भी बडा परिवर्तन नज़र आने लगा जिसका एक प्रतीकवत कार्य है भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ

प्रेमचन्द के अपने सपनो मे एक स्वाधीन राष्ट्र भी था । 'हंस' पत्रिका मे उन्होने लिखा - 'जैसा इसके नाम से जाहिर है, संघ उस साहित्य और कला प्रवृत्ति का पोषक है जो समाज मे जागृति और स्फूर्ति लाए, जो जीवन की यथार्थ समस्याओ पर प्रकाश डाले[2] । एक अन्य सन्दर्भ मे उन्होने व्यक्त किया 'इस संघ का उद्देश्य, जैसा हम पहले लिख चुके है, साहित्य और कला मे प्रगति पैदा करना, जीवन - यथार्थताओ का चित्रण करना और जनता के दुःख सुख और कशमकश की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति करके उस उज्वल भविष्य की ओर ले जाना जिसके लिए आप विश्व का मानव - समाज कोशिश कर रहा है[3] ।

1 गंगाप्रसाद विमल - प्रेमचन्द आज के सन्दर्भ मे - पृ.24

2 हंस (1936) अप्रैल अंक

उस समय प्रगतिशील शब्द वस्तुतः एक नया शब्द रहा । साहित्य और प्रगतिशीलता में संबन्ध स्थापित करके, साहित्य को सब से पहले जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त कराने का माध्यम बनाया गया, यही प्रगतिशीलता की प्रथम सीढी है । जहाँ तक उपन्यास साहित्य का संबन्ध है प्रेमचन्द का पहला उपन्यास सेवासदन प्रगतिशील दृष्टिकोण का पहला नमूना है । प्रगतिशील इसलिए कि सबसे पहले सामाजिक रूढियों पर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और वहीं से एक प्रगतिशील साहित्यिक परंपरा का प्रारंभ होता है । इस दृष्टि से भी हिन्दी के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम यह उद्घोषित किया कि सच्चे कलाकार में प्रगतिशीलता विद्यमान रहती है, लेकिन उसे जगाने का कार्य खुद कलाकार को करना पडता है । अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सभापतित्व भाषण में उन्होंने कहा - ' प्रगतिशील लेखक संघ, यह नाम ही मेरे विचार से गलत है । साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है, अगर यह उसका स्वभाव न होता तो वह साहित्यकार ही न होता[1] । उन्होंने अपने समय की कार्यपरिपाटि पर परोक्ष रूप से व्यंग्य करते हुए कहा 'जब साहित्य पर संसार की नश्वरता का रंग चढा हो, और उसका एक-एक शब्द नैराश्य में डूब समय की प्रतिकूलता के रोने से भरा और शृंगारिक भावों का प्रतिबिंब बना हो तो समझ लीजिए कि जाति जड़ता और ह्रास के पंजे में फंस चुकी है उसमें उद्योग तथा संघर्ष के बल बाकी नहीं रहा[2] ।

प्रगतिशील साहित्य में प्रगति के पथ पर नये नये संकेतों की खोज में अग्रसर होते रहना ज़रूरी है । प्रेमचन्द के लिए प्रगतिशीलता का तात्पर्य यही है कि किसी एकान्त स्थान में खोए खोए बैठे, कवि की वाणी में जो अनुभूत्यात्मक सौन्दर्य बोध है उसे प्रगतिशीलता की श्रेणी से दूर रखे । जीवन की कर्कशता जटिलता का चित्रण हो, पुरानी लीक से बदलकर नई राह बना देने की प्रबल इच्छा, ढकोसला एवं ढोंग के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रवृत्ति आदि को उन्होंने प्रगतिशील प्रवृत्ति कहा, क्यों कि जीवन मात्र सौन्दर्य का उदाहरण नहीं उसमें असुन्दरता है, कर्कशता भी है ।

उदाहरणार्थ उनके कुछ पात्र है - सेवासदन की सुमन - अपनी जर्जरित परिस्थिति में भोली नामक वेश्या के जीवन को सार्थक समझती है । जिस वेश्या की रंग रलियाँ समाज के उंचे घराने

---

1 डा.रामविलास शर्मा - प्रेमचन्द और उनका युग - पृ.145

2 वही पृ.145

के लोग अपनी शान और शौकत का परिचायक मानते हैं उसी वेश्या का जीवन अपनाने में यद्यपि सुमन के हृदय से नहीं चाहती है फिर भी समाज के प्रति, अपनी प्रतिष्ठता को नकारने वाले पुरुषवर्ग के प्रति, अपने अन्तर्मन की निचली पर्त में सुप्तावस्थित नारी के अहं को बचाए रखने के लिए वह वेश्या का जीवन अपनाती है ।

रंग भूमि का सूरदास ऐसा एक पात्र है जो समाज में अपनी संस्कृति की लहरें हिल्लोलित देखना चाहता है और उसके लिए वह किसी भी व्यक्ति से, किसी भी संगठित शक्ति से टकराने को कटिबद्ध खड़ा है । महेन्द्रसिंह एवं जान सेवक आदि के उपाय सूरदास के सामने चूर चूर हो जाते हैं । किसी भी अवस्था में आत्मधैर्य को खोने के लिए वह तैयार नहीं है । सुभागी को लेकर बस्ती में बहुत अधिक शोर मच जाता है, लेकिन सूरदास अपने स्थान से एक इंच भी हिलता नहीं है । क्यों कि उसे अपने फिर पर अटल विश्वास है ।

गोदान में ऐसे पात्रों की कल्पना की गयी है जिनके हृदय में आधुनिक विचार उठते हैं उदाहरणार्थ होरी का बेटा गोबर और रायसाहब का बेटा जिन्हें अपने पूर्वजों के विचारों के साथ हाँ में हाँ करने की बुद्धि हीनता नहीं है । रायसाहब का बेटा पिताजी से कहता है शादी उसका अपना मामला है । इस प्रकार सारे पत्रों को व्यक्तित्व प्रदान करते हुए प्रेमचन्द ने प्रगतिशीलता का परिचय दिया है ।

प्रेमचन्द के प्रमुख पात्र : इस परिच्छेद में उनके प्रमुख उपन्यासों के कतिपय पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना हमारा ध्येय है । यहाँ उन पात्रों के चरित्र-चित्रण पर प्रकाश डाला जायगा । जिनके माध्यम से प्रेमचन्द के औपन्यासिक वैशिष्ट्य का परिचय प्राप्त हो जायगा ।

सेवासदन की सुमन प्रेमचन्द का पहला सफल मौलिक उपन्यास है 'सेवा सदन' । यद्यपि इसका प्रकाशन सन् 1918 में ही हो पाया था, परन्तु यह 'बाजारे हुस्न' शीर्षक से सन् 1907 में उर्दु में पहले प्रकाशित हो चुका था । मोटे तौर पर नारी समस्या, खासकर वेश्या समस्या, दहेज की समस्या आदि कई समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । सुमन के चरित्र चित्रण के पश्चात् इस बात का पता चल जाएगा कि इसकी मूल समस्या नारी की प्रतिष्ठा की समस्या है ।

सुमन एक ऐसे घर में पली थी जहाँ उसको अभाव नहीं महसूस हुआ था । लेकिन सुमन के पिताजी कृष्णचन्द्र के पकडे जाने के बाद घर की स्थिति अत्यन्त दारुण बन जाती है और विवाह योग्य सुमन की शादी मजबूरियों के घेरे में पडकर एक ऐसे आदमी से हो जाती है जो सुमन के लिए अयोग्य ही था ।

किसी भी प्रकार से मानसिक लगाव स्थापित न कर सकने की वजह से सुमन का पतिगृ में रहना अधिक दुष्कर बन जाता है । यद्यपि सुमन का पति गजाधर सुमन को सुखी रखने केलिए सब प्रकार की सुविधाये जुटाने का कार्य करता है फिर भी वह खुश नहीं हो पाती । इसलिए वह खुश नहीं हो पाती कि जिस समय उसका ब्याह हो जाता है उसी वक्त सुमन के अन्तर कुण्ठा जागृत होती है । वह ऐसी कुण्ठा है जो मानसिक अभिन्नता के कारण उत्पन्न हुई थी और मज़बूरियों की घुटन की उपज है ।

आर्थिक अभाव उसकी कुण्ठा को और भी घृणित कर देता है । उसे न समाज मे इज्जत मिलती है, न घर में चैन मिलता है । लेकिन उसके पडोस में रहनेवाली भोली नामक वेश्या का जीवन सुमन की कुण्ठा को और भी तीव्र करता है । वेश्या के घर समाज के सारे प्रतिष्ठित व्यक्ति, यहाँ तक गजाधर भी जा बैठते है । सुमन के पूछने पर गजाधर का उत्तर उसे और भी उतावली बनने को मज़बूर कर देता है । गजाधर का कथन - 'जब इतने भलमानुस जाते है तो मुझे क्यों संकोच होने लगा । वह सेठजी भी आये हुए थे जिसके यहाँ मैं काम करने जाया करता हूँ ।[1]

भोली के सामने बैठे हुए प्रतिष्ठित व्यक्तियों के चेहरे पर भोली के प्रति आदर है, तृष्णा है, नम्रता है । इसी आदर और तृष्णा का सुमन के जीवन मे अभाव था । पद्‌मसिंह जो मुनिसिपालिटी का मेम्बर है, और समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए हमेशा अपने जीवन समर्पित किये हुए बैठा है, उसके यहाँ भी भोली के लिए स्थान है । उसका नाच - गाना देखने सुनने के लिए सुमन भी वहा जाती है । इस बात को लेकर पति - पत्नि के बीच में झगडा होता है और गजाधर सुमन को घर से निकाल देता है । संघर्ष की पराकाष्ठा में भी सुमन व्यक्त कर देती है - 'हाँ यों कहो तुम मुझे रखना नहीं चाहते । मेरे सिर पर पाप क्यो

---

1 प्रेमचन्द - सेवासदन — (वर्तमान संस्करण) - पृ. 20

लगाते हो ? क्या तुम्ही मेरे अन्नदाता हो ? जहाँ मजूरी करूँगी वहीं पेट पाल लूँगी[1] ।

सुमन के जीवन में एक नया मोड उपस्थित हो जाता है । वह भोली के यहाँ जाकर रहने लगती है । जिस आदर और नम्रता की उसे चाह थी वे सब उसे भोली के घर में रहकर मिल जाती है । इसलिए समाज सुधारक विट्ठल दास के कहने पर वह उत्तर देती है -

महाशय यह आप क्या कहते है ? मेरा तो यह अनुभव है, जितना आदर मेरा अब हो रहा है उसका शतांश भी तब नहीं होता था । एक बार मैं सेठ चिम्मन लाल के ठा दूवारे में झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खडी भीगती रही, किसी ने भीतर न जाने दिया लेकिन उसी ठाकुर दूवारे मे मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता है मानों मेरे चरणों से वह मंदिर पवित्र हो गया था[2] ।

वेश्या की कोठी में रहकर वह सदनसिंह से निकटता का अनुभव करती है । जिस प्यार और ममता की उसे जूरत थी शायद आंशिक रूप से ही सही उसे सदनसिंह से मिलने लगती है लेकिन सदनसिंह पउमसिंह का बेटा होने के कारण वह सदन से दूर रहना ही पसन्द करती है सुमन की बहिन शान्ता का विवाह सदन से इसलिए छूट जाता है कि वह एक वेश्या की बहिन है । तब सुमन सदन से कहती है - 'तुमने उसके साथ यह अत्याचार केवल इसलिए किया मैं उसकी बहिन हूँ, जिसके पैरो पर तुमने बरसों नाक रगडी है । जिसके तलुवे बरसों तुमने सहलाए, जिसके कुटिल प्रेम मे तुम महीनों मतवाले हुए रहते थे । उस समय भी तो तुम अपने माँ-बाप के आज्ञाकारी पुत्र थे या और कोई थे । उस समय भी तो तुम वही उच्चकुल के ब्राह्मण थे या और कोई ? तुम अपने दुष्कर्मों से खानदान की नाक .... न करते थे । आज तुम आकाश के देवता बने फिरते हो । अंधेरे में जूठा खाने पर तैयार, पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं[3] । यह कथन उस झूठे समाज की कार्रवाईयों के प्रति सुमन का विद्रोह है - प्रेमचन्द का क्रान्तिकारी विचार है । समाज के लिए एक चेतावनी है और ललकार है चारों तरफ से घुटन सहनेवाली एक नारी की क्रान्ति का स्फुलिंग है । इस चेतावनी में भारतीय नारी की प्रतिष्ठा को बनाए रखने की इच्छा बलवती है ।

---

1 सेवासदन - पृ.35

2 वही पृ.33 - 34

3 वही पृ.203

यद्यपि इस उपन्यास में वेश्याओं की समस्याओं पर बल देने का प्रयत्न दर्शित है, फिर भी इसमें सुमन (मुख्य कथापात्र) के अपने जीवन की ही समस्या का चित्र प्रमुख है जो कि एक भारतीय नारी की अपनी समस्या है । सदियों से सामाजिक बन्धन की चहार दीवारी के भीतर पडी भारतीय नारी की पराधीनता का स्वाभाविक अंकन प्रेमचन्द ने सुमन के द्वारा किया है जो प्रेमचन्द की क्रान्तिदर्शिता का उदाहरण है । इसीलिए प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचं ने पूर्वाग्रह को छोडकर सामाजिक बन्धनों से परे होकर एक वेश्या के जीवन का चित्रण किया थ पल पल सड़नेवाली सामाजिक रूढियों के प्रति प्रेमचन्द ने अपने कटु व्यंग्य व्यक्त किये हैं एक उनका सुमन इस दिशा में एक उज्वल पात्र है ।

प्रेमचन्द के पहले जितने भी उपन्यासकारों ने सामाजिक उपन्यास लिखे हैं, उनके द्वारा वास्तविक समस्याओं को उभारने का कार्य बहुत कम हुआ है और अगर हुआ भी तो उपरी सतह पर सुधारवादी दृष्टिकोण का मात्र परिचय है । रूढिगत बन्धनों के प्रति, पूंजिपतियों के स्वनिर्मित नियम के प्रति प्रेमचन्द ने अपने हर एक पात्र के द्वारा विद्रोह कराया समाज की संकरी गलियों के भीतर जाकर वहां की हर छोटी-मोटी समस्याओं के विरुद्ध अपनी अ आवाज़ बुलन्द करने की ताकत हम सुमन जैसे कथापात्रों में देखते हैं ।

सुमन एक ऐसी कल्पना का परिणाम है जिसके द्वारा प्रेमचन्द ने एक विशाल राष्ट्र के सामाजिक बन्धनों को तोडने का परिश्रम किया है । 'वस्तुतः सेवासदन प्रेमचन्द के यथार्थवादी उपन्यास कथाओं का वह पहला कदम है जहां से प्रेमचन्द अपने समाज के सत्य को प्रकाशित करने का मंच प्राप्त करते हैं । सेवासदन में सुमन का चरित्र उपन्यास कथा को नायिका की ही सिद्ध नहीं करता, अपितु वह संघर्ष की पहली भूमिका निबाहने में नारी या नायिका के उस कर्म की स्थापना भी करता है जिसके मूल में आज़ादी की लडाई की भूमिका निहित है ।[1] पद्मसिंह के द्वारा सहानुभूति प्रकट करते समय सुमन के कथन में भी मुक्ति की कामना की शब्द मुखरित है - 'अपने घर से निकालकर आपने मुझ पर बडी कृपा की, मेरा जीवन सुधार दिया'[2] - एक संघर्षशील युवती की मुक्ति की संतुष्टि का प्रकाशन ।

<u>निर्मला</u> : सन् 1923 में प्रकाशित यह प्रेमचन्द का पहला दुखान्त उपन्यास है । कुछ आलोचकों[3] के अनुसार यह उपन्यास हिन्दी का पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । अनमेल

---

1 गंगाप्रसाद विमल प्रेमचन्द आज के सन्दर्भ में - पृ. 129

2 सेवासदन पृ. 81

विवाह की समस्या को लेकर लिखा गया उपन्यास भी कहा गया है । लेकिन हमारा ध्येय 'निर्मला' के चरित्र चित्रण में लेखक ने कौन सा दृष्टिकोण अपनाया है और निर्मला का कैसा अस्तित्व है, यह देखना है ।

वस्तुतः 'निर्मला' की निर्मला एवं सेवासदन की सुमन में अधिकाधिक समानता है । दोनों में सामाजिक बन्धनों के विरुद्ध शब्द उठाने का आग्रह प्रबल है । लेकिन 'निर्मला' का औपन्यासिक फलक संकुचित है । अतः इसमें मानसिक संघर्ष पर ज्यादा बल दिया गया है । सेवासदन का कथाफलक ज़रा विस्तृत है इसलिए समस्याओं का चित्रण सामाजिक परिवेश में अधिक रंग डाल सका है ।

प्रथम महायुद्ध के बाद भारत की स्थिति यह रही कि मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक स्थिति इतनी बिगड गई कि इन परिवारों का कोई अस्तित्व न रह गया । एक ओर इनकी आर्थिक स्थिति से ये घुटते जा रहे थे दूसरी ओर अपनी सामाजिक रूढियों से बन्ध कर नाशोन्मुख होते जा रहे थे ।

मज़बूरियों की एक ऐसी स्थिति में निर्मला की शादी चालीस वर्ष के तोताराम के साथ संपन्न होती है जो वय में निर्मला के लिए पिता समान है । चालीस बरस का, अधेड उम्र का तोताराम अपनी छोटी नवोढा को खुश रखना चाहता है । जवान का सा बर्ताव करता है वह इसलिए निर्मला को खुश रखना चाहता है कि वह वय में बहुत छोटी थी । इससे बढ़कर तोताराम का बडा लडका निर्मला का समवयस्क ठहरता था । इसलिए स्वाभाविक रूप से वासनाग्रस्त तोताराम अपनी यौवन युक्त पत्नी के सामने अपना पौरुष प्रकट करना चाहता था । लेकिन वह हमेशा निर्मला को खुश रखने में असमर्थ निकलता था, क्यों कि इसका कदाचित यह कारण था, कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उस का पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी, अब उसकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था - वही बातें जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मूंह से निकलकर उसके हृदय पर शर के समान आघात करती थी .... वह अपना रूप और यौवन उन्हें दिखाना नहीं चाहती थी, क्योंकि वहां देखनेवाली आंखें न थी[1] ।

---

1 प्रेमचन्द - निर्मला - पृ.59-60

प्रेमचन्द की निर्मला अपनी नियति पर रोती है । फिर भी तोताराम के हाँ में हाँ मिलाकर चुप बैठने केलिए तैयार नहीं । इसलिए पति की चापलूसी को घृणा की दृष्टि से देखती है । पिता जैसे आदमी को पति के रूप में मानने को तैयार नहीं होती और वह पति की निकटता से दूर भागना चाहती है । उनके चरित्र की इस नकारात्मक प्रवृत्ति निर्मला का समाज के प्रति एक मौन विद्रोह समझना गलत नहीं होगा । जिस समाज ने दहेज की क के कारण उसे सुखी जीवन प्रदान नहीं किया उसी समाज ने एक बूढे के साथ विवाह करने को मजबूर किया तो उस समाज के सारे नियमों के प्रति विद्रोह भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक है । लेकिन निर्मला के संबन्ध में इस विद्रोह का प्रकट होकर आना असंभव सा दीखता है ।

आर्थिक पराधीनता ने उसके उमडते हुए यौवन को रौंद दिया, उमंगों पर पानी फेर दिया, सपनों को मसोस दिया । एक जवान हृदय की कुंठाएँ तब उत्पन्न होती है । अपने समवयस्क मंसाराम (तोताराम का पुत्र) के साथ उसके प्रेमपूर्ण व्यवहार को देखकर तोताराम के हृदय में वासना एवं ईर्ष्या के कीडे रेंगने लगते हैं । वह मंसाराम को निर्मला से अलग रखने का सारा प्रबन्ध कर लेता है । अपने पति का यह व्यवहार निर्मला के लिए कुठाराघात सा लगता है । परन्तु वह चोट सहने केलिए तैयार रहती है । जब मंसाराम अस्पताल में अपनी अन्तिम घडी गिन रहा था तब निर्मला वहाँ निडर होकर जाती है जहाँ जाने का अधिकार उसे नहीं दिया गया था । इसलिए तोताराम आग बबूला होकर पूछता है - तुम यहाँ क्या करने आयी ? निर्मला उत्तर में सिर्फ इतना कह देती है - आप यहाँ क्या करने आए हैं ? मंसाराम की मृत्यु से उसके हृदय को अत्यधिक चोट लगती है और वह बाद में बाकी दोनों बेटों से कर्कश व्यवहार करती है । यह कर्कशता निर्मला की चोट खाई व्रणित हृदय का परिणाम है ।

दोनों लडकों के लापता होने से तोताराम बाहर चला जाता है । यहाँ से लेकर निर्मला का जीवन दुःखमय हो जाता है । एक पूर्ण ट्रेजडी का आरंभ यहाँ से आरंभ होता है । सुधा के पति के व्यवहार के साथ वह अपने को हमेशा केलिए नष्ट समझती है ।

नारी का व्रणित हृदय, आदर और प्यार से वंचित होकर एक ओर विद्रोह कर उठता है । जब नारी विद्रोह करने में असफल पाती है तब अन्तर्मुखी होकर अपने आप सिकुडकर रह जाती है । ट्रेजडी का पात्र बन जाती है । और यह ट्रेजडी प्रेमचन्द का समाज

के प्रति एक तीखा व्यंग्य है इसलिए तो उपन्यास का अन्तिम वाक्य अत्यन्त मर्मस्पर्शी हो उठा है – जिस समय लोग निर्मला की लाश बाहर निकालते है और इस पसो-पेश मे होते है कि इसका दाह कौन करेगा, उसी समय एक बूढा पथिक एक   लटकाए आकार खडा हो गया । यही मुंशी तोताराम थे ।[1]

गबन   रमानाथ - सन् 1930 में प्रकाशित इस उपन्यास में एक ओर नारी वर्ग की समस्या है तो दूसरी ओर किसान वर्ग की समस्या है लेकिन इससे बढकर उपन्यास में उभरकर आनेवाली समस्या मध्यवित्त वर्ग की समस्या है । यद्यपि जाल्पा के आभूषण प्रेम और उससे सम्बद्ध कार्यों से होकर कथानक आगे अग्रसर होता है फिर इसी आभूषण प्रेम की समस्या के रूप में मानना असंगत लगता है । मध्यवित्त वर्ग की सफलताओं, असफलताओं, आकांक्षाओं एवं पतन की कहानी गबन प्रस्तुत करती है । रमानाथ इसी मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है ।

रमानाथ के चरित्र की सबसे बडी विशेषता है कि उसे अपने बारे में बढा - चढाकर कहने की लत सी लग गई थी । इसलिए वह अपनी नवोढा पत्नी से झूठ बोलने के लिए हिचकता नहीं । जाल्पा के प्रिय आभूषण चन्द्रहार चुराकर सर्राफ को वापस कर देता है । सरकारी रकम गबन करके भाग निकलता है । यहाँ से कथावस्तु नया मोड लेती है । गबन करके भागने वाले रमानाथ को दिखाकर प्रेमचन्द एक अपूर्ण एवं अस्थिर वृत्तिवाले मध्यवर्गीय युवक का परिचय देता है ।

इलाहाबाद से वह कलकत्ता भाग निकलता है और देवीदीन नामक व्यक्ति के यहाँ रहने लगता है । वहीं से वह पकड लिया जाता है । लेकिन गबन का रकम अदा करने की वजह से उसे किसी सरकारी कार्रवाई केलिए गवाही बना लेता है । इसकेलिए सरकार अपनी ओर से रमानाथ केलिए सारी सुविधाओं का प्रबन्ध करती है । इन सुख सुविधाओं के चक्कर में वह गरीब एवं निरीह लोगों के विरुद्ध बयान देता है । इसी बीच वह जोहरा नामक एक वेश्या को भी दिल दे बैठता है । रमानाथ के चरित्र का यह दूसरा पतन है । लेकिन पतन के गर्त में डूबने के पहले जाल्पा उसके उद्धार के लिए आ जाती है । जाल्पा के उकसाने पर रमानाथ जज के सामने सारी बातें खुलकर बता देता है और अपने किए पर पछताता भी है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 प्रेमचन्द – निर्मला - पृ.207

अस्थिर चित्त वाले रमानाथ के चरित्र को 'अबनारमल' तो नहीं कहा जा सकता । वह मध्यवर्गीय झूठी आकांक्षाओं एवं असफलताओं का मूर्त रूप है । कहा जा सकता है कि उसके चरित्र की यह विशेषता, उसे विरासत से मिली है । रमानाथ का पिता भी जाल्पा के गहनों का चुराने में बेटे की मदद पहुंचाती है ।

प्रेमचन्द ने आदि से अन्त तक रमानाथ के चरित्र को उसकी पूर्णता के साथ चित्रित किया है । पूर्णता को सचाई के साथ निबाहने के कारण उसमें आलोच्य वर्ग का घृणास्पद चि: ही व्यंजित होता है । जिस वर्ग से राष्ट्र की उन्नति की संभावना थी वही पतन के अगाध में गिरता दृष्टिगत होता है । इसलिए देवीदीन रमानाथ से पहले अपने उद्धार करने को उपदेश देता है । रमानाथ का चरित्रचित्रण मात्र एक व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि मध्यवित्त वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में किया गया है ।

जालपा - गबन का मुख्य स्त्री पात्र है जाल्पा और वही इस उपन्यास का मुख्य कथापात्र भी है एक स्त्री होने पर भी उसमें रमानाथ से बढकर आत्म सम्मान है । उसका व्यक्तित्व रमानाथ के व्यक्तित्व की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी है और वह राष्ट्र के जागरण के प्रति सचेत है । इसलि वह रमानाथ का हर एक काम आश्चर्य की दृष्टि से देखती है क्योंकि वे सब उसके व्यक्तित्व के विपरीत है ।

रमानाथ की तुलना में जालपा का चरित्र उज्वल है यद्यपि जाल्पा में आभूषण के प्रति अधिक मोह है फिर भी वह उसके लिए अधिक चिंतित तो नहीं दीखती । जालपा के हृदय में आभूषण के प्रति वह मोह उसके बचपन से ही बना रहा था । वह एक ऐसी परिस्थिति में पली थी 'जालपा को गहनों से जितना प्रेम था, उतना कदाचित् संसार की और किसी वस्तु से न था, और उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी ? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी उस वक्त उसके लिए सोने के चूडे बनवाए थे । दादी जब उस गोद में खिलाने लगती त गहनों की चर्चा किया करती । तेरा दूल्हा तेरे लिए बडे सुन्दर गहने लाएगा । ठुमक ठुमक कर चलेगी'[1] ।

---

1 प्रेमचन्द - गबन (29वां संस्करण) पृ. 26

रमानाथ और जाल्पा के जीवन प्रारंभ के दिन सुख से ही बीते । लेकिन बाद में जाल्पा पहचानने लगती है कि रमानाथ का प्यार एक हदतक वासनात्मक ही है । इसलिए व कभी-कभी इससे अलग रहना चाहती है । वह अपने आन्तरिक विक्षोभ की बातें सहेलियों को लिख भेजती है । लेकिन खत रमानाथ के हाथ में देने के बाद वह अपने कार्य पर पछताती है और खत वापस मांगती है । यहीं से हमें उसके चरित्र के विकास का पता चलता है । अपनी मां के दूवारा चन्द्रहार भिजवाने पर वह उसे स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं होती । उसे स्वीकार करना वह अपने आत्मसम्मान के विरुद्ध मानती है । वह कहती है 'मैं किसी का दान न लूंगी, चाहे वह माता ही क्यों न हो ? अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को वह खुलकर बता देती है ।

जाल्पा के चरित्र में पूर्णता है । वह मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधि नहीं । उसमें एक आधुनिक नारी की सारी विशेषताएँ विद्यमान है । रमानाथ के बयान से क्रान्तिकारियों को सजा देने की बात सुनकर वह अपने पति से कहना चाहती है - 'तुम्हारा धन तुम्हें मुबारक हो, जाल्पा उसे पैरों ठुकराती है । तुम्हारे खून से रंगे हुए हाथ के स्पर्श से मेरी देह में छा पड जायेंगे । जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी, उसे मैं मनुष्य नहीं समझती । तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु नहीं हो, कायर हो कायर[1] ।

जाल्पा की देश भक्ति प्रशंसनीय है । अपने पति की कुबुद्धि से जिस घर का नुकसान होता है उस क्रान्तिकारी की मां की और पत्नी की वह सेवा करती है और अपने पति की करतूत पर लज्जा अनुभव करती है । उपन्यास के अन्त तक आते आते वह एक वीर वनित का रूप धारण करती है - वह पति के सामने कहती है - तुम भी तो आदमी हो, तुम क्यों धमकी में आ गए । क्यों नहीं दिल खोलकर खडे हो गए कि इसे गोली का निशाना बना लो पर मैं झूठ न बोलूंगा, क्यों सिर झुका दिया ? देह के भीतर इसलिए आत्मा रखी गई है कि देह इसकी रक्षा करे । इसलिए नहीं कि उसका सर्वनाश करे[2] । इस कथन में जालपा के आत्म सम्मान की भावना अभिव्यक्त होती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 प्रेमचन्द - गबन - पृ. 276

2 वही पृ. 276

उसके मुंह से ऐसे शब्द सुनवाकर प्रेमचन्द ने नारीवर्ग को जागृत करने का आह्वान दिया। एक नयी शक्ति एवं उमंग को प्रोद्घाटित करने का भी आह्वान जाल्पा के चरित्र में छिपा हुआ है। रमानाथ और जाल्पा का चरित्र दो भिन्न कूलों को स्पर्श करता है। रमानाथ जिस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, वह पतनोन्मुख है और जाल्पा उसी वर्ग की होते हुए भी उसमें वह पतनोन्मुखता नहीं मिलती।

इस उपन्यास में देवीदीन भी ऐसा एक पात्र है जो निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। अंग्रेज़ी के राजनीति की कुदृष्टि ने उनके दोनों बेटों को ग्रस्त लिया। लेकिन वह निराशा के भंवर में जीना नहीं चाहता। मौन को तुच्छ मानता है। लेखक के असली जीवन दर्शन का परिचय देवीदीन के चरित्र के माध्यम से मिलता है। प्रेमचन्द एक ऐसी पीढी की आवश्यकता समझते हैं जिसके जरिए राष्ट्र का पुनःनिर्माण संभव हो - यह देवीदीन की इच्छा।

गबन में पहले पहल प्रेमचन्द ने राजनैतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि में कथानक को विकसित करने का प्रयास किया है।

<u>रंगभूमि —— सूरदास</u> - रंगभूमि का कथाफलक बहुत विस्तृत है। इसके जरिए प्रेमचन्द ने अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। सूरदास की कहानी के साथ इसमें विनय - सोफिया की कहानी ~~के साथ इसमें विनय~~ और पाण्डेपुर के बस्तीवालों की कहानी, अंग्रेज़ों का प्रतिनिधि बन कर आनेवाले मिस्टर जान सेवक की कहानी आदि है। इन सब की रंगभूमि होने पर भी प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा सूरदास की कथा के ईद गिर्द घूमती है। अतः रंगभूमि के विशाल कथाफलक की धुरी सूरदास ही है।

रंगभूमि में आर्थिक-सामाजिक स्तरों पर पूंजीवादी सत्ता के फैलते प्रभाव की कथा कही गई है तथा पूंजीवादी सत्ता से लडते हुए स्वाधीनता की कामना करने वाले भारतीय जन मानस के आग्रह भी इसके साथ जुटे हुए हैं। 1920-30 के बीच घटित कृषक आन्दोलनों तथा अन्य आन्दोलनों के राजनैतिक इतिहास की झलक रंगभूमि में मिलती है[1]।

- -

1 गंगाप्रसाद विमल - प्रेमचन्द आज के सन्दर्भ में - पृ. 136

अपने पुरखो की यादगार के रुप मे बची हुई ज़मीन अंधा और भिखारी सूरदास अंग्रेज़ी हाकीमों के प्रतिनिधि जानसेवक को देना नही चाहता । लेकिन जानसेवक उसे हडप लेना चाहता है । इस के लिए वह महेन्द्रसिंह और कलार्क आदि की सहायता भी ढूंढ लेता है ।

जान सेवक समाज के निम्नश्रेणी मे रहने वाले लोगो मे प्रभुत्व जमाना चाहता है । वह एक ऐसा आदमी है जो भारत को उजाडकर अपना लाभ उठाना चाहता है । उसकी यही चाह थी कि भारत के लोग जानवरो की तरह जिए, अपनी शक्ति का उन्हें पता न चले ।

औद्योगिक क्रान्ति का चित्र दिखाकर भारत के लोगो को लूटने की प्रथा अंग्रेज़ी ने कायम रखी । समाज की निम्नतम श्रेणी के लोगो के बीच मे आपसी मे झगडो के बीज बोकर ये लोग अपना काम बनाते थे । गांधीजी ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठायी और वे लोगो को एकता के सूत्र मे बांधना चाहते थे । यही भावना प्रेमचन्द की भी है । इसकेलिए उन्होंने सूरदास जैसे अन्धे भिखारी की परिकल्पना की और उसके द्वारा समाज के निम्नतम श्रेणी के लोगो को जगाया इसलिए वे लोग सिगरेट के कारखाना बनाना के विरुद्ध हैं । सूरदास की संगठन शक्ति एवं आत्मबल सचमुच सराहनीय है । इसलिए क्लार्क जैसे व्यक्ति भी डरने लगता है । सूरदास के जनता के हृदय पर शासन करने की क्षमता थी और इसलिए अकिंचन होते हुए भी लोग उससे डरते हैं ।

सूरदास की कल्पना करके प्रेमचन्द ने भारतवासियो को पूंजीवाद के फैलते प्र भाव के विरुद्ध लडने का आह्वान दिया है । भारतीय स्वतंत्रता का अर्थ था, एक ओर विदेशी साम्राज्यवादी लोगो से मुक्ति और दूसरी ओर देशी पूंजीपतियो का सर्वनाश । विदेशी साम्राज्यवाद तथा देशी पूंजीवाद दोनो से लडने का आग्रह भी प्रेमचन्द के उपन्यास मे विद्यमान है । इसकेलिए सुदृढ एकता और अचंचल आत्मबल ज़रूरी है । अपने आदर्श की अभिव्यक्ति केलिए उन्हों ने एक विस्तृत कथाफलक का निर्माण किया, सूरदास को केन्द्र बिन्दु बनाकर । फिर भी अन्त में सूरदास की हार हुई समाज मे एकता का अभाव था, आपसी झगडा थी । यह पराजय भारतीय इतिहास के सन्दर्भ मे घटित उन्ही पराजयो की ही स्थिति है जो सन् 20-30 की वास्तविक स्थिति की ओर संकेत करती है ।

रंगभूमि के औपन्यासिक परिवेश में गांधीवादी दृष्टिकोण का प्रभाव है । अपनी सत्ता को बनाए रखने केलिए क्रान्ति के जिस मार्ग को अपनाया गया है वह गांधीवादी दर्शन के अनुकूल ठहरता है । अपनी बलि देकर भी अपनी विचार धारा पर स्थिर रहनेवाले सूरदास की शक्ति इसी दर्शन से सम्पृक्त है ।

सूरदास के अलावा इसके दो मुख्य कथापात्र है, सोफिया और विनय जो अपने प्रेम केलिए प्रसिद्ध है । दोनों आदर्श प्रेमी हैं । वैभव एवं सुख की कमी न होने पर भी वे सेवा को अपना ध्येय समझते है । लेकिन एक बात स्मरणीय है कि जिस विस्तृत कथाफलक को प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में दिखाना चाहा और जिस जीवन दर्शन को प्रतिफलित करना चाह उसका माध्यम सिर्फ सूरदास है । सूरदास की वजह से यह सब संपन्न भी हुआ है । लेकिन सोफिया और विनय के चरित्रोद्घाटन के द्वारा उपन्यास में एक स्वाभाविक संवेदना लाने का व हुआ है । उपन्यासकार की सहानुभूति सोफिया पर होने के कारण अन्त में विनय का चरित्र घृणास्पद लगता है । प्रेमोन्माद में आकर जनता के प्रति विद्रोह करने का कार्य करने से सोफिया और विनय के प्रेम में दरारें पड जाती है । सोफिया का कथन दृष्टव्य है - 'मैं ने तुम्हारी प्रभुशीलता पर अपने को समर्पित नहीं किया था । बल्कि तुम्हारी सेवा, सहानुभूति और देशानुराग पर । मैं ने इसलिए तुम्हें अपना उपास्यदेव बनाया था कि तुम्हारे जीवन का आदर्श उच्च था ।[1] सोफिया की विचार धारा गांधीवादी जीवन दर्शन के बहुत समीप है ।

<u>गोदान</u> - शहर एवं गांव के जीवन का एक साथ वर्णन प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्राप्त होता है । लेकिन गोदान का बीज और विकास गांव के किसान जीवन के परिपार्श्व को स्पर्श करता है । प्रेमचन्द की रंग रंग में गांव के जीवन, वहां के लोग, वहां के पेड़-पौधे, वहां के खलिहान आदि की स्मृतियां समाई हुई हैं । जिस सूक्ष्मता के साथ उन्होंने जीवन को परखा इसका सुन्दर उदाहरण है गोदान और वह उनकी औपन्यासिक उपलब्धि की चरम सीमा है

होरी और धनिया के परिवार के चारों तरफ मुख्य कथा का परिवेश स्थित है । इसमें बहुत से ऐसे पात्र है जिनको आने वाले युग की बातों के बारे में कहने केलिए बहुत कुछ था

---

1 प्रेमचन्द - रंगभूमि (वर्तमान संस्करण 1976) पृ. 349

वैचारिक आधारों पर गोदान सामन्तवादी परिवेश में नए पूंजीवादी यानी साम्राज्यवादी शासक द्वारा शोषित किसान की कथा पर आधारित है । किन्तु मानवीय आधारों पर यह व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष, स्नेह आत्मीय और रागात्मक संबन्धों का एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसके भीतर मनुष्य के विविध रूपों की अनेक कथाएं चलती है ।[1]

होरी की परिकल्पना प्रेमचन्द के अनुभव प्रसूत अनुभूति एवं सूक्ष्मदर्शिता की परिचायक है । बचपन से लेकर वे ऐसे किसानों को देखते आये थे, और उनके जीवन से परिचित भी थे । उनकी विभिन्न समस्याओं का उन्होंने अध्ययन भी किया था । होरी से मिलते जुलते पात्र उनकी कहानियों में भी प्राप्त होते हैं । अतः ऐसे किसानों में होरी भी ऐसा एक किसान था । इसलिए रायसाहब जैसे जमीन्दार की झूठी मज़बूरी की कथा सुनकर वह भी दुख प्रकट करता है - 'हम समझते है ऐसो ऐसी बातें हमी लोगों में होती है, पर जान पड़ता है बडे आदमियों में उनकी कमी नहीं ।[2] होरी के भोलापन का परिचय इन्हीं शब्दों में है 'हम लोग समझते है बडे आदमी बहुत सुखी होंगे, लेकिन सच पूछो तो वह हम से ज़्यादा दुःखी है । हमें अपने पेट की चिन्ता है, उन्हें हज़ारों चिन्ताएं घेरे रहती हैं[3] । इस पर होरी का पुत्र व्यंग्य करता है । लेकिन होरी पूर्वजन्म के भाग्य की बात पर अटल विश्वास करता है । उनके चरित्र का यह अंश उनके हर व्यवहार में प्रकट होता है और लगता है कि कुछ अतिरंजना आ गई है लेकिन यह अतिरंजना स्वाभाविकता का एक नया आभास मात्र है ।

किसान होरी का मज़दूर बनना एक इतिहास है । उस इतिहास की पृष्ठभूमि में भारतीय किसान की करुण-गाथा भी गूंथ दी गई है । प्रेमचन्द ने इतिहास के उन पृष्ठों में कर्ज की समस्या, ब्रिटीश शासन के सत्ताधारी शोषण की समस्या आदि को भी जोड दिया है होरी की कहानी सिर्फ एक होरी नामक किसान की कहानी न होकर भारतीय किसान की समूची कहानी है ।

धनिया होरी की पत्नी है । लेकिन उसमें होरी से बढ़कर परिस्थिति की सत्यता को पकड़ने की क्षमता अद्भुत है । लेकिन वह अपने पति के विरुद्ध एक पग भी आगे न रखती। गोबर द्वारा ब्याही हुई पत्नी का, अपने बेटे द्वारा कलंकित एक स्त्री को घर से मार भगाने

1 गंगा प्रसाद विमल - प्रेमचन्द आज के सन्दर्भ में - पृ.148

की शक्ति उसमें नही है । माता का हृदय उसे झुनिया को अपनाने केलिए मजबूर करता है

धनिया मातादीन की खेल चमारिन को अपने घर मे रहने की अनुमति देती है । यह समाज के झूठे नकाबो को उठाने का क्रान्तिकारी प्रयत्न है । इस विद्रोह मे एक ओर स्त्री सहज आत्म बलिदान है और दूसरी ओर मानवीय अनुभूतियो को परखने की क्षमता है । लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी बेटे दूवारा अपनी उपेक्षा देखकर उसका हृदय वृणित हो जाता है लेकिन वह अपने दुःख को अपने आप समेट लेती है । होरी की सी सहनशीलता, उचा विचार, आत्मसम्मान की भावना आदि धनिया के चरित्र के प्रबल अंश है । वह होरी की सच्ची चिरसंगिनी बनकर अपने जीवन साथी की मृत्यु का साक्षी बन रह जाती है ।

गोदान के पात्रों मे मेहता का स्थान भी उल्लेखनीय है । उसके मूह से हमेशा फिलोसफी की बाते ही निकलती है । (वस्तुतः वह फिलोसफी का प्रोफेसर है) लेकिन उस फिलोसफी मे प्रेमचन्द के जीवन दर्शन के कुछ अंश निहित है । डा.रामविलास शर्मा का कथन उद्धरणीय है - 'गोदान के किसी एक पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता, लेकिन मेहता से होरी को जोडा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत कुछ प्रेमचन्द से मिलता - जुलता होगा । मेहता को उन्होने अपने विचार दिये है तो होरी को बराबर परिश्रम करने की दृढ इच्छा शक्ति[1] । इसलिए वह राय साहब के भंडा फोडने का प्रयास करते हुए व्यक्त करता है - 'मानता हू आपके आसामियो के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नही । इसका एक कारण क्या यह नही हो सकता कि मदि्धम आंच मे भोजन स्वादिष्ट पकता है । गुड से मारनेवाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कही सफल हो सकता है । मै तो इतना जानना चाहता हू हम या तो साम्यवादी या नही है । है तो उसका व्यवहार करे, नही है तो बकना छोड दे[2] । मक्कारी का जीवन बिताते हुए सेवा का स्वांग भरना प्रेमचन्द के लिए पसन्द की बात नही है ।

मेहता और मालती के बीच मे पहले विशेष प्रकार का कोई हार्दिक संबन्ध नही है, लेकिन जिस जीवन दृष्टि को मेहता अन्त मे अपनाता है उसे मालती भी अपनाती है । जो एक बार पर्वतीय बाला से ईर्ष्या करती है वही अन्त मे गोबर के बेटे का चेचक निकलने पर रात भर जागती रहती है ।

- -

1 डा.रामविलास शर्मा प्रेमचन्द और उनका युग - पृ.111

कथानक के विकास मे गोबर का कोई महत्वपूर्ण योगदान नही है। मगर उसमे पूर्णता है। प्रेमचन्द ने गोबर के द्वारा नवयुवको मे उदित क्रान्ति को उजागर करने का प्रयत्न किया है। गोबर का हाड और मास नई चेतना से पोषित है अतः वह ऐसा पीडित वातावरण पसन्द नही करता। राय साहब का आसामी बनना वह उतनी महत्व पूर्ण बात नही समझता, बल्कि उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की हिम्मत भी वह रखता है। उसमे जीने की लालसा है। दमित और सडे हुई सामाजिक व्यवस्था से मुक्त होकर स्वतंत्रता की स्वच्छ वायु मे सास लेने के विचार से वह शहर की ओर जाता है। यदि पत्नी झुनिया को अपने घर के द्वार छोडकर वह जाता है, फिर भी उसे विश्वास है उसकी मा झुनिया को स्वीकार करेगी शहर से होकर आने पर उनमे महत्वाकांक्षा और विश्वास ज्यादा हो गया। इसलिए वह मंगरूराम से झगडा मोल लेने केलिए भी तैयार होता और अधिकार के साथ कहता है। मै अदालत मे तुम से गंगाजली उठाकर रुपये दूगा, 1

रायसाहब इस उपन्यास का एक विशेष पात्र है जिसके दो रूप है - एक ओर वे अपने आसामियो का मददगार है लेकिन एक सामन्तवादी पूंजीपति के समूचे लक्षण रायसाहब मे निहित है। रायसाहब अपना भाईचारा दिखाकर होरी जैसे किसानो को अपने जाल मे फसा देता है। अपनी मजबूरियो की एक लंबी सूची होरी के सामने प्रस्तुत करता है। सीधा - सादा होरी राय साहब की बातो पर विश्वास करता है। वे मालती जैसी औरत के बर्ताव की आदर की दृष्टि से देखते है। लेकिन अपने बेटे की शादी उसकी बहिन से करना नही चाहते। ब्रिटीश कालीन सामन्त का सच्चा रुप रायसाहब मे लक्षित होता है।

गोदान के जितने ही पात्र है वे सब प्रेमचन्द के अन्य औपन्यासिक पात्रो की तुलना मे अधिक स्वतंत्र अस्तित्व रखनेवाले है जैसे इसके छोटे-छोटे पात्र-झुनिया, सोनिया, रायसाहब का रुद्र पाल सिंह आदि अपने अपने छोटे हिस्से मे चमकता हुआ प्रतीत होता है।

जहा इतिहास राजनीतिक बातो का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है वहा सामाजिक जीवन का जिक्र कम करता है। लेकिन प्रेमचन्द का गोदान इतिहास की इस कमी की पूर्ति करता इसलिए लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने गोदान को औपन्यासिक परंपरा की प्रथम चरमोपलब्धि कहा है

- -

1 प्रेमचन्द - गोदान - पृ 227

वे लिखते है - हिन्दी की 1936 तक की औपन्यासिक परंपरा और ब्रिटीश कालीन भारतीय जी की गति-विधि के सन्दर्भ मे देखने के कारण है । उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे अपने आविर्भाव काल मे 1936 तक हिन्दी उपन्यास ने जो रुप धारण किये, इन सब की चरमोपलि है[1] ।

गोदान की ट्रैजडी के अन्तस्थल मे एक क्रान्ति का स्फुलिंग छिपा हुआ है । होरी का निधन उसी क्रान्ति को उद्घाटित करने मे सहायक हुआ । देशव्यापी क्रान्ति की तैयारी इस ट्रेजेडि मे है । यह ट्रैजडी सपनो के टूटने की ट्रैजडी है । लेकिन सपनो के नए जाल बुनने की, नई आकांक्षाओ को पनपने की पृष्ठ भूमि इसी ट्रैजडी ने तैयार [illegible] की थी ।

<u>प्रेमचन्द के औपन्यासिक शिल्प</u> - प्रेमचन्द ने उपन्यास के क्षेत्र मे एक नये शिल्प का आविष्क किया । यह शिल्प नई संवेदनाओ से सम्पृक्त है, नये आयामो की खोज का शिल्प है । इ शिल्प मे समाज का विस्तृत आंगन है, मध्यवर्गीय समाज के सुख-दुःख की कहानी है, निरीह किसानो एवं प्रपीडित नारियो के आंसू है । शैलीगत नवीनता प्रदान करने के साथ उन्होने प्रथम स्थान एक ऐसे वर्ग को दिया जिसका जिक्र साहित्य मे वर्ज्य था ।

कलाकार इसलिए शिल्पगत नवीनता के पथ पर अग्रसर होते है कि उनका व्यक्तित्व सामान्य स्तर का नही होता, उनका दृष्टिकोण साधारण न होकर विशेष होता है । युगीन परिस्थितियो का प्रभाव सबो पर पडना स्वाभाविक है । उसे नए दृष्टिकोण से परखकर अपनी रचना मे उजागर करना महान कलाकारो का काम है ।

यह बात सर्वविदित है प्रेमचन्द के उपन्यास विभिन्न समस्याओ की अभिव्यक्ति करते है उन्होने समस्याओ को इसी लिए सर्व प्रथम स्थान दिया कि वे स्वयं एक ऐसे समाज के पात्र थे जिसमे ज्वलन्त समस्याओ का अन्त नही था । प्रेमचन्द ने इन समस्याओ को निकटता से देखा था । जीवन को भावुकता पूर्ण दृष्टि से देखने का आग्रह प्रेमचन्द मे बहुत कम था । इसलिए उन्होने ऐसे नये पात्रो को जन्म दिया, जो उनके अपने थे और वे पात्र साहित्य मे नये आयाम के वक्ता थे । उदाहरणार्थ सेवासदन की सुमन के शब्द दृष्टव्य है - एक बार

---

1. डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ (1970) पृ. 25

मे सेठ चिम्मनलाल के ठाकुर दूवारे मे झूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खडी भीगती रही, किसी ने भीतर जाने न दिया, लेकिन उसी ठाकुर दूवारे मे मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़त था मानो मेरे चरणो से वह मन्दिर पवित्र हो गया[1]। यह उस विद्रोह की भभकती आग है, जिसमे वेश्या बनने का आग्रह नही बल्कि एक संतप्त नारी की अवहेलना के विरुद्ध उसके अस्तित्व की भूमिका सजाने की व्यग्रता है । आर्थिक पराधीनता से हमारा समाज इस तरह पिसा हुआ है कि साधारण परिवार के लोगो की पूछ ताछ नही है । जो पतनोन्मुख रास्तो पर गिडगिडा रहे है । विशेषकर नारी का स्थान इतना निम्नतम है कि वह अपने अस्तित्व एवं आज़ादी की खोज मे मग्न है । एक ऐसा युग था जब नारी अपने लिए नही सोच सकती थी, वह दूसरो केलिए सोचने को मज़बूर थी । लेकिन प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास मे सब से पहले नारी को अपने अस्तित्व के प्रति सजग किया । इस भूमिका मे एक नये आयाम का अन्वेषण हुआ, साथ ही साथ एक नये शिल्प का आविष्कार हुआ ।

प्रेमचन्द के शिल्प का दूसरा संचरण वर्गीय चेतना का विकास है । इस चेतना को उन्होने प्रेमाश्रम के बलराज और गोदान के गोबर आदि के माध्यम से व्यक्त किया है । एक सीमित दायरे के भीतर सिकुडकर पुरानी परंपरा के अधीन होकर किसी पूंजीवादी संस्था के रौंदते हुए पैर के नीचे दबने वाले उस वर्ग को पहले पहले उन्होने नये रूप से नयी उमंग से अपने उपन्यास मे स्थान दिया । इसे एक देशव्यापी क्रान्ति का सूचक समझना चाहिए । परंपरागत संस्था के विरुद्ध विद्रोह की अग्निज्वाला को फूंककर भभकाने की उनकी शक्ति ने उनके उपन्यासो मे एक नया रंग चढाया । गोदान का पात्र गोबर का कथन देखिए – 'यहॉ जिसके हाथ मे लाठी है वह गरीबो को कुचलकर बडा आदमी बन जाता है । किसानो के बल पर, पाप के पैसे जमा करते है[2]। यहॉ गोबर उस वर्ग का प्रतिनिधि बन कर आया है, जिनके हृदय मे नये सामाजिक व्यवस्था को रुपायित करने की अतीव इच्छा है जिसकेलिए विद्रोह की ज़रूरत है, संगठन की आवश्यकता है । इसी दूर दर्शिता को प्रेमचन्द ने अपने अन्तिम पूर्ण उपन्यास गोदान मे प्रतिफलित किया । इसी दूरदर्शिता ही उनके शिल्पगत आयाम का दूसरा सोपान है ।

इन्ही नये आयामो के सुधारक खुद प्रेमचन्द थे । मात्र शाब्दिक सहानुभूति या शाब्दिक क्रान्ति का वे प्रचारक नही थे । परन्तु स्वयं उन्होने उसी प्रकार के जीवन बिताये थे । इसलिए

- -

1 सेवासदन - पृ.63-64

जो नवीनता उनके शिल्प मे दिखाई पड़ती है वह उनके जीवन प्रसूत अनुभव पर आधारित है

<u>तीसरा सोपान</u> <u>एक सामान्य परिचय</u> इन परिछेद के अन्तर्गत उन तथा कथि मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के अध्ययन पर जोर दिया गया है । प्रेमचन्द के उपन्यासो मे समाज का जो विशाल रूप लक्षित होता है वैसा अन्य उपन्यासकारो के उपन्यास मे नही है । इसलिए दूसरे सोपान के अन्तर्गत युगान्तकारी उपन्यासकार प्रेमचन्द के उपन्यासो को ही मात्र आलोच्य ब गया है । उपन्यास के वस्तुपक्ष को दृष्टि मे रखकर देखा जाए तो प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र, अज्ञेय और जोशी जैसे उपन्यासकार उल्लेखनीय है ।

यूरोप की वैज्ञानिक प्रगति एवं शिक्षा का प्रभाव भारत मे काफी मात्रा मे पड गया था विदेशीय साहित्य का प्रभाव विभिन्न रूपो मे भारतीय साहित्यकारो पर भी पडा । यह बात हि साहित्य केलिए मात्र लागू नही बल्कि समूचे भारतीय साहित्य पर इसका प्रभाव बहुत ही प्रकट था । उपन्यास साहित्य के सन्दर्भ मे उसके विभिन्न स्वरूपो एवं संवेदनाओ के पक्ष मे विदेशी उपन्यासकारो से भारतीय ~~उपन्यासकारों के ...~~ बहुत प्रभावित हुए थे । इन विदेशी उपन्या मे प्रमुख है रोम्यां रोलांड, अलडस हक्सले, डि.एच.लोरेन्स, जेयिम्स जायस वर्जीनिया वूल्फ आि

मनोविज्ञान ने आधुनिक युग मे साहित्य पर अधिक प्रभाव डाला । विशेषकर फ्रायड मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो ने फ्रायड के बाद आनेवाले युग और एडलर के सिद्धान्तो का भी प्रभाव साहित्य मे देखा जा सकता है । लेकिन फ्रायड के यौन सिद्धान्त- सेक्स थीयरीस और अचेतन

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. The human body has many physiological needs, including hunger, thirst, breathing, defection and urination. The process by which such needs are satisfied is relatively uncomplicated : bodily changes lead to specific actions for eleminating the need. The necessity for quick satisfaction of these needs allows little variation of behaviour among individuals. Consequently, the role of these universal, 'tissue needs' in the distinctive shaping of personality is minor. In freudian theory, two forces sex and aggression are siggled out as especially powerful and pervasive urges that operate in complex fashion.
Geralds S Blum. Psychodynamics: The Science of unconsious mental forces (1969) p.3.

मन की व्याख्या (दि सइन्स आफ अणकोनशियस मेंटल फोरसस)[1] स्वप्न सिद्धांत (ड्रीम् थियरीस)[2] आदि का प्रभाव यहाँ की औपन्यासिक रचनाओं की पात्र-दृष्टि में द्रष्टव्य है ।

फ्रायड् के ही शिष्य जुग ने बाद में उनके सिद्धांतों से सहमत न होकर अपने कुछ मौलिक सिद्धांतों की व्याख्या की । उनके अनुसार मनोविज्ञान पूर्णरूप से यौन से संबन्धित नहीं । उन्होंने अवचेतन के बदले क्लेक्टीव अनकासियस्[3] की परिकल्पना की ।

- -

1. ... Three major divisions of personality id, ego and super ego (Primarly it was defined as unconscious, pre-conscious and conscious) were introduced into psycho - analytic theory (Freud-1927) .... The id has been portrayed as the source of psychic energy and is the container of unconscious idea; in Freud's words the id stands for untaimed passions....... It serves as a reservior for libido........ The ego is the executive division of the personality, It's function includes perception, conscious thought, memory, learning, choice, judgement and action ...... The sjper ego, a division of personality specially concerned with moral standards. Genelds S Blum. Psychodynamics ; The Sicence of unconsious mental forces(1969) pp.45

2. Freud conceived of the dream as the royal road to the unconscious and his book. The interpretations of Dreams (1900) provided a major impetus to the psycho-analytic movements. A fair amount of dream content sterm from events of the day, thoughts prior to falling asleep, or even sounds heard while sleeping. Simple association links one idea to the next. But Freud made the insightful discovery that more complicated forces are also at work. Dreams were shown to represent, in disguised fashion, the wishfull filling expression of unconscious, unacceptable thoughts.
Ibid. p.56

3. Collective unconscious : Jungs unconscious is more closely assimilated to conscious fantacy, it doesn't dwell in the in accessible Freudian neither regions; it may expand and aspire to the heights of ecstasy and mystical absorption, though it roots deep in the urges, including the sexual.

Joseph Jastrow - Freud : His dream and sex theories (9th printing 1969) p.89

उन्होने मनुष्य मात्र को दो वर्गों में विभक्त किया (1) अन्तर्मुख (इन्ट्रोवेर्ट)[1] (2) बहिर्मुख (एक्सट्रावेर्ट)[2]

फ्रायड् के शिष्यों में एड्लर का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होने अपने 'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान' (अनलिटिकल सइकोलोजी) में काम्प्लेक्स के बारे में बहुत - कुछ कहा है। विशेषकर उनके इनफीरियोरिटी काम्प्लेक्स थियरी बहुचर्चित है[3]।

- -

1. Introversion means a turning towards of the libido when by a negative relation to objects is expressed. Interest doesnot move towards the object, but recedes towards the subject. every one whose attitude is introverted, thinks, feels and acts in a way that clearly demonstrates that the subject is the chief factor of motivation which the object at most receives only as secondary value. Introversion may possess either a mov in intelectual a move in emotional character, just as it canbe characterised by either intitution or sensation.
C.J. Jung - Psycholdgical types or psychology of individuation Vol.. (Translated by H. Godwin Bayness) (1971) pp.542-6

2. Extraversion means outward turning of libidos with this concept I denote a manifestion .... of subject in the sense of a positive movement of subjective interest towards the object. Every one in the state of extraversion thinks, feels and acts in relation to the subject and moreover in a direct and clearly observable fashion, so that no doubt can exist about his positive dependence upon the subject. In a sense, therefore, extraversion is an out going transference of interest from the subject to object.
Ibid. p.561.

3. Alfred Adler (1917-1927) stressed the view that universal feelings are basic to personality development. A child, because of his size and helplessness inevitabily feels inferior to the adults avoid him....... To releive the feeling of inferiority, the individual unconsciously seeks compensation in the form of power over others.

Gerald. S. Blum. Psycho dynamics the science of unconscious mental forces. pp.13.14.

उपर तीन महान मनोवैज्ञानिकों के प्रसिद्ध सिद्धांतों का उल्लेख हो चुका है । मैंने इसलिए उन सिद्धांतों का संकेत किया कि आगे जिन उपन्यासकारों के उपन्यासों के पात्रों का आ वांछित है उनमें इन्हीं सिद्धांतों का प्रभाव स्पष्टतः पडा है ।

जैनेन्द्रकुमार और उनके प्रमुख औपन्यासिक पात्र - 'परख' - जैनेन्द्र का पहला उपन्यास है सन् 1929 में प्रकाशित हुआ था । इस में प्रेमचन्द के उपन्यास के समान विस्तृत कथाफलक न मिलता, यद्यपि इसका लेखन काल प्रेमचन्द युग ही माना जा सकता है । इस में केवल चार कथापात्र है - कट्टो, सत्यधन, बिहारी और गरिमा ।

बाल विधवा कट्टो के हृदय में सत्यधन के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है । यह स्वाभाविक है कि मानसिक भावनाएं सामाजिक धरातल पर देखी गई है । वह अपने हृदय में से पडी भावनाओं का साक्षात्कार करना चाहती है किन्तु उसमें वह सफल नहीं होती । सत्यधन का प्रेम वास्तविक न होकर मांसल एवं वासनात्मक है । वह गरिमा के साथ बंध जाता है । सत्यधन का विवाह गरिमा से होने के पहले ही कट्टो राह से हट जाती है और वह बिहारी से जाती है ।

विश्लेषणात्मक विधि से सृजित प्रस्तुत उपन्यास में कट्टो का मानसिक खिंचाव सत्यधन की ओर है । लेकिन वह बाल विधवा होने के कारण उसे पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाती । इसलिए वह सत्यधन की राहों में अटक जाना पसन्द नहीं करती । यहां प्रेम का उदात्तिकरण है[1]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. The separate instincts can either remain independent of one anoth or - in what is still an inexplicable manner - can be combined and merged into one another to perform work in common. They are also able to replace one another, so that the satisfaction of one instinct can take the place of the satisfaction of others. The most important vicissitude which an instinct can undergo seems to be sublimation; here both object and aim are changed, so that what was originally a sexual instinct finds satisfaction in some achievement which is no longer sexual, but has a higher social or ethical valuation.

   Freud 'General Psychological theory' (Third printing 1966) p.181

'सुनीता' - जैनेन्द्र का दूसरा उपन्यास है और यह उपन्यास काफी विवादास्पद भी रहा है । सिर्फ तीन पात्रों का चित्रण इस में है खासकर दो पात्रों का चित्रण हुआ है - सुनीता और हरि प्रसन्न, श्रीकान्त एक निमित्त पात्र है । पिछले जीवन में हरिप्रसन्न एक क्रान्तिकारी रहा था । वह श्रीकान्त का मित्र है । श्रीकान्त चाहता है किसी न किसी प्रकार हरिप्रसन्न को सीधे रास्ते पर लाए । श्रीकान्त अपने मित्र की सुविधा की चिन्ता रखता है । सुनीता श्रीकान्त की पत्नी है उसका बराबर ख्याल रखती है, यह लडकी सत्या थी, तो धीरे धीरे इसके निकट आकर मानो उसके प्रसन्नता में योग देती है, हरिप्रसन्न को यह सब शूल सा चुभता है[1] वस्तुतः हरिप्रसन्न को केन्द्र बिन्दु बनाकर कथावस्तु का विकास हुआ है । सुनीता का व्यवहार हरिप्रसन्न के बहुत करीब हो जाता है । लेकिन जिस दिन रात सुनीता हरिप्रसन्न के सामने निरावरण हो जाती है तब हरिप्रसन्न सिर्फ देखता है, अपनाता नहीं ।

हरिप्रसन्न एक असाधारण पात्र है । यौन के क्षेत्र में वह एक विकृत कथा पात्र है विकृत पात्र (पेरवेर्टेड)[2] कई प्रकार के होते है । अपनी काम भावनाओं की तृप्ति स्त्री से न करके अन्य माध्यमों के सहारे करता है - किसी दूसरे की यौन प्रक्रिया को देखने से स्पर्श करने से नग्न रूप देखने से आदि आदि ।

त्यागपत्र - जैनेन्द्र का प्रसिद्ध उपन्यास है । इसमें मृणाल नामक एक लडकी की करुण गाथा अंकित है । इसके सिर्फ मृणाल ही एकमात्र मुख्य कथापात्र है । मृणाल एक मातृहीन लडकी है जो अपने भाई के साथ रहती है । बहुत ही चंचल और बातूनी लडकी है वह । अपने भाई के लडके प्रमोद को वह प्यार करती है । अपनी सहेली के भाई से उसका थोडा सा संबन्ध था । लेकिन भाई उसकी शादी कहीं और कर देता है । वह एकतरह अनमेल विवाह था । इसलिए सफलता नहीं मिलती । पति-पत्नी का मानसिक मुटाव यहां तक आ जाता है कि वह मृणाल को

---

1 सुनीता पृ.24

2 .... Those perverts whose sexual desires aims at the performance of an act which normally is but an introductory preporatory one. They are those who seek gratification in looking and touching, or in watching the other persons most intimate doings; or those who expose parts of their body which should be concealed inthe vague expectation of being rewarded by a similar action or the part of the other

S. Freud - A General introduction to psycho - analysis

बाहर कर देता है । वह मायके चली आती नहीं । एक कोयले वाले के यहां रहती है । गन्
जीवन बिताती है । उसे मालूम था कि एक दिन वह आदमी भी उसे छोडकर जायेगा, जानते
हुए भी वह उस कोयलेवाले को पति से बढकर मानती है ।

मृणाल एक बच्चो को जन्म देती है और आवश्यक सुविधा के अभाव मे बच्चे की मृत्यु
हो जाती है । वह एक डाकुर के यहां पढ़ाने जाती है, जहां से प्रमोद का ब्याह होने वाला ।
लेकिन मृणाल के और प्रमोद के रिस्ते के बारे मे सुनकर रिस्ता टूट जाता है और मृणाल मृत्यु को
अपनाती है ।

चंचल बालिका मृणाल के हृदय मे अपने विवाह की बात एक धक्के के समान लगती
है । जिस ममता और प्यार की उसे ज़ूरत थी, उससे वह वंचित हो जाती है । वहीं से एक
मौन विद्रोह शुरु हो जाता है लेकिन शादी के बाद उसका उग्र रूप ही बाहर आता है । इसलिए
वह अपनी ही राह पर चलती है, यहां तक प्रमोद की बातों को भी नहीं सुनती । मनोविज्ञान
की भाषा मे कहे तो उसका चरित्र एक मसोक्किस्ट[1] चरित्र है ।

<u>इलाचन्द जोशी के कुछ विशिष्ट पात्र</u> इलाचन्द्र जोशी का पहला उपन्यास है 'लज्जा' जो
सन् 1919 मे प्रकाशित हुआ था । लज्जा एक संपन्न परिवार की लडकी है, चंचल एवं मिलनस
यौवनागम के साथ उसका हृदय डा.कन्हैयालाल के प्रति आकर्षित हो जाता है । उससे मिलने उ
की निकटता प्राप्त करने केलिए तडपतीहै । इसी उत्सुकता के कारण वह बीमार पड जाती है
परन्तु बीमारी लज्जा को डाक्टर के अधिक निकट लाने मे सहायक सिद्ध हुई और वह उसे एक
वरदान समझती है ।

डाक्टर के रूप, भाव सब लज्जा के लिए आकर्षक है । राजू, जो लज्जा का भाई है
साधारण घर के लोगों से निकटतम संबन्ध रखता था । वह एक विचारवान व्यक्ति है । अपनी

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Moral Masochism thus becomes the classical piece of evidence for the existence of instinctual fusion. It's dangerousness lies in its' origin in the 'death instinct' and represents that part of the latter which escaped deflection on to the outer world in the form of an instinct of disstruction.

Freud - The General Psychological theory. p.201.

बहिन को भी वह इसी रास्ते मे लाना चाहता है । लेकिन वह असफल ही रहता है । वह राजू के साथ उस घर मे जाती है और वहाँ के लोग लज्जा का इतना आदर-सम्मान देते है फिर भी वह उस यथार्थ को यथार्थ समझने के लिए तैयार नही होती । प्रेमोत्कर्ष मे वह सब कुछ भूलकर एक सपने के रंगमहल मे रहने की सुखद कल्पना करती है । उसका कथन है 'मै अलसाती झूमती और बलखाती हुई अपने कमरे मे जाकर पलंग पर लेट गई । आज न जाने कितने दिनो बाद हृदय मे चैतन्य और मूर्छा की पारस्परिक प्रीति और आंख मिचौनी का खेल चलने लगा था । डाक्टर साहब का वह बुद्धि से प्रदीप्त सौन्दर्य से उज्ज्वल, तेज संपन्न मुख मंडल अपनी मोहिनी स्मृति से बार-बार मुझे जीवित और मृत कर रहा था[1] ।

लज्जा अपने घर मे आनेवाले, अपने पिताजी के एक दोस्त, वह एक प्रोफेसर है - के सामने भी अपनी काम वृत्ति दिखाती है । स्पष्टतः लज्जा मे यौन भावना अधिक है । उसके आधिक्य के कारण ही वह बीमार पड जाती है । इसलिए उसे एक न्यूरोटिक कहे तो अनुचित न[ही] एक आदमी को अपने वश मे करने के लिए हद से बढकर कोशिश करती रहती है । साधारणतया उतनी मात्रा मे प्रयास मे लगी रहने की कोई आवश्यकता नही । किन्तु, फिर भी उसी के लिए वह अपनी जान तक देने केलिए तैयार होती है । क्यो कि उसके[2] अन्तर्मन मे आकांक्षा (आंगसैटी) का एक विकृत रूप हमे मिलती है । इसे हम 'न्यूरोटिक आंगसैटी' कह सकते है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 इलाचन्द्र जोशी - लज्जा (प्रथम संस्करण) पृ. 32-33

2 First of all we find a general apprehensiveness in them, a free floting anxiety, as we call it, ready to attach thelf to any thought which is at all appropriate, affecting judgements, inducing expectation, lying in wait for any opportunity to find a justification for itslef. We call t[his] condition expectant dread or anxious expectation. People who are tormented with this kind of anxiety always anticip[ate] the worst of all possible out comes, interpret every chance happening as an evil men and exploit every uncertainity to mean the worst. The tendency to this kind of expectation of evil is found as a character trait in many people who cannot be described as ill in any other way, and we call them, over anxious or pesimistic but a marked degree of expectant dread is an invariable accompaniment of the nervous disorder which I have called anxiety neurosis and include among the actual neurosis'
S. Freud A General introduction to psycho analysis. p.40[3]

सन्यासी - सन्यासी नामक उपन्यास का मुख्य कथापात्र नन्दकिशोर है । उपन्यास के प्रारंभिक परिछेद में वह एक अन्तर्मुखी पात्र रहा है । अपने दोस्त उमापति के उकसाने पर वह शान्ति : ओर प्रभावित हो जाता है । लेकिन यह कार्य उसके लिए अपने चरित्र के विरुद्ध सा लगता है वह मन ही मन में कहता है - 'उमापति इसी ओर घसीटने लगा । मैं भी नीमराजी - सा कर अनिश्चित पदों से उसके साथ हो लिया । पर कलेजा धडक रहा था । अपने को अत्यन्त पतित बाजार आदमियों से भी बहत्तर समझ रहा था[1] । सुप्तावस्था में पडी उसकी कामवासना : जागृत होते ही वह स्वयं अनियंत्रित हो जाता है, वह अपने को काबू से बाहर समझता है । सिर्फ इस परिवर्तन से वह खुद विचलित हो जाता है । बहिर्मुखी चरित्रवाले व्यक्ति में कायरता, कपटता आदि का निदर्शन कम होता है । उसका हृदय भी बहुत जल्द विचलित नहीं होता । लेकिन नन्दकिशोर एक अन्तर्मुख व्यक्ति होने के कारण कामवासना का बहुत जल्द झंझा के समान उर होने लगता है । वह स्वीकार करता है - एक तरफ तो प्रचंड आवेग मेरे भीतर प्रबल झंझा की तरह विस्फूर्जित हो रहा था, दूसरी ओर मुझे इतना साहस नहीं होता था कि सामाजिक तथा लौकिक बन्धनों को तुच्छ करके, बेधडक जाकर शान्ति से उसके मकान पर जाकर मिलूं[2] । अन्तर्मुख भावुकता की प्रवृत्ति उसे अधिकाधिक ईर्ष्यालु बना देती है और वह शान्ति से झगडने लगता है उ पर कई प्रकार के आरोप भी लगा देता है ।

शान्ति से मुक्त होकर वह जयन्ती से शादी करता है । 'इसका अर्थ यह है जो इस समय मेरे निकट होने पर भी, मुझसे इतनी दूर है, मेरी दासी बनकर रहेगी और अपने अज्ञात गर्व और अव्यक्त घृणा के भावों को कुचले जाने पर आंधी के वेग से विच्छिन्न लता की तरह मेरे चरणों पर आश्रय पाकर विवश होकर उनमें लिपटी रहेगी । इसी भावना में कितना सुख है । मैं अवश्य उससे विवाह करूंगा[3] ।

जयन्ती से शादी करके भी वह रह नहीं पाता क्योंकि उसके मन में एक ओर झूठी नैतिकता है, दूसरी ओर हीनता का भाव । अन्तर्मुखी पात्रों में हीनता का भाव आने पर वह अ उच्छृंखल भी हो जाता है[4] ।

पर्दे की रानी - निरंजना नामक एक लडकी की घोर वैयक्तिक भावानुभूतियों का, घोर संघर्ष का चित्र उसमें से मिल जाता है । पन्द्रह वर्ष के वय में उसे एक ऐसी घटना का सामना करना

1 इलाचन्द्र जोशी - सन्यासी (छठवां संस्करण) पृ.48-49
2 वही पृ.89
3 वही पृ.318

करना पडता है कि अपना होश खो बैठती है - पिता द्वारा माँ की हत्या हो जाती है और बाद में यह ज्ञात हो जाता है कि माँ एक वेश्या थी । बाद में वह मनमोहन सिंह की देखरेख में रहने लगती है । बाप और बेटे उसे अपनी ओर आकृष्ट करने की प्रयत्न में लगे रहते है । एक दफे खुद मनमोहन सिंह उसका बलात्कार करने का असफल प्रयत्न भी कर लेता है । मनमोहनसिंह अपनी बेटियों को निरंजना से मिलने भी नहीं देता था । उसकी बार बार प्रार्थना करने पर भी अपनी लडकियों से मिलाता नहीं । अतः वह यह समझकर दुखी हो जाती है कि एक वेश्या की पुत्री होने के कारण उसकी इतनी अवहेलना हो रही है ।

इन्द्रमोहन से वह खुलकर व्यवहार करती है और वह निरंजना को लेकर नुमाइश देखने जाता है और होटल के कमरे में ले जाके उसका बलात्कार करने की प्रयत्न करता है । निरंजना के मे वहीं से लेकर प्रतिशोध की आग प्रज्वलित होने लगती है, माता की मृत्यु - उसकी याद, मनमोहन सिंह का व्यवहार और छुटने वाली परिस्थितियाँ आदि से उसका मन विक्षुब्ध सी हो जाता वह अपने मास्टर जी से कहती है - इसलिए मुझे अपने पागल होने का डर है गुरुजी । केवल ए ही नहीं मेरे भीतर कई विरोधाभास वर्तमान है, मुझे ऐसा लगता है कभी कभी मुझे यह अनुभव हं लगता है कि मेरे मन के मूल केन्द्र के उपर बहुत से बिचित्र विचित्र संस्कारों के स्तर एक दूसरे के ऊपर - एक इस सिलसिले से जमे हुए हैं, और उसमें से प्रत्येक स्तर के तत्व के साथ मेल नहीं खाते । उन सब स्तरों के नीचे मेरा मूल स्वभाव भयंकर भार से दबा पडा है ।[1]

शीला से निरंजना का परिचय होस्टल में हो जाता है जहाँ वह पढने जाती है । दुबारा उनका मिलन मसूरी में होता है तब तक शीला की शादी इन्द्रमोहन से हो चुकी थी । शीला का जीवन सुखी है - यह बात निरंजना के लिए अविश्वनीय सा लगता है । वह शीला के प्रति सहानुभूति भी प्रकट करती है । लेकिन इन्द्रमोहन को फिर से उसके प्रति आकृष्ट होते देख निरंजना में प्रतिशोध भावना प्रबल होती है । लेकिन इसी कारण वह इन्द्रमोहन से खुलकर मिलती है जिससे शीला के मन में ईर्ष्या जागती है और वह बीमार पड जाती है । इन्द्रमोहन उसे विष देकर मार डालता है । लेकिन शीला कीमृत्यु के बाद इन्द्र के कहने पर वह उसके लिए समर्पण करती है । लेकिन यह समर्पण एक पात्र के चरित्र का पतन न होकर एक प्रतिशोध ही समझना चाहिए ।

---

1 इलाचन्द्र जोशी - पर्दे की रानी (चतुर्थ संस्करण) पृ.99

'मुक्तिपथ' - इस उपन्यास का राजीव एक कान्तिकारी है । वर्षों तक जेल की हवा खाने वे बाद वह बाहर आता है । लेकिन नौकरी न मिलने के कारण वह निराश होकर उमाप्रसाद के घ आकर रहने लगता है । सुनन्दा जो उमाप्रसाद की रिस्ते की बहिन है, उसी घर में रहती थी । का सारा काम उसी के निर्यत्रण में चलता है । घर के सब बच्चे अपनी माँ से बढकर उससे प्यार करते हैं । वह एक बाल विधवा है । अपने सिमित दायरे के अन्दर वह सुख से जीवन बिता लेती है ।

राजीव के उस घर में आने के बाद सुनन्दा के हृदय में एक प्रकार की बेचैनी महसूस होती है । दोनों आपस में आकर्षित हो जाते हैं । राजीव के लिए सुनन्दा का रूप नित्य नय नया होकर दीखता था । एक दिन वह कहता है - 'इसलिए एक बात मैं तुम से कहे देता हूं घर गिरस्ती की यह चहार दिवारी चाहे कैसे मजबूत इस्पात की बनी क्यों न हो, वह तुम्हारे समान तेजस्विनी नारी को अपने घेरे में सदा केलिए नहीं बाँध सकती । या तो वह तुम्हारे तेज गल कर ढह जाएगी या एक दिन स्वयं अपने तेज में अपनी ही आहुति दे देनी होगी । लेकिन इस कथन से आकर्षित होने पर भी वह उसे आत्मसात् करने केलिए कठिनाई महसूस करती है । बच्चों के संसार को छोडकर एक अजनबी व्यक्ति के साथ उन्मुक्त जीवन बिताने की कल्पना वह नहीं कर सकती थी । इसलिए उसका हृदय हमेशा उद्वेलित हो कर ही रहता है । लेकिन राजीव के ज्यादा भटकाने पर वह उसके साथ जाने के लिए तैयारहो जाती है । इस कार्य के लि उमाप्रसाद की बडी बेटी प्रमीला उसकी मदद करती है ।

राजीव और सुनन्दा नया जीवन प्रारंभ करते हैं। दोनों अटल विश्वास के साथ आगे बढते हैं । लेकिन उनमें, विशेषकर राजीव में सहज भावनाओं का अभाव था । इस उपेक्षा के कारण सुनन्दा के मन में संघर्ष पैदा होता है जिसकी भूख से वह आयी थी । उसकी पूर्ति की तृप्ति न होने से वह अशान्त होकर तडपती है । जिस दमित वासना से मुक्ति पाने के लिए, एक स्वच्छ जीवन बिताने केलिए वह आयी थी, जिस उन्मुक्त वातावरण का सपना लेकर वह आयी थी उसकी पूर्ति न होना उसके लिए असह्य था, एक नारी हृदय केलिए असह्य है । उसका नारीत्व कराह उठता है - मुक्तिपथ का अनुसरण करने पर भी उसका नारीत्व कहीं खण्डित ही रह गया था - वा मानवता के सामूहिक हित के लिए अपना सर्वस्व देने को तैयार होती है, किन्तु नारीत्व को बलि

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 इलाचन्द्र जोशी - मुक्तिपथ -(चतुर्थ संस्करण) पृ.61

देने केलिए तैयार नहीं । इसलिए वह राजीव से अन्त मे खुल्लखुलम कह देती है । मै मनुष्य हूँ राजीव बाबू, कोई यंत्र चालित पुतली नहीं । मै ने सारे पिछले बन्धों को तोडकर जो आप का साथ दिया था, वह केवल इस मूल गत आशा से कि मेरे अन्तर्जीवित की अनंत प्रसारित जलती हु मरुभूमि को भी आप अन्तप्रेरणा के अविरल स्नेह इससे सींच-सींच कर, बाहर की बंजर भूमि की तरह ही, उर्वरा और हरा-भरा बना पाएंगे ।[1] राजीव के लिए सामाजिक उद्धार एक प्रकार से अपने मनोविकारों की तृप्ति देती है लेकिन सुनन्दा के सन्दर्भ मे वह असफल ही रहता है । वह अपने जीवन मे जिस किसी कल्पनाओं को साकार करके देखना चाहती थी वह सामाजिक उद्धार से चलती नहीं है - एक नारी की मुक्ति - तृप्ति के पथ को आवश्यकता सुनन्दा समझती है ।

जैनेन्द्र एवं जोशी की औपन्यासिक उपलब्धियां — उपर्युक्त दोनों उपन्यासकार प्रेमचन्द के लेखन व मे ही अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचय देते हुए अपनी औपन्यासिक कला का परिचय दे चुके । प्रेमचन्द के उपन्यास विस्तृत सामाजिक परिवेश मे निर्मित है । साथ ही प्रेमचन्द एक खास अन्दा के साथ लिखनेवाले लेखक थे । उन्होंने किसान वर्ग एवं प्रताडित नारी की सामाजिक विडम्बना अपना विषय बना लिया था । लेकिन जैनेन्द्र एवं जोशी ने सामाजिकता से अलग हटकर पात्रों वे वैयक्तिक पक्ष पर बल दिया । इन्होंने फ्रायड एवं जुंग जैसे मनोवैज्ञानिकों से प्रेरणा प्राप्त की । स्थूल चेतन मन की अपेक्षा सूक्ष्म अचेतन को प्रधानता देते हुए मानसिक गुत्थियों मे उलझने का का किया । जोशी का कथन उद्धरणीय है - 'केवल बाह्य जीवन - की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था उसके परिणामस्वरूप वर्ग संघर्ष को ही बाहरीऔर भीतरी जीवन की एकमात्र परिचायिका शक्ति मानन और केवल उसी से संबन्ध रखनेवाले तत्वों की खोज के पथ को प्रगतिशीलता का एकमात्र पथ बनान घोर भ्रममूलक है । वर्तमान महायुद्ध ने हमे पहले से ही अधिक निश्चित रूप से यह जता दिया है बाह्य जगत् की समस्त सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों और व्यवस्थाओं का संचालन मूल रूप से सामूहिक मानव की सामूहिक अज्ञात चेतना के भीतर दबे पडे असंख्य संस्कारों के प्रस्फुटन और विस्फोट द्वारा होता है[2] । यह विदित बात है कि विश्वमहायुद्ध जिजिविषा ने सामाजिक संस्कारों का ढांचा ढीला कर दिया । इसका प्रभाव साहित्यिक रचनाओं मे स्पष्ट होने लगा ।

कहा जा चुका है प्रेमचन्द के पात्र वर्ग के प्रतिनिधि है - सुमन, जाल्पा, सोफिया, मालती, निर्मला आदि एवं रमानाथ, अमर कान्त, सूरदास, होरी, मेहता आदि अपने अपने वर्ग

- -

1 इलाचन्द्र जोशी – मुक्तिपथ - पृ. 324

2 इलाचन्द्र जोशी - प्रेत और छाया - (भूमिका से)

का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र है । लेकिन तथाकथित मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के उपन्यासो के पात्र अपने आप मे स्वतंत्र और अपने आप मे पूर्ण है । उदाहरणार्थ जैनेन्द्र की सुनीता, हरिप्रस मृणाल आदि और जोशी की निरंजना, राजीव, सुनन्दा, पारसनाथ और लज्जा आदि । इस का यह नही कि प्रेमचन्द के पात्रो मे पूर्णता नही है । परन्तु उनकी पूर्णता सामाजिक सत्ता से परिचालित रहती है । लेकिन विवेच्य सोपान के उपन्यासकारो के पात्र आरंभ से अंत तक अपनी ही अनुभूति के वैयक्तिक वृत्त के भीतर स्वच्छ विचरण करनेवाले है । जैनेन्द्र की सुनीता का अप वस्त्रो को त्याग कर समर्पण भाव से हरिप्रसन्न के आगे खडी रहना, बार बार विनती करने पर भी मृणाल का प्रमोद के साथ जोवन बिताने से इनकार करना, जोशी की निरंजना का इन्द्रमोहन के ि चरित्र से परिचित होने पर भी उसके साथ शीला के अभाव मे घूमने निकलना, सुनन्दा के उपन्यास अन्तिम भाग मे राजीव की बातो को अनसुनी करना आदि इसके उदाहरण है । इन समूचे पात्रो अंतर्वृत्ति की परिचालिका शक्ति बाह्य परिस्थिति से प्रभावित कम है, उनके अपने चरित्र की निजी विशेषताएँ है ।

उपर्युक्त उपन्यासो मे समाज की एकदम उपेक्षा की गयी, । ऐसी बात नही है । लेकिन सामाजिकता का विस्तृत आगन इनकेलिए वर्ज्य था । उनके उपन्यासो मे सामाजिक बन्धनो और रूढियो का विचार-विमर्श का स्पर्श होते हुए, उनके पात्र उन सब से परे है । क्यों कि मानसिक रूप से ये पात्र काफी परिष्कृत है । फिर भी उनके उपन्यासो मे सामाजिक बन्धनो की एकाध समस्या का पुनर्मूल्यांकन हमे आसानी से प्राप्त होता है । माता एवं पिता के प्यार से वंचित मृणाल के जीवन मे ममता का पक्ष दुर्बल है । उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी हो जाती है । यही समस्या है जिसका बुरा प्रभाव मृणाल की अपनी जिन्दगी पर पड़ता है । इसके जिम्मेदार कौन है ? खुद मृणाल या समाज? इसी प्रश्न का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन त्यागपत्र मे मिलत है । 'यह उपन्यास घनीभूत वेदना का ऐसा मर्मस्पर्शी चित्रण है, जो मन को पूर्णतया उद्वेलित कर देता है और व्यक्ति यह सोचने पर विवश हो जाता है कि नारी की इस भयानक दुर्गति का उत्तरदायित्व किस पर है ? सडी गली परंपराओं पर जहा नरी की स्वतंत्रता अभिशाप है और उसे शोषण केलिए निर्जीव गठरी मात्र समझ लिया जाता है या उस सामाजिक व्यवस्था पर, जहा वह पुरुष की दासी बनने केलिए विवश है, क्योंकि उसके जीने का कोई आर्थिक आधार नही । और भी कई पात्र है जिनकी पात्र सृष्टि की प्रेरणा सामाजिक ही है – इलाचन्द्र जोशी की सुनन्दा, निरंजना आदि आदि । इसलिए कहा जा सकता है कि इन उपन्यासो मे समाज का पक्ष अत्यंत उपेक्षित

---

1 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ – पृ 39

नही है । उसी की पृष्ठभूमि मे व्यक्ति चरित्रों की निजी अनुभूतियों पर बल देते हुए लेखकों ने पात्रों को स्वतंत्र रूप से चित्रित करने का प्रयास किया । ये उपन्यासकार पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व को अंकित करने में दत्तचित्त रहे, यह बात निर्विवाद है ।

जहा तक शैली का संबन्ध है प्रेमचन्द युगीन विवरणात्मकता का पुट इन उपन्यासो मे भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है । विशेषकर जोशी के उपन्यासो मे । लेकिन सबसे पहले आत्म कथात्मक शैली का प्रादुर्भाव इन्ही लेखकों के उपन्यासो मे ही हुआ । त्यागपत्र, लज्जा आदि इसके उदाहरण है । इन्होने आन्तरिक स्वकथन (इन्टीरियर मोणोलोग) को प्रधानता दी है । सांकेतिकता की सहायता से औपन्यासिक शिल्प मे सूक्ष्म गुम्फन के साथ उपन्यास के मूल तत्व का परिचय (पात्रों की मनोवृत्ति का सूचक प्रवृत्ति) भी हमे इन उपन्यासो मे प्राप्त होता है ।

जैनेन्द्र एवं जोशी की औपन्यासिक उपलब्धियो का जब हम पुनर्मूल्यांकन करते है तब हमे पता चलता है कि इनमे एक दर्शन उपलब्ध नही होता प्रेमचन्द मे एक प्रकार का दर्शन मौजूद था जो उनके एवं परिस्थितियो के ही अनुभूत सत्य से प्रेरित था । जैनेन्द्र के त्यागपत्र एवं परख को छोडकर उनके अन्तिम उपन्यासो मे जीवन दर्शन का अंश क्षीण पडता जाता है । जोशी ने आदि से अंत तक मनोवैज्ञानिक गुत्थियो को सुलझाने का कार्य किया और इसीलिए उनमे जीवन-दर्शन की कमी हमेशा महसूस हुई है । इन्ही स्थितियो मे हमे अज्ञेय को जानना है, उनके उपन्यासो का अध्ययन करना है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारो मे मनोवैज्ञानिक पात्रों को प्रमुखता देने वाले उपन्यासकारो के रूप मे जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय को देखने की एक प्रथा कायम है । लेकिन अज्ञेय को उपर्युक्त उपन्यासकारो जैसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारो की कोटि मे देखना अनुचित लगता है क्योंकि उनका भी उपन्यास पूर्णतया मनोवैज्ञानिक नही है । आंशिक रूप से मनोवैज्ञानिकता 'शेखर' मे आ गई अज्ञेय की समूची रचनात्मकता मे जो व्यक्तित्व को विकसित करने और सर्जनात्मकता के साथ उसे जो की प्रवृत्ति है वह सर्वत्र मिलती है । सर्जनात्मकता को स्वायत्त करने की प्रवृत्ति भी अज्ञेय मे है सबसे बढकर उनकी रचनात्मकता रोमान्टिक आवेग को छुटाने मे संलग्न है ।

प्रेम और पीडा उनके औपन्यासिक शिल्प का मुख्य अंश है । 'शेखर' और 'नदी के द्वीप' मे ये तत्व भिन्न भिन्न स्थितियो मे आंका गया है । 'शेखर' मे एक क्रान्तिकारी के जीवन को

रूपायित करने वाले ये तत्व 'नदी के द्वीप' में व्यक्तित्व की संवेदना के रूप में देखे गये हैं ।

'शेखर एक जीवनी' में लेखक का जीवन दर्शन 'नदी के द्वीप' के जीवन दर्शन से भिन्नता रखते हुए भी भिन्न नहीं । दोनों में रूढ़ियों को नकारने, पिटी-पिटाई परम्परा से मुक्त होने की प्रबल इच्छा विद्यमान है । शशि एवं शेखर, दोनों इसी दर्शन को प्रतिनिधित्व कर वाले हैं । रेखा भी ऐसे ही एक पात्र है जिनमें भावुकता कम और संवेदना ज्यादा है । अप व्यक्तित्व के प्रति पूर्ण जागरूगता भी है ।

'अपने अपने अजनबी' अन्य दोनों उपन्यासों से बिलकुल भिन्न होते हुए भी अज्ञेय का स्वाभाविक विकास इस उपन्यास में व्यंजित होता है जो कविताओं में भी उपस्थित है - आंगन पार द्वार' शीर्षक कवितासंग्रह इसका उदाहरण है । और यहाँ तक कि उनके यात्रा विवरण 'एक बून्द सहसा उछली' में भी है । जीवन को ओर एक उज्ज्वलता का भाव अज्ञेय में विकसि होता है । नश्वरता के अन्तर्गत ही एक मोहमयता की धारा प्रवाहित दीखने की इच्छा अज्ञेय में विकसित होती है ।

उपर्युक्त स्थितियों में रखकर अज्ञेय के उपन्यासों का अध्ययन संभव है । आधुनिक का एक पहलु भी उनके उपन्यासिक शिल्प की एक विशेषता है जो पूर्णरूप से आत्मसात् करने में अज्ञेय असफल ही है लेकिन हिन्दी उपन्यासों के सन्दर्भ में अज्ञेय ही वह पहला उपन्यासकार जिन आधुनिकता का प्राथमिक संकेत उपलब्ध होता है एक दूसरे सन्दर्भ में यशपाल में भी है जिसको चन्द का एक विकसित रूप मान सकते हैं ।

औपन्यासिकता के सन्दर्भ में अज्ञेय की सर्जनात्मक संप्रेषणीयता को ही अगर हम प्रमुख दे तो मालूम होगा कि हिन्दी उपन्यास साहित्य को परम्परा से मुक्त करने का श्रेय उन्हीं को है । तब प्रेमचन्द का स्थान उपन्यास को प्रतिष्ठित करने तक सीमित रह जाता है । उपन्यास का प्रा उत्स मात्र प्राप्त होता है । लेकिन अज्ञेय में उसका विकसित रूप और संभावनाएँ अधिकतर रूप में पाई जाती है ।

तीसरा अध्याय

अज्ञेय के उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि विकास के विभिन्न आयामों को पार कर के हिन्दी उपन्यास अज्ञेय तक पहुँचा है । आगे हम को अज्ञेय की औपन्यासिक उपलब्धियों का अध्ययन करना है । अज्ञेय के लिखे तीनों उपन्यास, 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' और 'अपने अपने अजनबी' हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपना अलग विशिष्ट अस्तित्व रखते हैं । आगे इन तीनों उपन्यासों का अलग-अलग अध्ययन विभिन्न प्रकरणों के रूप में प्रस्तुत करेंगे ।

शेखर एक जीवनी -

'शेखर एक जीवनी' अज्ञेय का पहला उपन्यास है जो दो भागों में विभक्त है । इसका पहला भाग सन् 1941 में और दूसरा भाग सन् 1944 में क्रमशः प्रकाशित हो गया था । प्रस्तुत उपन्यास का प्रस्तावित एक तीसरा भाग भी था । लेकिन वह अब तक प्रकाशन में नहीं आया है । अज्ञेय ने स्वयं स्वीकार किया था 'शेखर एक जीवनी' तीन भागों में विभक्त है । तीनों भाग एक ही कथासूत्र में गूँथे होकर भी अलग अलग भी प्रायः सम्पूर्ण हैं । कहा जा सकता है कि जीवनी वास्तव में तीन स्वतंत्र उपन्यास का अनुक्रम है । ऐसा न भी होता तब उन्हें अलग अलग छापा जा सकता है[1] । अज्ञेय के वक्तव्य से स्पष्ट है कि लेखक के मन में शेखर के तीन खण्ड रूप उपस्थित थे । लेकिन तीन वर्षों के अन्तराल में दो ही खण्ड छाप कर प्रकाशित हुए और तीसरा भाग अभी तक अप्रकाशित रह गया है । वर्षों के एक लंबे अरसे के बाद उसका छापना थोडा कठिन हो गया । इसका लेखक केलिए बहुत दुख है । रणबीर रांगा के साथ एक भेंट- वार्ता में अज्ञेय कहते हैं - 'उनसे (पाठकों) अधिक तो मैं तरसता हूँ लेकिन तरसने से कुछ आता जाता नहीं है । तीसरा भाग एक बार लिखा गया था, तभी छप

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - शेखर एक जीवनी (पहला भाग) (सप्तम संस्करण 1961) भूमिका - पृ. 12

गया होता तो, छप गया होता । अब वह संशोधन मांगता, जाना पडता है और मैं भरसक कोई चीज़ ऐसी अवस्था में छपने नहीं भेजता हूं जबकि वह मुझे अधूरी जान पड रही हो । ऐसा लगता है तीसरा भाग अज्ञेय की अनुभूति के दायरे से निकलना असंभव जानकर अटक गया हो । फिर भी प्रस्तुत दोनों भाग विभिन्न खण्ड मात्र होते हुए भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र होकर निखर आये हैं - एक ही कथासूत्र में पिरोकर ।

शेखर एक जीवनी में शेखर नामक एक व्यक्ति की कहानी बचपन से लेकर युवावस्था तक विस्तृत ढंग से विश्लेषित की गयी है । इसमें शेखर के व्यक्तित्व का त्रिमानात्मक या यों कहें चतुर्मानात्मक चित्र उभरकर हमारे सामने आया है । इस चतुर्मानात्मक चित्र के जरिए हमें शेखर के व्यक्तित्व का पूर्णरूप मिल हा जाता है ।

इस अध्याय में 'शेखर' के व्यक्ति पक्ष को ढूंढने का प्रयास किया गया है । इस खोज को चार कोणों से आरंभ करते हुए केन्द्र तक आने का प्रयास भी है । इन चार कोणों में आरंभ करने के कारण 'शेखर' के वस्तुपक्ष का समूचा विश्लेषण आसानी से हमें उपलब्ध हो जाता है । हम से स्वीकृत चार कोण निम्नलिखित है -

(1) शेखर एक जीवनी में विद्रोह की परिकल्पना
(2) शेखर एक जीवनी में प्रेम की भावना
(3) शेखर एक जीवनी में अहं का तत्व
(4) शेखर एक जीवनी में मनोविज्ञान

आगे हम प्रत्येक कोण से शेखर एक जीवनी का अवलोकन और अध्ययन करेंगे ।

(1) <u>शेखर एक जीवनी में विद्रोह की परिकल्पना</u> - 'शेखर' एक व्यक्ति की आत्म कहानी है जो अपने आप आत्मशोध में संलग्न है और व्यक्तित्व की परिपूर्णता की खोज में निमग्न है । शेखर के व्यक्तित्व में विद्रोह की भावना अधिक मुखरित हुई है । क्योंकि शेखर अपनी विद्रोह भावना को उत्तरोत्तर बढाता आगे ही चल देता है । पराजय का सामना करते हुए भी वह चूकता नहीं बल्कि अपनी ही राहों पर अटल और स्थिर होकर बढता चला जाता है । क्योंकि वह अपने आप ईमानदार है । खुद को पहचानने का आग्रह उसमें अधिक है । शेखर कोई बडा आदमी नहीं है, वह अच्छा आदमी नहीं है । लेकिन वह मानवता के संचित अनुभव

के प्रकाश मे ईमानदारी से अपने को पहचानने की कोशिश कर रहा है ।

'शेखर' उपन्यास मे विद्रोह की भावना का जो रूप उजागर किया गया वह क्रान्ति का असली रूप है जो न काल्पनिक दायरो मे सिमटकर संकुचित हो गया है न निषेध तक सीमित होकर जडवत् हो गया है । लेकिन बहुतेरे आलोचको ने इसके विरुद्ध बहुत कुछ लिखा है विजयमोहन सिंह शेखर को विद्रोही मानते है लेकिन क्रान्तिद्रष्टा मानने केलिए कदापि तैयार वे विद्रोही और क्रान्तिकारी दोनो को भिन्न भिन्न अर्थ प्रदान करते हुए लिखते है शेखर मात्र वि है । उनका यह भी एक दावा है कि विद्रोह मात्र 'रेबेल' और क्रान्तिकारी 'रवेलूशनरी' है वे आगे लिखते है कि अज्ञेय ने इन दोनो शब्दो को एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किया है । यह ठीक है कि अज्ञेय ने इन दोनो शब्दो को एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किया है - वह द्रष्टव्य है 'कलाकार केलिए कला की अन्त,शक्ति के उद्बोध के बाद सबसे महत्वपूर्ण विभूति है कला के प्रति एक पवित्र आदर भाव, उसी प्रकार क्रान्तिकारी केलिए क्रान्ति की अन्तः शक्ति के बाद सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है क्रान्तिकारिता की विद्रोह - भावना के प्रति पूजा भाव । अतः यह स्पष्ट है कि अज्ञेय ने क्रान्तिकारी एवं विद्रोही को एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किया है । लेकिन देखना यह है कि शेखर की क्रान्तिकारिता निष्फल संघर्ष (फ्रूटलस स्ट्रगिल) तक सीमित रह गयी है या वह विद्रोह की सीमाएँ लाँघकर क्रान्तिकारिता तक पहुँच गयी है ।

आलबेर कैमू के 'दि रेबेल' का विश्लेषणात्मक ~~क्रान्तिकारी के सम्बन्ध मे लिखते है कि कैम~~ अध्ययन प्रस्तुत करते हुए 'अडले किंग' 'कैमू' नामक ग्रंथ मे क्रान्तिकारी के संबन्ध मे लिखते है कि कैमू के अनुसार राजनीतिक क्रान्तिकारी गुलाम बनकर रहने से बढकर मरना ही अच्छा समझेग अपने जीवन से बढकर वह सच्चाई केलिए लडना चाहता है । एक क्रान्तिकारी के कार्य इसक उद्घोषणा करते है कि वह अपने अस्तित्व से परे होकर मूल्यों की खोज करना चाहता है, वह कुछ दूसरो के साथ बाँटना चाहता है । क्रान्ति एक साधारण मानवीय अवस्था पर आधारित है

---

1 अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - भूमिका - पृ. 12

2 विजयमोहन सिंह - अज्ञेय कथाकार और विचारक

3 Camus claims that the political rebel prefers to die rather continue as a slave. Because he chooses to fight for justic rathar than for his life, the rebel's action suggests that a mancan value something beyond his own existence, some thin he wants to share with other men, Revolt is based on a belie in common human dignity.

Adle King - Cammus (Reprinted 1966) pp. 24-30

अतः हम बता सकते है कि क्रान्तिकारी मूल्यों की खोज मे, मानवीय स्थिति के संदर्भ मे समाज के हितार्थ अपने अस्तित्व की परवाह किए बिना लडना है । हमे यह देखना चाहिए शेखर ने अपने आप क्या खोजा था, समाज मे क्या देखा था, या देखना चाहा था, समाज के प्रति उसकी क्या प्रतिक्रिया थी । इन सब प्रश्नो पर प्रकाश डालने पर हमको ज्ञात होगा कि शेखर का कार्य विद्रोह तक सीमित रहा या विद्रोह की सीमाएँ पार कर गया है । प्रस्तुत उपन्यास मे शेखर के जीवन का विस्तृत कैनवास है जो उनके बचपन से लेकर यौवन तक व्याप्त है । अज्ञेय के अनुसार क्रान्तिकारी नियतिवादी होते है लेकिन उसका मतलब साधारण नियतिवा से नही 'क्रान्तिकारी अन्ततोगत्वा एक प्रकार के नियतिवादी होते है । लेकिन यह नियतिवाद उन्हे अक्षम और निकम्मा बनानेवाला कोरा भाग्यवाद नही होता, वह उन्हे अधिक निर्मम होकर कार्य करने की प्रेरणा देता है । इसमे वह गीता के कर्मयोग से एक सीढी आगे होता है क्योंकि वह कर्ता को निरा निमित्त नही बना देता यदि यों कहा जाय कि क्रान्तिकारी का नियतिवाद अटल नियति की स्वीकृति न होकर, जीवन की विज्ञान संगत कार्य-कारण परंपरा पर गहरा (यद्द्र अस्पष्ट) विश्वास होता है तो शायद सच्चाई के निकट होगा । मेरा ख्याल है कि आज के अधिकांश वैज्ञानिक भी कुछ इसी प्रकार के नियतिवादी है[1] । जिस विज्ञान संगत कार्यकरण पर अटल विश्वास रखते हुए जो अपने मे और अपने परिवेश मे सच्चाई की खोज करते है, और इन खोजो की राह पर सिर्फ निर्भय होकर आगे जाते है वे क्रान्तिकारी है । भविष्य को सुरक्षित करने केलिए यह आधुनिक प्रतिक्रिया-क्रान्तिकारिता समाज के साधारण नियमों को तोडने केलिए बाध्य हो जाती है । अगर इस संदर्भ मे रेबेल का विश्लेषण करे तो हम बता सकते है कि वह सिर्फ अपने उपर बंधे हुए बोझ को उतारना नही चाहता है । क्रान्तिकारिता एक आधुनिक प्रक्रिया है[2] ।

उपर्युक्त अधुनिक प्रक्रिया को भारतीय संदर्भ मे देखने का कार्य शेखर एक जीवनी मे सन्निहित है । अतः हम कह सकते है; शेखर भारतीय समाज केलिए एक प्रश्नचिह्न रह गया

- -

1 शेखर एक जीवनी (पहला भाग) भूमिका

2 According to Camus the major and intellectual problems of moder world deries from this perversion of the spitit of revolt. To trace the history of revolt cammus distinguishes between rebell and revolution. Rebellion is an under dog's passionate goal an is against his opprossen. It seeks an immediate goal and is bes illustrated by the slave uprising of antiquity Revolution is product of modern mind.
Adle King – Cammus pp 29-30

और उसके आचरण समाज केलिए वर्ज्य जैसा लगने लगा । लेकिन इतने पर भी शेखर ने अपने आप संपूर्ण होकर सामाजिक परिवेश में मूल्यों की खोज की इसलिए 'शेखर निस्सन्देह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज, ए रिकोर्ड आफ पेर्सनल सफरिंग है, यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग संघर्ष का भी प्रतिबिंब भी है । इतना और ऐसा निजी वह नहीं है कि उस दावे को आप एक आदमी की निजु बात' कहकर उडा सकें, मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोलता है कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है'[1] ।

शेखर विद्रोही है । (विस्तृत अर्थ में) बचपन से ही उसकी विद्रोहात्मकता जन्म लेती है । इस विद्रोहात्मकता को बहुतेरे आलोचकों ने अन्तर्मुखी चारित्रिक वैशिष्ट्य का बाना पहनाया है । लेकिन शेखर एक जीवनी मात्र आत्म केन्द्रित, अन्तर्मुखी एवं अहं पीडित व्यक्तित्व का आत्म-विस्फोट नहीं बल्कि विद्रोह की संकल्पात्मक अनुभूति है[2] ।

स्वीकृत मूल्यों की ओर उसने इशारा किया । इसलिए उसे ऐसा लगता है कि जब उसका जन्म हुआ तब उस अबोध बालक को भी कई प्रकार से बंधन ढोना पड रहा था - पारिवारिक अस्वातंत्र की बोझ । वे लिखते हैं - 'इस प्रकार बोध होने के पहले ही बालक व जीवन एक रूढि में बंध गया, बहुत से अनुभव किन्तु सुदृढ बन्धन उसके जीवन में छा गए वह बिक गया'[3]। पारिवारिक संदर्भ से लेकर समाज एवं राष्ट्र के संदर्भ तक व्यक्ति के स्वातंत्र्य का हनन किया जाता है । लेकिन विद्रोही इन घात - प्रतिघातों के प्रति मौन साधता नहीं है, क्योंकि विद्रोही बनाए नहीं जाते । यहाँ अज्ञेय का कथन द्रष्टव्य है - 'मुझे विश्वास है कि विद्रोही बनते नहीं, उत्पन्न होते हैं । विद्रोह बुद्धि परिस्थितियों से संघर्ष की सामर्थ्य, जीवन की क्रियाओं से, परिस्थितियों के घात प्रतिघातों से नहीं, निर्मित होती । वह आत्मा का कृत्रिम परिवेष्टन नहीं है उसका अभिन्नतम अंग है । मैं मानता नहीं कि दैव कुछ है, क्योंकि हम में कोई विवशता, कोई बाध्यता है तो वह बाहरी नहीं, भीतरी है । यदि बाहरी होती, परकीय होती तो, हम उसे दैव कह सकते, पर वह तो भीतरी है, हमारी अपनी है, उसके पक्के होने केलिए भले ही बाहरी निमित हो । उसे हम व्यक्तिगत निर्यति - पेर्सनल डेस्टिनी कह सकते हैं[4] ।

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) भूमिका - पृ.10

2 रामखेलावन पाण्डेय - हिन्दी साहित्य का इतिहास (1969) पृ.257

3 शेखर एक जीवनी (प भा) प 48

जब इस प्रकार व्यक्ति विद्रोही बनके ही उत्पन्न होते है, तब उसे बनी-बनाई लीक पर चलना हानिकारक प्रतीत होता है । वह अपने विकास केलिए नए नए क्षेत्रों तक फैलता जाता है चाहे वह क्षेत्र उसके विकास केलिए उपयोगी क्यों न हो । 'विद्रोही हृदय की यह विशेषता है कि वह अपने विकास मे फैलते हुए नूतन विचारों को अपनाकर भी विद्रो ही रह जाता है, क्यों कि वह अपने काल के अग्रेजी लोगों से भी आगे ही रहता है'[1] । विद्रोही का क्षेत्र इतना संकुचित नही, वह किसी प्रत्येक क्षेत्र तक ही सीमित रहे । वह स कपटताओं ढोगों और ढकोसलाओं के विरुद्ध अपने को खडा करता है । एक दिन था जब ध की सत्ता थी । तब हमारे ढोगी नेता विद्रोह को छोटा दिखाने केलिए कहा करते थे प्रजा व द्रोह धार्मिक नही सामाजिक है । हमे समाज सुधारने का अधिकार होना चाहिए । फिर स की सत्ता हुई, तब वे ढोगी उसका सामना करते हुए डरे, और कहने लगे कि हम राजनैतिक पुर्नसंगठन मांगते है । तब राज शक्ति की सत्ता हुई; और वे कहने लगे हम राजनैतिक अप कब करते है, हम तो केवल अर्थ संकट के विरोधी है । क्षुद्र । क्षुद्र । क्षुद्र । मै कहता हू, ओ, विद्रोहियों, आओ, पहले इसी दंभ को काटो । जानो, समझो, घोषित करो कि हम इस या उस दुव्यवस्था के नही हम इस ऐसेपन के ही, एतादृशत्व मात्र के विरोधी है । हम सभी कुछ बदलना चाहते है, हमारी विद्रोही प्रेरणा धर्म के, समाज के राज सत्ता के, अर्थ सत्ता के और अन्त मे अपने व्यक्तित्व के प्रति विद्रोही है'[2] ।

इस प्रकार एक अन्तः प्रेरणा से उत्पन्न क्रान्तिकारिता के पीछे आस्था हमेशा पनपती यह आस्था या अभिन्नत्व इस भावना को उत्तरोत्तर आगे बढाने मे हमेशा सहायता होती है । इसी के द्वारा वह बहता है तो अपनी इच्छा से बहता है, मरता है तो आत्म-बलिदान की भावना से मरता है, संसार मे अपने को भुलाता है तो अपने व्यक्तित्व को पहचानकर'[3] ।

तटस्थता से उत्पन्न एक प्रकार की घृणा होती है जो व्यक्ति को संकीर्णता की ओर कभी नही ले जाती बल्कि एक तरह का अनाकर्षण तक पहुचा जाती है । जब अनासक्ति का भाव फूटता है तब नए नए युगान्तरकारी बीजों का अंकुर फूटने की संभावना मिलती है । इसलिए शेखर विचारता है - 'मै उस दिन की कल्पना करता हू जिस दिन हमारे देश के -

- -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.27

2 वही पृ.28

हमारे संसार के - क्रान्तिकारी कहलानेवाले व्यक्तियों में ऐसी प्रखर किन्तु शीतल बौद्धिक घृणा जागेगी और वे उससे डरेंगे नहीं, उसे अपनायेंगे, और उसकी प्रेरणा स्वीकार करके संसार पर अपनी छाप बिठा जायेंगे, युगान्तर कर जाएंगे, और फिर भी एक नए युगान्तरकारी विद्रोह का बीज बोजाएंगे ..... क्योंकि विद्रोह अनन्त है, नित्य है, क्योंकि उसके उपकरणों में प्रेम के बाद सबसे बडा और सबसे अमोघ अस्त्र है, यही बौद्धिक घृणा [1]'।

आगे हमें देखना है कि अपने विकास काल में शेखर ने कैसे अपने को पहचाना, परिवेश को पहचाना और इन दोनों के बीच कैसे वह मुक्त होकर रह पाया । बचपन से ही उसमें सच्चाई के विभिन्न आयामों को देखने की प्रवृत्ति मौजूद थी और जब वह सच्चाई के विरुद्ध जो कुछ सुनता है, देखता है उससे समझौता स्थापित नहीं कर सकता था । एक ऐसी घटना उल्लेखनीय है जिसने उसे मजबूरन माँ के प्रति निष्ठूर बनाया । शेखर का भाई कालेज से लापता हो गया । जाँच पडताल के बाद जब वह मिल गया तब उसने पिता का नाम गलत बताया । अपनी वल्दियत गलत बतलाने की वजह से शेखर के पिताजी अत्यन्त दुखित हो बैठे थे । इसी को लेकर माँ और पिताजी के बीच वार्तालाप हो रहा था । शेखर भी पास था । माता के मुँह से ऐसा शब्द सुनकर शेखर वहीं का वहीं रह गया । माँ कह रही थी - सच पूछे तो मैं इसका भी विश्वास नहीं करती[2]'। 'इसका' शब्द शेखर की ओर था' । शेखर रोटी छोडकर उठ गया, कमरे से बाहर ही उसका सारा शरीर शिथिल पड गया, उसके आ अन्धकार छा गया शाम तक वह वहीं वैसा ही पत्थर सा बैठा रहा । खाया पिया कुछ नहीं । माँ आयी, झिडकती रही, फिर अपने को कोसती रही, रोयी, चली गयी । पिता आए, डाँट डपटकर चले गए रात हुई, सब सो गए, सन्नाटा हो गया । शेखर ने अपने कमरे के द्वार बन्द करके कुण्डी चढा ली, बत्ती बुझाई और चारपाई पर बैठकर सुलगने लगा[3] । उस दिन शेखर ने अपनी डायरी लिखा था 'अच्छा होता कि मैं एक कुत्ता होता, चूहा होता, दुर्गन्धमय कीडा - कृमि होता - बनिस्बत इसके कि मैं वैसा आदमी होता, जिसक विश्वास नहीं है[4]' । लेकिन इतने पर भी शेखर के अन्तस् में जो आग जल रही थी, व बुझ न पाई । तब उसने उठकर कहा - 'अई हेट हेर ? अई हेट हेर ? और कपडे पहनक

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.30
2 वही पृ.25
3 वही पृ. 25
4 वही पृ.25

खिडकी की राह बाहर कूदकर घूमने चल दिया । कुछ मील दूर एक बाग मे पहूचते पहूचते उसने प्रतिज्ञा कर ली कि वह माँ की नही मानेगा, उससे कोई संपर्क नही रखेगा, कोई ऐसा काम नही करेगा, जिसमे माँ को बाह्य होकर उसका रत्ती भर भी विश्वास करना पडे'[1] । कुछ देर बाद स्वयं सान्तना देते हुए उसने कहा 'मै योग्य हू, योग्य रहूँगा । उसमे विश्वास की क्षमता नही है तो मै क्यो पराजित हूँगा ?[2] । सहज बचपन की वजह से वह कुछ दिन मे यों यह घटना भूल जाता है । इसलिए एक दिन जब वह पिताजी का मासिक वेतन माँ को दे रहा था और उसने कहा 'माँ आँचल मे ये लो..... बहुत है । माँ को इसकी सुध नही थी और बडे प्यार से बोलती है कि आँचल तो तब फैलाऊँगी जब तुम कुछ कमा के लाओगे इस केलिए क्या ? मगर तुरन्त शेखर के सामने पिछले दिन की घटना घूम आती और वह उसके फैले हुए आँचल की उपेक्षा करते हुए पैसा तिपाई पर छोड देता है और कहता है 'गिन लो'

यह अविश्वास की घटना शेखर को हमेशा घेरती रही और यही घटना अन्य घटनाओं से बढकर ज्यादा ताज़ी बनी रही । शेखर इसके बारे मे कहता है - 'उस दिन के बाद सोते जागते, चैतन्य मे और सुषुप्ति मे, संग्राम और पलायन मे, जितनी अधिक बार अविश्वास के उस भयकर आकस्मिक ज्ञान का चित्र मेरे सामने आया है, उतनी बार कोई चित्र नही आया । मुझे याद है गिरफ्तारी के बाद पहले पहल जब मुझे घर का विचार आया, तब यही था कि माँ सुनेगी तब इस समाचार के प्रति उसका पहला भाव तो विजय का ही होगा, जैसे मै तो जानती ही थी, मै ने कभी विश्वास ही नही किया । फिर वह दुखी होगी, रोयेगी भी, जलेगी भी, पर उसका पहला विचार, चाहे वह कितना भी क्षणिक क्यो न हो और तत्काल ही कितनी भी ग्लानि क्यो न उत्पन्न करे, पहला विचार, यही होगा कि उससे यही आशा होनी चाहिए थी..... और न जाने क्यो, इस विचार ने मुझे बडी सान्त्वना दी थी, एक दम शान्त कर दिया था और पुलीस के अत्याचारो के प्रति सर्वथा निरपेक्ष बना दिया था[3] ।'

शेखर को भी दूसरे लडको की तरह कानवेंट भेज दिया गया । वह बचपन से ही शरारती था । जब लडको के बीच झगडा हो गया और उस कानवेंट के नियम के मुताबिक छा

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.25
2 वही पृ.25
3 वही पृ.26

पिटते नही थे । जब शेखर घर वापस आ रहा था, तब उसके बटन पर एक कोई लगा हुआ था । वह पढ नही सकता था कि कार्ड मे क्या लिखा है । किन्तु अनुमान कर सकता था, क्यो कि सिस्टर ने उसे कहा था इसे अपने पिता को अवश्य दिखावे और उत्तर लेकर आवे और फिर बोली थी 'तुमने बहुत शरारती की है'।[1] शेखर को मालूम था कि उसने शरारत की थी लेकिन शरारत मे सिर्फ वही भागी नही था । दूसरे भी थे । इसलिए उसके बटन पर कार्ड लगाना उस केलिए असहनीय लगा और पिताजी से आकर कहने लगा कि आगे लडकियो के स्कूल मे नही पढना चाहता । पिताजी ने जब अनुमति प्रदान की तो वह अत्यधिक खुश हो जाता है । 'उसे सिस्टर की विनोद भरी आँखे बार बार याद आने लगी, जो उसकी ओर कार्ड के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही होगी । और वह याद उस केलिए कितनी आह्लाद कर थी । वह चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा - उसे करने दो प्रतीक्षा । मै जाऊँगा स्कूल - स्कूल...'[2]।

शेखर के बचपन के साथियो मे एक लडकी भी थी जिसका नाम था फूला जो उसके पडोस की लडकी थी । लेकिन एक दिन इनकी स्वच्छन्दता मे विघ्न पड गया । घर से आज्ञा मिली कि अगर उसके घर जाए तो खाना मत खाया कर । लेकिन यह आज्ञा शेखर केलि प्रश्नचिह्न की तरह हो गई । पूछने पर छोटा सा उत्तर मिला कि वे छोटे जात के है । आगे पूछने पर उसे गालियाँ मिली - 'सिर मत खाओ । तुम्हे जो कहा जाय मान लिया करो, बहुत बाते मत बनाया करो[3] । वह कुण्ठित हो गया । 'उस दिन से वह खेल मे कुछ अलग रहने लगा, विशेषतः जब फूला उपस्थित होती थी । इसलिए नही कि वह विशे आज्ञाकारी हो गया था, केवल इसलिए कि वह चाहता था, पहले कोई हल कर लिया जाय, किसी निश्चय पर पहुँचा जाय[4]'। शेखर के बाल मानस केलिए यह समस्या जल्दी पचनेवाली नही थी । लेकिन जब तक वह समस्य के रूप मे रही उसे सुधारने तक वह सब कुछ जान ले चाहता था । लेकिन यह याद हमेशा बनी रही । जब शेखर जवान हो गया और क्रान्तिकारी दल के नेता भी थे तब एक मित्र के साथ छिपने केलिए दौड रहा था और दोनो तब थक गये थे । एक घर के सामने रुक गये । लेकिन वह आदमी पानी देने केलिए तैयार नही था, क्योकि वह छोटी जाति का था । इन दोनो के हठ करने पर भी वह पानी देने केलिए तैय

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.54
2 वही पृ.54
3 वही पृ.62-63
4 वही पृ.63

नही था, क्योंकि वह छोटी जाति का था । इन दोनो के हठ करने पर भी वह पानी देने केलिए तैयार नही हुए । लेकिन वह आदमी बडा अभिमानी भी था । लेकिन यह अभिमान सर्वत्र मिलता नही है । वयस्क शेखर सोचता है - 'पर चाहे सर्वत्र ऐसा ही होता तो भी वु बात थी । मै जानता हूँ कि यह नही है;कई जगह ऐसी अवज्ञा, यह आत्माभिमान नही है वहा है केवल दैन्य, संपूर्ण दासता वहा माता पिता अपने बच्चों को बोध कराते है अवज्ञा केलिए नही स्वीकृति केलिए झुकना सिखाते है अभिमान से नही दासत्व भाव से । आत्माएँ इस संबन्ध मे इस तरह जकडे गई है कि वे स्वयं नही जानते वे किस श्रृंखला मे बंधे है और स्वयं उसकी कडियाँ पक्की करने मे सहायक होते है[1] '। शेखर सोचता है उस आदमी पानी न देकर जो अवज्ञा प्रकट की थी वह इस समस्या का सर्वोत्तम हल तो नही है, किन्तु एक हल अवश्य है, निश्चित और स्वाभाविक भी[2] । शेखर सोच रहा था कि वह अवज्ञा तत्काल ही सही उचित ही है । इस अभिमान को फैलना होगा और इसका हल करने केलिए यही अभिमान का रूप और भी क्रूर होना है ।

शैशवावस्था से ही शेखर सत्य की खोज मे अतीत तत्पर था । जो उसे दीखता नही जो उस केलिए निरुत्तर लगता है, जो उस केलिए अगम्य जंचता है उन सब पर शेखर जरा भी भरोसा नही रख सकता था । घर के सब लोग मन्दिर जा रहे थे । शेखर को भी जाना पडा मन्दिर जाकर सब लोग देवता का प्रदक्षिण कर रहे थे । लेकिन शेखर वही का वही खडा रहा 'पिता शेखर को अलग खडे देखकर साथ आने का इशारा करते है, पर वह अपने स्थान से नही हिलता । पिता दुबारा नही बुलाते, लेकिन शेखर जानता है कि बात वहा समाप्त नही हुई है[3] । वापस आने वक्त पितजी ने पूछा कि 'शेखर, तुमने मेरा कहा क्यों नही माना ?'। लेकिन बडे दिनों की शक्ति राह पाकर फूट पडी :- 'मै ईश्वर को नही मानता । मै प्रार्थना भी नही मानता । भवानी झूठी है, ईश्वर झूठा है, ईश्वर नही है[4] । यह कहने के कारण शेखर पिट गया । लेकिन वह खुश था । क्योंकि जिस पर उसका विश्वास नहीं, उसे खुले-आम बताना और अपने विश्वासों के बल-बूते पर चलना शेखर के अहं को तृप्ति की बात बनती । 'वह विश्वास केलिए पिटने का प्रज्वलित आनन्द और वह अपूर्व विजय[5] । उस

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा) पृ.65
2 वही पृ.65
3 वही पृ.91
4 वही पृ.91
5 वही पृ.91

उस केलिए अपरिमेय था । अपने विश्वास को वह बार बार दुहराता है कि ईश्वर नहीं, ईश्व नहीं, वह अंतोष प्राप्त करता है ।

टाइप बनकर दूसरो के समान जीना वह पसन्द नही करता था । इस अपूर्व विचा ने उसका स्कूली जीवन भी समाप्त कर दिया । क्यों कि शेखर का व्यक्तित्व उद्दण्डता की सीम को पार कर लेता था । क्लास मे मानिटर होने की वजह से, क्लास मे शोर मचाने के नाम प जब सिर्फ उसको दण्ड दिया गया, तब उसने मास्टर को भी धकेल देकर उस पर भी अपनी वि को दिखाना चाहता है और उसे 'उल्लू' कहकर तीर की तरह क्लास से बाहर आता है और वह से स्कूली शिक्षा का समापन हो जाता है । 'इससे उसके चरित्र मे त्रुटियाँ अनेक रह गई, लेकिन एक शक्ति भी उसने पाई जो स्कूलो मे कम मिलती है, उसने अकेले होने की सामर्थ्य प[1]

शेखर के हर छोटे व्यवहार मे प्रथम दर्शन मे जो उद्दण्डता दीखती है, वह वस्तुतः उद्दण्डता न होकर न्याय के प्रति उसका आग्रह है । अनीति के प्रति उसका विद्रोह है । लोग नादान बच्चा समझकर उसको नकारते थे और यही नकार शेखर केलिए हमेशा असह्य बनता जा रहा था क्योंकि वह हमेशा सरासर अन्याय था । शेखर के पडोस मे आमो का एक बाग थ 'एक दिन शेखर ने माली से कहा 'हमे आम दो' । लेकिन माली माननेवाला नही था और उसने बताया कि 'बबुआ कल तोड़ूंगा वो आम, और डाली लगाकर साहब के पास ले जाऊंगा', यही शेखर को रुचता नही था 'साहब के पास शेखर को सरासर अन्याय लगा कि आमो को चाह वाले शेखर से छीनकर आमो की उपेक्षा करनेवाले उसके पिता के पास जाय[2] । शेखर पेड पर चढ गया । माली का विचार था कि शेखर पेड पर नहीं चढ सकता है । लेकिन शेखर के हाथ पैरो मे क्रोध का बल था । वह उपर पहुंचा, आराम से एक डाल पर बैठा और चुन चुनकर पके आम खाने लगा[3] । जब पेट भर गया तो उसने कच्चे, अधकचरे पके सब आमो को मुह से जूठा करके फेंकने लगा । माली के कहने पर भी वह उतरा नही । इस घटना के बारे मे सुनकर भी शेखर के पिता से वह पिट नही गया और यही एक घटना थी कि वह पिटने से बच गया था ।

- -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.95
2 वही पृ.107
3 वही पृ.107

असहयोग आन्दोलन एवं गांधीजी का प्रभाव शेखर में बहुत गहरे ढंग से पड गया उसने विदेशी कपडे उतारकर रख दिये, जो दो चार मोटे देशी कपडे उसके पास थे, वही पहनने लगा[1]। शेखर के मन में विदेशी मात्र के प्रति घृणा हो गई। उसने देखा कि हमारी नस - नस में विदेशी का प्रभुत्व ही नहीं, आतंक भरा हुआ है। उसे पुरानी बातें भी याद आयी और नई भी, वह देखने लगा उसे यह भी ध्यान हुआ कि पिता उसे घर में भाइयों से अंग्रेजी में बात करने को कहा करते हैं, यह भी कि वह शैशव से अंग्रेज़ी बोलना जानता है, पर हिन्दी अभी सीख रहा है। शेखर ने देखा कि मातृभाषा वह है जो हम सबसे पहले सीखते हैं, तब तो अंग्रेज़ी ही उसकी मातृभाषा है। और विदेशी ही उसकी माँ उसके आत्माभिमान को बहुत धक्का लगा[2]। अपनी मातृभाषा हिन्दी और गांधीजी के प्रति अतीव प्रेम और आदर उत्पन्न होने के कारण उसने एक राष्ट्रीय नाटक भी लिखा। इन विचार धाराओं का प्रभाव शेखर पर सीमातीत था। 'जब वह एक दिन पिताजी के साथ दौर पर जा रहा था। पास से एक लडका आया और उसने शेखर की ओर मुडकर अंग्रेज़ी में बोला - 'तुम्हारा नाम क्या है ? शेखर ने सिर से पैर तक उसे देखा। लडका एक अच्छा सा सूट पहने था; सिर पर अंग्रेज़ी टोपी। और उसके स्वर में अहंकार था, शायद वह अपने अंग्रेज़ी ज्ञान का परिचय देना चाहता था। शेखर को प्रश्न बुरा और अपमान जनक लगा। उसने उ[त्तर] नहीं दिया। कुछ इसलिए भी नहीं दिया कि पीछे पिता थे और पिता की उपस्थिति में बात करने वह झिझकता था...[3]। शेखर को पिता ने भी उकसाया जवाब देने केलिए। लेकिन पिताजी के उकसाने में कोई प्रेम या प्रेरणा नहीं बल्कि वे उस लडके को यह जवाब केलिए उकसा रहे थे कि अपना लडका भी अंग्रेज़ी जानता है। इसलिए शेखर और भी चुप हो गया। बोला कुछ नहीं।

जब गांधीवाद का प्रभाव शेखर पर एक हद से आगे बढ गया तो उसके पिताजी कभी कभी हँसी में कभी उपदेश के रूप शेखर का ध्यान इन विचारधाओं से अलग हटाने की कोशिश हमेशा करते थे। एक दिन पिताजी ने शेखर से हँसी मज़ाक के बीच पूछा 'कोई तुम्हारे गाल पर एक थप्पड लगाए तो क्या करोगे ? शेखर ने भी बिना किसी हिचक से बता दिया दूसरा गाल भी दिखा दूँगा। दूसरे दिन से जब कोई आया तो शेखर पिताजी यह

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.115
2 वही पृ.116
3 वही पृ.117

दिखाना चाहते थे कि अपना बेटा भी बडा गांधीवादी बन गया है । शेखर को यह प्रदर्शन बहुत बुरा लगता था । इसलिए जब कभी उसे बुलाया जाता तब बिना कुछ रुचि लिए वह जाता था और लौट आता था । एक दिन दुबारा एक बैरिस्टर साहब आया । पिताजी ने बुलाकर यही प्रश्न पूछा । कुछ देर वह चुप रहा । वह कहना नही चाहता था । लेकिन पिताजी की गाली भी आ गई तो उससे रहा नही गया और उसने तुरन्त उत्तर दिया 'मै उसके दोनो गालो पर लगाउंगा । उसके स्वर मे हिंसा थी, दृष्टि मे रोष, मानो वे काल्पनिक दो थप्पड वह बारिस्टर साहब के फूले गालो पर लगा रहा हो, लेकिन बात कहते ही उसने जो लम्बी सांस ली, उससे कितनी गहरी हताशा, कितना प्रगाट नैराश्य था वह किसने समझा ?[1] शेखर ने अपने हाथो लिखा राष्ट्रीय नाटक को भी फेंक दिया और इस घटना ने उसको सब कु भुलाने को मजबूर किया यहां तक उसके पिताजी भी उसका उपास्य था, वह भी उसने भुला दिया ।

शेखर एक जीवनी पहले भाग के चतुर्थ खण्ड (पुरुष और परिस्थिति) से लेकर हम वयस्क शेखर की जीवन-गाथा से परिचित हो जाते है और उसमे समुचित ढंग से उत्पन्न और विकसित विद्रोहात्मकता और क्रान्तिदर्शिता का आकलन भी किया गया है । बचपन मे शेखर के व्यवहार मे, एक विशेषता पाई जाती थी जो कही कही उद्दण्डता या निरी मूर्खता तक की सीमा को छू जाती थी । लेकिन वे सब निरी उद्दण्डता या निरि मुर्खता न होकर आगे आनेवाले समय केलिए एक सुदृढ व्यक्तित्व को बनाने की कोशिश मात्र थी ।

मैट्रिक की परीक्षा देने के बाद शेखर मद्रास के कालेज मे अपने को भर्ती कर लेता है। पिताजी के आज्ञानुसार शेखर ब्राह्मणो के होस्टल मे रहता था । लेकिन वहां उसको लेकर षड्यंत्र एवं कानाफूसी हो रही थी - उसके ब्राह्मणत्व के लेकर । 'वह ब्राह्मण है, उसका नाम भी चन्द्रशेखर पंडित है, लेकिन उसकी चोंटियां कहां है ? जनेउ कहां है ? वह अपना पू पाठ कब और कहां करता है ? उसने ईश्वर का सबसे बडा उपहार - द्विजत्व पाया होगा, लेकिन अपने आचार से उसे खो दिया है ; वह भ्रष्ट है....[2] । अलग प्रबन्ध किया जाय नही तो वे होस्टल छोडने केलिए बाध्य होंगे । निर्णय के अनुसार शेखर की जीत हुई । जीत होने पर भी उसने यह निश्चय किया कि वह इस होस्टल मे नही रहेगा ।

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा) पृ.126

2 वही पृ.207

हृदय को दिलासा और आराम केलिए शेखर मलबार प्रदेश की ओर सैर केलिए निकलव है और उसने सुना था कि इस प्रदेश मे अछूत ब्राह्मण के पारा दायरे के भीतर नही आ सकते इसी प्रदेश से उसने एक अछूत को महिला जो चोट खाकर कराह रही थी, अस्पताल पहुंचाया लेकिन वह बच न सकी । शेखर को खबर मिली कि वह एक अछूत महिला थी जिसको किसी ने मारा था । यह खबर पढकर ब्राह्मण नाम से ही उसको घृणा पैदा होने लगी । उस अछूत महिला के हत्यारे थे । ब्राह्मण जिन्होने उसके पास आने की छूत से बचने केलिए, स्वयं उसके पास जाकर पत्थरो से मारा होगा .....[1] मलबार से लौटकर तुरन्त बाद शेखर दूसरे होस्टल मे चला गया, जहा अछूत कहलाने वाले विद्यार्थी रहते थे । इसी होस्टल मे आकर शेखर अपने कुछ मित्रो के साथ एक समिति की शुरुआत करता है । एक समतल उजाड भूमि के मध्य मे जिसे होस्टल के छात्र अपने 'प्लेगाउड' कहते है, अछूतो का तिमंजिला होस्टल खडा है, और छत के पक्के फर्श पर बिना कुछ बिछाए चार लडके लेटे है । यह शेखर की नामहीन समिति की कार्यकारिणी है । कार्यकारिणी कहने का अभिप्राय इतना ही है कि इन चारो मे अशान्ति भीतरी है, वे जाग रहे है और आसपास देखकर स्वभावतया चिन्तित है ....[2] '। प्रस्तुत समिति शेखर का पहला सोपान है जिसका कार्यकर्ता बनकर वह सबसे अकेला होता है - याने एक अभिनव क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को बनाता रहता है । इस समिति का उद्देश्य समाज सुधार है । और शेखर परिवर्तन को परम आवश्यक एवं उसे सारे क्षेत्रो केलिए लागू बनाने के पक्ष मे है । 'मुझे लगता है कि इस तरह के आमूल परिवर्तन न करने मे खतरा है । यह मै नही कहता कि केवल सतह पर सुधार किया जाय, वह भी बेवकूफी हू । परिवर्तन होना मूल मे ही चाहिए लेकिन वहा जहा पर बुराई साफ लक्ष्य हो, केवल तर्क से सिद्ध करके दीखनेवाली नही[3] ।

शेखर के चरित्र मे क्रान्तिकारिता का उत्स हम इसी अवस्था मे देखते है । क्योकि जब वह कहता है कि 'ध्वंस को मै गलत नही मानता, न उसे हिंसा ही कहता हू । हिंसा वही है जहा प्रेरणा हिंसा की है, जहा अनिष्ट करने की चेष्टा है । इस केलिए की हुई हत्या भी हिंसा नही है, बशर्ते की वह इष्ट व्यक्ति का नही सृष्टि मात्र का हो[4] । जिस कार्यकारिणी समिति का निर्माण शेखर ने किया उस समिति का पहला निर्णय यह था कि सर्व

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.210

2 वही पृ.211

3 वही प 212

प्रथम नौजवानों को जगाया जाए और उनके जीवन को सोद्देश्य बनाय जाय । शेखर की कोशिश की वजह से एक रात्रि-पाठशाला खोल दी गई । उनकी समिति के सामने समस्यायें - सामाजिक समस्यायें अधिक स्पष्ट होने लगी । शेखर का विचार था 'जिस प्रकार नौजवानों को जगाने की जरूरत है, उतना ही स्त्रियों को जगाना चाहिए । इस पुरुष प्रधान सभ्यता क अपनी संपूर्णता में सन्तोष तोड देना होगा, उसका यह औचित्य का दावा झूठ कर दिखाना होगा, तभी हमें आगे बढने का मार्ग मिलेगा । यह नारी मात्र में अविश्वास, नारित्व को ही पापात्मा मानने का संगठित षड्यंत्र नष्ट करना होगा[1] । 'एंटीगोनम क्लब', जो उस समिति का नाम था जिसका निश्चित कार्यक्रम बनने लगा और उसका एक हस्तलिखित पत्र भी निकालने का निश्चय किया गया और शेखर पूर्ण रूप से उस केलिए जी रहा था । तभी एक घटना घटी जिसने शेखर को अस्त-व्यस्त कर दिया । उस समिति का एक सदस्य राघवन अपनी शादी केलिए घर जा रहा था । जिस आदर्श नौजवानों को जन्म देने केलिए 'एंटीगोन क्लब की शुरुआत हुई थी उसी का एक प्रमुख सदस्य अपने आदर्शों से पदच्युत हो जाय, यह शेखर केलिए असह्य था । राघवन का दावा था माता पिता ने उसे पाला-पोसा, बडा किय पढाया तो उनके प्रति उनका अपना एक ऋण भी तो है । शेखर केलिए यह दावा इतना अर्थहीन लगा और वह कहता है ' मजबूरी, हां मजबूरी । तब माता-पिता को क्यों बदनाम करते हो ? मजबूरी उनकी ओर नहीं है, तुम्हारी ओर से है, इस सूत के भीतर दुबकी हुई मिमियाती भेड़ की लाचारी है[2] । एक तरह से शेखर का हृदय बैठ ही गया जिस आन्दोलित हृदय के साथ वह पत्रिका के संपादकीय लिखने लगा । वह एक ऐसे युग का चि है, और उसके विरुद्ध अकेले लडनेवाले एक विद्रोही व्यक्तित्व का सच्चा एवं साफ चित्र हमें उपलब्ध होता है । 'प्रत्येक भारतीय नौजवान अपनी शादी पर पछताता है, और प्रत्येक उ केलिए मां-बाप को दोषी ठहराता है । मैं तो नहीं चाहता था, लेकिन मां बाप ने जोर दिया, परिस्थिति ऐसी हो गई .... इत्यादि । इसका अर्थ यही है कि प्रत्येक भारतीय नौजवान अपने मां-बाप का गुलाम है । और चाहते है, शासक की गुलामी से निकलना, समाज की गुलामी से निकलना, अज्ञान की और प्रकृति की गुलामी से निकलना - स्वयं परमात की गुलामी से निकलने की बात करते है वे । वे जो जीवन के अन्धकूप में खचाखच भरे हुए और जो अपने उपर कुटुम्ब रूपी ढक्कन देकर उस अन्धकूप को और भी अंधेरा और प्राणघातक बना रहे है ...[3] ।

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.219
2 वही पृ.223
3 वही पृ.224

समाज के साथ निभने केलिए वह तैयार था । लेकिन समाज ने जिन रुढियो का निर्माण किया, वह उस केलिए असहनीय और बेगाना ही लगा । उसके खोखलापन को वह समझ देता है । रात्रि - पाठशाला के एक समारोह मे अभिभूत होकर शेखर भाषण देता है और उसके शब्दो मे कही चोट है, कही विद्रोह, कही गहरी वेदना है । जो भी हो उसमे एक पूर्ण व्यक्तित्व का संपूर्ण चित्र उभारा गया है । शेखर का भाषण द्रष्टव्य है 'जिन लोग के साथ रहना और खाना मै ने स्वयं चुना है, ये सभी अछूत है, अदर्शनीय है, लेकिन मै आप से कहता हू, उनमे मै ने मित्र पाये है, भाई पाये है । कोई उन्हें पूछता नही है, देखता नही है, उनके पास नही जाता है, इसलिए उनके दिल सच्चे है, ताजे है और आग से भरे है । उन लोगो से कोई बात नही करता, इसलिए उनमे अनुभूति और भी तीखी है आप ही वे लोग है, आप ही मेरे संगी और स्नेही है । आप ही मेरा कार्यक्षेत्र है, और आप ही मेरी शक्ति । मै ने आपको अपनाया है, पहचाना है और मै इसमे सुखी हू[1] ।

वस्तुतः अविश्वास करने की प्रवृत्ति और ध्वंस की भावना शेखर मे नही है । लेकिन जहाँ जहाँ शेखर को अपने पैर रखने का अवसर मिला सब कही शेखर को असामाजिक नाम से अभिहित होना पडा । जिस वास्तविक सत्य को वह जानना चाहता था, वहाँ परिवार एवं समाज के परिवेश ने उस केलिए सत्य का धूमिल चित्र ही प्रदान किया जिससे वह असंतुष्ट था और यही असंतुष्टि शेखर को क्रान्तिकारी बना देती है ।

'शेखर एक जीवनी' के दूसरे भाग मे शेखर का सत्य की ओर जो संचरण है, वह चित्रित है । वयस्क शेखर मे वैज्ञानिकता की ओर अधिक झुकाव है । इसलिए उसे सब कही पराजय का सामना ही करना पडता है । अपनी पढाई केलिए शेखर मद्रास से सुदूर उत्तर प्रान्त पंजाब आ पहुंचता है । जब पहली बार शेखर की नजरे पंजाब के लोगो पर पडी तो उसे विश्वास हो गया 'ये आदमी मर्द है, इनके साथ काम हो सकेगा, ये लडाई मे कंधे से कन्धा भिडा सकेंगे[2] । लेकिन वस्तुतः शेखर को पंजाब के विद्यार्थी जीवन से परिचित होने के उपरान्त निश्चित रुप से कहना पडा 'पंजाब का विद्यार्थी जीवन इतना पतित है, मै नही जानता था । मै ने समझा था, इन हट्टे-कट्टे शरीर के लोगो मे कुछ सार होगा,

- -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.229

2 वही (दूसरा भाग) पांचवा संस्करण - पृ.9

पर सब सडे हुए है, सडे हुए..[1] । [redacted] स्त्रियों की चर्चा कभी होती थी तो एकवचन में - नारी सभ्यता की धुरी है, नारी सभ्यता की संचालिका है, नारी इस पुरुष प्रधान सभ्यता का केन्द्र है, नारी यह है, वह है..... संभवतया इसका कारण यही था कि इस दल के सदस्यों मेंएक ही स्त्री थी और वही इस दल की नेत्री थी जिसका नाम था मणिका'[2] । शेखर ने इस दल में भी अपने को कुछ समय केलिए पाया । आखिर शेखर को भी दल नेत्री के निम्न लिखित शब्दों के इस निर्णय पर पहुंचना पडा - 'मेरे यहां आनेवाले लोगों में बुद्धि तो है पर चरित्र नही । इस केलिए मुझे भी दुख है । हमारे दांत तो बडे बडे है, पर आंते नही है - कौर बहुत बडा ले लेते है, पर पचा नही सकते...[3] । लेकिन मणिका से एक बात उसने मालुम किया, 'चमडी के नीचे सब एक से है - सब पुरुष, सब स्त्रियां - पुरुष और स्त्री, स्त्री और पुरुष.......[4]।

कांग्रेस के अधिवेशन के दौरान स्वयंसेवकों की मांग हुई और शेखर ने अपना नाम दे दिया । क्योंकि वह अपने जीवन को बहुत कुछ व्यवस्थित करना चाहता था जो अपने वैयक्तिक एवं परिवेशगत उलझनों में उलझ चुका था । उसे स्वयं सेवकों का सरदार बना दिया गया । लेकिन शेखर ने जिस नियमित एवं व्यवस्थापित वातावरण को देखना चाहा वह बिलकुल गलत निकला । वहां आये हुए छात्रों के बीच यही विचार था कि जब स्वयं स्वयंसेवक बन ही गए और वर्दी केलिए भी आधी जीवन दे चुके, तब कोई कारण नही कि उनसे काम की आशा की जाए और कांग्रेस की तमाशा न देखने दिया जाय । 'सप्ताह में तीन बार उन्हे शहर में अपने घर जाने की भी आवश्यकता थी - वे इस जंगल में ठिठुरकर मर नही आए थे । काम दिन में होता है, रात को वे चाहे कहीं भी सोये किसी को क्या ? और फिर, कांग्रेस नगर में सिनेमा तो है नही शहर जाना होगा, कैम्प में ताश या चौसर ही तो खेली जा सकती है[5] ।

अधिवेशन नगर में कुछ ऐसे भी लोग आए हुए थे जिन्हे प्रतिनिधि या दर्शक कहे तो ठीक होगा जिनका यही विचार था कि खेमे का किराया देकर सारा स्वयंसेवकों को नौकर रख

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.26
2 वही पृ.14
3 वही पृ.17
4 वही पृ.19
5 वही पृ.34

लिया है । 'समय - असमय पर उनकी माँग आती थी कि पेट में दर्द है, सेंक देने केलिए, स्वयं सेवक चाहिए, ज्वर है, रात में पास रहने केलिए, दो स्वयं सेवक चाहिए, हाजमा दुरुस्त नहीं है, वालंटियर भेजे कि कमोड साफ कर दिया करे स्वयं सेवक किसी काम को क्षुद्र न समझे - तुम्हें मालुम है, आफ्रिका में महात्मा गांधी स्वयं मल ढोते थे । तुम उनसे बडे तो नहीं हो'[1]। अनुशासन से दबे शेखर ने एक दिन इसका विरोध किया । विरोध वस्तुतः अनुशासन था मगर वह निकला विरोध के नाम से अभिसिक्त होकर । तम्बुओं के अन्दरतीन चार बार जुआ खेलती हुई टोलियों को पाई गई और आखिर शेखर को मजबूरन उन्हें अपनी वर्दी देकर कैम्प के बाहर निकालना पडा और इस पर कुछ छात्रों ने विरोध किया और उन लोगों ने सेनापति के पास अपील की । सेनापति की बात सुनकर शेखर की अनुशासन संबंधी सारी धारणायें उलट-पुलट गईं । व्यवस्था और राज-नीति के नाम पर जो ढोंग चल रहा है उसका साफ-सुथरा रूप शेखर को मिल ही गया । सेनापति के शब्द उल्लेखनीय है - 'देखो भई, दस-पद्रह दिन की कुल बात है । किसी तरह मिल-मिलाकर बरतना है । किसी को नाराज़ करने का क्या फायदा ? गुजारा ही तो करना है'[2] उनके लिए यही 'गुजारा' संगठन एवं अनुशासन का नाम है । इसलिए शेखर पूछ लेता है 'गुजारा'? आह, गुजारा करना चाहते है? तब यह सब वर्दियाँ क्यों ? संगठन क्यों ? ओहदे क्यो ? आप क्यों सुनहरी बिल्लेवाली वर्दी कसकर और तलवार लगाकर बैठे है ? आप जैसा गुज़ारा करना चाहते हो कीजिये । मुझे उससे कोई सरोकार नहीं होगा[3] । इतने पर भी शेखर अपने काम पर बहुत ठीक ही करता है और अनुशासन को अपना धर्म समझता है । शेखर एक आदमी को बदली देने केलिए रात के वक्त अधिक काम करता है वही पकड लेता है । राजनैतिक कैदी होकर कैद किया जाता है ।

जेल के जीवन से शेखर ने बहुत कुछ सीख लिया । विद्याभूषण और मदनसिंह ने उसे बहुत कुछ सिखा दिया । शेखर के दिन में अहिंसा की ओर अधिक झुकाव था जिस को एक तरह से गांधीवाद का ही प्रभाव मानना ठीक है । लेकिन विद्याभूषण की बातों से उसे बहुत राहत मिली जो हिंसा को अनिवार्य मानता था । 'कई बार हिंसा इतनी नितांत आवश्यक होती है कि उचित हो जाती है - या यों कह लो कि इतनी उचित होती है कि आवश्यक हो जाती है । वास्तव में वह तब हिंसा रहती नहीं[4] । विद्याभूषण

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.35

2 वही पृ.38 -3- वही पृ.38 -4- वही पृ.56

आगे शेखर को समझाता है - 'सामाजिक से मेरा मतलब किसी एक समाज का नहीं है । मेरा मतलब उस सारे संगठन से है जिसका एक अंग हम - मानव मात्र है । इस दृष्टि से जहाँ अहिंसा हो सकती है, वहाँ राह चलते, गेहूं की एक बाल तोड़कर फेंक देना हिंसा होगी क्योंकि वह कर्म उस विश्व समाज का कोई हित नहीं करता उल्टे थोड़े से हित की संभावना को नष्ट कर देता है[1] । मदनसिंह की निकटता के माध्यम से शेखर अपने को और अधिक जानने की कोशिश करता है । मदनसिंह के सूत्र आग में तपे हुए सोने के समान है क्योंकि उन्होंने अनुभव किया था, जाना था, स्वयं भोगा था । मदनसिंह के ही समान शेखर को प्रभावित करनेवाले पात्रों में रामजी है जिनमें जीवन के प्रति आस्था है और मोहिसिन है जिनमें फक्कड़पन लक्षित होता है । इन पात्रों के बारे में अज्ञेय का कथन इस प्रकार है 'राम जी और मदनसिंह शेखर के दो विशेष पात्र है, दोनों में ऋजुता है जीवन के प्रति एक दिव्य भाव है । लेकिन उस स्वीकार के पीछे जाइए तो दोनों में मौलिक अन्तर है । रामजी का स्वीकार सहज आस्था का स्वीकार है । उसके कुछ नैतिक मूल्य या प्रतिमान है, जिनके सहारे वह चलता है , उनकी शालीनता उसकी आस्था का प्रतिबिंब है । मदनसिंह की ऋजुता उनकी सहज नहीं है । वह दुख से मंजकर बना हुआ व्यक्ति है, उसकी जो दृष्टि मिली है वह बहुत अन्धकार में टोकने के बाद मिली है । मदनसिंह की शालीनता विजय 'ह्यूमिलिटी' का प्रतिबिम्ब है । एक तीसरा पात्र मोहिसिन है : उसमें भी ऋजुता है वह उसके फक्कड़पन का प्रतिबिम्ब है[2] ।

हिंसा और अहिंसा को सामाजिक संदर्भ में देखते हुए अनुभवी मदनसिंह शेखर को समझाता है मैं ने कहा कि अहिंसा ठीक है, पर उसकी परिभाषा ठीक हो तभी सफल भी वह तभी हो सकती है । मुझे लगता है, अहिंसा उपयोगी तभी होगी जब वह अनाक्रामक अहिंसा हो.... यह स्पष्ट है कि अहिंसा केवल पारिभाषिक अहिंसा है क्योंकि अहिंसा मे तो आक्रमण की भावना नहीं होनी चाहिए, आत्मरक्षा केलिए भी नहीं दूसरी ओर हिंसा आक्रामक हुए बिना भी, केवल स्वरक्षात्मक होकर भी सफल हो सकती है । .... आप जानते है कि कानून भी स्वरक्षात्मक हिंसा को मानता है[3] । शेखर के जेलजीवन के बीचों बीच बाबा मदनसिंह का निधन हो गया जिनसे उसने बहुत कुछ पाया ।

---

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.56
2 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.66
3 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.76

शेखर के आन्दोलित हृदय में मदन सिंह ने स्थिरता का संचार किया। यही तक मदनसिंह का अन्तिम सूत्र भी शेखर केलिए प्रेरणादायी था। 'अभिमान से भी बडा दर्द होता है, पर दर्द से भी बडा एक विश्वास'[1]। उसी विश्वास केलिए बाबा ने जिया था और आगे शेखर भी जीता है।

जेल से रिहा होकर बाहर आने पर शेखर के सामने कोई ठोस कार्य करने को नही था। पढाई आगे नही हो सकती थी। और शेखर ग्वालमण्डी में एक कमरा लेकर रहने लगा। शेखर के हृदय में साहित्य सृजन की ओर अधिक झुकाव था। वह चाहता था कि कुछ ऐसा लिखे जिससे क्रान्ति केलिए उसके द्वारा उत्प्रेरक संभावना जुड सके। 'एक पक्षीय नही सर्वतोमुखी क्रान्ति। जो क्रान्ति एक दिशा में तभी बढती है जब दूसरे मार्ग बन्द कर ले, वह क्रान्ति नही है। हम जो इतनी हलचल के बाद भी आगे बढ नही पाते उसका यही कारण है कि हम प्रगति को कृत्रिम प्रणालियों में बहाना चाहते हैं[2]। शेखर जेल में मदनसिंह जैसे अनुभवी व्यक्ति के साथ रहने के कारण क्रान्ति की भूमिकाएँ तैयार करने का अवसर भी प्राप्त हो चुका था। इसलिए शेखर समाज में वर्तोन्मुखी क्रान्ति को वांछनीय समझता है जिस केलिए उसने साहित्य को ही उचित समझा जो सामाजिक, राजनैतिक धार्मिक एवं आर्थिक क्षेत्रों तक क्रान्ति फैलाने की क्षमता रखता है।

सामाजिक क्षेत्र में क्रान्ति की उद्भावना करते हुए शेखर की साहित्यिक रचना 'हमारा समाज' तैयार होता है। लेकिन शेखर के मन में जितनी आकांक्षायें थी वह सब टूट टूट कर बिखर गई, क्योंकि 'हमारा समाज' जो क्रान्ति को जुडाने की सामग्री का संग्रह है वह प्रकाशकों की दृष्टि में नगण्य निकलता जा रहा था। कोई कहता -'साहब हमारे यहाँ तो प्रतिष्टित लेखकों की ही चीज़ छपती है। आप जानते हैं, हम यहाँ के प्रमुख प्रकाशक हैं, हमें अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखनी है। बिलकुल नये अनजान लेखक का प्रकाशन हम कैसे जिम्मे ले सकते हैं[3]। इस प्रकार 'हमारा समाज' को अप्रकाशित रूप में रहना पडा।

---

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.95
2 वही पृ.125-26
3 वही पृ.126

शेखर से मिलने जब उसके पिता आते है और वह पिता के सामने अपनी परिपाटियों के बारे मे बताता है । पिताजी यही चाहता है कि शेखर व्यवस्थित रूप से कुछ करे । लेकिन शेखर कहता है - 'मुझे कुछ कमाना - जोडना नही है । लिखना है, तो वह भी पैसा जोड़ने केलिए नही । वह साधन होगा एक बडे उद्देश्य का - मै अपने समाज की, अपने आसपास के जीवन के अंगों की व्यवस्था अदल देने का व्रत ले रहा हूं - यह तो आप भी मानेंगे कि परिवर्तन आवश्यक है और नही तो इतना तो आप मानेंगे ही देश को स्वाधीन होना चाहिए'[1] । शेखर के पिता के अनुसार वही जीवन था जो अधिक मे अधिक 'सेक्योर' हो । जीवन मे सिक्योरिटी बडी चीज है । लेकिन शेखर का इस कथन केलिए वास्तविक उत्तर मौन ही था । घर बसाकर जीना, कमाना, चने की जिन्दगी की कामना रखना, चैन से रहना, जिन्दगी को ढग के ढाचे मे समेटना शेखर अपने मिशन के विरुद्ध समझता है । इसलिए पिताजी के सामने खुल्लम खुल्ला स्वीकार करता है । 'पर मै तो 'सिक्योर' होना नही चाहता । आप घर-गिरस्थी, निश्चित आमदनी और सिक्योरिटी की बात कहते है, मुझे यही जीवन के रोग लगता है - इन्ही से तो मै बचना चाहता हूं[2] । शेखर परावलंबित होकर जीना नही चाहता । आज की जो सभ्यता है वह मनुष्य को मुर्दा बनाकर ढकोसलाओं की बैसाखी मे खडा करके दिखाना चाहती है । इसलिए शेखर कहता है - 'यह सभ्यता तो ढकोसला है । सिक्योरिटी, सुख, शान्ति और उन्नति की सब बातों का असली मतलब यह है कि मानव का बचपन लम्बा होता जाता है । जो जितना सभ्य है, उसकी बचपन की अवस्था उतनी लम्बी है । सभ्यता तो परावलंबिता का नाम बन गया है[3] ।

शेखर एक समाज सुधारक सभा मे बोलने जाता है जहां वह अपने विश्वासों को प्रमाण देकर साबित करता है । लेकिन बेचारा शेखर बाद मे ही समझ लेता है कि सभा का कार्यकर्ता अमलोघ राय अपनी लडकी से शेखर का विवाह भी कराना चाहता था । शेखर अपने को बहुत कोसता है और यहां तक कि इस प्रकार की सभाओं से बचने लगा । लेकिन जब वह सुनता है कि उसका 'हमारा समाज' सुधार मांगता है और वह सुधार भी अमलोघ राय द्वारा होनेवाला है तो तुरन्त अपनी कापी मंगवाकर ही चैन की सांस लेता है । वह

---

1 शेखर एक जीवनी (द्.भा.) पृ.138
2 वही पृ.141-42
3 वही पृ.142

यही चाहता है कि वह बिना प्रकाशन पाए ही रह जाए क्योंकि ढोंगी समाज सुधार को के सुधार के साथ अपना व्यक्तित्व को नष्ट नहीं करना चाहता । अपनी क्रान्ति की आग को ढोंग की कीचड में झोंकर नाचीज़ बनाना वह नहीं चाहता है । क्योंकि शेखर के अनु

रामकृष्ण नामक क्रान्तिकारी व्यक्ति के साथ मिलने के बाद शेखर के जीवन में कुछ व्यवस्थापित ढंग के संचालन का दौर शुरु होता है और वह क्रान्तिकारी कार्यवाई केलिए अपने को समर्पित कर देता है । शशि भी उसकी सहायता कर लेती है । वह भी सभाओं में बोलने जाती है और शेखर देखता है कि शशि में विद्रोह की आग कम नहीं है । जब वह कहती कि 'हम लोगों की नैतिकता भौगोलिक नैतिकता है...... इसलिए हमारी नैतिकत निष्प्राण है ; उसका अन्तिम प्रमाण कोई जीवित सत्य नहीं, केवल एक रेखा है, एक निर्जीव और पिटी हुई लीक इस नैतिकता के मूल में निषेध है, इसलिए यह स्वयं नकारात्मक है ।[1] शेखर की क्रान्तिकारिता की अनुगूंज हम शशि के तपे हुये शब्दों में पाते शेखर शशि के साथ के अपने जीवन को सार्थक समझता है । लेकिन यह सार्थक जीवन अधिक काल तक नहीं रह जाता । शशि की मृत्यु हो जाती है । लेकिन शेखर अपना कार्य क्रम बन्द नहीं कर देना । उसके आगे एक लम्बी - चौडी समस्या थी । देश की आजादी, समाज की क्रान्ति । क्रान्ति के आह्वान के आगे शेखर अपना सिर झुका लेता है । क्योंकि क्रान्ति शेखर के व्यक्तित्व का ही विलयन है ।

(2) <u>शेखर एक जीवनी में प्रेम की भावना</u>

शेखर एक जीवनी में एक रोमान्टिक वातावरण वर्तमान है । बहुतेरे आलोचक अज्ञेय को सक्रान्तिकालीन लेखक मानते हुए लिखते हैं अज्ञेय का रचना संसार एक अपमिश्रित, घाघ (सोफिस्टिकेटेड) आदमी की खोज से शुरु होता है और एक उम्र कारक शान्ति चाहनेवाले आदमी की अक्ष उपलब्धियों में समाप्त हो जाता है। सामान्य आदमी बनाम बौद्धिक अपमिश्रित आदमी - यह तफरका अज्ञेय के यहाँ हमेशा मिलेगा । अज्ञेय ने सर्वत्र (जान बूझकर 'विशिष्टतावादी' प्रभाव से) अपमिश्रित आदमी को सिरजा है । उसी के आन्तरिक भावलोक और कमीज़ को कमीज़ दी है और उसी की समझ और जिन्दगी के फलक पर एकान्त-वादी बनावटी आकांक्षा के सत्यों का आवरण किया है । ...... उच्च प्रेम और नियतिवा

---

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.206

मे एक विशेष सुरक्षा का आनन्द अज्ञेय के चरित्र को सर्वत्र उठा लेता है । वे अपनी अभिव्यक्ति और समझदारी मे अन्तः निर्देशित (इन्नर डयरक्टेड) है और अपने विश्वासो, आकांक्षाओ और संकल्पो के ज्ञान मे परंपरा निर्देशित (ट्रडीशन डयरक्टेड) कभी वे दो ही नही सकते । अज्ञेय के ये चरित्र ठीक ठीक संक्रान्तिकाल के नए बौद्धिक आदर्शवादी युवक की खूनियो का रेखांकन करते है [1] । एक दूसरे संदर्भ मे हिन्दी के शीर्षस्थ आलोचक नन्ददुलारे वाजपेयी ने अज्ञेय को प्रकृतिवादी मानते हुए और कहा है - 'शेखर एक जीवनी और नदी के द्वीप उपन्यासो की मूलधारा प्रकृतिवादी ही है, यद्यपि उसे अनेक प्रकार के दूसरे आच्छाद भी पहनाए गए है । प्रकृतिवाद से मेरा आशय है मनुष्य को सामाजिक और बौद्धिक विकास भूमियो से बाहर ले जाकर उनकी मूल प्रवृत्तियां, पशु कृतियो का केन्द्रित और सर्वोपरी माननेवा विचारधारा; मनुष्य को प्रकृति की पुतना समझनेवाला तत्व दर्शन [2] । शची रानी गुर्टू अज्ञेय के पात्रो मे 'अभिनव' भावनाओ को दर्शाते हुए भी उसे समाज के लिए अमंगलकारी मानती है । 'अज्ञेय के चरित्र चित्रण मे एक सुनिश्चित रूप विधान है, जो अभिनव है, किन्तु उनका जीवन दर्शन जिन विनाशक और विगलनकारी उद्भावनाओ पर आश्रित है वह अनवरुद्ध स्वप्नमय संस्थिति की ओर उत्प्रेरित कर यथार्थ से विमुख और वंचित करनेवाला है । प्रायः जटिल वक्रत्व से उनके चरित्र निर्मित हुए है । क्षणिक मनोरंजन की प्रवृत्ति से जो नारी-पुरुष के गर्हित संबंध स्थापित हो जाते है वे अन्ततः आन्तरिक उत्तेजना और पागलपन के कारण विवेकरहित संकल्पो भावावेशो बाध्य हिप्नोटिक प्रभावो और ऐन्द्रजालिक अन्तर्विरोधो से परिचालित एवं असंस्कृत, असामाजिक मनोवृत्ति मे परिणत हो जाते है । गन्दी भावना से उपजे विषैले कीडाणु जीवन अस्तित्व के सूक्ष्म से सूक्ष्म तन्तुओ मे पैठ मानव के मर्यादित निष्ठापूर्ण आचरण को रुग्ण और जर्जर बना डालते है । अर्थरहित, प्रतीक, भग्न छायाचित्र, उखडी पुखडी अर्ध ध्वनित निष्क्रिय भावावेश और मूर्छना से विपन्न त प्रणयाकांक्षाये स्वस्थ समाज की भीतरी निराशा पीडा, अचेतना, और पलायन की मदिरा बनाकर पिलाते रहते है जिसके ..... मजबूत अस्थिर कदम लडखडा जाते है [3] । उपर्युक्त दोनो आलोचको का दृष्टिकोण नैतिकतावादी है । लेकिन आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार यह नैतिकता रूढिवादिता के निकट जान पडती है । अज्ञेय ने शेखर के व्यक्तित्व के विकास केलिए जिन प्रेम प्रसंगो की परिकल्पना की है उसे हमे आधुनिकतावादी परम्परा के प्रकाश मे देखना है ।

- -

1 सं. गंगाप्रसाद विमल - अज्ञेय का रचना संसार (प्रथम संस्करण) (अज्ञेय के रचना संसार के संक्रमण का सन्दर्भ बनाम सामाजिक निश्चय का स्थान - श्रीराम तिवारी) पृ. 148

शेखर उपन्यास में शेखर का संबन्ध बहुत सी स्त्रियों के साथ चित्रित है । हमारा ध्येय यह दिखाना है कि उन प्रसंगों में शेखर का संबन्ध किस, स्तर तक उजागर किया गया है उन स्त्रियों से शेखर को जो संबन्ध रहा है, उसे उनमें से किस भाव के नाम से अभिहित कर सकते हैं । स्नेह, काम-पिपासा, वात्सल्य, स्नेह के संबन्ध में अज्ञेय का कथन देखिए - 'स्नेह एक ऐसा चिकना और परिव्यापक भाव है कि उसमें व्यक्तित्व नहीं रहते । स्नेही अपने स्नेह पात्र को कभी 'याद' नहीं करता, क्योंकि वह उसे कभी भूलता नहीं[1] । शेखर के जीवन में आनेवाली स्त्रियाँ शशि, शारदा, शान्ति, शीला और बहिन सरस्वती है । उपन्यास में शेखर अने आत्म विश्लेषण के साथ साथ इनके संबन्धों को भी विश्लेषित करता है । इस विश्लेषण के उपरान्त हम इस तथ्य पर पहुँच सकते हैं कि शेखर का प्रेम कुण्ठित है या अति आदर्श के दायरे में आकर एक बौद्धिकजाल में उलझ गया है । उपर्युक्त स्त्रियाँ शेखर के जीवन में लम्बी-छोटी अवधि तक रही है और इन प्रेम संबंधों का अलग अलग विश्लेषण अपेक्षित है ।

शीला से शेखर का संबन्ध बहुत ही छोटी अवधि तक रहा है । उसकी कौमारावस्था में बीती एक घटना के साथ शीला उसके जीवन से परे हो जाती है । 'शीला शेखर की शिष्या थी । शेखर अपने को उसका गुरु नहीं मानता था, क्योंकि वह केवल पढाता था 'उस केलिए मैं था एक बडा सा भाई - किन्तु ऐसा भाई जिनमें प्रेम किया जा सके, जिस पर झुका जा सके, जिसके आधार पर स्वप्न बुना जा सके[2] ।' वस्तुतः वह पढती नहीं थी । 'मैं पढाता था बडी मेहनत से । पर वह कुछ भी नहीं सीख पाती थी[3] । यही हाल रोज होता था तब शेखर को डाटना ही पडता था और उसकी रुआसी भरे चेहरे को देखना पडता । इस तरह एक दिन शेखर ने अपने आप पढाई बन्द कर दी । लेकिन शेखर झूठ बोला था और वह सोचता रहा कि उसने विजय पा ली है । लेकिन वह वस्तुतः कोई विजय नहीं थी । शेखर सोचता है 'उस विजय ही से मेरी हार हुई है । यदि मैं उसे सच ही कहला देता कि मैं ने ही इनकार किया है, तब शायद वह अपने को अन्याय का भागी समझकर ही कुछ सात्वना पाती । मैं ने उसे केलिए भी स्थान नहीं छोडा । और तब से उसकी उलहना भरी छाया मेरे साथ साथ आती है और रोती सी कहती है - झूठे । झूठे[4] । शेखर खुलकर शीला से कुछ भी नहीं कह सकता था । इसलिए उसे शीला के

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा) पृ.31
2 वही पृ.32
3 वही पृ.32

बारे मे सोचते वक्त पछतावा ही मिलता है । आगे शेखर के जीवन मे शीला का पदार्पण नही होता, लेकिन जेल जीवन के दौरान वह जो याद दिलाती है वह शेखर के मन को कचोटनेवाली रह जाती है । इसलिए वह कहता है 'किन्तु इतने सब बिखरे हुए प्रणयो की याद कर - करके न जाने क्यों कुछ नही होता ? क्यो विफलता और वंचना की भावना नही जागती । मुझमे उठता है एक क्रुद्ध विद्रोह इसलिए नही कि मै ने क्या कुछ खोया है, या कितना कष्ट उठाया है, बल्कि इसलिए कि मै ने कितना दुख दिया है किन-किन भोले हृदयो को कठोर चोटें पहुचायी है.[1].... '।

शान्ति शेखर के पडोस मे रहनेवाली एक लडकी है और शेखर रोज देखता है कि वह एक आराम - कुरसी पर लेटी रहती है । शेखर ने सुना है कि वह तापेदिक से आक्रान्त थी और तभी वैसे पडी रहती थी । शेखर ने यह भी सुना था कि वह बहुत दिन जियेगी नही और जब से उसने सुना है तब से अक्सर सबकी आंख बचाकर वह अपने घर के एक ओर खडा होकर शान्ति की ओर देखा करता था[2]। एक दिन वह शान्ति के पास जाता है और वह बहुत प्यार से सब कुछ पूछ लेता है । शेखर बताता है कि उसके पास एक चित्र है वह शान्ति से मिलती है, चित्र रोजेटी का बनाया हुआ था - 'बीएटा बीएट्रिक्स था, जिसे प्रायः 'ग्लोरी ओफ डेथ' कहते है । शान्ति शेखर से बताती है कि वह भी एक दिन इसी प्रकार कर जाएगी और उसकी भी ग्लोरी हो जाएगी और बहुत ही विषादपूर्ण हंसी हस देतीहै । शेखर और शान्ति की मुलाकात हमेशा होती रहती है । दोनो अकेलेपर से बचने केलिएएक दूसरे की उपस्थिति अवश्यक समझते है । 'उसे लगता, वह शान्ति का रक्षक है; कि शांति का शरीर नही है, एक शिशु आत्मा है और वह उसका फरिश्ता'[3] ।

शान्ति शेखर को अंग्रेज़ी कविताएं पढकर सुनाती है और दोनो इतने मौन, स्पन्दन-हीन होकर बैठते है कि दोनो केलिए बहुत कुछ होने पर भी बोल भी नही सकते । एक दिन इस प्रकार स्पन्दनहीन बैठी हुई, यवन प्रतिमा जैसी लगती शान्ति से शेखर कहता है -'शांति मै तुम्हें छू सकता हूं[4] ? वह अनुमति देती है 'शेखर ने पास जाकर बडे आदर से, डरते डरते अपना एक हाथ शान्ति की ठोडी के नीचे, कठे पर रख दिया - रख नही दिया, उंगलियो से कण्ठ छूआ भर - शांति ने सिर आगे झुकाकर उसकी उंगलियां ठोडी से दबा ली बहुत ही

- -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.36 - 2 - वही पृ.186
3 वही पृ. 187 - 4 - वही पृ.188

हलके, कोमल, कृतज्ञ से दबाव से ।

शान्ति शेखर केलिए एक पहेली ही बनी रही । अपनी उँगलियों को दबाते वक्त उसकी आँखों से 'टप' सी आसू की बूँदें टपक रही थी । शेखर समझने की कोशिश करता है कि किसी दिन मेरी भी ग्लोरी हो जाएगी और उसके गरम गरम आसू का अर्थ क्या है ? मृत्यु के किनारे पर पडी उसकी जिन्दगी मृत्यु से समझौता करने केलिए तैयार रहती है । क्योंकि वही ख्याल शान्ति के जीवन के एकान्त का प्रेम बन चुका था । लेकिन शेखर के अभिन्नत्व से उसके जीवन में जो मृदुलता आ गई थी वहाँ खडी होकर वह न भविष्य को देख सकती है, न कल्पना कर सकती है, तब उसके पास रह जाते हैं गरम आसू मात्र ।

शेखर के जीवन में शान्ति का आना इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है कि शेखर भी मृत्यु को बहुत निकट से देखने की क्षमता पा लेता है । शान्ति के प्रति शेखर के मन में एक अद्भुत आकर्षण तो था जरूर । लेकिन इस आकर्षण को किसी ऐसे संबंध का नाम देकर घृणृय नहीं बना सकता । क्योंकि ऐसा कुछ अंश उस संबन्ध में नाममात्र केलिए भी नहीं । वह उसकी बुखार की बात सुनकर कुछ कर नहीं पाता । इसलिए कि उसमें और कुछ जोडकर उसे घृण्य नहीं बनाना चाहता है । अतः शेखर और शान्ति का संबन्ध न घृण्य हुआ, न होने की भूमिका तैयार कर पाया ।

प्रेम की भावना के अन्तर्गत शेखर का सरस्वती से जो संबन्ध है, वह भी आलोच्य है । यद्यपि बहिन के साथ शेखर का जो रिश्ता है कि वह स्नेह का ही है फिर भी स्नेह भाव के अन्तर्गत वात्सल्य को भी हम शामिल कर सकते हैं । मनोवैज्ञानिक परिच्छेद के अन्तर्गत विस्तार से सरस्वती और शेखर के बीच के संबन्ध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जायगा ।

शेखर का परिवार जिस पहाडी इलाके में रहता था, वहाँ बहुत ही कम लोग रहते थे । पडोस में एक मद्रासी परिवार था । उसी परिवार की एक लडकी है शारदा जिनके साथ शेखर सबसे पहले प्रेम का अनुभव करता है । वयः संधि का प्रेम होने के कारण बहुत ही उद्वेलित हृदय के साथ प्रेम का चित्रण किया गया है और बहुत ही सूक्ष्मता एवं गहनता से शारदा एवं शेखर के प्रेम संबन्ध को रूपायित किया गया है । वयः सन्धि का प्यार होने

के कारण प्रेम-चित्रण मे सूक्ष्मता के साथ यौन परक उद्‌भावनाओं का भी विश्लेषण मिलता है ।

एक दिन शेखर माँ के साथ शारदा के घर आता है और पहली ही दृष्टि मे शारदा के प्रति उसके मन मे कुछ अनिश्चितसी भावना उमड पडती है । लेकिन वह अनिश्चित सी भावना को नाम देना चाहता था । क्यों कि वह अभी तक नही जानता कि उसे क्या हुआ है, वह क्या चाहता है, जब वह उस घर की याद, उस भेंट की याद करता है, तब उसे दीखता है गृहणी का मुख याद आता है । उसका स्वागत, शारदा तो कुछ भी याद नही आती । सिवाय इसके कि जब उसके सब ओर अनन्त निस्तब्धता छाई होती है, तब उसे जान पडता है कि वह कही से - कही से वीणा का स्वर सुन रहा है । और वह उसकी तरंग मे बहने लगता है, उड़ने लगता है, भूले जाता है, शून्य हो जाता है[1]

वयः सन्धि मे उपा हुआ प्रेम होने के कारण कल्पना अधिक दिखाया गया है । रोज शारदा और शेखर मिलते है, लेकिन बोलते कुछ नही । पहले वह दूर ही से उसे देखा करता था, स्वयं प्रकट नही होता था, पर एक दिन जब वह प्रतीक्षा करते करते सडक के किनारे पर एक ही जागती तन्द्रा मे लीन हो गया तब शारदा ने उसे देखा था, और दबे पाव पास आकर किताबो का बस्ता उसकी पीठ पर रख दिया था । फिर वह चौक उठा था, झेंप गया था, फिर एकाएक एक साहस से भर गया था । वह किताबें लेकर उसके साथ हो लिया था और वात्सल्य भाव से पूछ रहा था 'तुम इतना बोझ लादे लादे थक नही जाती ? इस प्रकार चलते हुए वे शारदा के घर से कुछ ही दूर, यूकालिप्ट्स् के झुरमुट के पास तक गये थे और एक ही प्रेरणा से रुक गए थे । शारदा ने किताबे ले ली थी, फिर इस क्षणिक मैन को भंग करते हुए एक शरारत भरी हंसी हंसकर कहा था - दि बिग सिल्ली बोई इस कैण्ड और भागी थी और वह अपने हाथ को देखता रहा गया था - क्यों कि उस भागती हुई शारदा का वस्त्र छू गया था[2] । शेखर यह अनुभव करता है कि उसे शारदा के निकट पहुंचा देता है । उसके हृदय की उद्‌भावनाएं उस केलिए सपने बुन रही है । दोनों अपने को बचाते रहने पर भी एक दूसरे से सटकर इतना निकट आ गये और बन्ध भी गये थे ।

शारदा और शेखर के बीच जिस प्रेम की परिकल्पना की गई है, वह वस्तुतः पुरुष हृदय की यौन भावना के विकास पर प्रकाश डालने मे सहायक है । प्रथम मिलन के बाद

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 शेखर एक जीवनी (प्र भा) पृ 166 - 2 - वही पृ 166-67

शेखर के दिमाग मे यही धुन सवार रहता है कि कैसे एक बार और मिले । इसलिए वह हमेशा शारदा के सामने प्रकट होने की ताक मे रहता है । शारदा को आलिंगन करने के बाद वह 'अपनी ठोडी शारदा के सिर पर टेक देता है । उसके सूखे केशो को सूंघता है । फिर अपनी नाक इन केशो मे दबा देता है और दो तीन, चार, पांच बहुत लम्बी सांसें खींचता है[1] ..... । उन्मत्त प्रेम की विलक्षणता को दर्शाने पर भी शेखर के मन मे यह विचार पैदा होता है, वह शारदा के अलावा और किसी को प्रेम नही कर सकता । यह विचार स्पष्ट रूप से उसके मन मे बार बार आ रहा है और वह चाहता है कि 'अपने समूचे व्यक्तित्व से इस विश्वास को पा लेना, अपने मे धारण कर लेना कि वह शारदा से, केवल शारदा से प्रेम करता है[1] ।

मद्रास मे पढते वक्त शेखर अपने दोस्त सदाशिव के साथ त्रिवेन्ड्रम जाता है जहाँ शारदा का घर था । त्रिवेन्ड्रम मे शारदा से शेखर मिलता है तब वह अपने जीवन की छोटी छोटी घटनाओ की कहानी शारदा को सुनाता है । साथ ही महाबलीपुर वाली घटना भी सुनाता है । शारदा उससे वादा करने केलिए मजबूर करती है कि 'वचन दो कि अपने जीवन से ऐसा खिलवाड नही करोगे - उसे खतरे मे नही डालोगे[2] । लेकिन शेखर का हृदय तीव्रता के साथ फटक रहा था कि वह जानना चाहता था कि शारदा उसे प्यार करती है या नही और वह पूछ भी लेता है कि - 'शारदा तुम मुझे प्यार करती हो, लेकिन शेखर को ठीक उत्तर नही मिलता और वह कुण्ठित हो जाता है ।

शारदा और शेखर दोनो की भावनाओ मे काफी भिन्नता है । पुरुष जन्य तीव्रता और जल्दबाजी हमेशा शेखर मे झलकती है और वह वस्तुतः शारदा को पूर्ण रूप से अपनाना चाहती है । लेकिन शारदा शेखर से बढ़कर सयानी एवं विचारशील लगती है । शेखर की उश्रृंखलताओ का वर्णन सुनकर चौंक पडती है और शेखर मे वादा भी मांगती है । लेकिन इस समय शेखर सुख का अनुभव करता है कि इस मांग मे एक अनोखी प्रेम-व्यथा पिरोई हुई है, जिसकी संभावनाएं इस मांग मे मौजूद है । पर शारदा मे बिलकुल भिन्नभाव ही व्यक्त है । वह नही चाहती कि शेखर उस प्रकार बेवकूफी करते रहे और अपने जीवन को नष्ट करता जाय ।

- -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.176 - 2 - वही पृ.180 - 3 - वही पृ 2

'शेखर' उपन्यास में जिस प्रकार शेखर एक पूर्ण पात्र है, उसी प्रकार शशि भी एक पूर्ण पात्र है और साथ ही शेखर के ही समान विद्रोही है । शशि के अभाव में शेखर का अस्तित्व नहीं के बराबर है । शेखर के बनने में शशि का प्रबल हाथ है । इसलिए शेखर स्वीकार करता है । - 'सब से पहले शशि इसलिए नहीं कि तुम जीवन में सबसे पहले आयी या कि तुम सबसे वाज़ी स्मृति हो । इसलिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है[1] । शशि शेखर केलिए प्रेरणाप्रदायिनी मोक्षदा थी । उसकी हंसी की झनकार में शेखर का जीवन झंकृत हो गया था । 'शशि के व्यक्तित्व की यह पुकार, यह 'अपील' थी मेरे मन के एक खण्ड केलिए जो कि जीवन में क्रियाशीलता की उफान से छलक पडता है जो विद्रोही है । किन्तु मेरे मन का दूसरा खण्ड, जो कि सृष्टि के सौंदर्य को ही प्रतिबिंबित कर सकता है, जो प्रस्ताव में मेरे मस्तिष्क का दृश्य है और इसलिए कवि है, वह जागता था शशि की हंसी से[2] । इसी शशि-शेखर संबन्ध को लेकर हिन्दी साहित्य में नैतिकता का प्रश्न उठाते हुए कई वादविवाद चले ।

शशि शेखर की सगी बहिन नहीं थी । वह सखी थी । चार साल के वय में ही शशि के मन में शेखर के प्रति एक आदर भाव था, नहाते वक्त लोटा न देने के कारण शेखर उसे मारता है, लेकिन वह शेखर का नाम नहीं बता देती और कहती है कि लोटा लग गया था । उसके बाद बहुत साल बाद ही शेखर शशि से मिलता है, तब तक वह समझदार लडकी हो चुकी थी, घर की देखभाल में मां को हाथ बंटा रही थी । शेखर परीक्षा देने केलिए शशि के यहां जाता है और अनुभव करता है कि शशि में वही आदर, मौन स्वीकार भाव अब भी मौजूद है ।

शशि के पिता की मृत्यु के उपरान्त शेखर शशि के घर, उनको सान्त्वना पहुंचाने के हेतु जाता है । तब तक शशि दुख की एक प्रतिमा बन चुकी थी और उसी दुख में शेखर भी डूब जाता है 'तब एकाएक उसने पाया कि वह निर्व्यक्तिक नहीं है, कि वह विषाद में डूब गया है कि उनका दुख उसका दुख है - गहरी समवेदना का स्रोत उसके भीतर कहीं उमड पडा[3]..... ' शशि के चरित्र का पूर्ण विकास उपन्यास में द्रष्टव्य है । शशि शेखर

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.16 - 2 - वही पृ. 19

3 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.30

के रास्तों पर रोडा अटकाना नहीं चाहती है । बल्कि उसको हमेशा प्रेरणा प्रदान करती रहती है । इसलिए जब वह समझ जाती है कि शेखर उसके परिवार के दुख में आकर ऐसा मिल गया है कि वह अपने भविष्य जीवन को ही भूल गया है । वह यह नहीं चाहती इसलिए शेखर से कहती है - 'आप हमारे दुख में आकर मिल गये, हमें उसमें सात्वना भी मिली, पर आपका कर्तव्य क्या वहीं तक था ? दुख सब जगह है । आप उसे एक ही जगह समझकर उसकी छाया में रहना चाहते हैं और आपका जो काम है, उसमें अनिच्छा दिखा रहे हैं । आप कालेज जाइये -'[1]

जेल में शेखर से मिलने केलिए शशि आती है । शशि के हृदय में शेखर के जेल-वास से कोई दुख नहीं होता । शेखर यही पूछना चाहता है कि अगर वह अपराधी होता तो उसे दुख होगा कि नहीं । शशि के उत्तर में जो विश्वास, ममता और आस्था हम देखते है वह उसका शेखर के प्रति जो आदर भाव है, वह बहुत ही शीर्षस्थ है । वह कहती है - 'तब भी तसल्ली होती मैं जानना चाहती थी, तुम्हारी बात जान लेने ही से मुझे संतोष हो जाता है, डर नहीं होता[2] । और वह जाते वक्त इतना बस कहती है - 'वीर कभी अपराधी नहीं होते.... । यह छोटा सा वाक्य शेखर के मन में तन्मयता का संचार कर देती है । वह उसे 'आदिम बहिन' मानकर प्रणाम भी करता है ।

शेखर अपने आप शशि और अपनी सगी बहिन सरस्वती के बीच का अन्तर देखना चाहता है । वह उसकी बहन लगती थी ? अवश्य, पर शेखर की बडी बहन सरस्वती की तरह वह क्यों नहीं थी ? सरस्वती को भी शेखर पर बडा स्नेह रहा था - अब भी था, सरस्वती से भी शेखर ने बराबर का सहज विश्वासी बन्धुत्व पाया था, पर.... वह नहीं जानता कि वह उस भेद को कैसे कहे, और जब कह नहीं सकता तो, कैसे अपने को समझाये .... सरस्वती तो 'थी' ही । शेखर ने होश संभालने के समय से ही उसको अपने आसपास देखा था पर शशि मानो उसकी अपनी खोज का परिणाम थी[3] ।

शेखर के जेलजीवन के समय में ही शशि की सगाई हो जाती है और वह अपने को असमर्थ समझती है कि उसे शेखर की सहायता की जरूरत थी, फिर भी वह शादी नहीं करना

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.33 -2- वही पृ.58 -3- वही पृ.59

चाहती थी । शेखर भी इसी पसोपेश में पड जाता है कि आगे क्या करना है, शशि को कैसे बचाया जाय कि वह चाहता है शशि की मां को लिखा जाय । तभी उसके कानों में ऐसी आवाजें गूंजती है जो समाज की है - 'लडकी का चरित्र अच्छा नहीं है....... मां ने ही बिगडा है ..... लडकी ने शादी नहीं की । क्योंकि नहीं की ? आज़ाद तबीयत की होगी और ऐसी तबियत की लडकी क्या बीस वर्ष की उम्र में भी पुरुषों की उपेक्षा ही कर जाएगी ? असंभव .....[1] । शेखर के कहे मुताबिक वह भी इस बात को मानने केलिए मज़बूर हो जाती है कि आदमी को अपना अपना रास्ता खुद चुन लेना चाहिए और वह शेखर के प्रति आभार भी प्रकट करती हुई अपनी आगे की जिन्दगी के बारे में लिखती है कि 'भविष्य क्या है, नहीं जानती, और मैं ने जो मार्ग अपने लिए निर्धारित किया है, उसमें भविष्य होने न होने का प्रश्न भी नहीं है । वह इतना ज्वलित है, पर इतना मैं आज तुम्हें कहती हूं कि तुमने जो मुझे दिया वह मैं उसमें नहीं भूलूंगी । तुमने लिखा है निर्णय मेरा है, पर उसका आदर करना तुम्हारा है तुमने लिखा है कि एक निश्चय में मुझे तुम्हारा सहयोग और संरक्षण और आवश्यक होने पर तुम्हारे हाथों का परिश्रम और तुम्हारे पसीने की रोटी, तुम्हारी उदारता में मैं ने दोनों पा लिये है, और अब चुनने के नाम पर तुम्हारा आशीर्वाद ही चुनती हूं[2] । इस प्रकार वह अपनी अनुमति इसलिए देती है कि उसे दिखाई पडती है कि शेखर के हृदय की ओट में स्नेह की भावना हमेशा पनपती है ।

शादी - शुदा शशि से मिलने केलिए शेखर जेल से रिहा होकर जाता है और एक दूसरी शशि को देखता है जिसमें अपनेपन का भाव होते हुए भी वह उस भाव को दिखाने में असमर्थ पा रही है । फाटक तक पहुंचकर वह पूछती है - 'देख लिया मेरा घर' इस छोटे से वाक्य में अलगाव तो नहीं पर खुद शशि एक दूरी अनुभव करती है । लेकिन शेखर समझ लेता है शशि सुखी नहीं लेकिन उसे सुख पहुंचा नहीं जा सकता, क्योंकि वह अलग हो गया है । उसके अधिकार की सीमाएं निर्धारित की जा चुकी हैं । फिर भी उसने अपनेपन के साथ कहा देख लिया, शशि, बहुत कुछ देख लिया'

जब शेखर की आगे की जिन्दगी में एक प्रकार की निष्क्रियता छा जाती है और वह निराशा के गर्त में डूबा जा रहा है तब शशि जो शेखर का अंतस समझती है उसे समझाती है

---

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा) पृ.70 -2- वही पृ. 77

और वह पूछती है - 'क्या मेरे लिए लिख सकती हो ? मै ने नही सोचा था कि मुह से कहना पडेगा, पर कहने मे कोई हर्ज नही है[1] । शेखर नही चाहता है कि शशि भी, जो विवाहिता है, उसके फेरे मे पडकर खंडित हो जाए । लेकिन शशि शेखर को हमेशा उकसाती है 'मेरे लिए लिख सकते हो और सुनो, तुम जितना अच्छा लिखोगे, उतना ही बाहर से क्लेश पाओगे । तुम्हे शान्ति मिलेगा मै कहू तो बडी बात लगेगी, पर तुम्हारा प्रतीक उस शान्ति का ही नही, उस क्लेश का भी साझी हो सकता है[2] ।

अपने को शेखर के सामने खोलती हुई शशि अपने को खुद सात्वना देती है । इसी को किसी किसी आलोचको ने आत्म-पीडन का नाम दिया जो शरत्चन्द्र के नारी पात्रो मे देखा जा सकता है[3] । लेकिन इसको आत्म-पीडन नही कहा जा सकता । क्योकि शशि अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करके दिखाना चाहती है और वह चाहती है कि उसमे तिल भर भी आत्म-पीडन नही रह जाय । क्योकि शेखर के सामने शशि पूर्ण रूप से शशि होकर रहना ही चाहती है । इसलिए वह कहती है - 'तुमने जो दिया, उसमे लज्जा नही है । वह वरदान है यह मै भी बिना लज्जा के देखती हू । वरदान मे अस्वीकार का विकल्प नही है मै विवाहिता हू । अपना आप मै ने स्वेच्छा से दे दिया है, अपने का, इह का संकल्प कर दिया है - आहूति दे दी है । जो दे दिया है, मेरा नही है, उसकी ओर से मै कुछ नही कह सकती न कुछ स्वीकार ही कर सकती हू, न कुछ दे सकती हू अपने को मिटा देने मे मै ने कंजूसी नही की खुले हाथ से दिया, और देख लिया कि सब जल गया है - धूल हो गया है पर संतुष्ट हू शेखर, औस संतोष का यह सुख तुम्हारा वरदान है[4] ।

शेखर को अपने प्रेम-पाश मे बाधकर शशि यह चाहती है कि शेखर के मन से निराशा निष्क्रियता, अकेलापन अलगाव आदि दूर हो जाए । वह शेखर को अपने व्यक्तित्व के रंगो मे मिलाकर उस दुहरे व्यक्तित्व को इकहरे व्यक्तित्व मे परिणत कर देना चाहती है - 'तुम नही जाओगे..... मेरी तरफ देखो, शेखर..... मेरी आखो की तरफ क्या तुम मनमानी कर सकते हो ...... अकेले हो[5] ? शशि जानती है कि उसके साथ मिलकर

---

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.124 -2- वही पृ.124
3 रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - पृ.78
4 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.166-67 -5- वही पृ.169

शेखर अजनबी एवं अकेला नही है । दोनो एक ही के दो रूप है ।

शेखर को बनाने मे शशि को भी अपना दांपत्य जीवन बरबाद करना पडा, जो वह सुख से त्याग देती है । अपने प्रेम के सामने इसकेलिए दांपत्य जीवन मूल्यहीन ही जान पडता है । शशि न मां के साथ वापस जाना चाहती न अपने पति के घर, जहां से उसे निकाल दिया गया था । इस प्रकार शशि शेखर के जीवन के साथ अपने को भी बांध लेती है, और वही से शेखर और शशि का जीवन एक ही लीक पर चलने लगता है । शेखर का क्रान्तिकारी संघ के सदस्य रामकृष्ण के साथ परिचय होने के साथ शेखर उन लोगो की सहायता केलिए भी काम करने लगता है । शशि देखती है कि शेखर अपने अन्वेषण के पथ मे विचलित होकर जा रहा है और वह नही चाहती कि शेखर ने जिस उद्देश्य केलिए । अपने जीवन को बलिदान किया है, उसे हटकर अलग हो जाए । इसलिए वह उद्विग्न होकर शेखर से कहती है कि 'मै यह नही मान सकती, शेखर, कि तुम्हारे पास लिखने की सामग्री की कमी है । तुम भूले नही, अनदेखा कर रहे हो । क्या बाबा मदनसिंह की बात मे लिखने मे कुछ नही है ? क्या मोहसिन से तुम्हें कुछ नही मिला जो आगे औरो को दिया जा सकता है ? क्या रामजी अपात्र था ? तुमसे भी बड़ा अनुभव हो सकता है, जरूर पर मै कहती हूं, जो सत्य तुमने देखा है, जिसका अपने स्वत मे अनुभव किया है, उसकी बात लिखी तो अवश्य लेखनीय होगी'[1] । शेखर अनुभव करता है कि शशि मे जो ज्ञान एवं संवेदना है वह उस केलिए मिटाने मे तुली हुई है । शेखर पहली बार शशि के ओठो को चूम लेता है । वह दंशित सी हट जाती है । वह इसलिए नही चाहती कि 've जूठे है .... तुम नही जानते, मेरे जीवन का एक अंग है जो जूठा हो गया है, और एक ऐसे व्यक्ति के स्पर्श से जिसकी - छांह से भी तुम्हें - बचाना चाहती है'[2] । यही विचार शशि को शेखर से थोडा अलगाव भी पैदा कर लेता है और वह हमेशा इस नियम से आहत रहती है कि उसकी हार हो गई है, उसका जीवन जूठा हो गया है, उसका फिर से बनाना किसी की बस की बात नही । इसलिए बिना किसी लक्ष्य के भी वह कहीं - ऐसी जगह मे जाना चाहती है जहां शेखर का सामीपत्व न हो, क्योंकि शेखर की हार वह उसकी वजह से होना देखना नही चाहती थी ।

अपने तप्त चुम्बन से शेखर उस दूरी को मिटना चाहता है जो शशि के जीवन को तुल रही थीऔर वही भावना शेखर - शशि के प्रेम के बीच एक विघ्न बनकर खडी थी । इस बार

शशि मे एक स्वीकार्य भाव ही शेखर देखता है । शशि के जीवन मे वह प्रेम जगाता है जो शेखर केलिए आवश्यक है । मगर वह भी यही चाहती है कि शेखर के निकट रहकर ही वह मृत्यु का वरण कर सके । इसलिए वह एक कविता शेखर को पढकर सुनवाने केलिए देती है -

अइ वांट टु डइ वाइल यु लाउ मी
वाइल येट यू होल्ड मी फेयर
वाइल लाटर लइस अपाण मइ लिप्स्
एण्ड लइट्स आर इन मइ हेयर
अइ वांट टु डाइ वइल यु लाउ मी ।[1]

मृत्यु का मोह, और शशि की बिगडती स्थिति शेखर केलिए असहनीय हो जाता है । इसलिए शशि के सामने कह देता है - 'मै नही जानता था कि किस केलिए लडूं, पर तुम मेरे पास थी; तुम्हारे लिए मै लडने लगा - या उद्योग करने लगा लडने का । शशि, मै निरन्तर संघर्ष करता आया हूं - तुमसे भी लडता आया हूं, पर अब स्वीकार करना पडता है कि मै ने तुम्हे प्यार किया है । .... किन्तु मेरे भीतर एक भूख जागी, और उससे फिर एक नया संदेह..... शशि, क्या मै ने पाप किया है[2] । शेखर के स्नेह का दूरीकरण करती वह बोलती है - 'मै ने सदा तुम्हे प्यार किया है, पाप मै ने कभी नही किया....[3] । शशि ने शेखर के नाम पर एक चिट्ठी लिखी जिसमे वह शेखर के भविष्य के बारे मे कहती है । शेखर केलिए एक भविष्य है । लेकिन शशि का जो भविष्य था, वह शेखर था, जो उसे मिल भी चुका है । शशि केलिए शेखर के प्रेम की जरूरत नही बल्कि वह शेखर मे अपनी पूर्णता खोजती है और यह प्रेम शेखर की पूर्णता की खोज मे कभी बाधा भी न हो जाए । 'तुम्हारी आवश्यकता मुझे है, क्योंकि मेरा खण्डित व्यक्तित्व तुम्हारे द्वारा अभिव्यंजना का मार्ग पाता है - तुम्हारे द्वारा, और तुम्हारे लिए मै जो स्वप्न देखती हूं उनके द्वारा; किन्तु मै जानती हूं, देखती हूं, कि तुम खण्डित नही हो, और इसलिए मेरा निश्चय है कि जहां तक मेरा वश है, वह मेरा प्यार नही होगा जो तुम्हें बन्दी बनाने का यत्न करेगा ...... शेखर, मेरा तुम पर अगाध स्नेह है, पर मै चाहती हूं कि तुम जानो कि मै ने तुम्हे बांधा नही, बांधती नही - न अब, जब मै हूं, और न - पीछे ....[4] ।

---

1 शेखर (दू.भा.) पृ.219-40 -2- वही पृ.242
3 वही पृ.242 -4- वही पृ.247

जिस संबन्ध को कुंठित, घृणित, पाशवीय कहकर आलोचको ने शशि - शेखर के प्रेम व्यवहार का विश्लेषण किया वह प्रेम की एक स्थिति मात्र थी, क्योंकि उन दोनो के चाहने पर भी उसकी पूर्ति नही हुई । क्योंकि एक मे जीने का आग्रह टूट चुका था । दूसरे मे प्राण भी नही रुके और एक स्थिति के आगे बढ नही पाते थे । इसलिए शेखर कहता है कि जितने स्वप्न मै ने देखे है, सब तुम मे आकर घुल जाते है ।

इस परिच्छेद मे शेखरकेसंपूर्ण जीवन मे दर्शित उन संबन्धो पर विचार किया गया है जिन्हे हम प्रेम के नाम से अभिहित कर सकते है । प्रेम-भावना के रूप निर्धारण के साथ साथ भिन्न भिन्न चरित्रो पर भी स्वाभाविक रूप से प्रकाश डाला गया है । लेकिन इन पात्रो से शेखर का जो संबन्ध है, वह आसानी से पहचाना जा सकता है ।

(3) शेखर एक जीवनी और अहं का तत्व -

'शेखर के विश्लेषण के संदर्भ मे यह अक्सर सुनने को मिलता है कि शेखर एक अहंवादी पात्र है । अज्ञेय का दृष्टिकोण अपने पूरे परिवेश के साथ अहंवादी होने के कारण एक संकुचित दायरा ही प्रस्तुत करता है । 'अज्ञेय का व्यक्तित्व इतना अहंवादी है और उनकी जीवन दृष्टि इतनी व्यक्तिवादी है कि वह प्रेम के साधनात्मक रूप मे स्वयं अधिक काल तक तन्मय नही रह सकता । उनका क्षणवाद एवं भोगवाद इस मूल भावना से प्रेरित है[1] । इन्द्रनाथ मदान के इस कथन मे और आगे नन्द दुलारे वाजपेई के कथन मे काफी समानता है 'हम देखते है कि इस पुस्तक मे इस विद्रोह का परिणाम अति भयानक है, जो शेखर के चरित्र को अत्यधिक आसक्तिपूर्ण, व्यक्तिवादी और यातनामय ही नही बनाता, उसे एक असामाजिक, नृशंस और दृयातक व्यक्तित्व के रूप मे उपस्थित करता है[2] । यह सच है कि 'शेखर' एक व्यक्ति की कहानी है और वह नाम से ही स्पष्ट व्यंजित है । लेकिन इसका यह अर्थ नही कि वह एक व्यक्ति की अपनी कहानी है, मात्र एक व्यक्तिगत दायरे मे प्रस्तुत की गई हो । शेखर के पहले भाग मे बालक शेखर की कहानी है, इसलिए वहा ऐसी पृष्ठ भूमि लक्षित होती है जिसमे एक विद्रोही बालक का उत्तरोत्तर विकास संभव है । लेकिन दूसरे भाग मे एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का पूर्ण विकास चित्रित है जिसे अपने वैयक्तिक बाते

1 सम्पादक - गंगाप्रसाद विमल - अज्ञेय का रचना संसार (अज्ञेय का काव्य - इन्द्रनाथ मदान - पृ. 13

नगण्य है और साथ ही वह समाज के क्षेत्र में खडा पाता है । अपनी

'शेखर' एक युगीन संघर्ष का चित्र प्रस्तुत करता है । कहा जा सकता है, युग उस में है, पर व्यक्ति के माध्यम से, देश उसमें है, पर किसी आलोकित आकाश के माध्यम से [2] । सत्य की खोज उसे अभिव्यक्त करने केलिए उचित माध्यमों का अन्वेषण स्वयं सिद्ध कर देती है कि अज्ञेय की नवीन अनुभूतियों, मानसिक अन्तद्‌वन्द्‌वों तथा विचारात्मक संघर्षों के बीच जो मूल शक्ति थी, वह सामाजिक है[2]... । इसलिए शेखर के विश्लेषण के दौरान जो अहंवादी दृष्टिकोण का विचार किया गया है, वह कोई संकुचित परिवृत्त में सिमटकर जटिल नहीं हो पाया है । आलोचकों ने शेखर में 'इन्डिविजुवलिस्टिक' दृष्टिकोण को देखा लेकिन इन्डिविजुवेशन की प्रवृत्ति को नहीं जाना । इन दोनों प्रवृत्तियों का विश्लेषण सही मनोवैज्ञानिक जुग ने किया है[3] ।

इसलिए स्पष्ट रूप से हम यह बता सकते हैं कि अहंवाद और 'इन्डिविजुवेशन' एक नहीं । अहंवाद केलिए हम 'इगोइसम्' शब्द जोड सकते हैं और ईगोइस्त अपने अहं को प्रमुखता देता है और उसका कोई सामाजिक प्रभाव नहीं होता । व्यक्ति के माध्यम से याने अपनी ही स्थिति के घेरे में वह अहं का विश्लेषण करता है । एनसैक्लोपीडिया आफ

---

1 विद्यानिवास मिश्र - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि अज्ञेय (परिचय) पृ.

2 शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय (प्रथम संस्करण) पृ.550

3 The egoist are called selfish, but this naturally, has nathing to do with the concept of self. I am using it on the other hand self-realization seems to stand in opposition to self-diverstiture. This misunderstand is quite general, because we donot sufficiently distinguish between individualism and individuation. In dividualism means deliberately stressing and giving prominence to some suppressed peculiarity, rathar then to collective consideration and obligation But individuation means precisily better and more complete fulfilment of collective qualities of the human being, since adequete consideration of the peculiarity of the individual is mere collective to better social achievement than when th peculiarity is neglected or suppressed.
Violet staub - De Laszlo. 'T he basic writing of C.G.Jung. (1959) pp.143-144

रिलीजियन आन्ट एथिक्स' में इगोइसम का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है :-
'थियरोटिकल ईगोइस्त अपने ही अहं को अपने अस्तित्व की नींव मानते हैं और 'प्रेक्टिकल ईगोइस्ट' अपने अहं से ही तृप्त जान पडते है नही ते अपने अहं को अपने कामों का निदान मानते है'।[1]

हम 'शेखर' एक जीवनी के शेखर को किसी अहंवादी प्रेरणा से पीडित मान नहीं सकते और उसमें जो अहं का तत्व उपलब्ध होता है वह मात्र वैयक्तिक न होकर सामाजिक है। लेकिन इस कुण्ठा और व्यथा के पीछे एक ढोग से भरे समाज का परिवृत है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को नकारता है, व्यक्ति की प्रगतिशील चेतना का ध्वंस करता है और उसी परंपरा को पुष्ट एवं पोषित करता है जो कई युगों से सडती आ रही थी। शेखर का अहं इसके विरुद्ध विकसित होना चाहता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. A distinction may be drawn in between theoritical and practical egoism. (a) Theoritical egoism ~~is the theory which main~~ usually called subjective idealism or solphism is the theory which maintains that his own individual egois only being that man can logically assert to exist. For he can know only what is in his mind, and since his knowledge does not extend beyond the states of his own being, he has no valid ground for asserting the existance of other being in existence of course it is absurd for anyone to think that he is only being in existence; and in order to excape the absurdity and to make it intellegible how we know beings other than ourselves. We must assume, it is maintained that our experience is not of our states merely. Practical egoism, according to kant has three forms - logical, aesthetic and moral respectively. The logical egoist considers it unnecessary to bring his own judgement to test another's understanding .... That aesthetic goist is fully stafisfied with his own state. The moral egoist makes himself the end of all his activities Nothing is valuable unless it benefits him. Its moral application is what we have usually in mind when we speak of egoism.

Encyclopaedia of Religion and Ethics.
Ed. By James Hastings. Vol. V. pp.227-28

शेखर के अहं का मुख्य बिन्दु दुख है जो हमेशा उसके अहं को विकासमान बनाने की सामग्री जुटाता है। इसलिए अज्ञेय स्वीकारते है कि वेदना में एक शक्ति है जो दृष्टि देती है..... घोर यातना व्यक्ति को द्रष्टा बना देती है। यहां यह भी कहूं कि घोर निराशा उसे अनासक्त बनाकर द्रष्टा होने केलिए तैयार करती है[1]। दुख जो उसके अहं का केन्द्र बिन्दु होने के कारण वह अपनी समूची जिन्दगी को, विगत युग को, पुरानी यादों को एक मूल्याकनपरक दृष्टि से देखना चाहता है - 'मेरी स्थिति मानो भावानुभवों के घेरे से बाहर निकलकर एक समस्या -रूप में मेरे सामने आयी - अगर यही मेरे जीवन का अन्त है तो, उस जीवन का मोल क्या है, अर्थ क्या है, सिद्धि क्या है - व्यक्ति केलिए मानव केलिए...[2]। और शेखर के सामने एक शून्यता ही उभरकर आती है - क्या है मेरे जीवन की सिद्धि ? क्या है इसकी सम्पूर्ति ? सब झूठ है - शून्य, शून्य, शून्य। बल्कि शून्य से भी कम, एक ऋण, जिसे मैं पूंजी समझे बैठा हूं[3]'।

दुख के मूल में निराशा है और हमेशा शेखर इस निराशा से जूझता है, क्योंकि उसे मिलता है न्यायहीनता और ढोंग का/ प्रतिबिंब। यह हम बता चुके है कि शेखर बचपन से ही विद्रोही रहा है और उसमें क्रान्ति का अंश हमेशा विद्यमान रहा है। लेकिन उस क्रान्ति को ध्वंसित करने की तैयारियाँ और कठिनाइयाँ हम सब कहीं देखते हैं। इसलिए हम शेखर को हमेशा एक अकेले पात्र के रूप में पाते हैं।

आगे हम शेखर का अकेलापन, शून्यता बोध, मृत्युबोध आदि मनोवृत्तियों का विश्लेषण करेंगे जो शेखर में अहं का तत्व ज्यादा से ज्यादा भर देने में सहायक हुई है। इसलिए हम शेखर को 'टाइप' के रूप में नहीं पाते बल्कि 'व्यक्ति' के रूप में पाते हैं।

कभी शेखर को लगता है कि जीवन सिवाय एक भयानक शाप के और कुछ नहीं है। इसलिए वह सब धिक्कार का केन्द्र है। शेखर अपनेपन का हामी नहीं है और उसके द्वारा

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा) पृ.7
2 वही पृ. 7
3 वही पृ. 36

वह जीवित रहना भी नहीं चाहता है । उससे परे होकर वह रहना पसन्द करता है -

मेरा अपनापन कुछ है ही नहीं, जिसकी छाप ठिठाने की मुझे इच्छा हो, - मैं गति की एक कला हूं, जो गति में लीन हो जाएगी - मैं स्वयं एक छाप हूं[1]... । अतः शेखर की जो छाप है, वह उसके अहं की एक छाप है, वह एक समाज की छाप है ।

जिस परिवेश में शेखर अपने को 'टाइप' न बनाकर 'व्यक्ति' बनाने की तैयारियों में जुटा हुआ था । वह परिवेश, चाहता है कि सर्वप्रथम अवसर पर ही प्रत्येक व्यक्ति को ठोक पीटकर, उसका व्यक्तित्व कुचलकर, उसे उस टाइप में सम्मिलित कर लिया जाय, उसे मूल रचना न रहने देकर एक प्रतिलिपि मात्र बना दिया जाय[2]..... । लेकिन शेखर किसी की प्रतिलिपि बनकर, छाया बनकर जीना नहीं चाहता है और इसी कारण वह अपने को अकेला महसूस करता है । 'और यह भी अनुभव कर रहा था कि मैं अकेला इसलिए हूं कि मैं उस प्रकार का नहीं हूं, जिसे लोग अच्छा कहते हैं, मैं पढता नहीं हूं, किसी का कहना नहीं मानता हूं, ढीठ हूं, लडाकाहूं, शैतान हूं । नहीं तो आज इस समय पिता के पास हंस रहा होता, या माता के पास कुछ मिठाई खा रहा होता, भाइयों के साथ ही कोई सचित्र पुस्तक पढ रहा होता, जिसके स्थान में सबका भुलाया हुआ यहां अकेला खडा हूं[3]... । इसलिए तो एक बार शेखर के पिता के पूछने पर शेखर उत्तर देता है - 'बुरे के बगैर अच्छा नहीं होता

लोग बुरे को देखते हैं, तभी उन्हें पता लगता है कि क्या अच्छा है । बुरा नहीं हो, तो क्या पता लगे कि अच्छा क्या है[4] ?'

अकेलापन से निसृत मृत्यु बोध भी शेखर में उपलब्ध है । बचपन से ही यह प्रवृत्ति उसमें हम देखते हैं । इसलिए वह अपने को मृत्यु के मुंह में डालने केलिए तैयार होता है । यह मृत्यु बोध शेखर पर असर छोडता ही रहता है । इसलिए वह कहता है 'अरे अभी क्या हुआ है, अभी तो मैं फिर किसी दिन यह करूंगा । डूब कर देखूंगा, मरना क्या होता है मैं जरूर किसी दिन ऐसे ही मरूंगा[5]' ।

अपने विश्वासों के प्रति ईमानदार होना बडी बात है याने अपने अहं अपनी आत्मा के

- -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.42 -2- वही पृ.53

3 वही पृ.57 -4- वही पृ.58 -5- वही पृ.82

प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के ईमानदार होना शेखर हमेशा चाहता था । जब उसे विश्वास हो गया, ऐसी कोई सत्ता नहीं है कि जिसे हम ईश्वर कह सके । जब उसको यह विश्वास दृढ हो गया तब वह तुरन्त पिता के सामने भी कहता है - 'ईश्वर नहीं है - ईश्वर पर मेरा विश्वास नहीं है । लेकिन यह कहने के कारण वह सबके सामने बेत से पिटा, लेकिन आह, वह इस वाक्य को कह सकने की सामर्थ्य का अभिमान, वह किसी ध्रुव निश्चय की शान्ति, वह आत्म - सम्मान की लहर । वह विश्वास केलिए पिटने का प्रज्वलित आनन्द । और वह अपूर्व विजय, तब एकान्त मे दबे स्तर मे उसके भाइयो ने बताया कि वे भी ईश्वर मे निष्ठा नही रखते' [1] सुनकर वह और भी अधिक उत्साहित हो जाता है ।

अकेलापन का असर शेखर पर इसलिए ज्यादा पड रहा था कि शेखर के प्रश्नो का नकारात्मक उत्तर, प्रश्नो की अवज्ञा और उसके आत्म-सम्मान को कुंठित बनाने की स्थिति ये सब शेखर अपने अहं के विरुद्ध मानता है - 'उसने देखा - समझा लिया, कि कोई किसी का नही है, यानी इतना नही है कि उसका स्वामी, निर्देशक भाग्य-विधायक बन सके कोई ऐसा नही है जिस पर निर्भर किया जा सके, जिसे प्रत्येक बात मे पूर्ण, अचूक माना जा सके । यदि किसी का कोई है, तो उसकी अपनी बुद्धि है मनुष्य को उसी के सहारे चलना है, उसी के सहारे जीना है [2] । इसलिए वह अपने जीवन मे मनुष्यो से बढकर पशु-पक्षियो मिट्टी-पत्थरो को स्थान देने लगा । क्योंकि उनमे विश्वास घात की प्रवृत्ति कम होती थी । प्रकृति के विभिन्न जीवियो की रहन-सहन का अध्ययन करता है और अपने अ अकेलापन को दूर करता रहता । लेकिन उसे इसकी चिन्ता नही कि वह निरुद्देश्य भटक रहा है, निठल्ला हो रहा है । क्योंकि उसकी इस उद्देश्य हीनता मे एक प्रतीक्षा है । इसी उद्देश्य हीनता और अकेलापन की स्थिति मे भी वह कभी कभी ऐसा काम पूरा कर लेता था, जो उसके अहं को संतृप्ति प्रदान करे । जब उसने अपने आप नाटक लिख डाला, तब वह बहुत खुश नज़र आता है - 'यह अमूल्य रत्न किसी को नहीं दिखाया - सरस्वती को भी नही । और हर समय जब जहां वह जाता, उसके मन मे एक ध्वनि गूंजा करती, मै शेखर हूं, एक अपूर्व नाटक का लेखक चन्द्रशेखर । और मैं ने अकेले ही, बिना किसी की

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.91

2 वही पृ.93

सहायता के अपने हाथों से उसका निर्माण किया है [1]। इस प्रकार वह अपनी प्रतीक्षा के पथ पर उन्नति भी प्राप्त करता है और उसे मालुम है कि इस परिणाम का स्वागत करने केलिए कोई तैयार नहीं होंगे। इसलिए वहाँ अपने - आप इसे संचित रखना चाहता है।

अपने अस्तित्व का उत्स वह और कहीं पा नहीं सकता। क्योंकि जिसकी प्रतीक्षा या आग्रह अगर उसके मन में जागृत होते हैं तब उसे मिलता घृणा और पीडा - तब लाचारी का क्षण भी पैदा होता है, तब प्रणित अहं प्रश्नात्मक होकर खडा होता है। 'मैं घृणा के संसार से इतना कुचला गया हूँ कि प्यार मेरा अपरिचित हो गया है। लेकिन कल्पना की आँखों से जब देखता हूँ, शिशिरकालीन फीकी चांदनी में गेहूँ के पके हुए खेत में से कोई स्वर अपने प्रियतम को बुलाता है, तब मेरे हृदय में कोई सुप्त प्रतिध्वनि जागकर कहती है 'तुमने भी कभी प्यार पाया है [2]। ममता के संसार से कुचला गया जानकर, आनन्द के संसार में प्रणित बनाकर छोडा गया जानकर वह अपने अहं की चिन्ता भी कभी कभी छोड देता है - मानो जीवन के स्लेट पर से, भूल से या गलत लिखे गये अक्षर की तरह अपने को मिटा देना चाहता था [3] .....।

चारों तरफ ऐसी दुनिया से शेखर का परिचय हो जाता है कि उसे नकारते हुए लोग झूठ बोलते हैं। उसके प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर देने को तैयार नहीं होते। साथ ही साथ उसे अविश्वास के आरोप का पात्र बनना पडता है। जब शेखर उसकी माँ के मुँह से सुनता है कि वह शेखर पर भी विश्वास नहीं करती है, तब वह निश्चय करता है कि मैं विश्वास का पात्र कभी बनूँगा तब माँ के सामने पटक दूँगा।

अविश्वास उसे अकेलापन की दुनियाँ में जाता है और वह मृत्यु बोध से अभिभूत हो जाता है। अकेलापन में मृत्यु बोध उसे एक प्रकार का सुख भी प्रदान करता है। महाबलीपुरम के समुद्र तट पर बैठकर वह यही सोचता है कि समुद्र में खडे हुए पत्थर के स्तंभ तक तैरने की इच्छा पैदा होती है और अच्छी तरह तैरना न आने पर भी वह यों ही अपने शरीर को छोड देता है। उसे लगता है 'आगे मृत्यु है फिर उठेगा, फिर पानी

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.117

2 वही पृ. 128

3 वही पृ. 130

मर जायेगा, बेहोश हो जाऊंगा और अनजाने में मर जाऊंगा । व्यर्थ । सांस क्यों लूं - मृत्यु यही सही - मृत्यु । मैं जान लूंगा कि मृत्यु क्या होती है, अनुभव कर लूंगा । यहां घबराना नहीं चाहिए[1] .... । लेकिन शेखर पाता है । उसे किसी ने बचाया है और उसका बदन दुख रहा है । लेकिन फिर भी उसे इस घटना से प्रेरणा मिली कि संसार का सामना कैसे किया जाए । 'उस आद्य शक्ति को जिसने एक बार देखा है, उसने अपने को सदा केलिए समर्थ बना लिया है, वह पद-भ्रष्ट नहीं हो सकता । मर सकता है पर झुक नहीं सकता, नष्ट हो सकता है पर कीच में नहीं रंग सकता[2] । अकेलापन उसे प्रेरणा देता है, अहं को बलिष्ट बनाता है, आत्म सम्मान भी पैदा कर देता है ।

यह हम पहले बता चुके हैं कि शेखर के अहं में दुख की प्रधानता है । शशि के जीवन के साथ आ मिलने पर वह दुख के अधिक निकट पहुंचता है और इस दुख की निकटता से अहं को शुद्ध एवं परिष्कृत भी बनाना चाहता है । वह शशि से कहता है 'दुख की छाया एक तापस्या ही है - उससे आत्मा शुद्ध होती है और यह अनुभव करता है कि शशि के परिवार के दुख में आ मिलने से उसकी आत्मा का परिवेश और भी परिष्कृत हो गया है । लेकिन वह शशि को बचाने में असमर्थ हो जाता है । आंशिक रूप से शशि से अलग होने के कारण, उसका शशि पर जो अधिकार था वह नष्ट हो गया । उसे लगता है कि उसका अहं खण्डित हो गया है क्योंकि अधिकार भी नष्ट हो गया है । 'वेदना.... कोई उसके भीतर कहता है, वह नहीं थी सहोदरा, नहीं थी बहिन, जो हुआ है वह होना ही था ..... उसे दुख का अधिकार नहीं है ..... हां, नहीं है अधिकार, अधिकार होता तो दुख क्यों होता ? दुख उसको मेरी स्नेह की भेंट है, जैसे बहिनापा उसका मुझे स्नेह का दान था[3] ।

शेखर का अहं कभी कभी आत्म - पीडन की अवस्था तक पहुंच जाता है । उसके द्वारा रचित 'हमारे समाज' को समाज ने तिनके के समान ठुकरा दिया, जो उसके जीवन का संचित निक्षेप था । उसका स्वागत तो नहीं हुआ, बदले में उसे उपेक्षा ही मिली । वस्तुतः वह शेखर केलिए अपने जीवन की उपेक्षा है, अपनी भावनाओं की उपेक्षा सी लगती है

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.232 -2- वही पृ.233
3 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.80

और वह अपने विगत जीवन की ओर दृष्टिपात करते हुए शशि से कहता है - मै ने किसी को सुख नही दिया; एक अहंकार केलिए जिया हूं और सबको क्लेश देता आया हूं जिनसे स्नेह किया है, उन्हे भी सुख नही दिया[1]।

शेखर मे आत्म-पीडन का अंश होते हुए भी वह अपने संकुचित दायरे मे सिमटकर बैठ नही जाता है। जिस समाज ने शशि को ठुकरा दिया था, उसी समाज का मुकाबिला वह शशि के साथ करता है। पडोस के बच्चे तक उसके पास नही आते कि समाज ने उन्हे भी मनाकर दिया था। शशि का अन्तिम शब्द उसको आशा देती है - मै नही चाहती कि तुम मानव कम होओ, शेखर, किन्तु अगर तुम मे उसकी क्षमता है, तो उससे बडे होने की अनुमति - स्वाधीनता मै तुम्हे सहर्ष देती हूं[2]।

शेखर उपन्यास मे एक ईमानदार व्यक्ति के अहं का पूर्ण विकास, एक अधूरे व्यक्तित्व को पूर्ण बनाने के प्रयत्न को उजागर किया गया है। इसलिए एक बौदि्धक परिवेश जो सतही ढंग पर न होकर गहरे ढंग पर विश्लेषित हुआ है। उपन्यासकार का कथन द्रष्टव्य है - मेरा दृष्टिकोण सर्वथा बौदि्धक रहा है। एक व्यक्ति की पूरी ईमानदारी के अपने राग-द्वेष को सर्वथा पृथक रखकर वस्तुगत चित्रण करना और तज्जन्य बौदि्धक आनन्द को स्वयं ग्रहण करना तथा पाठक को ग्रहण कराना मेरा उद्देश्य रहा है। किसी व्यक्ति का विशेषकर उस व्यक्ति का, जो अपनी ही सृष्टि हो, चरित्र विश्लेषण करने मे अपने राग-द्वेषों को अलग रखते हुए पूरी ईमानदारी बरतना स्वयं अपने मे एक बडी सफलता है। आज शायद यह कहेंगे कि यह व्यक्ति मेरी सृष्टि ही नही, मै स्वयं हूं और यह विश्लेषण अपने ही व्यक्ति विशेष का विश्लेषणात्मक सिंहावलोकन है। तब तो ईमानदारी और वस्तुगत चित्रण का महत्व कई गुना हो जाता है। क्योंकि अपने को पीडा देना तो आसान है, पर राग-द्वेष विहीन होकर अपनी परीक्षा करने मे असाधारण मानसिक शिक्षण संतुलन की आवश्यकता होती है। इससे प्राप्त आनन्द राग-द्वेष मे बहने के आनन्द से कहीं भव्यतर है। मै ने इसी को पाने का प्रयत्न किया। 'शेखर' पढकर आप जितना ही इस आनन्द को प्राप्त कर पाते है, उतनी ही मेरी सफलता है[3]। स्पष्ट है कि शेखर का अहं कुंठित नही है। निरंतर खोज मे रत एक ईमानदार व्यक्ति की आत्म कहानी है।

- - - ------- - -- --------- - - --

1 शेखर एक जीवनी (दू.भा.) पृ.164
2 वही प 248

(4) शेखर एक जीवनी मे मनोविज्ञान -

आधुनिक युग मे मनोविज्ञान का प्र भाव बहुत ही गहरा है । मनोविज्ञान का प्रभाव विज्ञान के क्षेत्र तक संकुचित न रहकर समुचित ढंग से सारे क्षेत्रो तक फैलता गया । साहित्य के क्षेत्र मे भी मनोविज्ञान का प्रभाव आधुनिक युग की एक विशेषता है । अंग्रेज़ी साहित्य के जेम्स ज्वायस, थामस मान, वरजीनिया वुल्फ आदि उपन्यासकारो के उपन्यासो को मनोविज्ञान सीमातीत रूप मे प्रभावित करता रहा है ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य मे जैनेन्द्र का आगमन कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण है । हिन्दी मे मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की परंपरा इन्ही से होती हैलेकिन शेखर एक जीवनी की अपनी विशेषता है कि इसमे बालमनोविज्ञान को अधिक महत्व दिया गया है । मनोविज्ञान मे बालमनोविज्ञान का विशेष स्थान है । मानसिक उर्जा (सैक्सि् एनरजी) का विकास बाल जीवन की स्थिति मे होता रहता है । पूर्ण रूप से विकसित एक मानव मन मे भी बाल जीवन का प्रभाव गहरा होता है । यह भी महत्वपूर्ण है कि मनोविज्ञान को एक पूर्ण विज्ञान के रूप मे मनन करने केलिए बाल मनोविज्ञान की जरूरत पड जाती है । विभिन्न प्रकार की जटिलताएं प्राथमिक रूप मे बालको मे पाई जा सकती है । क्योकि मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास बाल्य - काल से आरंभ होता है ।

मनोविज्ञान को दृष्टि मे रखकर 'शेखर' को परखे तो हमे ज्ञात होगा कि बाल-मनोविज्ञान के विविध अंगो पर प्रकाश डाला गया है । बालक के जीवन मे कैसे यौन संबन्धी विचारो का विकास होता है, कैसे विभिन्न भाव एवं विकार (इमोशणल् फीलिंग्स) बढते रहते है, उनके छोटे छोटे व्यवहारो को माध्यम बनाकर उनके व्यक्तित्व को कैसे पूर्ण रूप से उजागर किया जा सकता है, आदि बातो पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है । 'बाल मनोविज्ञान के अनेक मार्मिक प्रसंगो का उल्लेख कर अज्ञेय ने शेखर के व्यक्तित्व का चित्रण किया है । स्थान स्थान पर उसकी मानसिक प्रतिक्रिया का उतार चढाव तथा कुण्ठा वर्जना या ग्रन्थियो का स्वरूप सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक धरातल पर उद्घाटन हुआ है[1] ।

---

1 शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ.47

यह जरूर है कि 'शेखर' में अज्ञेय का अपना जीवन सूक्ष्म रूप से सही घटनाओं के रूप में उभरता है । इसलिए आलोचक इसी को उपन्यास का एक क्षीण पक्ष मानते है[1] ।

'शेखर' एक व्यक्ति के विकास - व्यक्तित्व के विकास - की कहानी प्रस्तुत करता है । स्वयं अज्ञेय ने भी स्वीकार किया है कि अपनी आत्म-जीवनी का अंश उपन्यास में खुद - ब. खुद आ गया है । छोटी छोटी घटनाओं की भी जाच कर रहा है । बाल्यकाल का अध्ययन स्वयं अपना महत्व रखता है और विदेशों के कई कलाकारों ने बाल्य मन का अध्ययन और चित्रण किया है, लेकिन जीवनी में यह अध्ययन साध्य नहीं है; वह केवल उन सूत्रों को खोजने का साधन है 'शिशु मानस के चित्रण की सच्चाई में लिए मै ने 'शेखर' के आरंभ के खण्डों में घटनास्थल अपने ही जीवन से चुने है, फिर क्रमशः बढते हुए शेखर का जीवन और अनुभूति - क्षेत्र मेरे जीवन और अनुभूति क्षेत्र से अलग चला गया है, यहा तक कि मै ने स्वयं अनुभव किया है कि मै एक स्वतंत्र व्यक्ति की प्रगति का दर्शक और इतिहासकार हूं: उसके जीवन पर मेरा किसी तरह का भी वश नहीं रहा है[2] ।

बालक शेखर का स्वतंत्र अस्तित्व है । वह अपने परिवेश के साथ इतना घुल मिल गया है और उसमें से अपने व्यक्तित्व का उत्स पाने केलिए अपने भावों को नकारता नहीं है बल्कि गहरे ढंग पर उसका विश्लेषण करता रहा है और देखना चाहता है उसका स्थान यहा कैसा है । उसके अस्तित्व का कौन सा पहलु दृढ है एवं क्षीण है, आदि बातों को विशेषणात्मक ढंग पर देखता है । अतः स्वाभाविक रूप से मनोविज्ञान का उपयोग होना अनिवार्य है । उपन्यास केपहले भाग में मनोवैज्ञानिकता अधिक उजागर है ।

शेखर के बाल मनोविज्ञान पर प्रकाश डालने के पूर्व हमें बाल मनोविज्ञान की कुछ मोटी रेखाओं की ओर भी दृष्टिपात करना उचित लगता है । बाल मनोविज्ञान के सिद्धांत इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह मनोवैज्ञानिकों एवं अध्येताओं केलिए प्राकृतिक प्रक्रिया के साथ

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 नन्द दुलारे वाजपेयी - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ.220

2 शेखर एक जीवनी - (पहला भाग) भूमिका - पृ.8-11

मेल कराने, सैद्धान्तिक खोज और अनजान ज्ञान भण्डारों को भी खुलवाने का कार्य करता है[1]।

बालकों के मनोविज्ञान याने उनके व्यवहार आदि की ओर सूचना निर्देश करनेवाला तत्व बालक एवं परिवार जीवन का होता है। इनके आपसी संबन्ध ही आगे के सामाजिक संबन्धों की नींव डालते हैं। साथ ही माता पिता बच्चे के प्यार काजो संबन्ध होता है, वह भी बालकों के विकास का एक मुख्य तथ्य है[2]।

प्रस्तुत उपन्यास में पूरी तरह से शेखर के पारिवारिक जीवन और उसके आपसी संबन्ध को सूक्ष्मता से उजागर किया गया है। उपन्यास के पहले भाग में बालक शेखर का जीवन चित्रित है जिसे हम किशोरपूर्व (प्री अडोल्सेंस) एवं किशोर अवस्था की प्रारंभिक अवस्था (दि फर्स्ट फेस आफ अडोल्सेंस) मान सकते हैं जो बाल मनोविज्ञान में निरूपित मुख्य अवस्थाएँ हैं। इसी काल में बालकों के विकास से संबद्ध विभिन्न धारणाओं का अध्ययन बहुत सूक्ष्म ढंग से किया जा सकता है।

- -

1. Theories are constructed and elaborated by the scientist for many reasons. They are useful in intergating and abstracting the inter-relatedness of natural phenomena. They often suggest the next steps in systematic inquiry relationships that are post lated as existing in nature but which have never been described or detailed. They serve as a lure and spur to scientist indegenious and acquired curiosity. Like a treasure map they his aptitude for quest by the unknown and uncertain. They satisfy his desire for understanding by permitting him to predict future events and in some instances to control the nature. George G. Thompson - Child psychology - Growth trends in psychological adjustment (Second Indianprint.1969) p.9.
2. Home influences probably outweighs the effects of all other environmental impacts combined in determining the fundamental organization of children's behaviour. According to psychoanalytic theory, social values and contrals are largely intercorized on the basis of early parent - child interactions. The foundations of children's social attitudes and skills are obviouslylaid in the home patterns of dependence, independence, submission, co-operation, competition and convertism - liberalism have their genesis in early parent - Child interactions with in the home. Affectionate tendencies, which are so important to psychological adjustment in adult life are dependent on the nature of parent - child relationships. The home is truly the greatest socializing agency in all contemporary cultures.

Ibid p.621

आगे शेखर के प्रमुख व्यवहारों का निर्धारण करते हुए उसका विश्लेषण किया जाएगा। बालक शेखर अहन्ता की अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है - 'सड़क की ओर जो गोल सा लाल लाल लेटरबक्स है, उसी ने बालक का ध्यान आकृष्ट किया है। वह किसी तरह उस पर चढ गया है, ऐसे सवार है जैसे घोडे की पीठ पर ही हो, और उसकी चोटी पर लगी हुई खूंटी को एक हाथ से रह-रहकर ऐसे खींचता है जैसे वह लगाम हो। दूसरे हाथ से वह अपने 'घोडे' की 'गरदन' थपथपा रहा है, जैसे उसने पिता को करते देखा है ..... वह सम्राट है। अपने विजयी घोडे पर बैठा है और संसार का ललकार रहा है। जब भी कोई राही उसके पास से होकर निकलता है, तब वह उसे मुँह चिढाता है और पुकारकर जो मन में आता है कह डालता है। तभी डाकिया - क्षुद्र संसार का क्षुद्र डाकिया - आकर उसके स्वप्न को तोड देता है, उसे वहाँ से उतर जाने को कहता है, और उसके तत्काल न मानने पर झटक कर फिर कहता है .... तब हतवैभव शिशुसम्राट अपना बदला भी लेते है - कि उतरते समय डाकिये की उंगलियों पर ही गिरते है, उन्हे कुचल देते है, और भाग जाते है, घर पहुँचकर ही दम लेते है, और फूले हुए श्वास को शान्त करते करते अपने को विश्वास दिला देते है कि अब वे विजयी है ......[1]

शेखर की शिशु - प्राय अवस्था मे घटित दूसरी घटना है जो उसके मन में भय नामक विकार को उत्पन्न करती है - 'वह अकेला अजायबघर मे फिर रहा है, उस कमरे मे जिसमे वन्य और हिंस्त्र पशु प्रदर्शित किये गये है। एकाएक वह देखता है, उसके सामने एक भीमकाय बाघ प्रकट हो गया है। एक पंजा पकडने कोउठा - भयंकर दांत - वह जीभ - आरक्त आँखें और वह चीख उठता है, भय से विकल होकर .... और भागता है .... उसे जान पडता है कि वह बाघ उसके पीछे चला आ रहा है ...[2]। शिशु मानस मे भय का उत्पन्न होना साधारण है और वह सिर्फ एक वस्तु पर स्थिर न होकर

---

1 (क) शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.50-51।

(ख) The child is always free to choose his responses, but certain attitudes tend to bring about certain respenses from the child. Reflection usually makes the child devluate himself and produces hostility and rebellion.
Don C. Dinkmayer 'The Child development : The emerging self (1967) p.198

2 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.51।

विभिन्न वस्तुओं के प्रति होता है[1]।

उपन्यास में बालक शेखर के यौनाविष्ठित (सेक्स बेस्ड) व्यवहारों के विकास का पूर्ण रूप हमें मिलता है। लेकिन यहाँ एक बात पर ध्यान देना है कि यौन भाव बिखरे पड़े मिलते हैं। एक ऐसी घटना का चित्रण आगे की पंक्तियों में मिलता है जिसमें बालक शेखर में सर्वप्रथम अंकुरित यौन भाव का पता चलता है।

'एक दिन शेखर के पिता उसे अजायब-घर में ले गये और जिस कमरे में मूर्तियाँ रखी थीं, वहाँ पहुँचाकर अपने काम पर चले गये। शेखर कुछ सहमा हुआ इधर उधर देखने लगा। शेखर की दृष्टि एक प्रतिमा पर जाकर ठिठक गयी। यों कहें कि प्रतिमा के पैरों पर ठिठक गयी। क्योंकि वह प्रतिमा बहुत बड़ी थी शेखर ने फिर उसे ऊपर से नीचे तक देखा। पैरों के नीचे लगी हुई लकड़ी की तख्ती तक, जिस पर बड़े अक्षरों में लिखा था 'महावीर जिन'। वह नंगी थी। शेखर नहीं समझ सका कि कैसे उसकी विशाल, भीमकाय, प्रकाण्ड नग्नता का चित्रण करते, उसे गढ़ते समय मूर्तिकार का हाथ नहीं काँपा, उसकी कल्पना नहीं लज्जित हुई। नग्नता का सत्य, सत्य की तरह नंगा, उसके जगत् में नहीं था, आने नहीं दिया गया था। उस के लिए नग्नता झूठी थी, भद्दी थी, अवांछनीय और आदर्शनीय थी। किन्तु या इसलिए वह स्थिर और अकंप दृष्टि से उसे देखता रहा, बहुत देर तक देखता रहा ... मानों उसके मन में उस नग्नता को स्वीकार कर लिया,

- -

1. It was found that the most common fears ware of doctors, dogs, storms and darkness. T-he majority of preschool children have had direct contact with these senses of fear - in many cases unpleasant contacts. We may infer that they have reason to show with drawal in the presence of unpleasant dogs, and have experienced noxious stimulation in the presence of doctors. 'It was found that greatest incidence of fears was in response to mysterious supernatual events, and phenomena. The second lorgest cause of fears was criminals - often animals with which the children had never had any direct experience.'

George G. Thompsen, 'Child Psychology - Growth trands.in Psycholigical adjustments. p.296.

(The above mensioned factors in fear are the analytical results of various psychologists).

वह उसकी दृष्टि में अव्याख्य, अस्वाभाविक, सुन्दर हो उठी[1] .... । इसी प्रकार एक दूसरी घटना का भी चित्रण उपन्यास में है - 'शेखर श्रीनगर के एक ऐसे खण्डहर में जाता है जहाँ उसने सुना था कि उस महल में प्रेत उतर आते हैं, परियाँ नाचती हैं । शेखर वहाँ तीसरे पहर पहुँचा । महल के कमरों की छत तो ही नहीं, वह दीवार पर चढ गया और सामने की ओर नीचे डाल झील का दृश्य देखने लगा । वह डाल देख रहा था; डाल से बहुत अधिक कुछ देख रहा था । धीरे धीरे उसके ऊपर एक सम्मोहन सा छा गया, एक मूर्छा-सी, उसे लगा - उसके पास उसके पास नहीं, उसके भीतर, उसके सब ओर, कुछ आया है, कुछ जिसका वह वर्णन नहीं कर सकता, लेकिन जो बहुत सुन्दर है, बहुत भव्य, बहुत विशाल, बहुत पवित्र .... इतना पवित्र कि शेखर को लगा, वह उसके स्पर्श के योग्य नहीं है, वह मैला है, मन में आवृत है, छिपा हुआ है .... उसी सम्मोहन में उसने एक एक करके अपने सब कपडे उतार डाले, नीचे फेंक दिये, और आँखें मूंदकर खडा हो गया, बिलकुल नंगा आकाश के सामने और उस पवित्र के, उस पवित्र से परिपूर्ण, उसके स्पर्श से रोमांचित[2] ।

उपर्युक्त दोनों घटनाओं में बालक शेखर के यौन भावों का स्फुरण है जो एक बार नगनता में डूबे होकर सौन्दर्यास्वादन में लीन होता है, दुबारा अपनी नगानता से स्वयं आस्वादित होता है[3] ।

- -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.101

2 वही पृ.

3 'The little child is, above all shameless and during his early years, he evinces definite pleasure ~~and~~ in display ing his body especially his sexual organs. A counter part to this perverse desire, the curiosity to see other persons genitals probably apprared first in the later years of child-hood when the hindrance are of feelings of shame has already reached a certain developmant'.

The Basis writings of sigmund Frued -

(Translated by Dr. A.A. Brill with an introduction) (1938) p.593

फ्रायड ने बालकों के यौन भावों के सिलसिले में विचार करते वक्त कुछ ऐसी बातों का भी जिक्र किया है कि कैसे बालकों में धीरे धीरे यौन भावों का विकास होता है । फ्रायड के अनुसार सब से पहले बालक यौन का केन्द्र (लउ ओब्जेट) माता ही होती है जिसे उन्होंने 'इडिपस काम्प्लेक्स' नाम से अभिहित किया[1] । लेकिन इस अवसर पर यह भी याद रखना चाहिए कि यह जो मातृरति है वह कभी कभी थोड़ा विकृत भी हो जाती है । लेकिन कभी कभी यही रतिकेन्द्र (लउ ओबजेट) माता से हटकर निकट बहिन से यह आकर टिकता है[2] । इसका कारण फ्रायड बताते हैं कि कभी कभी बालक का माता पर जो विश्वास होता है वह हट जाता है । अतः यही मातृरति बहिन पर आकर स्फुरित होती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. We call the mother the first love object. We speak of love when we lay the accent upon the mental side of the sexual impulses and disregard, or wish to forget for a moment, the demands of the fundamental physical or sexual side of the impulses. At about the time when the mother becomes the love object, the mental operation of repression has already begun in the child and has withdrawn from him the knowledge of ~~the~~ some part of his sexual aims. Now with this choice of the mother as a love-object is connected all that which, under the name of the 'Oedipus complex' has become of such great importance in the psycho-analytics explanation of the neuroses.......... the little man wants his mother all to himself funds father in the way becomes restive. When the later takes upon himself caress her, and shows his satisfaction when the father goes away or is absent ...... When the ~~father goes~~ little boy shows the most open sexual curiosity about his mother, wants to stop in to her at night, insists on being in the room while she is dreaming, or even attempts physical acts of seduction as the mother often observes and laughingly relates, the natures of ~~the~~ his attachment to her is established without a doubt.

   Sigmund Frued - A general Instoduction to psycho-analysis - (Authorised English Translation of the revised edition by John Riviere.) pp. 339-41-42.

2. A boy may take his sister as love-object in the place of his faithless mother, where there are sexual brothers to winthe favour of a little sister hostile rivalry ...... with infer from this that a child's position in the sequence of brothers and sisters is very great significance for the course of his later life, a factor to be considered in every biography -

   Ibid p.343

उपन्यास में शेखर का अपनी मामा के प्रति जो अतिरंजित प्यार का होना था, वह नहीं दिखाया गया है, क्योंकि उसका माँ के प्रति विश्वास नहीं है । 'शेखर को लगता था कि जिस प्रकार भी वांछित है, प्रिय है और समझने और सहानुभूति करनेवाला है, उसका पुंजीभूत रूप सरस्वती है; उसी प्रकार जो अवांछित, अप्रिय न समझनेवाला और कठोर है उसका साकार रूप एक घनीभूत विघ्न, उसकी माँ है ... शेखर नास्तिक है, और मूर्तिपूजक है । और सरस्वती ही वह उपास्य मूर्ति है । इसलिए शेखर अपनी बहिन सरस्वती से कहना चाहता है - 'बहिन, मुझे मूर्ति उतनी नहीं चाहिए, मुझे मूर्ति - पूजक चाहिए । मुझे कोई ऐसा उतना नहीं चाहिए, जिसकी ओर मैं देखूं, मुझे वह चाहिए जो मेरी ओर देखे'[2] । सरस्वती के साथ शेखर की जो निकटता थी, और उसे उसने माता से भी बढकर - परिवार के अन्य सदस्यों से बढकर प्यार किया था और उसकी शादी की बात सुनकर शेखर के मन में एक धक्का सा लगता है । शादी के दिन वह बीमार पड जाता है । बुखार की अवहेलना करते हुए वह शादी के मण्डप पर बैठ जाता है और बहिन की शादी भी देख लेता है ।

शेखर के वयः सन्धि काल का चित्रण भी उपन्यास में है । एक प्रकार की अस्थिरता उसे घेर लेती है । वह जानता है कि उसे किसी की भी जरूरत है, मगर उसे पता नहीं कि वह कैसी जरूरत है । 'उसे लगता, उसके शरीर में कोई परिवर्तन हो रहा है । उसे लगता, वह बीमार है; उसे लगता उसमें बहुत शक्ति और स्फूर्ति आ गयी है; उसे लगता उसे जीवन की एक नयी किश्त मिलनेवाली है और वह अपने ही मद से उन्मद कस्तूरी मृग की तरह, या प्लेग से आक्रान्त चूहे की तरह, या अपनी दुम का पीछा करते हुए कुत्ते की तरह, अपने ही आसपास चक्कर काटकर रह जाता[3] । कभी कभी उसके अन्तरमन की गहराइयों से वह समझता है - 'अपने शरीर की माँग वह नहीं समझता, लेकिन उसे लगता, वह कुछ अनुचित है, कुछ निषिद्ध, कुछ पापमय । और वह चाहता कि किसी तरह उसे दबा डाले, कुचल डाले, धूल में मिला डाले कि उसका पता भी न लगे- चाहे शरीर ही उसके साथ क्यों न नष्ट हो जाए[4] । इस अनजान काम वासना को

---

1 शेखर एक जीवनी (प्र.भा.) पृ.146 -2- वही पृ.144
3 वही पृ.150 -4- वही पृ.151

उदात्त (सब्लिमेट) करने के हेतु वह कविताएं पढता है । इसके पश्चात् वह अपने को कठिन दिनचर्या मे बांधा रहता है और चाहता है सब कुछ छिपाकर करे वह ऐसे चिढ-चिढे व्यवहार करता है । इसे मनोवैज्ञानिको ने 'मेलन्कलिया' नामक रोग कहा है ।

एक और बात यह भी है कि खुद उपन्यास मे लेखक इस रोग की चर्चा करते है और जब वह जान जाता है कि उसे ऐसा ही रोग है तो खुद समझने की कोशिश करता है कि उसे रोग नही है । वस्तुतः यह प्रसंग बहुत ही सतही ढंग का है और वह अस्वाभाविक लगता है ।

बालको के हृदय मे यह आकांक्षा (क्यूरियोसिटी) हमेशा बनी रहती है कि बच्चे कहां से आते है । एक प्रकार से यह आकांक्षा उसके यौन विचारो से प्रेरित ही रहती है । शेखर मे भी यह आकांक्षा प्राप्त होती है । वह एक दिन देखता कि मां के पास एक बच्चा है । यह वह पहले ही देख चुका है कि जब उसके छोटे भाई का जन्म हुआ था, तब मां ने बताया था कि बच्चा दाई लाती है । दाई से उसने सुना डाक्टर बाग मे लाता है । लेकिन उसने देखा था कि चिडियो का बच्चा अण्डे से निकलता है और वह मां से पूछता है कि अण्डे कहां से आते है, तब उसे उत्तर मिलता है ईश्वर भेज देता है । ईश्वर अण्डे कैसे देता है - बारिश के साथ बरसा देता होगा । लेकिन शेखर इन उत्तरो से सहमत नही था

---

1. The distinguishing mental features of melancholia are profoundly painful defection, abrogation of interest in the outside world, loss of the capacity to love, inhibition of all activity, and a lowering of the self - regarding feelings to adegree that finds utterance in self reproaches and self revilings and culminates in a delutional expectation of punishment. This pucture becomes little more intelligible when we consider that, with one exception, the same traits are met within grief. The fall in self esteem is absent in grief, but otherwise the features are the same........ In grief the worl becomes poor and empty in melancholia it is the ego itself. T patient represents his ego to us as worthless, incapable of any effert and morally despicable, he repreaches himself, vilifies himself and expects to be cast out and chastissed. He abuses himself before every one and commiserates his own relatives for being connected with some one so unworthy. He does not realize that any change has taken place in him, but extends his self back over the past and declares that he has never any better.
Sigmund Frued - General psycholigical theory(Third printing) (1966) pp. 165-67.

कि उसको मालुम हो गया कि सब लोग झूठ बोलते है । दुबारा जब माँ के पास, जब बच्चा देखने को मिलता है तब वह सरस्वती से यह पूछ बैठता है - 'दाई लाती है, डाक्टर लाता है, ईश्वर देता है । यह सब मै सुन चुका हूं, यह मत बताना । वह सब झूठ है, मुझे पता है । अगर ऐसे आते है तो, इतने छिपा छिपाकर क्यों आते है? और हम को क्यों नहीं आते ? और कहती थी कि हमे और बच्चे नहीं चाहिए, उनको क्यों आये ? उन्होने वापस क्यो नहीं कर दिये ? ईश्वर क्यो भेजता है ? मै बहिन मांगा करता था, तो भाई क्यो आया था ? चिडियों के बच्चे अण्डो मे से निकलते है, मै ने आप देखे है । अण्डे कहा से आते हैं? इतनी रात को क्यो आयी, दिन मे क्यो नहीं आयी ? और हमे वहां जाना क्यो नहीं मिलता ? और सब लोग झूठ क्यो बोलते है ? बताओ, तुम्हें पता है । लेकिन शेखर को ठीक उत्तर नहीं मिला, पर सरस्वती के मुंह से इतना तो मिला बच्चे माँ के शरीर मे से निकलते है । मगर इससे आगे वह जान नहीं पाया ।

इसी प्रकार आगे दो ऐसी घटनाओं का साक्षी बनता है कि पहले उसने फिर सुना कि सरस्वती को बच्चा पैदा हुआ है जो अठमासी था । इसी समस्या का हल वह करना चाहता है, लेकिन मिलता नहीं है । शेखर मे यह जो आकांक्षा है वह यौन विचारों से उत्प्रेरित है[2] । दुबारा वह अपनी आंखो से देखता है कि उसके माँ और पिता उसे देखते ही

---

1 शेखर एक जीवनी (पृ.भा.) पृ.133

2 The sexual interest of children is primarily directed to the problem of birth - the same problems that lies behind the riddle of the ban sphinx. This curiosity is for the most part aroused by egoistic dread of the arrival of another child. The answer which the nursery has a ready for the child, that the stroke brings the babies, meats with even in little childr much more we imagine. The feeling of having been deceived by grown up people, and puts off with lies, contributes greatly to a sense of isolation and to the development of independence But the child is not ask to solve this problem on his own account. This undeveloped sexual constitution sets definite l mits to his capacity to understand it. The first supposes tha children are made by mixing special thing with the food nor does he know that only women can have children. Later, he learns of his limitation and give up the idea of children bein made by god though it is retained in fairy tales. A little later he soon sees that the father must have some thing to do with making babies, but he cannot discover what it is.
Sigmund Frued - A general Instoduction to psycho analysis. p.327.

एकदम अलग हट जाते है ।[1] उसने देखा था - पिता की बाहे माँ को घेरे हुए थी, और पिता कुछ कह रहे थे । शेखर ने यह प्रथम बार देखा था लेकिन उसके मन मे भी यह शंका पैदा होती है यह डर और लज्जा क्यो होती है । शेखर भी अनुभव करता है कि 'कभी उस की बाहे मानो किसी को घेर लेने को, दबा डालने को फडक उठती है, और इसकी कल्पना मे उसे सुख होता है, अभिमान होता है, अपने प्रति आदर होता है[2] । फ्रायड के अनुसार जब बालको को माता और पिता के बीच की रतिक्रिया को देखने की सुविधा मिलती है तब उसकी समझ मे यह नही घुसती कि एक प्रकार से उसकी आकाक्षाएँ कुण्ठित हो जाती है[3] ।

शारदा से परिचय प्राप्त करने के बाद उसके मन मे शारदा के प्रति प्रेम भाव का उदय होता है । लेकिन यह भाव स्वच्छ होते हुए भी उसमे यौन विचारो का पुट मिलता है क्योकि वह अनुभव करता है' एक घनपुंज ने उन दोनो को घेर लिया है । उसे जान पडता है, शारदा के केशो का सौरभ उसके सारे शरीर को एक स्नेह - भरे स्पर्श से छूता जा रहा है, किन्तु जहाँ वह छूता है, शरीर झुलस जाता है .... और वह उन अनुसुगन्धित केशो के स्वाभाविक सौरभ पा रहा है, उसको जिसमे नीम के बौर की सी, दबी सी सुगन्ध आ रही है, और उससे उसकी अन्तरात्मा जल उठी है । और ऐसा जलता हुआ भी वह एक अथक आनन्द से भरा उसी बादल के साथ आकाश मे बहा जा रहा है शारदा के पार्श्व मे संसार पार हो चुका है[4] । शेखर अपने मन मे यह स्थिर कर लेता है कि वह शारदा से प्रेम करता है । लेकिन प्रेम के साथ एक प्रकंपन भी है जो उसकी यौन-परक अनुभूतियो की ओर भी इशारा करता है ' एक दुर्दम्य प्रेरणा से शेखर झुकता है, अपनी ठोडी शारदा के सिर पर टेक देता है । उसके रूखे केशो को सूंघता है । फिर अपनी नाक उन

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.158 -2- वही पृ.158

3 If the children at so tender age witness the sexual act between adults that which an occassion is furnished by the connection of the adults that the children cannot understa[nd] anything sexual, they cannot help conceiving the sexual ac[t] as a kind of maltreating or over powering, that is it impre[-]ss them in a sadistic sense.
Basic writings of Sigmund Fre[ud] (Tr. Dr.A.A.Brill) p.596

4 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.163

केशों मे दबा देता है और दो, तीन, चार, पांच बहुत लम्बी सांसे खींचता है[1]।
फ्रायड के अनुसार लिबिडो उर्जा की यह प्रवृत्ति होती है कि उसमे वेदना (पेइन) को दूर करता रहता है, जिसे उन्होने प्लेशर प्रिंसिपिल कहा है[2]।

शेखर के यौन संबन्धी विकास के अन्तर्गत, उसके वयः सान्धि काल के बाद जब वह कालेज मे भर्ती हो जाता है, तब उसका कुमार से परिचय हो जाता है और उसके साथ समलिंगी रति (होमो सेक्सुवालिटी) मे रत दिखाता है। शेखर का होस्टल मे सबसे पहले कुमार से ही परिचय होता है और उसके स्नेह से शेखर अत्यधिक अभिभूत भी हो जाता है। एक दिन रेतीले मैदान मे पडे पडे शेखर कुमार को चूम लेता है और साथ कह भी देता है कि 'कुमार, यदि मेरे अतिरिक्त तुम और किसी के हुए, तो मै तुम्हारा गला घोंट दूंगा[3]। जेम्स सी.कालमान नामक विद्वान का कहना है कि समलिंगी (होमो सेक्सुवल) व्यवहार का होने का एक कारण जब कभी किसी लडके या लडकी से बताया जाता है कि विपरीत लिंगी व्यवहार अनुकरणीय नही है तो स्वाभाविक रूप से वह, चाहे लडकी हो या लडका अपने ही वर्ग के, याने समलिंगी वर्गो की ओर आकृष्ट होता है। क्योंकि वहां उसको अधिक सुविधा मिलने की संभावना होती है[4]। लेकिन शेखर का कुमार के साथ जो समलिंगी व्यवहार

---

1 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ 173

2 One group serves the purpose of life : their energy is calle libido. The instincts are a constant sense of emotional ter sion, whose conscious impact is painful and unpleasent. One the Freudsffirst and fundamental assumptions was that all activities of mind are driven by the need to reduce or eliminate this tension. Because conscious of experience of pleasure was supposed to accompany all tension - reduction. Frued called this fundamental assumption the pleasure princi ple.
George A Miller Psychology of the science of mental life. (1962) p.259

3 शेखर एक जीवनी (प.भा.) पृ.203

4 Negative conditioning of Hetero sexual behaviour. A variety of circumstances may lead to conditioning in which hetero sexual behaviour becomes an aversive stimulus. For example, where the boy or girl is ridiculed, rebufled, and humiliated in his effort to approach members of the opposite sex, he may turn towards homosexuality as a safer source of affection and sexual outlet.
James C. Conlemon. } Abnormal psychology and modern life
William E. Broen } (New revised Edition) p.489

दिखाया गया है, वह उपर्युक्त बत के साथ निभता नहीं ।

उपन्यास के दूसरे भाग मे हम देखते है कि शेखर के जीवन मे शशि का पादार्पण बहुत ही गहरे ढंग से चित्रित है । हम यह भी पाते है कि शेखर के जीवन को नियंत्रित करनेवाली शक्ति शशि के शब्दो मे है । शेखर के सारे सपने शशि मे आकर घुल जाते है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सी.जी.जुग के अनुसार बालक के बढने पर उसके मानस - पटल से माता एवं पिता का रूप धुल जाता है और स्त्री शक्ति उसे हड़प लेती है[1] । क्योंकि जुग मानते है कि हर एक पुरुष मे स्त्री सहज गुण एवं हर एक स्त्री मे पुरुष सहज गुण पाया जाता है जिसे उन्होंने 'एनिमस थियरी के नाम से अभिहित किया ।

उपन्यास के एक दो जगहो मे सपनो के बारे मे बताया गया है । फ्रायड का स्वप्न-विश्लेषण (इटरप्रटेशन आफ ड्रीम्स) मनोविज्ञान के क्षेत्र मे अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है । फ्रायड के अनुसार सपने मे अचेतन मन की कुंठित आकाक्षा की अभिव्यक्ति होती है[2] ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. For the child the parents are the dearest and most influential relations. But as he grows older this influence is split off; consequently the parental images become increasingly shut away from consciousness and on account of the restrictive influence they sometimes continue to exist, they easily acquire a negative aspect. In this way, the parental image remain a alien elements somewhere outside. In the place of parents woman now takes up her position as the most immediate enviormental influence in the life of adult man. She becomes his companion she belongs him in so far as she shares his life and is more or less of the same age. She is not of a superior order, either by virtue of age,authority, or physical strangth. She is however, an image of relatively autonomus nature - not an image to be associated with consciousness. Woman, with her very dissimilar psychology is and always has been a source of information about things for which man has no eyes. She can b[e] his inspiration, his initiative capacity, often superior to ma[n] can give him timely warning and her feelings always directed towards the personal, can show him ways which his aimless pers[o]nality accented feeling would never have discovered.
   Vilot staub De Laszlo - The basic writingsof C.G.Jung. p.158
2. It is perfectly valid phychic phenomenon, actually a wish fulfi[l]ment; it be enrolled in the continuity of the intellegible psychic activitie s of the waking stage, it is built up by a highly complicated intellectual activity
   Saxe Commins } The philosophers of Science (First printin[g]
   Rebert N. Linscott } (1958) p.325

फ्रायड ने सपनो के विश्लेषण के दौरान विभिन्न प्रकार के सपनों का जिक्र किया है, उसमें एक है - 'कवीनियन्स ड्रीम्) जिसमें आदमी जो सोचता है वही तुरन्त नीन्द में देखता है। निम्न लिखित उद्धरण उसका समर्थन करते है[1]। जो

उपर दो सपनो का विवरण दिया गया है। जो कन्वीनियन्स ड्रीम्' का थोडा जटिल रुप है। लेकिन इसी प्रकार के सपने बच्चे भी देखते है। लेकिन वह आकांक्षा पूर्ति का सीधा उदाहरण होता है और बडों की तुलना में बहुत ही साधारण किस्म का होता है[2]

- -

1. (a) Frueds own experience:- Accustomed as I had been working until late at night early waking was always a matter of difficulty. I used them to dreams that I was out of beg and standi at the wash stand. After a while I could no longer shut out the knowledge that I was not yet up; but in mean time I had continued to sleep -

   Saxe commins and Robert N. Linxcott - The philosophers of Science - pp. 329-30

   (b) Frueds collegue's dreams of The same sort of lathargy dream was dreamed by a young collegue of mine, who appears to share my propensity for sleep. With him it is assumed a particularly amusing form. The lond lady with whom there he was lodging the neighbourhood of the hospital had strict orders to wake him every morning at a given hour, but she found it by no means easy to carry out his orders. One morning steep was especially sweet to him. The woman called into the room. 'Herr papi, get up, You have to go to the hospital where upon the dreamer dreampt of a room in the hospital, of a bed in whi he was lying and a chart pinned over his head, which read as follows : Pepi M. Medical student, 22 years of age. He told himself in the dream. It I am already in the hospital I don't have to go there. turned over and slept on'

   Ibid p.330

2. The dream of little children are often simple fullfilment of wished, and for this reason are, as compared with the dreams of adult, by no means interesting - They present no problem to be solved........ but in its inner-most essence, is the fullfilment of a wish.

   Ibid p.332.

आगे शेखर के एक सपने का विश्लेषण दिया जा रहा है । शेखर का छोटा भाई शेखर से कलम मांगता है, वह नहीं देता । मां के बार बार कहने पर भी वह देने को तैयार नहीं होता । मां रुष्ट होकर शेखर के पास आती है । वह मुट्ठी खोलने में जब असमर्थ हुई, तब प्रहार करने लगी । शेखर से वेदना सही नहीं गयी । लेकिन उसने फिर भी कहा नहीं दूंगा चाहे जान से मार ले । यह सुनकर मां एकदम शेखर का हाथ छोड देती है । इसी घटना को लेकर पिता भी बहुत क्रुद्ध हुए और कहा - क्यों बे, जान देने का शौक है ? तब भी शेखर पिछडा नहीं रहता और उत्तर देता है - 'हां, है' । उसी रात शेखर को सांत्वना मिली, सिर्फ सरस्वती से । तब उसकी आंखों में आंसु भी आ गए ।

शेखर का सपना इस प्रकार चलता है 'एक विस्तीर्ण मरुस्थल । दुपहर की कडकडाती हुई धूप । शेखर एक उंट पर सवार उस मरुस्थल को चीरता हुआ भागा जा रहा है, भागा जा रहा है । और उसके पीछे कोई आ रहा है । शेखर को नहीं मालुम कि कौन, लेकिन वह जानता है कि कोई उसका पीछा कर रहा है, और कभी वह मुडकर देखता है, तो पीछे बहुत से उंटों के पैरों से उडी धूल उसे दीखती है एकाएक, सामने सेव के वृक्षों का बाग, जिसके चारों ओर मिट्टी की उंची बाड लगी हुई है, जिसमें कहीं कहीं बिले हैं, और कहीं आयरिस जैसा कोई पौधा है । शेखर उंट पर से उतरकर, बाड पार करके बाग में घुस जाता है । बाग में वृक्ष फूलों से लदे हुए है । इतने अधिक लदे है, कि सारी ज़मीन पर भी फूल बिछे है, और वह बिलकुल शुभ्र हो रही है ...... शेखर थकी सांस लेकर एक पेड के नीचे फूलों की शय्या पर लेटता है और सो जाता है[1] ।

शेखर का उपर्युक्त सपना बहुत ही प्रतीकात्मक है उंटों का पद-छाप जिसके भय से वह भाग जा रहा है, वह शेखर के मां और पिता की स्नेहहीनता और उससे जनित भय है । फूलों से लदी शय्या सरस्वती की गोद है ।

एक और सपने का विवरण उपन्यास में दिया गया है जिसका विश्लेषण वांछनीय है । शान्ति का तेजोमय चेहरा, शेखर के आकर्षण का केन्द्र बनता है जब उसका परिचय शान्ति से

---

1 शेखर एक जीवनी (प. भा.) पृ. 139

हो जाता है, तब शेखर यह जान जाता है कि शान्ति किसी भयानक रोग से आक्रान्त है । एक पवित्र बन्धन, शान्ति और शेखर के बीच में स्थापित होता है । लेकिन इस समय शेखर के मन में शारदा के प्रति अत्यधिक मोहा भी था । शेखर शान्ति से कहता है कि वह उसे छूना चाहता है । शान्ति ममता के साथ स्वीकृति देती है । उसके बाद खिन्न मन के साथ शेखर लौट आता है । उसी रात शेखर एक सपना भी देखत है । स्वप्न में शेखर ने देखा कि शारदा तनेदिक से आक्रान्त होकर मर रही है, वह उसके पास गया है, और शारदा उसे कह रही है, 'तुम मुझे भूल गये न, नहीं तो मैं मरती ?' और उसके बढे चढे गर्म आसु टप-टप शेखर के हाथ पर झर रहे हैं[1] ।

जिस समय शेखर का परिचय शान्ति से हो जाता है, उस समय शेखर और शारदा के बीच प्यार का संबन्ध बढ रहा था । इसलिए जब शान्ति की आखो से आसु गिरते देखा, फिर वह शान्ति के पास नहीं जाता है । इसलिए शान्ति के प्रति जो मोह है, वह अस्पष्ट होकर परोक्ष रूप से प्रकट होता है । लेकिन वह शान्ति के साथ यह मोह नहीं दिखा सकता था। इसलिए सपने में शान्ति के स्थान पर वह शारदा को देखता है और अनुभव करत है कि शारदा ही उसमें कह रही है । अतः यहा एक ही सपने में दो बाते एक अतृप्त आकाक्षा और मोह जुटकर प्रकट हुई है । इसे भी हम एक प्रकार से 'कन्वीनियन्स ड्रीम्' की कोटि में रख सकते है ।

प्रस्तुत परिच्छेद मे मनोविज्ञान के कुछ मुख्य तथ्यो के आधार पर शेखर के चरित्र का विश्लेषण किया गया है । बालको में किस प्रकार यौन संबन्धी विचारो का उत्तरोत्तर विकास होता है, इस पर बल दिया गया है । मुख्य रूप से फ्रायड के सिद्धातो को आधार बनाकर शेखर की मनोवृत्ति का विश्लेषण किया गया है ।

निष्कर्ष - उपर्युक्त विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि शेखर एक जीवनी चतुर्मुख विद्रोह का आह्वान है । व्यक्ति में निहित रहकर व्यक्ति एवं समाज के सन्दर्भ में रूढियो को तोडने एवं परम्परा को खण्डित करने का आग्रह इस उपन्यास में छिपा हुआ है । मानवीय मूल्य के प्रति एक इमान्दार अन्वेषण शेखर में निक्षिप्त है । इसीलिए वह व्यक्ति बनकर रह गया है झूठी सामाजिकता को नकारने तथा यथार्थ की खोज में लगे रहने के कारण 'शेखर' ने नैतिक प्रतिबद्धता के प्रति भी प्रश्न चिह्न लगा दिया है, जो हिन्दी उपन्यास के सन्दर्भ में एक ऐतिहासिक विकास की ओर संकेत करता भी है ।

---

1 शेखर एक जीवनी (प्र भा) पृ 289

चौथा अध्याय

नदी के द्वीप : आलोचनात्मक अध्ययन

लेखन-क्रम की दृष्टि से अज्ञेय का यह दूसरा उपन्यास है । नदी के द्वीप का प्रकाशनकाल सन् 1951 है । 'शेखर' उपन्यास हिन्दी जगत में बहुचर्चित रहा और हमेशा वाद-विवाद का केन्द्र रहता आया है जबकि 'नदी के द्वीप' भी उससे कम विवाद का विषय न रहा बल्कि उससे ज्यादा ही रहता आया है । इसके कई कारण है । इसका मुख्य कारण यह है कि उपन्यास में जिस प्रकार की जीवन दृष्टि अपनाई गयी है वह एकदम नई है और प्रस्तुत उपन्यास के पात्र जिस जीवन दर्शन के दायरे में सिमटे हुए है वह हिन्दी कथा साहित्य केलिए अपरिचित ही रहा और इसी कारण इसकी आलोचना एवं प्रत्यालोचना एक लंबे अरसे तक सतही ढंग पर ही होती रही और आलोचक उपन्यास की बात से बिलकुल आगे हटकर अपनी वादोन्मुख वाचालता में भटकते गये और इनकी बातों में औपन्यासिक विषय की ओर उदासीनता एवं उनकी वाचालता में वैयक्तिक घृणा मुखरित होने लगी । तीसरी मुख्य बात है शिल्प विधान संबन्धी नूतनता । इसमें सन्देह नहीं 'शेखर' के माध्यम से शिल्प संबन्धी नवीनता का परिचय अज्ञेय ने दिया लेकिन 'शेखर' से बढकर नदी के द्वीप में शिल्प के संदर्भ में प्रयोग का अप्रतिम प्रगति अज्ञेय को हासिल हुई । अज्ञेय के शिल्प की यह विशेषता रही है कि वह एक कोण की ओर एकोन्मुख होकर रुक नहीं गया बल्कि सभी कोणों में नष्ट आयामों को खोलता रहा और आधुनिकता का परिचय विभिन्न स्तरों में प्रस्तुत किया - कथ्यात्मकता में, वातावरण-प्रस्तुतीकरण में पात्र सृष्टि में, पात्रों के चुनाव में, सबसे बढकर भाषागत प्रयोगों में । 'नदी के द्वीप' एक अलग परंपरा का प्रतिष्ठापन करता है और इस संदर्भ में प्रस्तुत उपन्यास विशेष आलोच्य है ।

नदी के द्वीप में अभिव्यक्त जीवन-दृष्टि को समझने केलिए उस जीवन दृष्टि को रूपायित करनेवाली युगीन परिस्थिति का अध्ययन आवश्यक है । युग के परिवर्तन के साथ

साथ साहित्य की अपनी मान्यताएं भी बदलती है । साहित्य के संदर्भ मे महायुद्ध पूर्व साहित्य मे कोई सौन्दर्य शास्त्रीय पहूंच (एस्तेटिक अप्रोच) नही थी । क्यो कि कविता आख्यानात्मक रही और कथा साहित्य घटनाओ की अधिकता से भरपूर । लेकिन महायुद्धोत्तर साहित्य की मान्यताएं बदली । युद्ध के संदर्भ मे हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए । विदेश मे इसका प्रभाव एवं भारत मे इसको प्रभाव अलग अलग प्रकार का रहा था । धीरे धीरे साहित्य का दृष्टिकोण भी बदलने लगा । युद्ध की विभीषिका को पाश्चात्य देशो ने बहुत करीब से देखा था । आदमी और आदमी के बीच इसलिए एक दूरी पैदा हो गयी थी । क्यो कि उनके सामने ही मानवीय मूल्यो को ध्वसित होते हुए देखा था । कमलेश्वर का कथन द्रष्टव्य है - पश्चिम केलिए अजनबीपन कीस्थिति इसलिए सही है कि वहा के देशो ने दो - दो विश्व युद्धो की भयंकर बरबादी देखी है । हर घर मे मृत्यु ने संबन्धो की श्रृंखला खंडित की है। भयानक नरसंहार के बाद जो बचे है, उनके बीच मे से सहसा ही बहुत से लोग उठ गए है । वहा एक दूसरे व्यक्ति के बीच पचास, दूसरे और तीसरे व्यक्ति के बोच सत्तर, तीसरे और चौथे व्यक्ति के बीच युद्ध मे मरे हुए चालीस आदमियों का शून्य है ...... और यह शून्य, जो वहा की युद्धोत्तर जिन्दगी का भयावह यथार्थ है, उस अजनबीपन को जना देता है, जिसकी बात वहा का लेखक करता है [1] । इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य मे साहित्यिक मान्यताएं बदलना स्वाभाविक है । मानवीय संवेदनाओ के सूक्ष्म संस्पर्श को रूपायित करने का आग्रह जुटने लगा और वैयक्तिक स्तर पर विचारने की प्रवृत्ति उजागर होने लगी । 'परिवेश को व्यक्ति के माध्यम से व्यक्ति को परिवेश के माध्यम से पाने की एक प्रक्रिया [2] उभरती रही । महायुद्धोत्तर उपन्यास (साथ ही कहानी) साहित्य की एक विचित्र विशेषता व्यक्ति का चित्रण रहा है - व्यक्ति का मन उसकी नियति उसका भोगा हुआ यथार्थ सब कुछ व्यक्ति के चारो ओर घूमता दृष्टिगोचर होता है । अन्य पात्र किसी एक व्यक्ति के उपग्रह प्रतीत होते है । .... समाज की विशेष परिस्थितियो के कारण प्रत्येक व्यक्ति, विशेषकर शिक्षित व्यक्ति, अपने चारो ओर एक दायरा घूम रहा है [3] । लेकिन इस बदलाव को साहित्य के संदर्भ मे एक प्रगति ही मानना चाहिए । यह बदलती प्रक्रिया हम विश्व साहित्य के विशिष्ट साहित्यकारो मे देख सकते है । बर्नाडशा के नाटक, चेखोव को कहानियां,

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 कमलेश्वर नई कहानी की भूमिका (प्रथम संस्करण) पृ. 22

2 वही पृ. 22

3 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास (प्रथम संस्करण) पृ 83

वर्जीनिया वूल्फ आदि के उपन्यास मे इस बदलती परिस्थिति को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं ।

अब इस परिस्थिति मे हमे देखना यह है कि विगत युग मे समाज की सपाटता का चित्रण नही है । साहित्य का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति पर आधारित है और इसके साथ सामाजिक परिवेश को संग्राहित भी किया है । इसके पीछे मानव के बदला हुआ दृष्टिकोण और बदले मूल्य का संस्पर्श है[1] ।

<u>व्यक्तिवाद - एक परिचय -</u> परिवेश के बदलने के साथ साहित्यकार का पुनः जन्म होना है । पुनः जन्म का अर्थ होता है एक नये जाग्रता बोध के साथ कला सृजन मे जुट जाना । जीवन को नये प्रतिमान प्रदान करने केलिए साहित्य के हर कोण पर नया बोध उजागर कराते हुए प्रयोग करना । इस प्रकार जब साहित्यकार स्वयं अपने उपर निष्करुण होता है (रूथलेस सेल्फ अवेरनेस) तब यह पुनर्जन्म होता है । इस स्वयं बोध को उजागर करानेवाले एक मुख्य बात है - साहित्यकार के व्यक्तित्व के दो पक्ष जिसके प्रति प्रज्ञावान बनता । आत्यन्तिक रूप से लेखक की स्वतंत्रता ही व्यक्तिवाद है । लेकिन हमारे यहा व्यक्तिवाद को जनजीवन के विरुद्ध खडी की गयी एक साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप मे अपनाया गया है । लेकिन साहित्यकार का विद्रोह सौन्दर्यशास्त्र परक सत्य की खोज है - यह तथ्य स्मरण रखना चाहिए । साहित्यकार एक नागरिक के नाते अपनी युगीन परिस्थितियो को अगर सौन्दर्य शिक्षण प्रदान करने मे असमर्थ रहा तो उसके अपने जीवन का कोई महत्व नही है । एक नागरिक के नाते साहित्यकार को अपने राष्ट्र केलिए बहुत कुछ करने को है, जो दूसरे नागरिक भी करते हैं । लेकिन अपने साहित्य या सृजनात्मकता के प्रति वह काफी कर्जदार मालुम होता है । वस्तु परक दृष्टि से लेखक की अपनी स्वतंत्रता महत्व की है जहा से सृजनात्मकता का उत्स फूटता है ।

आधुनिक युग मे प्रत्येक व्यक्ति ऐसा महसूस करता है कि वह दूसरे से अकेला है । यह विचार लेखको मे ज्यादा दीखता है और इसी कारण वे वैयक्तिक प्रतिक्रियाओ को बोधगम्य

---

1. .... they emphasise the individual human being, the individual sensibility, the individual reaction. There is complete shift from the naturalistic point of view of man.

   Walter Allen The English Novel (1963) p.342.

बनाने की चेष्टा करते है । उसकेलिए समकालिक जीवन से विभिन्न प्रकार के दृश्य खण्डो को चुन भी लेते है । तब वे किसी भी वर्ग चेतना से प्रेरित नही है । मजदूर वर्ग (प्रोलिटेरियेट या बर्जुवा वर्गो का प्रतिनिधि बन कर नही । आत्यन्तिक रूप से मानवता आज एकान्तिकता और अजनबीपन के जाल मे बुरी तरह से ग्रस्त है । इसलिए वह साहित्यकार के नाते इस एकान्तिकता एवं अजनबीपन की भौतिक पृष्ठभूमि को पहचानने का कष्ट करता है । तब हम पाते है कि सृष्टि (सृजन) एकाकी व्यक्ति मे ही प्रोत्पन्न विषम परिस्थितियो का विज्ञापन है । तब स्वाभाविक रूप से मानव की प्राथमिक आवश्यकताओ से संबन्धित भावो का सुनिश्चित प्रारूप साहित्य मे प्रस्फुटित हो जाता है ।

आज की रचनाओ मे प्रथम दृष्टि मे जो अर्थ-व्याप्ति हमे महसूस होती है उसकी और भी व्याप्ति और अनेक तलस्पर्शी अर्थ भी शामिल है और इसलिए स्पष्ट रूप से समाज की समस्या का प्रश्न नही है । समाज की समस्या का स्थूल रूप से रेखांकन कभी भी आज का साहित्यकार करता नही है । इसलिए यह तर्क निरर्थक लगता है कि 'नदी के द्वीप' के पात्रो के सम्मुख समाज है ही नही । उनके सामने केवल नदियां है, पहाड है या अपनी डायरी किताबो और अपना मत है – एकोन्मुख और निश्चिन्तता । वे आसानी से समाज की ओर पीठ मोडकर खडे हो जाते है[1] ...... इसलिए इस कोटि के आलोचको का ऐसा भी आरोप है कि अज्ञेय के रचना संसार मे व्यक्ति की आन्तरिकता एकमात्र प्रमाण बिन्दु है जो स्पष्टतः भारत के संक्रमणशील समाज की देन है जहा न संक्रमण का सामाजिक मूल्यांकन किया जाता है न उसका पथ-निर्देशन ही न उसे भीतर बाहर से नियोजित किया गया है न समझा गया है । अज्ञेय को इससे सुविधा मिली कि वे अपनी रचना प्रक्रिया मे मानसिक और भावात्मक समीकरणो को जोडते घटते रहे और इसी से अपना रचना संसार भर दिया । इसकी वजह है कि समाजवाद जैसे जानदार वास्तविक आन्दोलनो ने भी उनमे घृणात्मक प्रतिक्रियाये अंकुरित कर दी[2] । श्रीराम तिवारी इसका कारण यह बताते है कि अज्ञेय कम्यूनिस्ट विरोधी है । अतः इसी विरोधी भावना के कारण उनकी रचना मे समाज की बाते नही के बराबर है । लेकिन यह आरोप आधुनिक साहित्य एवं उसकी जटिलता पूर्ण प्रवृत्ति के संदर्भ मे क्षीण ही प्रतीत होता है । अज्ञेय का कथन स्मरणीय है - 'नदी के द्वीप' समाज के जीवन का चित्र नही है, एक अंग के जीवन का है; पात्र साधारण जन नही है, एक वर्ग के व्यक्ति है और वह वर्ग भी

---

1 विजयमोहनसिंह - अज्ञेय कथाकार और विचारक पृ.
2 गंगाप्रसाद विमल - अज्ञेय का रचना संसार (श्रीराम तिवारी का लेख) पृ.157

.संख्या की दृष्टि से अप्रधान ही है, लेकिन कसौटी मेरी समझ में यह होनी चाहिए कि क्या वह जिस भी वर्ग का चित्रण है, उसका सच्चा चित्र है ? क्या उस वर्ग में ऐसे लोग होते हैं, उनका जीवन ऐसा जीवन होता है, संवेदनाएँ ऐसी संवेदनाएँ होती है ? अगर हाँ - तो उपन्यास सच्चा प्रामाणिक है और उसके चरित्र भी वास्तविक और सच्चे हैं न साधारण टाइप हैं, न असाधारण प्रतीक हैं । और मेरा विश्वास है कि 'नदी के द्वीप' उस समाज का, उसके व्यक्तियों के जीवन का जिसका वह चित्र है, सच्चा चित्र है ।[1] अतः उपर्युक्त कथन से यह व्यंजित होता है कि उपन्यास में जीवन के एक विशेष अंग का निर्वाह हुआ है । इसलिए उपन्यास के मूल्यांकन के अवसर पर अगर वर्ग परक प्रतिमानों को अगर खोजना शुरू करें तो प्रयत्न विफल ही साबित होगा । इस उपन्यास में वर्ग संघर्ष एवं समाज को उसकी विशालता में देखने का प्रयास नहीं है । इसमें एक अंग का चित्रण है - कुछ व्यक्तियों का चित्रण है । इस उपन्यास में व्यक्ति आरंभ से सुगठित चरित्र लेकर आते हैं । हम जो देखते हैं वह अमुक स्थिति में उनका निर्माण या विकास नहीं उनका उद्घाटन आप चाहें तो यह भी कह सकते हैं कि नदी के द्वीप चार संवेदनाओं का अध्ययन है । उसमें जो विकास है वह चरित्र का नहीं, संवेदना का ही है ।[2]

<u>नदी के द्वीप में व्यक्तिवादी चेतना</u> - आगे हमें यह देखना है कि व्यक्तिवादी चेतना का प्रस्फुटन किस प्रकार उपन्यास में हुआ है । वैसे पहले हमने देखा इसमें चार पात्रों के ज़रिए जीवन की एक इकाई का चित्र उपलब्ध होता है । याने प्रस्तुत इकाई के माध्यम से चार संवेदनाओं का परिचय प्राप्त होता है । लेखक ने व्यक्त किया है इसमें - चरित्र के विकास का या निर्माण का चित्र नहीं है उनका उद्घाटन भर है । इसलिए उपन्यास में प्राथमिक रूप में घटनाओं की भरमार नहीं है और विभिन्न परिस्थितियों का आकस्मिक संगठन भी नहीं जिसके ज़रिए उपन्यास के पात्रों के चरित्र विकास का संदर्भ जुटा सके । इसमें जितनी परिस्थितियाँ हैं, कथा विकास के क्रम में जितनी गति-विधायें मौजूद हैं, वे सब इन चारों पात्रों की संवेदनाओं को सूक्ष्मता से स्पर्श करने का प्रयत्न करते रहते हैं । इसलिए स्वाभाविक रूप से निसर्गजात विकारों को तीव्रता से प्रतिबिंबित करने का प्रयास उजागर है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.73

2 वही पृ.72-73

'नदी की द्वीप' मे चार संवेदनाएँ हैं - रेखा, भुवन, गौरा और चन्द्रमाधव । और इन चारो मे तीन मुख्य है - रेखा, भुवन और गौरा । उपन्यास मे रेखा का प्रमुख स्थान है । रेखा नदी के द्वीप का सबसे अधिक परिपक्व पात्र है । मेरी दृष्टि मे वही उपन्यास का प्रधान पात्र भी है । वही अपनी भावनाओं के प्रति सबसे अधिक ईमानदार है और अपने प्रति सबसे अधिक निर्मम । एक दूसरी तरह की ईमानदारी चन्द्रमाधव मे भी है लेकिन वह दस्यू की ईमानदारी है - जो नोच-खसोटकर पा लेता चाहता है किन्तु मूल्य चुकाने को तैयार नही है[1] । रेखा की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि प्रथमतः उपन्यास एक प्रणय कथा है और प्रेम भावना के प्रसंग मे रेखा ने एक ऐसा स्वतंत्र अस्तित्व खडा कर दिया जो दूसरो से बहुत भिन्न एवं अपने मे पूर्ण है । नदी के द्वीप जो मूलतः एक प्रणय कथा है, विश्व युद्ध के कुछ संदर्भों को सांकेतिक भाव से जहाँ तहाँ प्रस्तुत करता है । उनको बाद देने पर नदी के द्वीप का प्रणय-संसार बहुत कुछ स्वतः पूर्ण है[2] । नदी के द्वीप एक दर्दभरी प्रेम कहानी है दर्द उनका भी जो उपन्यास के पात्र है, कुछ उनका भी जो पात्र नही है[3] ।

उपर्युक्त मंतव्यो से यह स्पष्ट होता है कि प्रेम की समस्या का साथ ही मुख्य रूप से प्रेम व्यक्तित्व संघटन मे किस प्रकार उपादेय है इसका विश्लेषण उपन्यास मे गुम्फित है । प्रेम के साथ पीडा का भी महत्वपूर्ण स्थान है और इसलिए पीडा का भी व्यक्तित्व संघटन मे कैसा स्थान है आदि का भी प्रतिपादन उपन्यास मे निहित है ।

<u>रेखा - स्वाधीन आत्मान्वेषी नारीत्व की सूक्ष्म संवेदना</u> - रेखा नदी के द्वीप का सबसे अधिक संवेदनशील पात्र है जिसके माध्यम से व्यक्तिवादी भूमिका को ठीक तरह से निबाहने मे लेखक को सुविधा मिली है । रेखा को हम सबसे पहले चन्द्रमाधव के यहाँ देखते है । रेखा की अवस्था यही सत्ताईस के लगभग होगी; वह विवाहित है, विवाह आठ वर्ष पहले हुआ था, पर विवाह के दो एक वर्ष बाद ही पति-पत्नी अलग हो गये थे ... और तीन चार वर्ष हुए पति एक विदेशी रबर कंपनी मे अच्छी नौकरी स्वीकार करके चला गया है रेखा नौकरी करती है; पढाती है, फिर किसी रियासत मे राजकुमारियो की गवर्नेस थी, वहाँ से हाल ही मे

---

1 अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.83
2 राम स्वरूप चतुर्वेदी अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - पृ.92
3 अज्ञेय आत्मनेपद - पृ.93

इस्तिफा देकर आयी है, अभी कुछ नहीं कर रही है लेकिन नौकरी की तलाश मे है ..... पिता बडे नामी डाक्टर थे; वैसे शायद कश्मीरी है पर दादा कलकत्ता मे आ बसे थे और तब से तीसरी पीढ़ी बंगाली ही अधिक है - रेखा हिन्दी और बंगला दोनो बोलती है और बंगला संगीत मे उसकी अच्छी पहुंच है[1]। चन्द्रमाधव के उपर्युक्त प्रतिपादन से रेखा का सामान्य परिचय मिलता है । लेकिन यह रेखा का सतही ढंग का ही परिचय है । इसके भीतर एक और रेखा है जो बाहर से भी प्रसन्न दीखते हुए अन्तर सुलगती आग है । वह मुक्त होना चाहती है अपनी ही लीक पर चलना चाहती है । इसलिए वह कहती है हाँ मगर सचमुच सेतु बन सके तो दोनो ओर से रौदे जाने मे भी सुख है, और रौद जाकर टूटकर प्रवाह मे गिर पडने मे भी सिद्धि । पर मै तो कह रही हूँ कि मै तो उतनी कल्पना भी नही कर पाती - मै तो समझती हूं, हम अधिक से अधिक इस प्रवाह मे छोटे छोटे द्वीप है उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उससे कटे हुए भी; भूमि से बन्धे और स्थिर भी, पर प्रवाह मे सर्वदा असहाय भी - न जाने कब प्रवाह की एक स्वैरिणी लहर आकर मिटा दे, बहा ले जाय, फिर चाहे द्वीप का फूल पत्ते का आच्छादन कितना ही सुन्दर क्यो न रहा हो[2]। संपूर्णता (मानवता के संदर्भ मे) के बारे मे रेखा भुवन से कहती है - आप एक संपूर्ण की बात कहते है, मै एक और दूसरे एक की ? संपूर्ण मेरे लिए केवल युक्ति सत्य है - अपने आपमे कुछ नही, केवल एक और एक की अन्तहीन आवृत्ति से पाया हुआ एक काल्पनिक योग फल । आपकी मानवता एक विशाल मरुभूमि है और मेरे ये सहज साक्षात् छोटे छोटे ओएसिस[3] ।

व्यक्तिवादी दृष्टिकोण बहुतेरे आलोचकों के मतानुसार सीमित प्रतिमान ही प्रस्तुत करता है । लेकिन रेखा के दृष्टिकोण के अन्तर्गत मानवता को समग्रता मे जानने की प्रबल इच्छा अधिक है । रेखा का कथन दृष्टव्य है - 'मानव और मानव का सहज भाव से साक्षात् - वही हमारा मानव जीवन और मानवत के जीवन से एकमात्र संपर्क हो सकता है । नही तो मानवता - यानी हमारी कल्पना - एक विशाल मरुभूमि है[4]। मानव की कल्पना साधारण है यद्यपि संकुचित दायरे का आभास न हो । लेकिन मानवता समस्त देश-काल से परे होकर एक विशाल भावना की परिणिति है । व्यक्तिवादी दृष्टिकोण इस परिणिति की देन है । यह भावना एक ओर लेखक के निषेधात्मक (रेबेल) स्वर की अनुगूंज होती है और कही आस्थारहित मुक्ति की अपरिमेय आकांक्षा का भी स्वर है ।

---

1 अज्ञेय - नदी के द्वीप (तृतीय संशोधित संस्करण) पृ.27 -2- वही पृ.22
3 वही पृ. 22 -4- वही पृ.22

हम देख चुके है रेखा अपने पैरो पर खडी एक मध्यवर्गीय युवती है । पति से ठुकराये जाने पर भी वह ऐसी कुंठित और व्रणित नही है कि वह अपना एकान्तिक जीवन घर की चहार दिवारियो मे बिता रही हो । वह नौकरी की तलाश मे घूमती है और इसकेलिए चन्द्रमाधव जैसे व्यक्ति से सहज भाव से मिलती है और अपनेलिए सहायता लेने मे वह नही हिचकती ।

रेखा एक स्वतंत्र नारी व्यक्तित्व प्रस्तुत करती है । पति द्वारा परित्यक्त होने के कारण वह अपने को अकेली पाती है और अपने जीवन पथ पर अकेली ही भटकती है । उसके अनुसार अकेले भटकने मे एक शक्ति मिलती है क्यो कि तब दूसरो का हस्ताक्षेप बहुत कम रहता है । इसलिए वह कहती है - 'भटकने से ही शक्ति आती है, डाक्टर भुवन । क्योंकि जब मिट्टी से बाधनेवाली जडे नही रहती तब हवा पर उडते हुए जीने केलिए कही न कही से और साधन जुटाने पडते है । स्वेच्छा से भटकना ? हा इस अर्थ मे जरूर स्वेच्छा है कि पडा - पडा पिस क्यो नही जाता, अंधेरे गर्त मे क्यो नही जाता, हाथ-पैर क्यो पटकता है?[1] रेखा अपने को किसी एक स्थान पर स्थिर रहना नही चाहती । इसका कारण वह यह मानती है कि उस जैसी स्त्री केलिए स्थिर रहना एक प्रकार से जड होना है । अतः वह हमेशा भटकता चाहती है और चलती गाडी को एक प्रतीक सत्य मानकर भुवन से कहती है - 'चलती गाडी मे मुझ - जैसे व्यक्ति को एक स्वच्छन्दता का बोध होता है जब कि स्थिरता की सूचक किसी जगह मे अपना बेमेलपन अखरता रहता और मै गूंगी हो जाती'[2] । जीवन पथ पर जब वह अकेली जाती है और वह समझती है कि उसे अपने पथ पर खुद चलना ही है, तब वह यही ठीक समझती है व्यक्तित्व को परिपूर्ण बनाकर चले और जिसकेलिए किसी और की सहायता भी न ले ।

रेखा जानती है उसके सामने भविष्य का जो चित्र है वह धुंधला है, साफ नही है इसलिए वह बेकाबु होकर निरन्तर बहना चाहती है । इसलिए वह कहती है 'दूसरो की बनाई हुई लीको की बात मै नही सोच रही थी । व्यक्तित्व की अपनी लीके होती है एक ज्ञान होता है और उसके आगे, व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य के बारे मे जो समझता है, जो कल्पना करता है, मनसूबे बाधता है, उनसे भी तो एक लीक बनती है - लीक कहिए चौखटा

- -

1 अज्ञेयः नदी के द्वीप पृ. 32 -2- वही पृ. 33

कहिए, ढाँचा कहिए । या कह लीजिए दुनिया मे अपना एक स्थान । मेरा यही मतलब था । आपके सामने - ऐसा मेरा अनुमान है - भविष्य का एक चित्र है कहीं मंजिल है, ठिकाना है । इसलिए रास्ता भी है -'[1] लेकिन रेखा के संदर्भ में - 'मै सचमुच कहीं भी पहुँचना नहीं चाहती - चाहना ही नहीं चाहती । मेरे लिए काल का प्रवाह भी प्रवाह नहीं, केवल क्षण और क्षण का योग-फल है - मानवता की तरह ही काल-प्रवाह भी मेरे निकट युक्ति-सत्य है, वास्तविकता क्षण ही की है, क्षण सनातन है[2] ।

रेखा के युक्ति - सत्यों मे एक प्रकार की गहनता है । जटिलता से भरे जीवन की संकीर्णताएँ अभिव्यक्ति चाहती है । अपने जीवन को एक भटकती राह जानने वाली रेखा अपने लिए कुछ रखना या चाहना नहीं चाहती क्यों कि उसको जीवन में चाहे के बदले जो मिला वह जीवन का दुखद कटु सत्य ही था । जो उसे दर्द की आग में जला रहा था । इस जलन से उसे दृष्टि मिली, परिपक्वता भी मिल गई, गहनता भी मिली । इसलिए वह चन्द्रमाधव से कहती है - मेरे आसपास दुर्भाग्य का एक मंडल जो रहता है उसके भीतर किसी को नहीं आने देती कि छूत न लग जाय[3] । यद्यपि इस कथन में निराशा ही ज्यादा झलकती है फिर भी भोगे हुए यथार्थ और उससे उत्पन्न परिपक्वता भी दृष्टिगत होती है । एक दूसरे अवसर पर रेखा चन्द्रमाधव से बताती है - 'मै ने भविष्य जानना ही छोड दिया । भविष्य हुई नहीं एक निरन्तर विकासमान वर्तमान ही सबकुछ है । यही बात वह भुवन के सामने भी दोहराती है । वह भुवन से मित्रता प्राप्त करना चाहती है लेकिन उसे एक मंजिल के रूप में जीवन में स्थिरता चाहने केलिए नहीं - 'मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि कहीं पहुँचने का लोभ मुझे नहीं - ऐसी यात्रा पर हूँ जो कहीं पहुँचती ही नहीं, अन्तहीन यही क्या कहीं पहुँच जाना नहीं[4] । इस प्रकार का एक अन्तहीन ही उसकेलिए मंजिल है । वह भुवन को समझाती है मानता की समग्रता की महत्ता ज़रूर है । लेकिन कभी कभी मानवता अपरिचय का एक महासागर है तब द द्वीपों का महत्वपूर्ण स्थान व्यक्ति की इकाई को महत्व देती हुई कहती है - 'मेरे साथ कुछ ही दिन मे आप सर्वत्र द्वीप देखने लगेंगे - हम द्वीप है, मानवता के सागर मे व्यक्तित्व के छोटे छोटे द्वीप और प्रत्येक क्षण एक द्वीप है - खासकर व्यक्ति और व्यक्ति के संपर्क का काटैवश का प्रत्येक क्षण - अपरिचय, के महासागर मे एक छोटा किन्तु मूल्यवान द्वीप[5] ।

- -

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ. 35 -2- वही पृ. 36 -3- वही पृ. 47
4 वही पृ. 102 -5- वही पृ. 110

भुवन के चरित्र में रेखा एक अन्तरंग घनिष्ठता देखती है । वह जान लेती है कि भुवन में आग्रह कम है लेकिन चन्द्रमाधव में अधिक । चन्द्रमाधव का आग्रह घृणित भी है जो वह चाहती भी नहीं । चन्द्रमाधव के प्रेम निवेदन में वह अन्तरंग घनिष्ठता प्राप्त न कर सकी और वह उसे ठुकरा देती है । भुवन में वह सब कुछ पाती है और इसी कारण वह अपने जीवन को, सूक्ष्म से सूक्ष्म पहेली को भी खोल देती है और अपने को स्वान्तना देती है । यमुना के रेतीले मैदान में रेत से घर बनानेवाले भुवन को वह मंत्रमुग्ध जी देखती रह जाती है 'सचमुच इस भुवन को उसने देखा नहीं था, जाना नहीं था, अनुमान से भी नहीं । वैज्ञानिक डाक्टर भुवन के अन्दर एक गंभीर संवेदनशील और खरा मानव छिपा है, यह तो उसने जाना था, लेकिन उस निश्छल ऋजुता के नीचे इतना भोला इतना कौतुक - प्रिय शिशु हृदय भी है, यह उसकी सजग दृष्टि भी न देख पाई थी[1] .... '। वैज्ञानिक भुवन को रेत के घर बनाते हुए देखकर रेखा अपने को एक स्वप्निल लोक में विचरण करती हुई पाती है और उसे लगती वह मिस राबिनसन है और भुवन मैन फ्रैयडे है । यह कल्पना उसके हृदय की अतल गहराइयों को भी छूती है और उसकी आँखों में आंसू भर जाते हैं । यही घटना रेखा के जीवन में एक मोड लाती है और समूचे उपन्यास में भुवन के साथ जो जीवन उसने व्यतीत किया उसमें रेखा की घनिष्ठता और व्यक्तित्व की परिपूर्णता की छाप कदम कदम पर विद्यमान है । भुवन की संवेदनशीलता को वह अपने व्यक्तित्व के साथ मिला लेती है और अपने जीवन की खाइयों को पाट देती है ।

रेखा के साथ भुवन भी नैनिताल तक जाता है । यहाँ के दो एक दिन के समय के अन्तर्गत रेखा अपने को भुवन केलिए सौंप देती है । रेखा भुवन के व्यक्तित्व को अपनी पूर्णता में ही खोना चाहती है । इसलिए वह कहती है उसकेलिए भुवन शुक्र तारा के समान है चांद के समान नहीं क्यों कि चांद घटता बढता है । उसका बहुरूपियापन मुझे नहीं चाहिए । शुक्र केवल शुक्र । ...... चाहे कितनी जल्दी अस्त हो जाए[2] । तब उन दोनों केलिए साक्षी हो सूर्य और आकाश और पवन और तले बिछी घास और चट्टानें, साक्षी हो अन्तरीक्ष और भुवन के अगणित देवता और अकिंचन वनस्पतियाँ ..... लेकिन यह एक सत्य है जो कोई साक्षी नहीं मांगता है, सिवाय अपने ही भीतर की निविड समर्पण को पीडा के अपने ही में नि[3] स्पन्दित और क्रियाशील असंख्य संभावनाओं के विस्तार को देखना चाहता है ।

---

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.119 —2— वही पृ.134 —3— वही पृ.15

प्रस्तुत उपन्यास मे रेखा और भुवन के इस संबन्ध को लेकर औपन्यासिक उपलब्धि के संदर्भ मे काफी विचार-विमर्श हुआ और आखिर इसे घृण्य समझा गया । शचीरानी गुर्टू, जिन्होने 'शेखर' और शशि के संबन्ध को लेकर भी काफी लंबी-चौडी बाते उठाई थी और नदी के द्वीप के भुवन और रेखा के प्रेम को लेकर लिखती है - 'अतएव अज्ञेय के नदी के द्वीप की कहानी का इति-अथ भी जिन्दगी की मस्तखानियो से गुजरता प्यार और मुहब्बत के ख्यालेआम कुलाचे भरता है । भुवन और रेखा का औपचारिक शिष्टाचार शनैः शनैः प्रेम की लाचारी बनकर उनकी क्लान्त शक्तियो को उद्दीप्त करता हुआ कालान्तर मे संयोग वियोग की न जाने कितनी दुःख भ वैयक्तिक व्याख्याएं प्रस्तुत करता है । आकर्षण प्रारंभिक प्रक्रिया, मन का तन से उलझाव, एक दूसरे मे समाहित होने की बलवती आकांक्षा, अपने पराये का अभेद अर्थात् तन-मन की वह संयोग स्थिति जो शरीर भेद से परे ऐक्य का एहसास कराती है, बेताब जवानी की मस्ती और अगणित अनासक्त मुहावरो और प्रतीक्षातुर रजत की भोग सुख का कसमसाता उद्यान, जिसमे परस्पर सम्मोहन का अन्धापन उत्तरोत्तर बढता जाता है - यो उनकी जडभरी छाती की धडकनो के भीतर से उनकी प्रेम की मजबूरियो और हसरतो के स्पन्दन फूट पड रहे है[1] । लेखिका के उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट व्यंजित होता है कि वे उपन्यास को सतही ढंग पर विश्लेषित कर पायी है और अपनी पुरानी विचार धारा को सुन्दर विशेषणो से जोडकर रख देती है और वे यहां तक लिखती है कि अज्ञेय का हर पात्र इसी आत्म पीडित अनाचार और इन्द्रिय-लिप्सा का शिकार है[2] । उपर्युक्त कथन से स्पष्ट ध्वनित होता है कि वे उपन्यास के जीवन दर्शन के बारे मे वे अनभिज्ञ है ।

'नदी के द्वीप' के चित्रित प्रेम-व्यापार के बारे मे अमृतराय लिखते है - 'नदी के द्वीप' एक चरम अहंकारी व्यक्तिवादी आदमी की वासना की कहानी है । प्रेम हम उसे नही कह सकते । प्रेम की कहानी मे कोई बुराई नही है । लेकिन देखना होगा कि जो प्रेम चित्रित है वह जीवन को शक्ति और वेग और सौन्दर्य देनेवाला प्रेम है या निरी वासना का ऐन्द्रिय भूख[3] । श्रीराम तिवारी इसको पीडित मिथुन नाम देने के पक्ष मे है और इसका कारण भारतीय संक्रान्ति की परिणति मानते है[4] । शचीरानी गुर्टू और अमृतराय की दलीलें नदी के द्वीप मे अश्लील वातावरण के संबन्ध मे है और भी बहुतेरे आलोचक नदी के द्वीप मे

---

1 शचीरानी गुर्टू वैचारिकी (प्रथम संस्करण) पृ.234
2 वही पृ.243
3 अमृतराय सहचिन्तन (प्रथम संस्करण) पृ.227

अश्लीलता देखने के पक्ष मे है । इसलिए श्लील और अश्लील के संबन्ध मे अज्ञेय के विचार यहा उद्धरणीय है । .... 'श्लील और अश्लील देश-काल पर आश्रित है । उनकी कोई परिभाषा न केवल शाश्वत हो सकती वरन् आत्यन्तिक भी नही हो सकती ।[1] साहित्य के संदर्भ मे वे इसी प्रश्न को उठाते है - देखना अश्लील नही है, अधूरा देखना अश्लील है[2] । नदी के द्वीप के संदर्भ मे उनका विचार इस प्रकार है - 'नदी के द्वीप मे अश्लीलता किसी वर्णन मे नही मानता, दृष्टि मे वह है तो न लेखक की, और न रेखा या भुवन की, बल्कि चन्द्रमाधव की दृष्टि मे वह है; जो कहते है मुझे उनसे बहस नही क्यो कि शायद यह ठीक ही है कि थोडी बहुत अश्लीलता ही अधिक वास्तविक है[3] । अज्ञेय का कथन ठीक है कि श्लील और अश्लील की समस्या समय और काल के अनुसार बदलती रहती है । एक मुख्य बात ध्यातव्य है कि अश्लीलता को सिर्फ प्रेम प्रसंग तक सीमित रखकर देखना भी एक प्रकार से अधूरे दृष्टिकोण का ही परिचायक है । इसका कारण यह है कि अश्लीलता को हम समाज की दृष्टि से देखते है और समाज की वर्जनाओ को अश्लीलता के नाम से अभिहित करते है । लेकिन समाज की वर्जनाए प्रेम प्रसंग ही नही याने स्त्री पुरुषो के यौनाचार तक सीमित रहना अपूर्णता का परिचायक है । नैतिक - अनैतिक बातो के प्रतिमान पुराने पड गये है, उसका ढाचा इतना ढीला और शिथिल है सब से पहले नीति, विशारदो के प्रतिमानो को बदलना चाहिए। समाज केलिए वही वर्जित है, जो समाज के ढाचे को शिथिल कर देता है ।

रेखा और भुवन के प्रेम प्रसंग को लेकर तर्क वितर्क करनेवाले आलोचको ने उसकी औपन्यासिक उपलब्धियो को नही देखा है । यहा नेमीचन्द्र जैन के शब्द ज्यादा ठीक बैठते है - 'इस बात का एक पक्ष यह भी है कि प्रायः उनके कृतित्व की चर्चा बहुत से अप्रासंगिक साहित्येतर और एक दर व्यक्तिगत कारणो से होने लगती है । संभवतः इसलिए 'नदी के द्वीप' के भी दुर्बल पक्षो पर ही अधिकांश आलोचको का ध्यान गया, अथवा लोगो ने अप्रीतिकर अंशो के साथ जोडकर देखा और उसकी सर्जनात्मक उपलब्धि और विशिष्टता पर ध्यान नही दिया जा सका[4] ।

'नदी के द्वीप' मे जिस प्रणय व्यापार का चित्र को उभारा है वह व्यक्तित्व विकास केलिए बुनाया गया है । रेखा का कथन द्रष्टव्य है -'भुवन जाने से पहले मै एक बात कहना

1 अज्ञेय आत्मनेपद पृ.77 -2- वही पृ.78 -3- वही पृ.80
4 नेमीचन्द्र जैन अधूरे साक्षात्कार (प्रथम संस्करण) पृ.22

चाहती हूँ । आइ आम फुलफिल्ड । अब अगर मैं मर भी जाऊँ तो परमात्मा के प्रकृति के - प्रति यह आक्रोश लेकर नहीं जाऊँगी कि मैं ने कोई भी फुलफिलमेंट नहीं जाता - कृतज्ञ भाव ही लेकर जाऊँगी - परमात्मा के प्रति और भुवन तुम्हारे प्रति[1] । इसलिए वह व्यक्तित्व की पूर्णता को एक दम खोलकर रख देती है और एकदम आवेश में आकर तन्मय होकर भुवन से कहती है - उसे मैं वीणा भी सिखाऊँगी - और वह बड़ा सर्जन भी होगा[2] । इस प्रसंग में रेखा का कथन बहुत महत्वपूर्ण है । भुवन केलिए लिखी एक चिट्ठि में वह लिखती है – 'मैं एक खड़ा हुआ पानी थी : एक झील, एक पोखर, एक छोटा ताल शैवालों से ढका हुआ । तुमने आँधी की तरह आकर मुझको आलोडित कर दिया, मुझमें अनन्त आकाश को प्रतिबिंबित कर दिया मुझे कहने दो भुवन, मेरी यह देह जैसे तुम्हारी ओर उमडी थी, वैसे कभी नहीं उमडी, शिरा-शिरा ने तुम्हारा स्पर्श मांगा, तुम्हारे हाथों का स्पर्श, तुम्हारी बाँहों की जकड़, तुम्हारी देह की उत्तेजित गरमाई लेकिन तुममें डर था - डर नहीं, एक दूर का कोई अनुशासन, कोई एक मर्यादा, जिसके स्त्रोत तक मेरी पहुँच नहीं थी । और जिससे छुआ जाकर मेरा तूफान सहसा शान्त हो गया[3] ।

रेखा के भुवन के प्रति जो आकर्षण है उसमें एक सुगठित पात्र का संवदनशील रूप रेखांकित है जो बौद्धिकता के परिवेश से आवृत्त भी है । प्रथम दृष्टि में साधारण प्रणय संवेदना से एक दम अलग प्रकार का चित्र उपस्थित करता है और स्थितियाँ भी असाधारण सी लगती है और उसे एक साधारण कोटि की रोमांस और पात्रों के बीच का झिझोरा यौनाचार मानना उपन्यास की सर्जनात्मकता के प्रति नासमझी का परिचायक है । रामस्वरूप चतुर्वेदी नदी के द्वीप के प्रणय व्यापार का समूचा विश्लेषण निम्नस्थ वाक्यों में करते है - 'नदी के द्वीप' की प्रणय-संवेदना भिन्न और प्रायः असाधारण है । पर अपनी असाधारणता में भी वह विश्वसनीय है, यह लेखक की कलात्मक सफलता का द्योतक है । यह असाधारणता दो स्तरों पर है । एक तो जो मुख्य चरित्र इसमें है - भुवन, रेखा, गौरा वे समाज के एक विशिष्ट वर्ग से लिये गये है । दूसरे यह है कि उनके बीच का प्रणय-संबन्ध न तो सामान्य ईर्ष्या-द्वेष से परिचालित है और न उनमें आत्मत्याग या आत्मपीडन का परंपरागत रूप मिलता है।

- -

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.159 –2– वही पृ.161

3 वही पृ.162-63

'नदी के द्वीप' मे प्रेम का रोमांस बिलकुल भिन्न प्रकार का है, जहाँ भावुकता को बौद्धिकता का आधार मिला है और राग मे खास तरह का संयम है । पर साथ ही साथ शरीर के उत्सव भाव को उन्मुक्त रूप से स्वीकार किया गया है[1] । इसमे निदर्शित बौद्धिकता कोरी जटिल बौद्धिक ऊहापोहो मे उलझ नही गई है बल्कि जीवन को उसकी तह मे जानने और पहचानने की त्वरा भी उसमे विद्यमान है और रेखा उसका एक प्रतीक रूप है । इसलिए वह सत्य को सुन्दर का रूप देती है और उसे स्थिर बनाना चाहती है । नेमिचन्द्र जैन के शब्द भी उस समय विचारणी है - 'यह प्रेम की उपलब्धि का उसकी प्रौढ और प्रबल अनुभूति का उसके द्वारा व्यक्तित्व के प्रस्फुटन और परिपूर्णता का उपन्यास है । एक प्रकार से यह एकमात्र हिन्दी उपन्यास है जिसमे ऐसे प्रेम का चित्रण है जो वर्जनाओ से संत्रस्त नही है, जो एकान्त रूप से व्यक्तिनिष्ट होकर भी कुंठित नही है, जिसमे समर्पण तथा पीडा भी है साथ ही उसका अतिरिक्त प्रतिफलन भी ।

पुरुष और नारी के ऐसे प्रेम का चित्रण है जो बाहरी दृष्टि से सामाजिक होते हुए भी व्यक्तित्व को विकृत नही करता, उसे संपूर्णता और संतुलन प्रदान करता है उसे अधिक मानवीय और संवेदनशील बनाता है, उसे अधिक स्थिरता प्रदान करता है[2] । रेखा मे वह स्थिरता है और सन्तुलन भी है क्यो कि उसका जीवन परिपक्वता तक पहुंच गया है और वह किशोर वय सुलभ प्रेमोन्माद का भी शिकार नही है । उसमे समय के प्रति एक यथार्थ दृष्टिकोण प्राप्त है और अपनी भावनाओ के प्रति विश्वास और ईमानदारी भी ।

रेखा गौरा के साथ परिचय प्राप्त कर लेती है और जब प्रथम मिलन से ही वह यह जान लेती है कि गौरा भुवन के प्रति आकृष्ट है, लेकिन स्पष्ट नही करना चाहती । इतने पर भी वह गौरा के प्रति किंचित भी ईर्ष्या नही रखती । इसलिए रेखा गौरा से कहती है मेरे कारण एक भुवन का अहित जहाँ तक हो सकेगा मै नही होने दूंगी, पर भीतर का वह निश्चय नही पाती और झूठा आश्वासन नही देना चाहती - खासकर आपको[3] - अपनी ईमानदारी को और भी खुलकर वह स्पष्ट करती है किसी के निजी जीवन मे भावना जगत मे हस्तक्षेप करना मै कभी नही चाहती गौरा, मै ने जो कुछ कहा कुछ जानने केलिए नही, केवल अपनी बात कहने केलिए, फिर भी अगर कोई ऐसा स्थल छू गई हूं जिससे मुझे दूर रहना चाहिए था, तो क्षमा चाहती हूं[4] ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या पृ. 93

2 नेमीचन्द्र जैन अधूरे साक्षात्कार पृ. 22

3 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ 177 —4— वही पृ 177

गौरा और रेखा के सबन्ध का जो चित्र है वह साधारण सतही ढंग के ईर्ष्या-प्रेरित नहीं बल्कि एक बौद्धिक समझौते के संस्पर्श से उद्दीप्त भी है । ईर्ष्या विद्वेष से परे एक सबन्ध की परिकल्पना को अज्ञेय की सर्जनात्मकता और मानवीय संवेदनाओं के पैठ में कमी के रूप में देखने का प्रयास किया गया है । अज्ञेय बताते है - एक आलोचना विशारद ने नदी के द्वीप के स्त्री पात्रों को इसलिए अस्वाभाविक और असंभव बताया है कि उनमें ईर्ष्या नहीं है । मेरे निकट ईर्ष्या भी अधूरी दृष्टि का, अपरिपक्वता का परिणाम है ऐसे भी है जो मानते है कि ईर्ष्या के बिना नारी नहीं है । मै नहीं मानता कि ईर्ष्यामुक्त प्रेम असंभव है या अस्वस्थ है या अस्वाभाविक है बल्कि यह मानता हू कि प्रेम मे जिनको भी जितना अधिक ईर्ष्या से मुक्त मैं ने पाया है उनका उतना ही अधिक सम्मान कर सका हू चाहे इस देश-काल मे, चाहे दूसरे देश-काल मे ...[1] । हिन्दी पाठकों केलिए ऐसी कल्पना असंभव इसलिए लगती है कि उन्हे परंपरागत रूप से जो उपलब्ध हुए है जिनमे ईर्ष्या और विद्वेष को प्रमुख स्थान मिलता आया है । हिन्दी के पाठक इसके आदि हो चुके है कि इस परंपरामुक्त कल्पना को घृणित दृष्टि से देख सकते है नहीं तो असंभव्यता का बाना पहनाकर । लेकिन रेखा और गौरा का यह सबन्ध एक ओर व्यक्तित्व की परिपूर्णता है और दूसरी ओर गहरे चिन्तन का निदर्शन भी है । औपन्यासिकता के संदर्भ मे इसे एक 'विशिष्ट उपलब्धि' मानने मे कोई अनौचित्य नहीं है । नदी के द्वीप के कथा संघटन की एक विशिष्ट उपलब्धि है रेखा और गौरा के पारस्परिक सबन्धों का अंकन । इस एक पक्ष के सामने भुवन और गौरा के सबन्ध भी कुछ हल्के से हो जाते है रेखा के इस व्यक्तित्व मे सौन्दर्य की हल्की आभा के साथ बौद्धिकता का गहरा रंग है । राग को उसने दबाया नहीं है, पर राग से वह अनुशासित भी नहीं है । ऐसी आधुनिकता के चरित्र मे यदि प्रेम का परंपरागत राग प्रधान या अतिनाटकीय रूप नहीं है तो उचित ही है[2] ।

हम पहले ही कह चुके है कि रेखा अपने व्यक्तित्व के प्रति अधिक ईमानदार रहना चाहती है और वह साथ ही अपने जीवन और व्यक्तित्व मे भी दूसरों का सीमातीत हस्तक्षेप भी नहीं चाहती । जब भुवन उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता तो रेखा और भी स्पष्ट वादिता के साथ भुवन से कहती है -'तुम कुछ कहो, मै नहीं भूल सकती कि - जो हुआ है

---

1 अज्ञेय आत्मनेपद पृ. 80-84

2 रामस्वरूप चतुर्वेदी अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या पृ. 100-101

वह न हुआ होता तो - तुम न मांगते - न कहते; इसलिए तुम्हारा कहना परिणाम है । और यह कहना परिणाम नहीं, कारण होना चाहिए, तभी मान्य-तभी उसपर विचार हो सकता है[1] । रेखा को मालुम होता है कि भुवन के आग्रह के पीछे सामाजिक दायित्व का प्रभाव ज्यादा है । इसलिए वह यह नहीं चाहती कि सामाजिकता की उलझन से बन्धे होकर अपने व्यक्तित्व को यों कुचल दिया जाय । वह अपने अंतरंग का उत्तर देना अपना ध्येय समझती है । इसलिए वह आगे कहती है - 'पर भुवन, तुम समाज की दृष्टि से देखते हो वह दृष्टि गलत नहीं है, अप्रासंगिक भी नहीं है, निर्णयक भी वह नहीं है, व्यक्ति को दबाकर इस मामले का जो निर्णय होगा - गलत होगा - घृण्य होगा, असह्य होगा । हो सकता है कि मेरा सोचना शुरू से ही गलत रहा हो - पर शुरू से वह यही रहा है । मेरे घर का सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे, ठीक है, मेरे अंतरंग जीवन का नहीं । वह मेरा है । मेरा यानी हर व्यक्ति की निजी[2] । रेखा के व्यक्तित्व के जितने पक्ष है वे सब साफ और सुथरा है क्यों कि उसकी विचारधाराएं कभी भी संकर्ण नहीं रही है । वह अपनी प्रेमानुभूतियों की दासता मे पलना नहीं चाहती । अपने भविष्य जीवन केलिए उसने एक बार सर्जन-बीनिकार का सपना देखा । लेकिन जैसे उसके व्यक्तित्व मे आस्था का भाव कम है और वह भविष्य को न मानने के कारण उस सपने को भी निराधार समझती है और गर्भपात भी करा लेती है, अपनी स्वेच्छा से, अपनी अंतरंग की निजता के साथ ।

समाज की नियामक शक्तियों के सामने वह अपने अन्तर्मन की संभावनाओं को देखती है एक व्यक्ति का विद्रोह । वह एक व्यक्ति तक सीमित होते हुए भी एक विस्तृत समाज के प्रति भी है । वह अपने 'फुलफिलमेंट' को अपने मानस की तृप्ति मानती है । लेकिन यह तृप्ति और किसी के जीवन मे बाधक न बनें ऐसा वह चाहती है । वह भुवन के सामने स्पष्टीकरण देती है - 'भूल नहीं भुवन । पर - तुम्हें - उसे लज्जा नहीं देना चाहती थी, तुम्हारा सिर झुके, यह नही चाहती थी - किसी के आगे नहीं, और उस राक्षस के आगे[3] ।

गर्भपात करा लेने के बाद रेखा मे आस्था के भाव बढने के बदले कम बनता जा रहा है वह भुवन के साथ के संबन्ध को सुन्दर संज्ञा देना चाहती है और आगे के बिछुडन को भी सुन्दर संज्ञा से ही अभिहित करना चाहती है - 'मै मानती हूं कि अगर प्यार यह भी परीक्षा नहीं सह

- -

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ. 114 -2- वही पृ. 114-15

3 वही प 232

सकता तो प्यार का नाम नही है । मै ने तुम्हारे साथ आकाश छुआ है, उसका प्यास नापा है.:........... क्या हम टूटकर अलग हो जायेंगे ? टूटकर नही, बहकर सही अनजाने बहते रहकर इतनी दूर भी तो हट जा सकते है कि एक दूसरे को छोड दे मुक्त कर दे मै नही जानती क्या होगा - जो हो, अब हो वही है तो वही हो जिस सौंदर्य के लिए हम पास आये थे उसी के लिए दूर हट जाए - अगर हम और निकट आये तो विधि को धन्यवाद दे, और अपनी आत्मा के सामर्थ्य भर ऊँचे उठे - सुन्दर के आकाश मे । इतना छोटा सा मानव जीवन[1] ।

रेखा के व्यक्तित्व मे पीडा का अंश है । अज्ञेय पीडा को महत्व देनेवाले है । जैसे उन्हो ने लिखा है कि वेदना मे एक शक्ति होती है और वह दृष्टि भी देती है । 'नदी के द्वीप' मे वेदना तत्व को दो दृष्टियो को परखने का प्रयास किया है । अज्ञेय के शब्दो मे - 'दर्द मे भी जीवन मे आस्था जीवन का आस्वादन ..... और दर्द से मँज कर व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास, ऐसा स्वतंत्र कि दूसरो को भी स्वतंत्र करे....[2] । अतः हम पाते है रेखा के चरित्र मे जो पीडा या दर्द का अंश है वह संकीर्ण दायरो से उपर उठकर विस्तृतता व्यक्तित्व मे परिणत करने की ओर उन्मुख है । रेखा यह कथन इस अवसर पर उद्धृत करना असंगत न होगा - 'आत्मा का शैथिल्य ही प्यार की पराजय है, हम दोनो को बराबर सतर्क सजग रहना है - क्यो कि हम दोनो ऐसे आत्म निर्भर स्वतः संपूर्ण है कि सहज ही बहकर, सिमट की अलग हो जा सकते है - अपनी अपनी सीपियो मे बन्द अंतरंग अनुभूति के छोटे-छोटे द्वीप और इस प्रकार बरसो जीते रह सकते है, मौन शान्त, एकाकी[3] । बाह्य संघातो एवं प्रभावो से विमुक्त एक स्वच्छ नैतिक प्रतिमान जीवन केलिए आवश्यक है उसको रेखा प्रमुखता देती है । इसलिए वह अपने कार्य गर्भपात के बारे मे भी सोचना छोड देती है । इसका एक कारण जीवन के प्रति उसका निरर्थक दृष्टिकोण (अबसर्ड व्यू) और दूसरा अपने अहं के प्रति एक निष्करुण भाव है । मै नही जानती कि यह भूल है या ठीक, भुवन, कर्म को जज देना मै ने छोड दिया क्यो कि जब जज करने बैठती हू तो मानना पडता है कि न्याय करनेवाला विधाता ही गलतियाँ करताहै । अब इतना ही मानती हूँ कि भीतर से जो प्रेरणा है ..

---

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.237 -2- अज्ञेय आत्मनेपद पृ.74

3 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.238

वही ठीक है वही नैतिक है । यह नैतिकता अधूरी हो सकती है - पर इसलिए कि उसे देनेवाला व्यवितत्व अधूरा है । उस व्यवितत्व की तो वह सर्वोच्च रचना है । लेकिन उसके मन में यह संघर्ष हमेशा बना ही रहता है कि उसका निर्णय, उसका व्यक्तित्व उसकी आकांक्षायें निर्वैयक्तिक है या दूसरों को निर्मुक्त करके विकसाता है या यों कुंठ जाता है । वह कभी कभी अपने मन को शान्त भी नहीं कर सकती । जो सुन्दर है निरन्तर विकास करता है, रुक नहीं सकता । दूसरों को आनन्द देता है तो मैं क्या भूल करती आई हूं, क्या मैं बहते पानी को बांधना चाहती आई हूं, क्या मैं ने दूसरों केलिए दुःख की सृष्टि की है ? अगर ऐसा है तो उसका दण्ड मुझे मिले - विधि से और तुम से भी भुवन । लेकिन मुझमें कुछ कहता है कि नहीं अपने लिये मैं ने जो किया हो - और हो तुम्हारे लिए भी मेरे दुःख के साथी और सह भोक्ता सहस्रष्टा-दूसरों केलिए मैं ने दुःख नहीं बोया, भुवन कह दो कि नहीं बोया और ये सब झूठ बोलते हैं - ये खुद असुन्दर को लेकर मुझे भी उसकी सडांध में पचा देना चाहते हैं[2] । मगर रेखा अन्त में अपने दृढ विश्वास पर पहुंच जाती है जिनके बल और बूते पर अपने जीवन को आगे बढाती आई थी । भुवन केलिए अपनी अंतिम सम्मति दे देती है जो उसके व्यवितवादी दृष्टिकोण परिणाम है और उसका संस्पर्श समग्रता में है । 'जीवन के सारे महत्वपूर्ण निर्णय व्यवित अकेले में करता है, सारे दर्द अकेले में भोगता है - और तो और, प्यार के चरम आत्म समर्पण का सबसे बडा दर्द भी मिलन में जो विरह का परम रस होता है - तुम जानते हो उसे ? समर्पण के धधकते क्षण में जब ज्ञान चीत्कार कर उठता है कि हम अलग ही है, देना संपूर्ण नहीं हुआ कि मिटने में भी मैं मैं हूं, तू तू है, मैं तू नहीं और हमारी मांग बाकी है. मान लूंगी कि मेरा व्रत पूरा हुआ कि मैं ने तुम्हें वही दिया जो देय था, स्वच्छ या और उससे बचा लिया जिससे तुम्हें रखना चाहती थी[3] । इस प्रसंग में रेखा को 'शेखर' की शशि के साथ हम मिला सकते हैं । शशि के संदर्भ में वह सामाजिक मजबूरी है जो उसे अपने आप निर्णय कर लेने की शक्ति प्रदान करती है । रेखा में भी यह सामाजिक मजबूरी का अपना प्रभाव है । लेकिन उससे अनुशासित होकर नहीं वह अपने परिवेश से बन्धे होकर अपने आप पर निर्णय लेती है जिसमें उसके व्यक्तित्व की मात्र झलक है । भुवन के साथ के उस जीवन की उस सीमित परिधि एवं समय के वह अपने जीवन के मूल्यवान क्षण मानती है और उसे आगे बढाते हुए भी उसे वैवाहिक संस्था में बद्ध करना नहीं चाहती जो समाज के नियमों का पालन है और वहां व्यवितयों का स्खलन भी है । लेकिन वह भुवन से, भुवन के अन्तरंग से एकदम

---

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.238 -2- वही पृ. 239

हटकर अलग होना नहीं चाहती। भुवन से अलग होकर भी भुवन से ही बन्धित रहना चाहती है क्यों कि सबसे पहले अपने जीवन को सार्थक बना पाई थी भुवन से बन्धकर। इसलिए वह भुवन की चिट्ठी न पाकर विह्वल हो उठती है। मैं भीतर मर गई हूँ, भुवन, तुमसे कटकर फिर मैं कहीं भी बह जा सकती हूँ - किसी भी बुरे नर पशु के साथ भी रह सकती हूँ एक तुम्हीं ने मेरी जडित आत्मा को जगाया था[1]। युवन से ठीक प्रतिक्रिया न पाकर वह अधिक व्यथित ही रहती है। लेकिन रेखा के चरित्र में हम एक विशेषता देख सकते है। वह बाद में भुवन को व्यथा से बचाने का प्रयत्न करती है और उसके व्यक्तित्व के सूक्ष्म एवं बलवान पक्षों की ओर इशारा करती है। -निराश मत होओ, भुवन, अपने जीवन को परास्त भाव से नहीं, स्रष्टा भाव से ग्रहण करो एक विशाल पाटर्न है जो तुम्हें बुनना है; तुम्हारी प्रत्येक अनुभूति उसका एक अंग है, ... मेरे बिना यह पार्टन पूरा न होता, लेकिन मैं उस पाटर्न का अन्त नहीं हूँ - मैं इसमें सुखी हूँ कि मैं ने भी उसमें थोडा सा रंग दिया है[2]। युवन से बढ़कर भुवन को रेखा समझती है, गौरा से बढ़कर गौरा को रेखा समझती है। गौरा के संबन्ध मे भी वह कहती है - गौरा के मन को मैं जानती हूँ क्यों कि मैं स्त्री हूँ वह वरदान है, भुवन, उसे स्वीकार कर लो[3]। भुवन से अलग होकर वह डाक्टर रमेशचन्द्र से शादी करती है तब भी उसकी यही आशा बनी रहती है - 'उन (रमेशचन्द्र) में बडी उदारता है, गहरी संवेदना है, वह समझता है मैं कल्पना करती हूँ, मैं तुम दोनों को समीप ला सकती - मिला सकती - दोनों को जिनसे मैं ने बहुत कुछ पाया है जिन्हें मैं ने बहुत कुछ दिया[4]।

गौरा के विवाह केलिए आशिर्वाद भेजते हुए रेखा लिखती है - 'हर व्यक्ति एक अद्वितीय इकाई है, और हर कोई जीवन का अंतिम दर्शन अपने जीवन में पाता है, किसी की सीख मे नहीं। पर दूसरों का अनुभव वह खाद हो सकते है, जिससे अपने अनुभव की भूमि उर्वरा हो[5]। रेखा का यह कथन उसके जीवन का निचोड है और उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। इसलिए हम कह सकते है यह तथ्य 'समाज की खोखली मान्यताओं के प्रति व्यक्ति के तीखे विद्रोह को व्यक्त करता है। यह याद दिलाना है आज भी घृष्टता नहीं है

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.251 -2- वही पृ.272 -3- वही पृ.319

4 वही पृ.324 -5- वही पृ.330

कि हमारे देश मे अभी तक स्त्री पुरुष का परस्पर आकर्षण और स्वाभाविक प्रणय अपनी परिकल्पना और प्रतिफलन दोनो मे तुरन्त वर्तमान जर्जर सामाजिक मान्यताओ को, स्वीकृत सामाजिक आचार व्यवहार केलिए चुनौती बन जाता है । एक प्रकार से वह सभी देशो मे, सभी युगो मे स्वीकृत सामाजिक मान्यताओ केलिए चुनौती बनता है; किन्तु आज के भारतीय समाज मे तो वह ऐसा केन्द्र बिन्दु है जहा व्यक्ति ऐसा असाधारण दबाव अनुभव करता है जो अन्य सभी सामाजिक नियमो से उपर उठ जाता है और जहा हो व्यक्ति का विद्रोह सब से तीखे और व्यापक तथा विस्फोटक रूप मे प्रकट होता है[1] । रेखा का हर एक निर्णय उसके जीवन केलिए ट्रैजिक अवस्था उत्पन्न करता है । क्योंकि उसने जीवन से भोगा और परखा या उसके कारण उसकी आकांक्षायें जड हो चुकी थी और आशाएं मिट चुकी है ।

हिन्दी की औपन्यासिक उपलब्धियों पर विचार करने पर रेखा एक असीम विद्रोह की परिकल्पना से जुट जाती है, बौद्धिक ऊर्जा प्रदान करती है । आत्म पीडन की परंपरा से पूर्ण रूप से मुक्त होकर (निर्मला की निर्मला एवं त्याग पत्र की मृणाल आदि की परंपरा) दुःखवाद के सतही ढंग से परे होकर मानसिक कुंठा से मुक्त (जोशी के नारी पात्र) अज्ञेय ने रेखा को एक अलग व्यक्तित्व प्रदान किया है । नेमिचन्द्र जैन का कथन पूर्णतः ठीक निकलता है 'वास्तव मे नदी के द्वीप की सबसे महत्वपूर्ण सृष्टि रेखा का अद्भुत व्यक्तित्व है हिन्दी कथा साहित्य मे ऐसी नारी दूसरी नही वह महमारे आज के समाज के समानवीय नीति-विधान के विरुद्ध तीखे किन्तु ऊपर से शान्त विद्रोह की मूर्ति है[2] । रेखा का अपने पथ पर बढते चलना एक ओर आधुनिकता की प्रवृत्ति का सूचक बन जाता है दूसरी ओर नई संभावनाओ के नए नए क्षितिज भी खोल देता है ।

<u>भुवन - पुरुष की नैसर्गिक प्रेम संवेदना</u> - भुवन उपन्यास का चरित्र नायक है । भुवन का व्यक्तित्व रेखा के सामान्तर होकर भी आखिरी छोर पर दोनो दो अलग अलग राहो की ओर मुड जाते है । भौतिक शास्त्र मे कोस्मिक रश्मियों पर रिसर्च करने वाले एक बुद्धिजीवी के रूप मे भुवन उपन्यास के प्रारंभ मे आता है । भुवन के अन्य स्वजनो का या पारिवारिक बातो का जिक्र उपन्यास मे बिलकुल नही है । कालेज की पढाई के समय से भुवन का चन्द्रमाधव से परिचय है और उसे अपना एक मित्र भी मानता है । फिर उसके परिचित लोगो मे गौरा एवं उसके माता - पिता भी आते है । स्पष्ट है भुवन के सामान्य जीवन से मतलब लेखक को

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 नेमीचन्द्र जैन अधूरे साक्षात्कार पृ.22-23 -2- वही पृ.26

बहुत कम ही है । भुवन कोस्मिक रश्मियों पर प्रबन्ध देकर डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर लेता है और अपने शोध कार्य मे रत होता है और उसकेलिए अपना सारा समय बिता भी देता है ।

चन्द्रमाधव के यहां पर भुवन रेखा से मिलता है । रेखा एवं चन्द्रमाधव के वार्तालाप मे लगे भुवन एक बुद्धिजीवी का रूप व्यक्त करता है । भुवन साधारण से अधिक रेखा के प्रति आकर्षित भी हो जाता है । इसलिए वह चन्द्रमाधव से बिना भूमिका बांधे पूछ लेता है कि यह रेखा देवी कौन है ? मुझे उसकी बात बताओ, जो तुम्हे मालुम है । इसी आकर्षण के कारण ही वह रेखा से भी कह बैठता है - 'रेखाजी, आप से भेंट करके मुझे बडी प्रसन्नता हुई । मेरा लखनऊ का प्रवास बडा सुखद रहा । इस बात को आप शिष्टाचार ही न मानें सुखद शायद ठीक शब्द नहीं है किन्तु ठीक शब्द नहीं मिल रहा है, सोचकर शायद ढूंढ निकालूं ।[1]

रेखा के स्पर्श से वह विचलित होता है और रेखा के बारे मे ज्यादा सोचने लगता है । यही विचलन बाद मे रेखा की निकटता प्राप्त कर लेने केलिए भूमिकाएं बांधती है । रेखा की तरह भुवन भी काफी उंचे नियम रखता है और उसी पर चलना पसन्द करता है । भुवन गौरा को लिखता है - कोई किसी के जीवन का निर्देशन करे, यह मै सदा से गलत मानता आया हूं तुम जानते हो । दिशा-निर्देशन भीतर का आलोक ही कर सकता है, वही स्वाधीन नैतिक जीवन है, बाकी सब गुलामी है । दूसरे यही कर सकते है कि उस आलोक को अधिक द्युतिमान बनाने मे भरसक सहायता दे । वही मै ने अब तक करना चाहा है, और उस प्रयत्न मे स्वयं भी आलोक पा सका हूं, यह मै कह चुका हूं ।[2] भुवन का चिन्तन पक्ष सतही पर न होकर बहुत ही गहरा है । विवाह के संबन्ध मे वह गौरा को अपना विचार व्यक्त कर देता है । स्वाधीनता साहस मांगती है; दुस्साहस भी मांग सकती है । स्वाधीनता साहसी का धर्म है हमारा संस्कार है; हां, पर श्रवण कुमार का जो आदर्श है, वही ज़रा सी चूक पर हमारी सारी पीढी की पराजय और क्लीवता का बडा अच्छा प्रतीक भी है । कन्धे पर लदी हुई बहंगी पितृभक्ति का, आदर्श - परायणता का, आत्मा बलिदान का प्रतीक नहीं, जड पूजा का, स्वाधीन जीवन की अपात्रता का प्रतीक है । श्रवण केलिए वह क्या था, इस का निर्णय करना मेरेलिए आवश्यक नहीं है, मेरी पीढी केलिए वह क्या है यह मै ठीक जानता[3]

- -

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.34 -2- वही पृ.72 -3- वही पृ.76

गौरा के ऊपर भुवन का एक प्रकार का अधिकार है क्योंकि उन दोनों का पुराना परिचय है और एक तरह से गुरु-शिष्या का परिचय है । लेकिन रेखा से वह काफी प्रभावित दीखता है क्यों कि रेखा के व्यक्तित्व भुवन की तुलना में अधिक से अधिक प्रखर और तेज़ है । इसलिए वह रेखा के बारे में गौरा को लिखता है - 'उसके (चन्द्रमाधव) यहाँ एक रिमार्केबिल व्यक्ति से परिचय हुआ - एक श्रीमती रेखा देवी से । तुम उन्हें देखती तो अवश्य प्रभावित होती - एक स्वाधीन व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व प्रतिभा के सहज तेज़ से नहीं दुःख की आँच से निखरा है । दुःख तोडता भी है पर जब नहीं तोडता या तोड पाता, तब व्यक्ति को मुक्त करता है । ऐसा ही कुछ मुझे उनमें लगा ।[1] इसी आकर्षण की चरम सीमा तुलियन और नौकुछिया में बिताये जीवन में लक्षित होती है । रेखा का समर्पण एक प्रकार की स्वच्छन्दता है लेकिन भुवन में वह स्वच्छन्दता नहीं मिलती । इसलिए भुवन का व्यक्तित्व रेखा के व्यक्तित्व की गहराई चाहते हुए दीखता है ।

रेखा के समर्पण में वह सौन्दर्य देखता है । वह कहता है कि यह इनकार नहीं है रेखा, प्रत्याख्यान नहीं है ..... यह सब बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर वह - वह सौन्दर्य की परम अनुभूति होती है - होनी चाहिए मैं जानता हूँ इसलिए डर लगता है, अगर वह - अगर वैसा न हुआ - जो सुन्दर है उसे मिटाना नहीं चाहिए तुमने जो दिया, उसके सौंदर्य को मैं मिटाना नहीं चाहता, रेखा, जोखिम में नहीं डालना चाहता । वह बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर[2] । लेकिन इतने पर भी भुवन एक दूरी हमेशा महसूस करता है । इसलिए रेखासे वह अपनी तुलना करते हुए सोचता है - 'अभी पीछे देखने सोचने परखने का सामर्थ्य उसमें नहीं था, इतना ही उसके मन में उठा कि उसके जीवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सन्धिस्थल है .... क्या वह भी रेखा की तरह कह सकता है कि अब वह फुलफिल्ड है कि अब वह मर सकता है ? पर फुलफिल्ड होना क्या है ? एक तन्मयता उसने जाती है एक अभूतपूर्व तन्मयता, लेकिन स्वयं वह जो जान पाया है उससे कुछ अधिक और कुछ अधिक गहरा रेखा उसके निमित्त से जान सकी है - अधिक गहरा क्यों कि वह स्त्री है, और स्त्री होते हुए भी उसने वह साहस किया जो शायद भुवन में भी नहीं है[3] । रेखा के प्रभाव के कारण उसं व्यक्तित्व में एक प्रकार की स्वीकार भावना उमडने लगी । रेखा में वेदना का तत्व है जो आत्म हनन केलिए नहीं बल्कि वह उससे मँजकर स्वयं मुक्त होना चाहती थी । लेकिन रेखा में जीवन

---

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ. 90 -2- वही पृ. 136 -3- वही पृ. 160

के प्रति आस्था के भाव कम है, भुवन मे स्वीकार का भाव ज्यादा है वह उसे रेखा के व्यक्तित्व का प्रभाव मानता है वह स्वयं नही समझ पाता था - जीवन के प्रति ऐसा स्वीकार भाव उसमे कहाँ से आया ? चन्द्रमाधव की भांति वह जीवन को नोचने झझोडने का आदी तो नहीं था; बछडे की देखा देखी नृशंस ग्वाले जैसे गाय के थनों मे हुचका मार कर दूध की अंतिम बूंद निकाल लेना चाहते है जीवन की कामधेनु को वैसे दुह लेने की प्रवृत्ति उसकी नही थी, पर ऐसा प्रश्न विहीन भाव भी तो उसका नही रहा था: यह क्या रेखा की छाप थी कि वह भी मानो धीर प्रवाहिनी जीवन की नदी का एक द्वीप सा हो गया है[1] ।

भुवन रेखा को स्वीकारने की बात कहता है । लेकिन भुवन के स्वर मे समाज की नियामक शक्तियों की अनुगूंज होने के कारण रेखा उसे अस्वीकार करती है । पर रेखा केलिए उसके हृदय मे हमेशा एक आदर समन्वित भाव बना रहता है । भुवन का कथन द्रष्टव्य है - 'रेखा, जो कुछ हुआ है, मुझे उसका दुःख नहीं है, परिताप नही है । और जो कुछ हुआ है उससे मेरा मतलब केवल अतीत से नहीं है, भविष्य भी है - कारण भी परिणाम भी । और यह नकारात्मक बात लगती है - मै कहूं कि मै प्रसन्न हूं एक आनन्द है मेरे भीतर एक शान्ति - भविष्य के प्रति एक स्वागत भाव यही मै तुम से कहना चाहता हूं - वह जो आएगा - आयोगा या आयेगी, वह तो मुहावरा है - वह भेंट है, मेरा वांछित है - उससे मै लजाऊंगा नहीं, वह तुम मुझे दोगी । भूलना मत - तुम्हें और तुम्हारी देन को मै वादान करके लेता हूं[2] । भुवन के व्यक्तित्व मे स्वीकार करने की जो भावना है, जीवन के प्रति एक अटूट बन्धन की जो परिकल्पना है वही उसे रेखा से पलायन करने को मजबूर कर देती है । रेखा से पलायन करने का एक और कारण गौरा के प्रति आकर्षण भी है । वह रेखा के नाम पर एक खत भी लिखता है - प्यार मिलाता है, व्यथा भी मिलाती है, साथ भोगा हुआ क्लेश भी मिलाता है; लेकिन ऐसा नहीं है कि एक सीमा पार करने लेने पर ये अनुभूतियां मिलाती नहीं, अलग कर देती है, सदा केलिए और अन्तिम रूप से[3] । इस पलायन को एक रूप देने केलिए एक मुखौटा पहनाने केलिए वह भारत छोडकर विदेश जाता है और यह पलायन धीरे धीरे गौरा के प्रति आकर्षण के रूप मे बदल जाता है । एक ओर वह गौरा की सहानुभूति चाहता है और गौरा का प्रेम भी ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.202 -2- वही पृ.220 -3- वही पृ.262

इसलिए वह गौरा को लिखता है कई महीनों से जानता हूँ कि मेरा जीवन किसी नई अज्ञात, अकल्पिक दिशा में बहा जा रहा है और एक ट्रैजेडी की ओर । ठीक क्या नहीं सोच पाता और न मैं अपने को सोचने का मौका ही देता है[1] । सहानुभूति चाहने के साथ साथ उसके प्रति जो आकर्षण और प्रेम है उसे भी प्रकट कर देता है - 'लेकिन न जाने क्यों तुमसे मिलने को, तमसे बात करने को, तुम्हें न जाने कुछ बताने को मन होता है[2] ।

गौरा के घर में रहकर वह अपनी अतीत की सारी बातों के बारे में सुनाता है और जैसे उसकी चाह थी उसे गौरा से सहानुभूति मिल ही जाती है और प्रेम भी पाता है । इसलिए वह गौरा के सामने अपने को समर्पित करके कहता है, अब नहीं मागूंगा । पहले बहुत मागा '

भुवन का व्यक्तित्व आदि से अन्त तक पूर्ण रूप से प्रस्फुटन चाहते हुए भी प्रस्फुटित नहीं हो पाया है । रेखा और गौरा दोनों उसके प्रति सीमातीत रूप से आकृष्ट है लेकिन रेखा के आकर्षण में अपने ही व्यक्तित्व की पूर्णता की खोज है । गौरा के मन में आकर्षण एवं आदर का अतिरंजित रूप भी है । दो भिन्न भिन्न स्थितियों का आकलन एक साथ भुवन के व्यक्तित्व में गुंफित है इसलिए रेखा की जैसी सूक्ष्मता का अन्वेषण त्वरा भुवन में नहीं के बराबर है । उपन्यास में भुवन के प्रति रेखा एवं गौरा का आकर्षण यथार्थ की सीमा का उल्लंघन भी करता है क्योंकि उन दोनों के हृदय में भुवन का रूप अत्यधिक आदर्शनीय है । नेमिचन्द्रजी का कथन सत्य लगता है - भुवन का अपना व्यक्तित्व वास्तव में इतना परिपुष्ट और सक्षम नहीं है जितना मानकर लेखक चलता है भुवन के चरित्र की परिकल्पना में, कहीं विरोध है, असंगति है[3] । ऊपर का विरोध और असंगति उपन्यास के आरंभ से लेकर अन्त तक हम देख सकते हैं । उपन्यास के प्रारंभ में भुवन अपने वैज्ञानिक प्रयोगों में पूर्ण रूप से लगे हुए एक बुद्धिजीवी के रूप में चित्रित है और साधारण स्तर के व्यवहारिक जीवन से कोई संबन्ध नहीं । लेकिन रेखा के साथ मिलने के बाद वह इतना व्यावहारिक हो जाता है कि यही भुवन फिर दुबारा बौद्धिक कटघरे में बन्ध जाता है और अपने को इतना आत्म केन्द्रित बताता है । अन्त में हम देखते हैं कि भुवन फिर से व्यावहारिक होना चाहता है और गौरा से क्षमा भी मांगता है । इस प्रकार की एक विरोधी वृत्ति के कारण भुवन के व्यक्तित्व में वह सूक्ष्म संवेदनशीलता नहीं जो रेखा में विद्यमान है

- - - - - - - - - - - - - - - -

<u>गौरा - समर्पित प्रेम संवेदना</u> - रेखा की तुलना मे गौरा मे कम और भुवन की तुलना मे अधिक संवेदनशीलता मौजूद है । भुवन से गौरा का परिचय भी बहुत पुराना है क्योकि गौरा को भुवन ने पढाया था अतः उसके प्रति एक आदर भाव गौरा मे बना रहता है । जीवन के प्रति गौरा का दृष्टिकोण बहुत उदात्त है । एक रचनात्मक प्रवृत्ति का निदर्शन गौरा के व्यक्तित्व मे लक्षित होता है । भुवन के शब्द देखिए - 'मै ने दो वर्ष उसे पढाया था । अच्छी पास हुई है । और उसमे जीवन है जीवन की लालसा - ऐसी जो उसे कई दिशाओं मे अन्वेषण की प्रेरणा देती है ।[1]

भुवन के व्यक्तित्व के संस्पर्श एवं सहवास से गौरा के व्यक्तित्व मे चिन्तन की गहराई का प्रभाव पडता है और गंभीर होता चला जाता है । भुवन के कारण गौरा का परिचय चन्द्रमाधव से हो गया और चन्द्रमाधव गौरा से विदेश से निरन्तर पत्र व्यवहार करता रहता है । एक पत्र मे चन्द्रमाधव भारत की स्त्रियो की स्वाधीनता की कमी के बारे मे विचार विमर्श करता है लेकिन इस सिलसिले मे गौरा का विचार बहुत ही उत्तेजक एवं चिन्तन के क्षण के मंथन का भी परिणाम है - स्वाधीनता केवल सामाजिक गुण नही है । वह एक दृष्टिकोण है, व्यक्ति के मानस की एक प्रवृत्ति है । हम कहते है कि समाज हमे स्वाधीनता नही देता; पर समाज दे कैसे ? हमी तो अपने दृष्टिकोण से समाज बनाते है मै अपने आपको बद्ध नही मानती हू और स्वाधीनता केलिए मन को ट्रेन करती हू सफलता की बात नही जानती उतनी शक्ति मेरे भीतर होगी क्यो नही दोउंगी सफल ? और मै सोचती हू कि सब लोग यत्न पूर्वक अपने को स्वाधीनता केलिए ट्रेन करे तो शायद हमारा समाज भी स्वाधीन हो सके।[2] अपने आप पूर्ण बनाने की कोशिश मे वह आगे ही रहती है लेकिन कभी कभी वह भुवन की सहायता भी मागती है ।

गौरा साधना के आगे सिर झुकाती है । लेकिन उसे मालुम है कि भौतिक शक्तियो के सामने एक साधक की लगन आज नगण्य है । चन्द्रमाधव को वह अपना विचार स्पष्ट कर देती है । 'मै ने पहले भी एक बार लिखा था कि हम लोग भिन्न भिन्न भाषा बोलते है । हमारा मुहावरा अलग है फिर भी मै कहू कि मेरी समझ मे तो एक विश्व-संकट यह

- -

1 अज्ञेय नदी के द्वीप पृ.67 -2- वही पृ.70

भी है कि साधना आज इतना नगण्य हो गयी है कि हमारा साध्य जीवन का आनन्द न रहकर जीवन की सुविधाएँ रह गया है यानी जीवन की हमारी परिभाषा ही बदल गयी है[1]।

गौरा के सम्मुख भुवन अपने अतीत की सारी बातें - रेखा के साथ के जीवन की बातें - रेखा के साथ के जीवन की बातें - बता देता है। तब वह यही भुवन से कहती है - 'जजमेंट आप मुझे न दें - वह करना होगा तो मैं स्वयं करूँगी[2]। गौरा पर भुवन के अतीत जीवन का कुछ भी असर नहीं पड़ता और वह भुवन के व्रणित हृदय को ठीक कर देना चाहती है। वह चाहती है - 'सचमुच मेरे जीवन का सबसे बड़ा इष्ट यही है कि तुम्हें सुखी देख सकूँ - तुम्हारे व्रण ठीक कर सकूँ मेरे स्नेह शिशु, मैं तुम्हारे लिए जीती हूँ क्योंकि तुम में जीती हूँ ....[3]। गौरा के व्यक्तित्व में गंभीरता का स्पर्श भुवन से ही मिला था इसलिए वह हमेशा भुवन के प्रति कृतज्ञ रहना चाहती है। इसलिए वह भुवन के वैयक्तिक कार्य कलाप में हस्तक्षेप करने में संकोच का अनुभव करती है। वह चाहती है कि भुवन के व्यक्तित्व का कोमल पक्ष उसे मिले। भुवन को अपने व्यक्तित्व एवं पूरे जीवन का एक पक्ष मानते हुए वह लिखती है - 'मेरा भविष्य हो, इसलिए मैं तुम्हें बनाती हूँ। तुमने मुझे विश्वास दिया, मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। मुझे लगता है, मैं ने बहुत बड़ी निधि पाई है, ऐश्वर्य पाया है। और तुमसे मेरे जीवन के सारे तन्तु तुम्हारे चारों ओर लिपटे गए हैं। वे बहुत सूक्ष्म है, तुम्हें बान्धेंगे नहीं, पर उन्हें छुड़ा नहीं सकोगे, तोड़ ही नहींसकोगे .....[4]। रेखा द्वारा भेजी गयी अंगूठी वह स्वीकार कर लेती है। पहली मुलाकात के अवसर पर वह उसे स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं थी क्योंकि वह ठीक समय नहीं था लेकिन भुवन के जीवन से पूर्णतः बन्ध जाने के बाद वह उसे स्वीकार कर लेती है। गौरा को मालुम है भुवन के व्यक्तित्व को उभारने का कार्य रेखा ने ही किया था। इसलिए वह भुवन द्वारा संग्रहित कुछ कविताओं का संग्रह रेखा को भेज देना चाहती है इसमें पहली कविता की पहली पंक्ति - 'ए वुमन हास गिवन मि स्ट्रेंग्थ एण्ड एफ्लुएंस - एडमिटेड' है। वह यही समझती है रेखा का प्रभाव गौरा एवं भुवन पर है इसलिए प्रस्तुत संग्रह रेखा को भेज देती है साथ ही लिखती है - 'तुम्हारी वह मूल्यवान भेंट लौटाऊँगी नहीं रेखा दीदी, लौटाई तब भी नहीं थी। अंगूठी मैं ने पहन ली है, तुम्हारे आशिर्वाद के सामने नत-

---

1 अज्ञेय नदी के द्वीप में पृ. 80 -2- वही पृ.293

3 वही पृ. 303 -4- वही पृ.304

मस्तक हूं । .... रेखा दीदी मेरे पास दर्शन अभी कुछ नहीं है, एक आस्था है, और कुछ श्रद्धा, सीखने की सहने की और यत्किंचित दे सकने की लगन है; इनके और आपके स्नेह के सहारे मुझे लगता है कि मै चारो ओर बहते अजस्र प्रवाह मे खडी रह सकूंगी; एक नगण्य व्यक्ति पुंज अस्तित्व का एक छोटा सा द्वीप, लेकिन फूलना चाहता है - फिर नदी चाहे जो करे, उन फूलो की गन्ध ही पहुंच जाए दूर, दूर, दूर[1] ।

चन्द्रमाधव - वैयक्तिक सुखभोग की स्वच्छन्द संवेदना - सनसनी की खोज मे हमेशा घूमने वाले जर्नलिस्ट रूप मे चन्द्रमाधव का व्यक्तित्व बिलकुल उंचे स्तर का नही है । उपन्यास के तीनो पात्रो से उसका परिचय है और यहा तक रेखा के पति हेमेन्द्र से उसका परिचय है । रेखा केलिए, जो अपने पति द्वारा ठुकराये जाने पर चन्द्रमाधव नौकरी दिलवाने का कठिन परिश्रम करता है और दो-तीन जगह उसे नौकरी भी दिलवा देता है । रेखा के साथ उसकी घनिष्ठ मित्रता पर भी रेखा के बारे मे उसका विचार बहुत ही निम्न स्तर का है । वह भुवन से कहता है, जिस स्त्री का इतिहास होता है, उसमे किसे नही दिलचस्पी होती[2] ।

चन्द्रमाधव शादी - शुदा आदमी है और घर मे सब प्रकार की सहूलियतो के होने पर भी उसने पत्नी और बच्चो को छोड दिया । जीवन को हर मोड पर वह अपनी कुत्सित भावनाओ को आगे बढाता ही रहता है । क्योकि जोवन के प्रति उसका दृष्टिकोण वही है रेखा के सामने वह प्रेम निवेदन भी कर लेता है । वह अपने खत मे लिखता है
तुम अगर डेस्टिनी को मानती है तो कहूं कि जब से तुम्हे देखा है; तब से यह जानता रहा हूं कि डेस्टिनी ने मुझे तुम्हारे साथ बांधा है और मै चाहूं न चाहूं इसके सिवाय कोई उपाय नही है कि तुम्हारी ओर बढता जाउं, तुम दूर जाओ तो तुम्हारे पीछे जाउं पृथ्वी के परले छोर तक भी[3] । चन्द्रमाधव को अपना प्रेम-निवेदन फली भूत न होने के कारण वह रेखा को किसी न किसी प्रकार और भी कुंठित बनाना चाहता है । यह कार्य उसके व्यक्तित्व का एक दुर्बल पक्ष है । चन्द्रमाधव रेखा और गौरा को मिलाकर भुवन के प्रति दोनो के आकर्षण मे थोडी दरारे उत्पन्न करने की कोशिश करता है और इस कार्य मे विफल ही रहता है । गौरा को आकर्षित करने का भी कार्य किया लेकिन वहाँ भी विफलता ही उसे मिली । इन सब के बावजूद वह रेखा एवं गौरा को खत लिखता है और दोस्ती को

---

1 अज्ञेयः नदी के द्वीप पृ.33। -2- वही पृ. 28 -3- वही पृ.91-92, 93

बनाए रखना चाहता है । अन्त में वह कम्यूनिस्ट बन जाता है और बंबई जाकर किसी फिल्म -अभिनेत्री से शादी कर लेता है ।

उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अन्त तक चन्द्रमाधव किसी की सहानुभूति का पात्र नहीं बन सका क्योंकि उसका चरित्र ऐसा ही प्रकट हुआ है । अज्ञेय के कथनानुसार एक दूसरी तरह की ईमानदारी चन्द्रमाधव में भी है, लेकिन वह दस्यु की ईमानदारी है - जो नोच-खसोटकर पा लेता चाहता है किन्तु मूल्य चुकाने को तैयार नहीं है[1] । चन्द्रमाधव का अपना कोई जीवन दर्शन या जीवन के प्रति एक विशेष भावना चाहे साधनात्मक या चाहे व्यावहारिक नहीं है । सामान्य रूप से वह व्यावहारिक लगता है लेकिन उसमें कुंठा एवं वासना की बू ज्यादा है । जिस खुलेपन और आधुनिक विचार पद्धतियों से प्रेरित होकर वह भुवन एवं रेखा से मिलता है उसका विकास नहीं होता । बल्कि वह उत्तरोत्तर घटता ही जाता है और अन्त में कुत्सित भावना की गहराइयों की तह तक पहुंच जाता है ।

अज्ञेय ने उपन्यास के अंतिम भाग में चन्द्रमाधव को कम्यूनिस्ट बनाया है । उसके व्यक्तित्व को पतितावस्था को दिखाने केलिए उसे एक कम्यूनिस्ट बनाने का कार्य अनुचित लगता है । यह विचारणीय है कि उपन्यास के विकास केलिए चन्द्रमाधव की उपस्थिति आवश्यक थी या नहीं । हमारे विचार में भुवन, रेखा एवं गौरा के व्यक्तित्वों की पूर्णता दिखाने केलिए चन्द्रमाधव के व्यक्तित्व की अपूर्णता का चित्रण अनिवार्य नहीं है । उपर्युक्त तीनों पात्रों का व्यक्तित्व एक अर्थ में अपने आप पूर्ण है और अपनी - अपनी खासियत एवं कमियों से भरपूर है । हमें लगता है कि चन्द्रमाधव की परिकल्पना अनावश्यक है । इसका यह मतलब नहीं कि उपन्यास के सारे पात्र उदात्त भावनाओं से प्रेरित ही रहें, लेकिन किसी पात्र की ऊंचाई केलिए दूसरे पात्रों के ओछापन जबर्दस्ती दिखाना लाज़मी नहीं, स्वीकार्य भी नहीं है

<u>निष्कर्ष</u> - उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नदी के द्वीप एक आधुनिक उपन्यास है । उसमें आधुनिकता के नए आयाम लक्षित होते हैं । इसके मुख्य चार पात्र चार संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं । हमने चार पात्रों के रूप में चार संवेदनाओं का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उपन्यास की वस्तुपरक और शिल्प परक उपलब्धियों पर भी प्रकाश डाला है ।

---

1 अज्ञेय आत्मनेपद पृ.83

पाचवा अध्याय

अपने अपने अजनबी आलोचनात्मक अध्ययन

अपने अपने अजनबी अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है । अन्य दोनों उपन्यासों की तुलना में इसकी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों स्तरों पर दर्शित है। 'शेखर' और 'नदी के द्वीप' के कथ्य से एकदम अलग कथ्य इसमें स्वीकृत है । स्वभावतः अज्ञेय ने एक नवीनतम शिल्पविधि को भी उद्घाटित किया है जो अन्य दोनों रचनाओं में भी लक्षित है ।

अज्ञेय की रचनाएँ विवादास्पद रही है । अपने अपने अजनबी इससे अछूता नहीं है । साधारण उपन्यासों की कोटि से ऊपर उठकर कुछ ऐसी पराकोटि की स्थिति को निरूपित करते हुए जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या को प्रस्तुत उपन्यास में स्थान दिया गया है । व्यक्ति संबन्धों की शिथिलता या विघटन का चित्रण इसमें नहीं है । समाज का विस्तृत कैनवास इसमें नहीं है । मनुष्य को एक महत्वपूर्ण सत्ता के रूप में मानते हुए अनादिकाल से चिन्तकों एवं विचारकों के हृदय को आलोडित विलोडित करनेवाली मृत्यु समस्या उपन्यास का कथ्यपक्ष है ।

मृत्यु मानव सत्ता की एक संभावना है । इस विषय पर वैदिककाल के ऋषियों से लेकर आधुनिक युग के दार्शनिकों तक ने अपना विचारविमर्श प्रस्तुत किया । तब स्वाभाविक रूप से विविध प्रकार की चिन्तन प्रणालियों की उत्पत्ति होती है । अन्ततः मृत्यु कहीं जीवन को अर्थ देती है, स्फूर्ति देती है और कहीं अन्तिमता का निरूपण करती है । यही प्रश्न प्रस्तुत उपन्यास का विषय है और दो विभिन्न चिन्तन प्रणालियों के प्रकाश में अज्ञेय का

चिन्तक मृत्यु साक्षात्कार के बावजूद मानव सत्ता की अन्तिम खोज को सार्थक बनाना चाहता है

प्रस्तुत उपन्यास के समग्र अध्ययन केलिए भूमिका के रूप में विभिन्न दार्शनिक विचार धाराओं का अनुशीलन आवश्यक है । प्रस्तुत उपन्यास के अध्ययन में सहायक दो प्रकार की दार्शनिक विचारधाराएँ मुख्य है (1) भारतीय दार्शनिक विचारधारा (2) पाश्चात्य दार्शनिक विचारधारा ।

इस उपन्यास की बाहरी उपाधान तो फ्रेंच साहित्य में प्रणीत अस्तित्ववादी उपन्यासों जैसा है । तब प्रश्न है कि अपने अपने अजनबी अस्तित्ववादी उपन्यास है या नहीं । बाहरी उपाधानों में अस्तित्ववाद की अनुगूंज होते हुए भी अन्ततः यह एक अस्तित्ववादी उपन्यास नहीं है । इन्द्रनाथ मदान का मत द्रष्टव्य है - इसमें (अपने अपने अजनबी में) मौत का सामना है, उसे पहचानने की कोशिश है, लेकिन जिन्दगी और मौत के बारे में चिन्तन काफी बदलता रहा है । पहले जीवन को वास्तविक माना जाता रहा और मृत्यु को अवास्तव । यह मध्यकालीन बोध का परिणाम था । इसे अलग अलग तरह कहने की कोशिश रही है - मरण के बाद जन्मान्तर है, नीन्द के बाद जागना है, क्यामत के दिन कब्रों से उठना है, फटा चोला बदलना है । इस चिन्तन के मूल में आधुनिकता की चुनौती है । अपने अपने अजनबी जीवन को मृत्यु के माध्यम से पहचानने की कोशिश है - इसमें अस्तित्ववादी चिन्तन की झलक है; लेकिन उपन्यास अस्तित्ववादी नहीं है[1] । डा.सत्यपाल चुघ का भी यही मत है कि अपने अपने अजनबी या अकेले बने रहने वालों की आत्मीयता शून्य मनोवृत्ति की विडम्बना और विरोध करना है[2] ।

डा.रामस्वरूप चतुर्वेदी इस उपन्यास को अस्तित्ववादी उपन्यास मानने के पक्ष में नहीं है । अस्तित्ववादी निदर्शन का होते हुए भी इसे पूर्णतः एक अस्तित्ववादी उपन्यास के नाम से अभिहित करना वे उचित नही [redacted] समझते है । उनका मत द्रष्टव्य है, अस्तित्ववादी विचारणा के कुछ प्रतिमानों का अपनी दृष्टि से उपयोग करने

---

1 डा.इन्द्रनाथ मदान आधुनिकता और हिन्दी साहित्य (प्रथम संस्करण) पृ.149
2 डा.सत्यपाल चुघ अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि (प्रथम संस्करण) पृ.145

का यत्न अज्ञेय ने 'अपने अपने अजनबी' में किया है । सच तो यह है कि अपनी परिस्थितियों में अस्तित्ववाद से बडी और अधिक संगत दृष्टि विकसित करके ही हम अस्तित्व-वाद के मूल्यों का उपयोग और समायोजन कर सकते है, और इस उपन्यास में अज्ञेय का यत्न नही है । 'अपने अपने अजनबी' अस्तित्ववादी उपन्यास नही है - किसी भी आत्म-विश्वासी लेखक केलिए वह इष्ट क्यों होगा ...[1] । अतः अस्तित्ववाद को दृष्टि में रखकर उसके आगे की स्थिति की ही विचारणा है । देवेन्द्र इस्सार भी यही मत प्रकट करते है । यद्यपि उपन्यास का केन्द्र-बिन्दु मृत्यु है लेकिन लेखक की दृष्टि इतनी गहन और व्यापक है कि वह मृत्यु के साक्षात्कार में जीवन की सार्थकता को ढूंढ लेती है । अस्तित्ववादी दर्शन और अउटसैडर सिद्धांत के आगे बढकर अज्ञेय नई मूल्य दृष्टि का प्रमाण देते है[2] । यहां येह विचारणीय है कि अज्ञेय का अस्तित्ववाद के बारे में क्या मत है । वे इस दर्शन को कहाँ तक मानते है । अज्ञेय लिखते है - 'निस्सन्देह यह अस्तित्ववादी दर्शन ही एकमात्र दर्शन नही है, । दूसरे भी है । एकांत सत्य का आग्रह न विज्ञान का होता है, न कला का; धर्म का वह हो सकता है । कला या साहित्य के किसी आन्दोलन में बुनियादी आग्रह क्या है वह समझना चाहिए; क्षण के दर्शन में आग्रह यह है कि जीवनानुभूति नाम की निजी और आत्यन्तिक चीज़ को दूसरी सब चीज़ों की अपेक्षा में रखना पूर्वापर को उलटना है'[3] । इससे स्पष्ट है कि अज्ञेय अस्तित्ववाद को एक दर्शन मानते है किन्तु उसे जीवन की आत्यान्तिक अनुभूति की समग्रता में लेनेवाला पूर्ण दर्शन नही मानते ।

इस अवसर पर यह भी देखना अनुचित न होगा कि अपने अपने अजनबी के बारे में लेखकीय विचार क्या है । अज्ञेय के अनुसार प्रस्तुत उपन्यास में किस प्रकार मृत्यु से साक्षात् कार अपनों को अजनबी कर देता है और अजनबियों को अपना; किस प्रकार मृत्यु स्वयं कुछ केलिए अपनी होती है और कुछ केलिए अजनबी, यही उपन्यास की वस्तु है । मेरी समझ में तो उसमें मृत्यु के प्रति पूर्व के स्वीकार भाव और पश्चिम के विरोध भाव की तुलना में लक्षित होती है[4] । इसलिए अपने अपने अजनबी में दो विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं - पूर्व

---

1 डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी : अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - पृ. 119
2 देवेन्द्र इस्सार : साहित्य और आधुनिक युग बोध (प्रथम संस्करण) पृ. 150
3 अज्ञेय : आत्मनेपद - पृ. 169
4 डा. रणवीर रांग्रा : सृजन की मनोभूमि - पृ. 127

एवं पश्चिमी, इसमें भी खासकर अस्तित्ववादी दर्शन एवं हिन्दू दर्शन की धारणाओं की तुलना करते हुए जीवन की अर्थवत्ता को प्राप्त करने की कोशिश की गई है । इन दोनों दार्शनिक विचारधाराओं में एक आत्यन्तिक सम्भावना मृत्यु को उपलक्ष्य में रखकर तुलना की गई है । अज्ञेय का प्रथम उपन्यास 'शेखर' में मृत्यु पर विचार किया गया है लेकिन शेखर मृत्यु के सामने खड़े होकर सोच रहा है कि मेरे जीवन की सिद्धि क्या है ? 'शेखर के सामने प्रश्न यह था कि मेरी मृत्यु की सिद्धि क्या है यानी मर जाता हूँ तो कुलमिलाकर मेरे जीवन का क्या अर्थ हुआ । पर यहाँ यह है कि जीवन मात्र के नक्शे में मृत्यु मात्र का क्या स्थान है और यहाँ मैं ने दो दृष्टियाँ सामने लाने की कोशिश की है । एक को मोटे तौर पर पूर्व की कह सकते हैं और दूसरी को पश्चिम की[1] । अतः हमारा ध्येय सिर्फ इतना है इन दोनों दृष्टियों के आधार पर इसकी वैचारिक भूमि का अध्ययन करें । इस सिलसिले में यह भी ध्यान देने की बात है कि मृत्यु समस्या से संबन्धित पहलुओं पर ही प्रकाश डालना हमारा उद्देश्य है । अतः मृत्यु समस्या सम्बन्धी जितने दार्शनिक पक्ष है, दोनों दृष्टियों में, उसपर विचार करना भी हमारा लक्ष्य है ।

आगे प्रस्तुत उपन्यास को दो मुख्य दार्शनिक विचारधाराओं का अलग अलग अध्ययन अपेक्षित है ।

<u>भारतीय दर्शन की कुछ मोटी रेखाएँ</u> - भारतीय दर्शन के अन्तर्गत बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन आदि दार्शनिक परंपराएँ आती है फिर भी इन सब के मूल में भारतीय दर्शन का ही स्वरूप है भारतीय दर्शन में हिन्दू धर्म की यह विशेषता है कि वह स्थापित धर्म (फाउण्टेड) नहीं है । और न किसी ऐतिहासिक घटना के बावजूद इसका निर्माण हुआ है । इसकी मुख्य विशेषता है कि यह आन्तरिक जीवन पर जोर देता है[2] ।

---

1 डा. रणवीर रांग्रा - सृजन की मनोभूमि - पृ. 129

2 The Hindu Religion, for example is characterised by its adherance to fact. In its pure form, at any rate, it never leared as heavily as other religions do on authority. It is not a founded religion, nor does it centre round any histoorical ever Its distinctive characteristic has been its insistence on the inward life of spirit.

Dr. S. Radhakrishnan - An idealist view of life (1947) p.89

स्वाभाविक रूप से यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है । धर्म और दर्शन को क्या एक ही अर्थ मे ले सकते है या नहीं भारत मे दर्शन और धर्म को दो भिन्न दृष्टियों से देखने का प्रयास नहीं है । इन दोनों के बीच मे कोई संघर्ष नहीं है बल्कि दोनों की घनिष्ठ संबंध भी है । एक धार्मिक व्यक्ति एवं एक दार्शनिक व्यक्तित्व समान होता है । पश्चिम के लोगों ने इस एकता को भारतीय दर्शन का एक लगत पक्ष माना है क्योंकि तब वह दर्शन से ज्यादा एक धर्म-विज्ञान (थियोलोजी) बन जाता है[1] । डा. राधाकृष्णन का मत है कि धर्म का यही काम है कि मनुष्य एवं ईश्वर के बीच की दूरी मिटा दें और नष्टप्राय एकता को बनाए रखें । यह आत्मसाक्षात्कार का एक प्रगतिशील कार्य भी है[2] । वस्तुतः दर्शन जीवन और जगत की समस्याओं को जानने की एक विधि है । अतः यह वर्गों एवं संस्कृति के प्रभावों को भी समाहित करता है[3] । ऊपर दिए गए विवरण से स्पष्ट लक्षित होता है कि भारत मे धर्म और दर्शन को अलग-अलग देखने का कार्य नहीं हुआ है । सच्चे अर्थ मे भारत का दर्शन आध्यात्मिक (स्पिरिचुवल) है । इसी कारण से भारतीय दर्शन के अन्तर्गत किसी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. In India, on the other hand it is claimed as a peculiar glory of Indian culture that there has been no conflit between philosophy and religion, it is claimed there has been indissoluble bond between the two, so that the man of religion and philosophy must meet in the same personality. The European is left quite cold of by this claim, infact he considers this allaince between philosophy and religion in India to be difenite weakness of Indian philosophy, for it becomes rather a theology than a philosophy.
Radhakrishnan : comparative studies in philosophy (1968)p.95

2. The endeavour of religion is to get rid of the gulf between man and god and restore the lost sense of unity. It is a prograssive attempt at self realisation, the lifting of the empirical ego into mind in its ideal perfection. A strict disipline is insisted on.

   Dr. Radhakrishnan - An idealist view of life. p.111

3. Since philosophy is a human effert to comprehend the problem of the universe, it is subject to the influences of races and culture.

   Radhakrishnan : An anthology (1969) p.42

किसी राजनीतिक प्रारूप या संगठन को विकसित होने का मौका नहीं दिया गया है और वह इतिहास की विध्वंसकारिणी घटनाओं से मुक्त भी रहा । आध्यात्मिक चिन्तन भारतीय जीवन पर आध्यात्मिक प्रभाव डालता है । भारतीय दर्शन की रुचि हमेशा मनुष्य की अनुभूतियों की ओर रही है न कि मनुष्य के एकान्तिक जीवन की ओर । उसकी मूल धुरी मनुष्य के जीवन केन्द्र पर स्थित है और दुबारा विभिन्न स्तरों से होकर आगे बढने के बाद जीवन में घुलमिल जाता है[1] ।

भारतीय दर्शन के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्वमीमांसाएं यहां विशेष विचारणीय है । (1) ब्रह्म और जीव (2) कर्म, पुर्नजन्म और मुक्ति ।

ब्रह्म और जीव - भारतीय दर्शन में ईश्वर की अवधारणा को नकारने का प्रयास भी हुआ है । सत्यवान परशुराम कनल का मत यह है कि भारतीय दर्शन के कुछ चिन्तन धाराएं नकारात्मक दृष्टिकोण ली हुई है । वे लिखते है - सांख्य विचारक कहते है कि हम में किसी ने ईश्वर को विश्व की बार-बार रचना करते हुए नहीं देखा जिससे विश्व और ईश्वर में कार्य-कारण संबन्ध मान जावे, इसलिए इसका कारण ईश्वर है । ऐसे कार्य-कारण के अनुभव के बिना विश्व के होने पर हम केवल तर्क आधार पर यह नतीजा नहीं निकाल सकते कि इस विश्व की रचयिता ईश्वर है[2] । लेकिन यहां एक बात ध्यान देने की है कि भारतीय दर्शन निरीश्वरवाद पर आधारित नहीं है । भारतीय दर्शन के अन्तर्गत जो चारवाकों की विचारधारा है उसमें निरीश्वरवाद की चर्चा है क्योंकि उनका दृष्टिकोण भौतिकवादी (मेटीरयलिस्टिक) है । चारवाकों केलिए प्रत्यक्ष में जो है वही सत्य है । पांच इन्द्रियों के माध्यम से जिन जिन बातों को जाना जा सकता है वही सत्य है, उसके बाहर कुछ नहीं । अतिभौतिकवाद के क्षेत्र में चरवाकों का विश्वास धरती, जल, वायु अग्नि आदि पंचभूतों पर मात्र है । तर्क के क्षेत्र में

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 Philosophy in India is essentially spiritual. IThis the inten spiritituality of India, and not any political structure or org nisation that has developed, that has enabled it resist the ravages of time and the accidents of history . The spiritual motives dominates life in India. Indian philosophy has its interest in the haunts of man and not in supra-Lunar solitude It takes its orgin in life, and entens back life after passin through schools.
Radhakrishnan : An Anthology p.44

2 सत्यवान प.कनल निरीश्वरवाद एक अध्ययन (प्रथम संस्करण) पृ.11

वे द्रष्टव्य वस्तुओं पर विश्वास करते है । कर्म, पुनर्जन्य, कर्मफल आदि बातों पर उनका विश्वास नही है । उनके लिए वही मुख्य वस्तु है, जिन पर, उन्होने ध्यान दिया है, वे है ऐन्द्रिक सुख और उससे प्राप्त अनुभूति [1] । लेकिन चार्वाकों के अतिरिक्त बाकी सारी चिन्तन प्रणालियाँ ईश्वरीय अस्तित्व को मानती है । इसीलिए मोटे तौर पर डा.राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन को आध्यात्मिक कहा था । उन्होने यह भी कहा कि धार्मिक अनुभूति (रिलिज्यस एक्सपीरियन्स) से जो ईश्वरीय अनुभूति एवं उसके अस्तित्व का बोध होता है जिसको हम वस्तुपरक दृष्टि से नही देख सकते बल्कि मनुष्य का सारा अस्तित्व उस अपरिमेय शक्ति से मिलने पर एक हो सकता है । सारी बाधाओं को अपने रास्ते से हटाकर एक हो जाने की अनुभूति है जो काल से परे है । ईश्वरीय अनुभूति के साक्षात्कार करने पर व्यक्ति की एकान्तिक अनुभूतियाँ नष्ट हो जाती है साथ ही एक प्रापंचिक अहं (यूनिवेर्सल सेल्फ) को वह अपना अहं (सेल्फ) मान लेता है [2] ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. The Carvakas admitted the validity only of perdeption. There is nothing else but what can be perceived by the five senses. In the field of metaphysics the carvakas are meterialists and believe in nothing beyond the purely sensible elements of ato of earth, water, air and fire and their combinations; in the field of lagic they believe in nothing but what can be direct perceived; they deny Karma, fruits of karma, rebirth or souls The only thing that the carvakas cared for was the momentary sense pleasures, unrestrained enjoyment of sensual joys.

   Dr. S.N. Das Gupta : History of Indian philosophy (1969) p.14

2. It is a tupe of experience which is not clearly differentiate into a subject object state, an integral undivided consciousness in which not mearly this or that side of man's nature bu his whole beings seems to find itself. It is a condition of consciousness in which feelings are fused, ideas melt into one another, boundries broken and ordinary distinction transcende Past and present fade away in a sense of timeless being. Consciousness and being are not there different from each oth All beings is consciousness and all consciousness being. Thought and reality coalesce and a creatic merging of subject and object results Life grows conscious of it incredible dep In this fulness of felt life and freedom. The distinction of the known and the knower disappears. The privasy of the individual self is broken into and invaded by a universal sel which the individual feels as his own.

   Dr. S. Radhakrishnan An Idealist view of life. pp.91.92.

ईश्वर के अस्तित्व के सचाई मान सकते है; लेकिन उसकी वास्तविकता तक पहुंचना उतना आसान नही है । उसके लिए अनुभवो की एक परम्परा की आवश्यकता है[1] । आध्यात्मिक अनुभूति से अभिभूत होने के बाद अहं और आत्यन्तिक सचाई के बीच की दूरी मिट जाती है । तब अहं केलिए यह विदित होता है कि उसके अस्तित्व के बावजूद सब कहीं वर्तमान एक विराट शक्ति (ओमिनी प्रेसेन्ट) का अस्तित्व है । हम उस सचाई के है और वह सचाई हम पर प्रतिबिम्बित होती है । उपनिषदो मे इसी लिए कहा गया कि 'तत्वमसि' यह कथन अनुभव जान वास्तविकता का परिचायक है[2] । इसीलिए हिन्दू लोग (भारतीय दर्शन के अनुसार) आध्यात्मिक सूक्ष्मता का अन्तिम मंजिल समझते है जो अनेक युगो के परिश्रम के बाद ही मिल सकता है । मनुष्य का हर कार्य उनको या तो आगे बढाता है नही तो पीछे । अपने ही विचार एवं कर्म के अनुसार ही वह यह भी सोच लेता है कि क्या बनना है[3] ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. The God of our imagination may be as real as the electron but is not necessarily the reality which we immediately apprehend. The idea of god is an interpmetation of experience.
Dr. S. Radhakrishnan : An Idealist View of life. p.86

2. God is the conviction fundamental to all spiritual wisdom. It is not a matter of inference only. In the spiritual experienc the barriers between self and the ultimate reality drop away. In the moment of highest insight, the self becomes aware not only of its own existence but of the existence of an omini present spirit of which it is as it were a foccusing. We belong to the real and the real is mirrored in us. The great text of the Upanishad affirms it 'Tat tuam Asi' -
That art then. It is a simple statement of an experienced fact.
Dr. S. Radhakrishnan An Idealist View of life. pp.103-104.

3. The Hindu holds that the goal of spiritual pergection is the course of a long patient effert. Man grows by countless lives into his divine self-existence. Every life, every act, is a step which may take either backward or forward. By one's thought will and action one determines what one yet to be.

Ibid p.122

इसका अर्थ हुआ कि ईश्वर इस प्रपंच (कोसमोस) में स्थित एक शक्ति है जिसके ही विभाजित शक्ति है मनुष्य और वह उस शक्ति तक बढने का प्रयास करता ही रहता है । इसीलिए भारतीय दर्शन अवतारवाद पर भी विश्वास करता है । विश्व का सारा अस्तित्व ईश्वर का अपना है । उस आत्यन्तिक सचाई के अलावा बाकी जितनी वस्तुएं है उनका अस्तित्व अवास्तविक है[1] । भगवान का एकमात्र स्थायी अस्तित्व मानते हुए भी वैष्णव यह मानते है कि ईश्वर और मनुष्य में संबन्ध है । इसलिए इस संबन्ध को उन्होंने नर-नारायण संबन्ध माना है । नर आत्मा का परिचायक है और उसका संबन्ध परम तत्व से है । नारायण-परमात्मा का सूचक है जो मनुष्यता में वर्तमान और मानव का मार्ग निर्देशक एवं सहायक के रूप में स्थित रहता है[2] । वेदों की भी यही बात है । वेदों में इन दोनों को एक ही के दो रूप माना है[3] । पतजली के अनुसार वास्तविक आत्मा (सेल्फ) सब प्रकार के पाप, मृत्यु, दुख भूख, प्यास से मुक्त है[4] । ब्रह्म की परिकल्पना सिर्फ मनुष्य में नहीं बल्कि विश्व की सारी

---

1. India has from ancient times held strongly a belief in the reality of'Avatar; the descent into form, the revelation of Godhead in humanity. Al existence is a manifestation of God, because He is the only existence and nothing can be except as either a real figuring or else a figment of that one reality. Sri. Aurobindo : Essays on the Gita (1970) p.10.

2. The Kishnava form of Vedantism which has laid most stress upon the conception expresses the relation of God inman and man in God by the double figure of 'Nara Narayana' ...... 'Nara' is the human soul which, eternal companion of the divine, finds itself only when it awakens to that companionship and begins as the Gita would say to live in god. Narayana is the divine soul always present in our humanity, the secret guide and help of human being. Ibid. p.11

3. The sum and substance of the upanishds is that Atman is Brahma The word Atman was used in Rigveda to denote on the one hand the ultimate essence of the universe, and on the other hand the vital breath in man. Later on in the Upanishads, Brahman is generally used in formersence, while Atman is used to denot the inner most of man. The upanishads are empatic in their declaration that the two are one and the same. S.N. Das Gupta. History of India Philosophy.pp.17-18.

4. The self (Atman) which is free from sin, old age, death and grief, from hunger and thirst whose desires are true, whose cognitions are ture, that is to be searched for, that is to be enquired. Ibid. P.18.

वस्तुओं मे माने प्रकृति मे पूर्ण रूप से व्याप्त है । सूर्य एवं चन्द्र आदि मे इसकी परिव्याप्ति है । आत्मा के बाहर कुछ नहीं और इसका दोहरा अर्थ लेना भी ठीक नहीं । मनुष्य की सत्ता एवं प्रपंच की सत्ता दोनो एक है और उसी का नाम ब्रह्म है[1] ।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट व्यंजित होता है कि भारतीय दर्शन आत्मा परमात्मा को एक मानते हुए चलता है । इसी से ईश्वर की परिकल्पना की उत्पत्ति हुई है और भारतीय दर्शन को आध्यात्मिक माना गया है । आध्यात्मिक होने के कारण इसमे मुक्ति, पुनर्जन्म, कर्म इत्यादि तत्वो की भी विवेचना मिलती है । भारतीय दर्शन के अध्ययन-विश्लेषण के सन्दर्भ मे इन सब तत्वो का विवेचन आवश्यक है ।

<u>कर्म पुनर्जन्म और मुक्ति</u> - भगवत् गीता का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध एवं अर्थ पूर्ण है

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषुकदाचना ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगो स्वकर्मणि ।।

मात्र कर्म करने का अधिकार हमे है न फलप्राप्ति पर विचारने का । हम न कर्म फल का हेतु है, निष्क्रियता की ओर जाने का भी हमे अधिकार नही है[2] ।

कर्म को विश्लेषित करने पर उसके दो रूप प्राप्त होता है । प्रवृत्ति एवं निवृत्ति जहाँ प्रवृत्ति बन्ध जाने की एक प्रक्रिया है वहाँ निवृत्ति अलग होने की विधि है, साथ ही आत्म-बोध को अनगत कराती है[3] । स्वामी विवेकानन्द 'गीता' का विश्लेषण करते हुए निवृ

---

1. S.N. Das Gupta History of Indian philosophy.p.18
2. Swamy Chidbhavananda : The Bhagavat Gita ( ) p.
3. There are two types of action called pravarthi and Nivarthi All those actions that resolve the central ego attach us wi objects. The pursuits for wealth,power name and fame, whicl are of grasping nature strengthen the ego. Pravarthi leads one to attachmant and boundage. But those actions that lea one to self - abnegation and dettacnment from this empirica self and moral and religions. Actions done in renunciation self denial are called Nivarthi. These actions help self realisation.
Ramashankar Srivasthava: Contemporary Indian philosophy(196 p.50

को परिभाषित करते है - कर्म करते समय किसी के प्रति भी न बंध जाने की जो विधि है वह निवृत्ति है । हम को यह मालूम करना है कि काम करते समय हम अपने लिए कुछ भी नही करते है[1] ।

मनुष्य के कर्तव्यो मे कर्म का महत्वपूर्ण स्थान है । मनुष्य का जीवन परम तत्व का ही एक अंश होने के कारण उस तत्व तक पहुंचना ही मनुष्य के कर्म का अर्थ होता है । लेकिन यह आसान काम नही । दार्शनिक विचार मे कर्म की गति की बडी महिमा है । वास्तव मे संसार की सभी घटनाएं, जीवो की सभी चेष्टाएं, यहा तक की स्वयं यह जगत कर्म की गति का फल है । देवता लोग भी कर्म के बन्धनो से परे नही है । अवतार लेने पर भगवान भी कर्म के गतिचक्र मे घूमने लगते है । कर्म की गति बडी विचित्र है । इसके आदि अन्त को जानना सरल नही है । सत्य ही कहा गया है - 'गहनाकर्मणोगति'[2] अतः कर्म के ही गति-चक्र मे घूमने वाले मनुष्य को अपने कर्मो के माध्यम से सुख एवं दुख की प्राप्ति होती है ।

कभी कभी कर्मफल को भोगने केलिए एक दूसरा जन्म भी लेना पडता है चाहे मनुष्य के रूप मे हो या किसी दूसरे के रूप मे[3] । संहिताओ मे यह भी कहा गया है कि

---

1. It is the theory of non attachement, to be attached to nothing, while doing own wark of life, know that you are separated entirely from the world, but you are in the world and that what ever you may be doing in it you are not doing that for your ownsake.
   Complete works of Swamy Vivekanaanda - Sixth edition. Vol.No.I. p.85
2. Umesh Misra Bharateeya Darsan. Second edition. p.39
3. All Indian systems agree in believing that what ever action is done by an individual leaves behind it some sort of potency which brings him joy or sorrow in the future. When the fruits of the action are such that they cannot be enjoyed in the present life, individual has to take another birth as a man in order to reap them.

   S.N. Das Gupta History of Indian philosophy. p.22

बुरे काम का बुरा फल निकलता है और अच्छे का अच्छा ।[1] यहाँ स्पष्ट है कि कर्म से संबद्ध दूसरा तत्व है पुनर्जन्म । पुनर्जन्म इसलिए होता है कि मनुष्य के कर्म का फल अच्छा नहीं होता । अगर पुनर्जन्म का न होना हो तो मुक्ति की माँग की रुचि मनुष्य के हृदय पर हो ।

भारतीय दर्शन ने मुक्ति को वह आखिरी सीढी माना है जहाँ आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाता है । मोक्ष मनुष्य कहे निरन्तर परिश्रम का फल होता है । मोक्ष मिलने तक मनुष्य जन्म एवं मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है । 'मोक्ष प्राप्ति होने तक जन्म और मृत्यु का काम निरन्तर चलता रहाता है, उसे संसार कहते है । जन्म मरण के चक्र में न केवल उनको पडना पड़ता है, इसे संसार कहते हैं जो सदाचारी नहीं है, बल्कि उनको भी जो केवल धर्म कर्म करते है और सम्यक ज्ञान रहित होते है[2] ।कहने का यही मतलब है कि जो आत्मा ज्ञान से वंचित रहता है याने ब्रह्मज्ञान से अनभिज्ञ रहता है उसको जनि-मृति की चक्कर में हमेशा घूमना पडता है । क्योंकि आत्मा में ही ब्रह्म की सत्ता स्थित है इसलिए प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है । लेकिन इस रहस्य सत्ता को जानने केलिए कठिन परिश्रम की भी आवश्यकता है । भौतिक सत्यों से ऊबकर जब हम अपने में समेटकर आध्यात्मिक सत्ता से आत्मसात् कर लेते है तब पवित्रता के साथ उबर आते हैं । सब प्रसिकता के साथ यह जीवन को व्यक्तिवादी बनाने का काम नहीं बल्कि व्यक्तिवाद से भी ऊपर उठने का कार्य है[3] ।

---

1 There is also the notion prevalent in the samhitas, that he who commits wicked deeds suffers in another world, where as he who performs good deeds enjoys the highest pleasures. S.N. Das Guta: History of Indian philosophy. p.23

2 एम.हिरियन्ना भारतीय दर्शन की रूप रेखा (प्रथम संस्करण) पृ.78

3 Hindu ideal affirms that man can attain his immortal destiny **here** and now. The Kingdom of God is with in us and we need n wait for its attainment till some undated fortune or look for and apocalyptic display in the sky. It is true that the deepest secret of spiritual life is hidden from the common view and can be attained only with an effort. It is also true that when the world tires us, we go back to ourselves. plunge into the deep wells of our spiritual being and return from them refreshed and serene, satisfied and happy, On that account, we cannot say that life has become individualistic As a matter of fact it is an escape from individuation. Radhakrishnan Reader : An anthology. (1969) p.163

आत्मा हमेशा ब्रह्म की सत्ता के साथ मिलने की तडप मे रहती है । पुनर्जन्म एवं कर्म के गति चक्र से उपर उठने की प्रवृत्ति हमेशा आत्मा मे निहित रहती है । उपनिषदो मे एवं बुद्ध और महावीर के दर्शन मे इस गति-चक्र मे बाहर आने की बात दोहराई गई है । इस गतिचक्र से बाहर न आने का अर्थ है कि मोक्ष-प्राप्ति से वंचित रहना इसकेलिए कर्म करते हुए भी आकाक्षाओ को भी छोडना चाहिए, नही तो फिर उसी चक्र मे आत्मा घूमने लगती है । अहं के उपर नियंत्रण होना भी इसकेलिए जरूरी है । इतना होने पर पुनर्जन्म से निवृत्ति मिल जाती है[2] ।

<u>भारतीय दर्शन मे मृत्यु की परिकल्पना</u> - कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष - ये तीनो एक साथ बंधे हुए है । भारतीय दर्शन उपर्युक्त तीनो पक्षो पर बहुत कुछ व्याख्यान दिया है । जीवन मे कर्म की महत्ता है साथ मोक्ष-प्राप्ति उसका आत्यन्तिक लक्ष्य है । कर्मफल के अनुसार पुनर्जन्म का होना या न होना निरूपित भी किया जाता है । लेकिन इसके बीचो बीच मृत्यु

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1. The sufferings of life have produced a certain ennui, a wish if not always a will, to get away from this world with its sor: scheme of things entire. The burden of continuously recurrin birth and death hangs heavy on man's souls, and if Karma and re-birth were accepted as axiomatic, there also grew the yearning for a way out of this cycleof birthand death. The Upanishad showed away out and so did Buddha and Mahavir. Tha has been the end-less quest of India through ages and if life has been tolerated at all, it is because we cannot escape it. It is a part of the game, for there is no life in this world there is not Moksha.
Radhakrishnan : Comparative studies in philosophy. pp.98-99.

2. Moksha was not to be attained at some distant time or in some distant kingdom, but could be attained here and now with in u If we could divest ourselves of all such passions or disires as lead to rebirth, we should find within us the actionless self which neither suffers nor enjoys undergoes rebirth...... passions are to be controlled, no injury to life in any form should be done and all desire for pleasures should be checked Thus though there were many differences among the systems, their goal of life, their attitude towards the world and mean for the attainment of goad were fundamentaly the same in all Indian systems.
S.N. Das Gupta History of Indian philosophy. pp.23-24-25

को एक साधारण सी घटना के रूप में माना गया है कि यहा तक जीवन केलिए मृत्यु की अनिवार्यता भी बतायी गई है । मृत्यु को जन्म के समान एक प्रविधि माना गया है । जिससे आत्मा का पुनः जन्म होती है क्यो कि उसे फिर से मृत्यु के द्वार तक पहुंचना है । भारतीय दर्शन में मृत्यु की परिचर्चा बहुत कम ही हुई है ।

भगवद्गीता' में एक दो जगहो में मृत्यु सम्बन्धी विचार व्यंजित हुए है । उदाहरणार्थ एक प्रसंग में कहा है - जन्म होता है उसी प्रकार जन्म के साथ साथ मृत्यु का भी आना स्वाभाविक है । इसलिए हमें इस पर विचार करके दुख प्रकट करने की आवश्यकता नही है[1] :-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवजन्य मृतस्य च
तस्माद परिहार्यो र्थे न त्वं शोचिनुमर्हसि ॥

एक दूसरी जगह बताया गया है जहा पर आत्मा (सोल) के दूसरे शरीर पर घुस कर पुनः शरीर धारण करने की बात उठाई गई है । जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रो को त्यागकर नए वस्त्र पहनाते है उसी प्रकार जब शरीर का नाश होता है तब आत्मा दूसरे शरीर पर प्रवेश करती है ।

वासासि जीर्णानि यथा निहाय अवानि गृह्णाति नरो पराणि[2]।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्याति संयोति नवानि देहि ।।

उपर्युक्त दोनो श्लोको में मृत्यु को एक निर्मूल्य घटना का ही स्थान दिया गया है साथ ही इसमें परोक्ष रूप में एक स्वीकार्य भाव भी व्यक्त है कि इसका न होना ही दुष्कर है

---

1. Swamy Chidbhavananda : The Bagavat Gita (1967)
   Sankyayoga - 27 - p.146

2. Ibid. p.147

मृत्यु के प्रति स्वीकार भाव एवं उसे एक साधारण सी घटना मानने की, प्रवृत्ति इसका यही कारण है कि भारतीय दर्शन मुख्यतः आध्यात्मिक है । उसके अनुसार मनुष्य का साधारण अर्थ मे कोई महत्वपूर्ण स्थान नही । उसका यही काम है कि ब्रह्म मे लीन होने याने मोक्ष प्राप्ति हो । इसलिए डा.राधाकृष्ण ने लिखा था कि मानव के आन्तरिक विकास का अर्थ है जीवन के भौतिक स्तर से आध्यात्मिक स्तर की ओर प्रयाण[1] ही मानव जीवन को सार्थकता दे सकती है । उन्होने यह भी घोषित किया भौतिक माध्यमो से अगर मानव समाज का कोई लाभ नही है तो उसको नकारना ही चाहिए । विज्ञान और टेकनालजी को ही नई सभ्यता का आधार नही बनाया जा सकता । वे एक सुदृढ नींव का निर्माण नही कर सकते । संभाव्य विनाश को दूर करने केलिए आवश्यक है कि हम किसी नए आधार पर जीना सीखे । हमे निश्चय ही आध्यात्मिकता की खोज करनी होगी, मानव व्यक्तित्व का सामादार करना होगा सभी धार्मिक परम्पराओ मे व्याप्त पावनता की भावना को पाना और उनके उपयोग से एक नए मानव का निर्माण करना होगा, जो इस नवीन अनुभूति के साथ अपने आविष्कृत उपकरणो का प्रयोग कर सके कि वह प्रकृति को नियंत्रित करने से अधिक महान कार्यो की सपूर्ति केलिए क्षमतावान बनाना है[2] । इस प्रकार आध्यात्मिकता को महत्व देनेवाला दर्शन मानव को महत्व देने के बजाय मानवता को महत्व देता है और मानवता के उपर एक अपरिमेय शक्ति वर्तमान है उसको अधिक महत्वपूर्ण स्थान भी देता है क्योंकि वही एक अनिवार्य अन्तिमता है ।

<u>अस्तित्ववादी दर्शन</u> - द्वितीय विश्व महायुद्ध के बाद जीवन मे जो विडम्बना पैदा हुई और मानवीय संवेदना मे जो सिथिलता आ गई, पारिवारिक जीवन मे जो विघटन उपस्थित हुआ इन सब कारणो से चिन्तको और विचारको का मन किसी एक पथ पर अग्रसर होने मे असमर्थ हुआ और हमेशा व्यथित रहा । जीवन को उसकी पूर्णता मे समझने को एक दर्शन की जरूरत थी । युद्ध की विभीषिका के परिप्रेक्ष्य मे जो दर्शन जीवनान्वेषण के पथ की ओर अग्रसर होता है वह अस्तित्ववाद है । लेकिन इस दर्शन की यह विशेषता है इसकी पहुँच और चरित्र(एप्रोच एण्ड कैरक्टर) पूर्णतः पश्चिमी दर्शन के अनुरूप है । पश्चिमी दर्शन तर्क एवं प्रश्नो को महत्व देने वाला एक दर्शन है । उसी प्रकार आधुनिक जीवन के विविध परिदृश्य को परखने एवं समझने पर भी यह दर्शन व्यक्ति की सत्ता, अस्तित्व, आदि बातो पर तर्क पूर्ण दलीले पेश करता है ।

- - - - - - - -

1 डा राधाकृष्णन पूर्व और पश्चिम (द्वितीय संस्करण) पृ.27

यद्यपि हमारा उद्देश्य अस्तित्ववादी दर्शन का विस्तार से अध्ययन करना नहीं फिर भी यहां एक मुख्य बात की ओर इशारा करना अनुचित नहीं है कि अस्तित्ववादी दर्शन के दो मुख्य पहलु है । अस्तित्ववाद के विचारकों मे दो प्रकार के विचार रखनेवाले है । आस्तिक और नास्तिक । आस्तिक अस्तित्ववाद का मुख्य प्रवक्ता किर्केगार्ड और [illegible] नास्तिक के निशे और सार्त्र । इन दोनों पक्ष के प्रवर्तकों के विचारों मे काफी मतभेद रहा है । फिर भी इन का लक्ष्य यही है कि मनुष्य की सत्ता, व्यक्ति की गरिमा, वरण की स्वतंत्रता आदि का आत्यन्तिक अर्थ क्या है ।

महायुद्ध की विभीषिका समस्त यूरोप मे छायी हुई थी पश्चिम की समस्त व्यवस्था तूफान मे पडे हुए ऐसे जहाज की तरह हो गई जिसके पाल फट चुके है, पतवारे टूट चुकी है माझी बेकाम हो चुके है । उत्ताल लहरों पर निरुद्देश्य डोलता हुआ एक विशाल पोत[1] । इस कथन से समरोत्तर जीवन मे मानवता की जो ध्वंसता फैल गई उसकी कहानी लक्षित हो रही है । इस ध्वंसता मे मानवता को परिभाषित करने का प्रयास अस्तित्ववादी दर्शन ने किया ।

एच..जे.ब्लाकहाम अस्तित्ववाद की परिभाषा इस प्रकार देते है - निरर्थकता और सादा चिन्तन के विरुद्ध उठाई गई आवाज़ के रूप मे अस्तित्ववाद का आरंभ होता है जो चिन्तन करने का एक तर्क नहीं बल्कि मनुष्य की अविभाजित सत्ता का ज्ञान कराता है । सादा चिन्तन से मनुष्य के परिपक्व चिन्तना की समस्याओं एवं संभावनाओं के प्रति बोध देता है[2] । सबसे पहले अस्तित्ववाद के सन्दर्भ मे यह विचारणीय है कि अस्तित्ववाद एक दर्शन होते हुए भी मनुष्य को एक इकाई के रूप मे, व्यक्ति के रूप मे देखता है । इसका यही कारण है

---

1 धर्मवीर भारती मानव मूल्य और साहित्य (प्रथम संस्करण) पृ. 19-20

2 Existantialism bigins as a voice raised in protest against th absurdity of pure thought, a logic which is not the logic of thinking but the immanent movements of living. It calls the spectator of all time and of all existence from the speculati of pure thought to the problems and possibilities of his own conditioned thinking as an existing individual seeking to know how to live and to live the life he knows.

H.J. Blackham Six Existentialistic Thinkers (1965) p.2

कि विज्ञान ने एक ओर हमें प्रकृति के गर्भ में सोयी अनन्त शक्तियों का परिचय तो कराया, देश और काल की व्यापक दूरी को न्यून करके मनुष्य के बीच निकटतर संपर्क कायम कराया किन्तु दूसरी ओर आत्मा के बीच व्याप्त तादात्म्य को नष्ट करने लगा और एक समय ऐसा भी आया कि भौतिक समृद्धि से घिरा हुआ मनुष्य आन्तरिक प्यास से छटपटाने लगा। व्यक्ति-व्यक्ति के मन में स्पर्धा जागी, अदृश्य संबन्ध के रेशे टूटने लगा और यूरोप में दो-दो भयंकर महायुद्ध हुए जिन्होंने समूचे विश्व में परम्परागत मूल्यों के विघटन का आश्चर्यजनक कार्य दिया[1]

अस्तित्ववाद व्यक्तिकेन्द्रित दर्शन है। इसलिए दो पराकाष्टाओं पर स्थित दोनों दर्शनों का - प्रत्ययवाद एवं भौतिकवाद का निराकरण करता है। 'प्रत्यय वाद और भौतिकवाद दोनों व्यक्ति के स्वातंत्र्य को अस्वीकार करते हैं। दोनों के अनुसार जगत नियमचक्र और ऋतुचक्र के अनुसार चलता है[2]। इसमें व्यक्ति का स्थान अतिक्षुद्र है। वह ऋतुचक्र का एक पुरजा मात्र भर है, जिसे स्वयं निर्णय का अधिकार नहीं[3]। इसलिए अस्तित्ववाद के प्रथम प्रवक्ता किर्केगार्ड ने ही व्यक्ति के महत्वपूर्ण स्थान को उभारने का कार्य किया। अस्तित्ववाद ने अपने प्रथम उन्मेषकाल से ही व्यक्ति की गरिमा और उसके महत्व का प्रतिपादन किया। मनवीय स्थितियों के प्रति जागरण का सन्देश देना वाला किर्केगार्ड व्यक्तिगत जीवन में सामाजिक तिरस्कार और घृणा का पात्र बना[4]। लेकिन किर्केगार्ड एक आस्तिक अस्तित्ववादी था। इसलिए आत्यन्तिक सत्य की खोज करना उन्होंने अपना ध्येय समझा। उनके ही

---

1. डा. शिवकुमार मिश्र आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद (प्रथम संस्करण) पृ. 26

2. What thought and consciousness really are, and where they come from, it becomes apparent that they are products of human brain and that man himself is a product of Nature; which has developed in and along with its enviornment; hense it is self evident that the products of human brain, being in the last analysis also products of nature, do not contradict the rest of Natures inter connections but are in correspondenc with them.
Lenin: Marx Engels and Markism (1973) p.140

3. कुबेरनाथ राय विषाद योग : (प्रथम संस्करण) पृ. 136

4. डा. श्याम सुन्दर मिश्र : अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर साहित्य (प्रथम संस्करण) पृ. 17

शब्दो मे जो मेरे लिए सत्य है जिसके लिए मै जीवित रहता हूँ और मरने केलिए भी तैयार हूँ, उस सत्य को खोजने पर मेरे लिए वही उपादेय है कि उस परम शक्ति के बारे मे किसी के पूछने पर दार्शनिक प्रथा के अनुसार निरूपित मेरी शवित के माध्यम से मै दूसरी विचारधाराओ की गलतफहमियो को दूर कर सकूँ । इसलिए किर्केगार्ड के अनुसार व्यवित की स्वतंत्रता का होते हुए भी, अपने कार्य चुनने को स्वतः उत्तरदायी होने पर भी वह अपना उत्तरदायित्व ईश्वर के प्रति ही मानता है । क्यो कि उन्होने ईश्वर को परम अज्ञेय तत्व माना था ।

किर्केगार्ड को छोडकर अन्य अस्तित्ववादी विचारको ने व्यवित की गरिमा पर बल देते हुए भी ईश्वरीय व्यक्ति पर बल नही दिया (इसका आगे विस्तार से विवरण दिया जाएगा) व्यवित के अस्तित्व को व्यक्तिगत अस्तित्व के साथ तादाम्य प्राप्त करने केलिए स्थापित स्थापनाओं से एक प्रकार के अलगाव की आवश्यकता पर अस्तित्ववादियो ने बल दिया । इस दर्शन का उद्देश्य किसी के द्वारा उठाए गये प्रश्नो का उत्तर देना नही बल्कि मनुष्य के व्यवितगत, आवश्यक सत्रास बनाने तक उन प्रश्नो को ले जाता है । ये प्रश्न परम्परागत प्रश्न नही होते, आशंका जनित रुचिविहीन प्रश्न भी नही जो ज्ञान की विधि से संबन्ध रखता हो या नैतिक या सौन्दर्यात्मक विधि का भी नही है । इस अर्थ मे अस्तित्ववाद दर्शनो की पहली परम्परा की ओर संकेत करता है जहाँ वह लोगो को रूढ़िवाद से जगाने की इत्तिज़ा देता है

- -

1. What matters is to find a purpose, to what is really is that God with that I shall do, the arucial thing is to find a truth which is truth for me, to find the idea for which I am willing to live and dies of what use would it be to me to discover the so called truth, to work the philosophical systems so that I could, if asked to make critical judgements about them could pointout the fallacies in each system.

Greger Malantschuk : Kierkegaards Thought : Ed. and Tran. by Howard V. Hong and Edran H. Hong. (1973) p.114

और इसका भी आविष्कार करता है कि मानवीय सत्ता क्या होती है[1]।

आगे हम उन विशेषताओं पर विचार करेंगे जिन पर अस्तित्ववादी चिन्तकों ने मुख्य रूप से ज़ोर दिया था।

<u>शून्यतावाद</u> - सबसे पहले अस्तित्ववादियों ने शून्यतावाद (नथिंगनेस) पर बल दिया। हेडिगर के अनुसार शून्यता अस्तित्व में ही स्थित है। सार्त्रे के अनुसार शून्यता का बोध मनुष्य के माध्यम से आता है। मैं क्यों अस्तित्व रखता हूँ? क्यों दूसरा भी अस्तित्व रखता है
<u>संत्रास बोध</u> - किर्केगार्ड, जिन्होंने संत्रास बोध (आग्विश) के बारे में बहुत कहा उसी से व्यक्तिगत दर्शन शुरू होता है[2]। यह बोध अस्तित्ववादियों के चिन्तन का केन्द्र रहा था।

---

1. For existentialists, the seperation is the foundation of all foundations and to abolish it in a total reconciliation is to undermine personal existance itself .... The peculiarity of existentialism, then, that it dealswith the seperation of man from himself and from the world, which rises that questions of philosophy, not by attempting to establish some universal form of justification which will enable man to readjust himself,but by permenantly enlarging and lining the seperation itself as primordial and constitutive. The main business of this philosophy therefore is not to answer the questions which are raised but to drive home the questions themselves until they engage the whole man and are made personal, urgent and anguish Such questions cannot be merely the traditional questions of the schools not merely distinguished questions of curiosity concerning conditions of to knowledge or of moral or aesthetic judgements, for what is put in question by the seperation of man from himself and from the world of his own being and the being of the objective world. In this sence existentialism goes back to the bigining of philosophy and appeals to all men to awaken from their dogmatic slumbers and discover what it means to become a human being.
   H.J. Blackham : Six Existentailistic Thinkers. pp. 151-52.

2. The first notion stressed by existentialism is that of nothing ness....... We experience, according to Heidegger the utter nothingness of not being; existance is steeped in it. Sartre contends that the concept of nothingness comes into the world through man Why do I exist? Why does any thing exist? Why is th not just nothingness? If the idea of nothingness does not lend itself to analysis, it can atleast be experienced in fear and trambling. The angst or anguish of which Kierkegarrd made so much, is the starting point of a personal philosophical reflection.

   Jean Paul Sartre : The Age of Reason : (Eight printing 1950) Quoted from the introduction - Existentialism and French literature : Jean Paul Sartre's Novels. p.xiii.

सार्त्र ने इसपर अपने बृहत् दार्शनिक ग्रंथ 'बीयिंग एण्ड नथिंगनेस' मे विचार किया है।[1]

<u>निरर्थकताबोध</u> - संत्रास के बाद हम उसी बोध से परिणत निरर्थकता बोध पर विचार करेंगे। अब्सडिटी के प्रवक्ताओं मे कामू और फ्रैंज़ काफ्का आदि प्रमुख है। कामू के उपन्यासों के पात्र इस बोध से आक्रान्त है। काफ्का के उपन्यासों एवं कहानियों मे पात्र एवं स्थितियों को भी हम इस बोध से अभिभूत पाते है। (उदा ट्रायल एवं कैसिल आदि उपन्यास एवं मेटमोरफोसिस नामक कहानी भी) कामू अब्सडिटी की परिभाषा इस प्रकार देता है। दुनियाँ और मनुष्य के मन मे जब भिन्नता पैदा होती है तब एक असंभाव्य स्वर्ग के प्रति 'नोस्टालजिया' उत्पन्न होता है। कामू कहता है एक बिल्ली अबसेर्डिटी के बारे मे कुछ नहीं जानती क्यों कि वह किसी दुष्कर आकांक्षाओं के प्रति आशंकित नहीं है। अस्वाभाविकता एवं मृत्य से बनी चेतन कुण्ठाओं के बारे मे ही कामू का इशारा है।[2]

- -

1. It would be well at this point to cast a glance back-ward and measure the road already covered. We raised first the question of bring. Then examining this way questions conceive as a type of human conduct, we questioned this in turn. We next had to recognise that no question could be asked, in particular not that of being, if negation did not exist. But negation itself when inspected more closely referred us back to nothingness as it orgin and foundation. In order for negation to exist in the world and in order that we may consequently raise question concerning being. It is necessary that nothingness be given. We perceived then that nothingness can be conceived neither out side of being, nor as complementary, abstract notion, nor as a infinite milieu where being suspended. Nothingness must be given at the heart of being in order for us to be able to comprehend that particular type of realities which are called negatities.
Jean Paul Sartre : Being and nothingness A phenemenological Essay on ontalogy. ( ) p.56

2. Absurdity results from an essential difference between the world and man's mind, which produces nostalgia for an unobtainable paredise. A cat, camus says, cannot know absurdity because it is not conscious of any impossible desires...... Camus speaks only of the conscious frustrations caused by irratianality and death.

Ealeking Camus p.24

ईश्वरीय अस्तित्व का निषेध - अस्तित्ववाद की चौथी मुख्य प्रवृत्ति है ईश्वर के अस्तित्व को नकारना । सार्त्रे ने कहा अगर तुम ईश्वर पर विश्वास रखते हो इसका मतलब है कि तुम अपने ही अस्तित्व के प्रति अविश्वासी हो । उनका यही मत है कि मनुष्य पूर्ण है और अपने आप सम्पूर्ण भी है[1] । सार्त्रे ने एक दूसरे अवसर पर कहा ईश्वर को सृष्टि कर्ता मानना एक साहित्यकार की सृजनात्मकता के समान है । जब मै एक ग्रन्थ की रचना करता हू तभी से वह मुझसे अलग हो जाता है । मेरा उस पर कोई नियंत्रण नही रहता । वह चाहे कुछ भी कहेगा जो मेरा ध्येय नही था । उसी प्रकार ही ईश्वर की धारणा को भी लेना यदि कोई भी जीव आन्तरिक रूप से ईश्वर के प्रति उन्मुख है तो उसका यही अर्थ है कि वह ईश्वर से कभी भी अलग नही है और उसका स्वतंत्र अस्तित्व भी नही है । लेकिन जब वह अपने अन्तर्मन मे ईश्वर के प्रति उन्मुख नही नही है । तो उससे ईश्वर के मुंह ताकने की ज़रूरत नही है । उसे किसी सृष्टिकर्ता की ज़रूरत नही है । एक ही तो हो सकता है कि या तो मनुष्य स्वतंत्र है और ईश्वर का मुंह जोड नही है, और नही तो ईश्वर का मुंह जोड है और स्वतंत्र भी नही है । सार्त्रे ने दूसरी उक्ति का निराकरण किया है[2] ।

---

1. If you admit God, said sartre it is because you are afrid to be what you are, simply men, and to be self sufficient I say : God is dead; I say God is not man is sufficient unto himself.
Jean Paul Sartre   Age of Reason (Introduction) p.viii.

2. In considering the concept of God as the creater, Sartre was artistic creation as a parraller. The book which write emanates from me; but once created, it is in same no longer mine. I cannot control what use is made of it or what people may think that it says to them. It may say something which I never intended so with the idea of God the creator. If the creature is still inwardly dependent on God, then he is not seperate, not free, not an independent existent. But if in his inner being he is not dependent on God, then he no longer can receive from God any justification for his existences.or any absoluteness. He does not 8'need' a creater. Either man is free and does not derive his meaning from God, or he is dependent on God and not free. For many reasons some of them already discovered, Sartre rejects the second alternative.
Jean Paul Sartre   Being and nothingness. pp. xxxv

ईश्वर का अस्तित्व पूर्ण रूप से नकारने वाले है निशे । उन्होने कहा कि ईश्वर की मृत्यु हो गई है । निशे के देखा सब लोग भूतकाल को ज्यादा महत्व देनेवाले है और उसकी महिमा-वर्णन मे ध्यानावस्थित है । व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्ण पहचान केलिए ईश्वर विश्वास बाधा पहुचा रही है । इसलिए उन्होने अपना सर्वप्रथम उद्घोषित किया - ईश्वर की मृत्यु हो चुकी है । इसलिए निशे किसी अतिभौतिकतावादी सत्य पर विश्वास नहीं करते । धर्म मे भी उनका विश्वास नही है[1] ।

सत्ता के पहले अस्तित्व - यह सार्त्र का महत्ववचन है जिसको हम अस्तित्ववादी दर्शन की एक और प्रवृत्ति मान सकते है । किसी मेज़ या कुरसी के समान किसी पूर्ण निश्चित नियमित रूप के आधार पर मनुष्य का निर्माण नही किया गया है । उसको यो ही नहीं बनाया गया है । वह जो कुछ है उसका अपना बनाया हुआ है । लेकिन उसको किसी पूर्व-स्थापित कार्य करने की ज़रूरत नही है । जो उस.केलिए बना हुआ है, या जो उससे बनता है उसी को करना उनका कर्तव्य है ।..... वह अपने लिए अपने ही नियमो एवं मूल्यो का निर्माण करेगा और भूत एवं वर्तमान को भी अतिक्रमण करके अपनी परिपाटियो का अनुधावन भी करेगा इसलिए सार्त्र ने कहा एक आदमी का जीवन अपने से अलावा और कुछ नही तुम स्वतंत्र हो चुन लो, वही तो है आविष्कार[2] । सार्त्र का उपर्युक्त वक्तव्य अस्तित्ववाद की अन्य प्रवृत्तियो की ओर भी - व्यक्ति की गरिमा, अतिमानवीय शक्ति को अस्वीकारना, स्वतंत्र भावना आदि - इशारा कर रहा है ।

---

1. Nietzche is not interested in any metephysical truth of either Christainity or other religion being convinced that not religi is really true. .e judges all religions entirely by their social effects.
Bertrand Russel A History of western philosophy (1968) p.765

2. .... existence precedes essence - Man was not created according to a pre-existing mould or pattern like a table or a paperknife. He is not just one sample of a general entity pompously dubbed human nature. He was through into the world, a derilict; he exists. No properties were assigned to him beforehand. He is what he conceives him self to be and he what he makes of himself but he does not fulfil any pre-esta blished plan. ------------ Sartre summed up his ethical message as you are free, choose, that is to say invent.

Jean Paul Sartre Age of Reason (Introduction) pp.xv-xvi

वरण की स्वतंत्रता : अस्तित्ववाद की उपर्युक्त विशेषता का विस्तार है स्वतंत्रता की भावना जिसे सारे के सारे अस्तित्ववादियों ने इसकी अनिवार्यता पर बल दिया है । चूंकि मनुष्य अपनी सभी स्थितियों केलिए स्वयं उत्तरदायी है इसलिए अस्तित्व का मुख्य अर्थ है । स्वतंत्रता । अर्थात् मनुष्य मृत्यु पर्यन्त अपने को, जो वह हो सकता है, बनाने का प्रयत्न करता है[1] । नित्शे ने स्वतंत्रता को स्थिरता के बदले गत्यात्मकता प्रदान की थी । किर्केगार्ड के आदमी जो दुख एवं विषय परिस्थितियों में जूझने वाला है वहाँ नित्शे का आदमी तुरन्त संतुष्टि के लिए प्रयत्नवान होता है । किर्केगार्ड का स्वतंत्र मनुष्य आधारहीन कारणों का निषेध करता है और असंस्थापित समाज का भी निराकरण करता है वहाँ नित्शे का स्वतंत्र आदमी उपर की दोनों बातों को अपनाता है क्योंकि उसका अपना यही विचार है कि अपनी इच्छा पूर्ति केलिए उसको भी अपना सकता है[2] । अस्तित्ववाद का एक दूसरा चिन्तक है कार्ल यास्पर्स स्वतन्त्र्य के सन्दर्भ में उन्होंने कहा मैं जो हूंगा वह मैं कह सकता हूं । (इट ईस फोर मी टु से वाट् अइ विल् बी) वे लिखते हैं कि अस्तित्व मेरे लिए वही है जो मेरे अहं का सक्रियता से चुनने का अधिकार । अगर मैं अपनी स्वतंत्रता का उपयोग न कर सकूं तो वस्तु परक दृष्टि से मैं एक साधारण चीज के समान हूं । जब मैं अपने अहं के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता हूं तब मुझ में सोचने एवं विचारने की लालसा बनी रहती है और साथ ही मुझे वहाँ होने के बोध से (बीइंग देयर) अलगाता भी है । मैं अपने को किसी वस्तुपरक दृष्टि से देखकर अपने अस्तित्व के बारे में नहीं विचार सकता - मैं जो हूं मैं हूं जिससे मैं भविष्य में क्या होगा भी निहित है । जब तक मैं अपने अस्तित्व के संबन्ध में अभिज्ञ हूं

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. डा. शिवकुमार मिश्र : आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद : पृ. 96

2. Nietzche Portrayed freedom as dynamic rather than as static unfettered by convensions of behaviour and thought, Nietzchean man acheives immediate joyous release of his creative energie in contrast with Kierkegaardian man who is left helpless by suffering the agony of intense inwardness. Further more wher free man according to Kierkegaard unqualifidly rejects reason and institutionalized society Nietzche's free man atleast accepts them inso far as he can manipulate for his own ends.

Sheldon P. Peterfreund ‖ Contamporary philosophy and its
Theodore C. Denise ‖ orgins : Text and readings (1968) pp.193-94.

मैं अहं के साथ मैं बन्धा हूं । अतः यद्‌यपि मेरी सत्ता का न होने पर भी मेरा स्थान सुनिश्चित है और मेरे आधिकारिक चुनाव अत्यन्त आवश्यक भी है । मैं अपने तक आता हूं जैसे कि मैं अपना ही एक तोहफा हो और मुझे स्वीकार्य है कि मुझे अपनी स्वतंत्रता की खोज करनी ही है और उस सर्वातिशयी शक्ति को शिथिल करना है जो इसकी सीमा एवं मंजिल है[1] । सार्त्र के अनुसार व्यक्ति जो सुनिश्चित नहीं है अतः पूर्ण रूप से स्वतंत्र बनने के लिए छोड भी दिया गया है[2] ।

<u>अस्तित्ववाद में मृत्यु की परिकल्पना</u> - अस्तित्ववाद की सामान्य प्रवृत्तियों के पर्यवेक्षण के पश्चात् हमें यह देखना है कि इस दर्शन में मृत्यु का क्या स्थान है । अस्तित्ववादियों केलिए मृत्यु एक संभावना होते हुए भी एक अन्तिम परिणति है । सार्त्र ने कहा कि मैं मरने केलिए स्वतंत्र नहीं हूं बल्कि मैं एक स्वतंत्र व्यक्ति हूं जो मरता है । मृत्यु मेरे लिए एक अबूझ सीमा है[3] । मृत्यु जीवन की अबूझ सीमा होने के कारण कामू ने कहा मृत्यु सारी

1. Existence fro me is this active choice of my self in liberty. If I donot come to myself and exercise my liberty inthe realm of being oneself, I remain inthe realm of being there, objectively ditermined a thing. When I do come to my self, accompanied by the anquish and the thrill of knowing that I think, decide, and do seperates me from the solid ground of being there,Iilaunch myself in flight. The emptiness of liberty,the recognition that I cannot an object but a possibl existence (not I am but what I am, which resolves into what shall be) to which I am awakened and to which I perpetually return so long as I maintain myself at the level of being one self is the consciousness of my existence....... Therefore, although I have no essence, my situation is determined and my authentic choice is necessary.
H.J. Blackham : Six Existentialistic Thinkers. pp.49.50

2. The Individual, thus non determined, condemned to be totaly free doesnot turn into an anti-social anarchist, intoxicated with his individualism.

Jean Paul Sartre The Age of Reason (Introduction) p.xvi

3 डा. शिवकुमार मिश्र आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - पृ. 96

परिपाटियों की हंसी उडाती है । जब कोई कल की ज़ूरत नहीं पाती, सजने संजोने की आवश्यकता महसूस नहीं होती, काम करने की स्वतंत्रता को भी रोक दिया जाता है तब मृत्यु हमारे सामने एक साफ निरर्थकता बनकर खडी होती है और वह अपने अनुभूत क्रियाकलापों में से जो शक्ति उसे मिलती है उसके माध्यम से मृत्यु के प्रति लडता भी है[1] । अतः स्पष्ट है कामू केलिए मृत्यु एक संभावना के बदले जीवन में अबसडिटी का बोध करवा लेनी थी । इसलिए वह हमेशा उसके विरुद्ध लडने केलिए कटि बद्ध रहता है ।

अस्तित्ववादियों केलिए मृत्यु एक अन्तिम परिणति के बावजूद व्यक्तिगत अस्तित्व की संभावनाओं का भी निराकरण कर देने वाली है । इसलिए मृत्यु व्यक्तित्व अस्तित्व की कुंजीहै, हमारी सब से संभावना है । इस मृत्यु की अनिवार्य स्वीकृति व्यक्तिगत अस्तित्व की यथातथ्यत की गारण्टी है । क्योंकि मृत्यु हर वस्तु या धारणा का पूर्ण अवमूल्यन कर देती है । इस मृत्यु के आतंक को समझकर जब असली व्यक्तित्व को जीने का प्रयत्न होता है तो एक नई शक्ति नई गरिमा और सहनशीलता का उदय होता है । इस असली व्यक्तित्व के भीतर वरण की छूट अनिवार्य है[2] । अस्तित्ववाद में जन्म और मृत्यु को एक ही अर्थ में लिया गया है । क्योंकि वह एक संभावना होने के कारण मनुष्य के सत्ता में ही निहित है । वस्तुतः मृत्यु उसकी सत्ता में ही समाहित है उसे हटाया नहीं जा सकता । इसे प्रामाणिक रूप में स्वीकार करना आवश्यक है । व्यक्ति मरता है, इसका अर्थ हैकि मृत्यु एक सत्तागत संभावना है, जो संभावनाओं का हरण ही नहीं करती, बल्कि उसकी नश्वरता और अनिश्चयता भी सिद्ध करती है । मनुष्य शून्य से पैदा होता है और शून्य (मृत्यु) में ही विलीन हो जाता है

---

1 Being conscious that ceath makes a mockery of all his plans, ... because there is no tommarrow, there is no point in setting goals, in choosing a role that in any way restric ones freedom of action. Finally, because death is the most evident absurdity against which he revolts, man will realize his greatest victory by accumalating the greatest quantity of experiences.

Adle king Camus. p.25

2 डा. शिवकुमार मिश्र आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - पृ.77

मृत्यु से जीवन या सत्ता की असत्ता संभव होती है अर्थात् मृत्यु शून्य होने की संभावना है, जो व्यक्तिगत सत्ता में ही समाहित है संत्रास की स्थिति में मनुष्य को यह प्रतीत होता है कि वह मर्त्य है उसका अर्विभाव तिरोभाव के लिए है[1]। अतः यह स्पष्टतः लक्षित होता है कि अस्तित्ववादियों ने मृत्यु को स्वीकारा है क्योंकि जीवन की सच्ची अवस्था को पहचानने के लिए मृत्यु की आवश्यकता है। मनुष्य के जीवन को अर्थ पहुंचाने के साथ निरर्थकता के बोध को भी अवगत कराने के लिए मृत्यु की होना आवश्यक है।

अस्तित्ववादियों में हेडिगर ऐसा एक चिन्तक है जिसने मृत्यु की संभावना को स्वीकार है। उन्होंने लिखा - मृत्यु मुझे आतंकित नहीं करती और यों ही मुझमें सपन्न नहीं होती। प्रारंभ से ही वह मुझमें है जिसका मैं पालन करता हूं। उसकी संभावना को हम नकार नहीं सकते क्योंकि व्यक्तिगत स्तर पर उसका अवगाहन होता है। इसका प्रभाव सारी संभावनाओं पर है। मृत्यु का उदय शून्यता या अवस्तुता में (नथिंगनेस) से होता है और वहां अवस्तुता ही सत्य है। अतः मृत्यु मेरे लिए उच्च कोटि की संभावना है। मृत्यु के प्रति मेरी स्वीकार्य भावना मेरे व्यक्तिगत अस्तित्व का आधार स्तंभ है[2]। तब हेडिगरने

---

1 महावीर दधीच अस्तित्ववाद (प्रथम संस्करण) पृ.68 - 69

2 Death doesnot strikes me down, it is not an accident which happens to me, it is from the begining one of my own possibilities which I sense with in me. Indeed it is my possibility eminently because its realization is inevitable and will be realized by me in the most authentically personal way without any possibility of avoidence or substitution. Further it is a possibility which not only has an empire all over other possibilities, since it eventually extinguished them, but which has also a bearing upon them whilst they remain options; for it reveals their contigency; If I can die, I need not have existed, nobody need exist, personal existence is launched between nothingness and nothingness and it is nothingness that is real, every thing is absurd, the impossibility of existence is possible, nothing is necessary. Thus my death is for me the capital possibility, always in view from the outset, from which all other possibilities dirive their status of radical contigency;;;;;;;;;; I anticipate death not by suicide but by living in the presanse of death as always immediately possible and as undermining every thing. This full-blooded acceptance of death, lived out, is authentic personal existence

H.J. Blackham : Six Existentialistic Thinkers. pp.95-96

अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए मृत्यु का वरण किया । मृत्यु को आतंक मानकर भी उसे संभावना माना । मृत्यु सब का अवमूल्यन करके भी सब केलिए आवश्यक समझा गया जिससे अस्तित्व की स्थापना और भी दृढ होती है ।

पोल लिच के अनुसार तीन प्रकार की उत्कण्ठाएं है जो मनुष्य के होने के बोध को आतंकित करती है । न होने का बोध आंशिक रूप से मनुष्य को नियति के रूप में उसके ऐन्द्रिक स्थिरता (ऑण्टिक सेल्फ अफिरमेशन) को आतंकित करता है और पूर्ण रूप से मृत्यु के रूप में । यह उत्कण्ठा आतंक के त्रिमानात्मक रूप में प्रत्यक्षीकृत होती है - नियति, मृत्यु, और शून्यता आदि रूपों में । इन तीनों रूपों में उत्कण्ठा की अर्थ परिकल्पना अस्तित्ववादी सन्दर्भ में है न कि मनोविज्ञान के सन्दर्भ में । पोल लिच मृत्यु बोध को जीवन के बुनियादी बोध के रूप में ले लेता है, और उसका वैश्वक (यूनिवेर्सल) स्तर होने के कारण उसके मुक्ति मिलना भी असंभव कहा गया है । उसके विरुद्ध का सारा तर्क निरर्थक लगेगा । आत्मा के संबन्ध में और उसकी अनश्वरता के संबन्ध में प्रस्तुत करनेवाले जितने तर्क वितर्क है उसका अस्तित्ववादी संदर्भ में कोई अर्थ नही है[1] । पोल लिच मृत्यु को एक ऐसी संभावना मानते है कि जिसका आतंक जीवन के चतुर्मान पक्षो पर भी पडता है और शून्यता उत्पन्न करती है । लिच कामू के निकट है अपने तर्क में ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. I suggest that we distinguish three types of anxiety according to the three direction in which now being threatens being Now being threatens man's ontic self affirmation relatively in terms of fate, absolutely in terms of death. It threatens absolutely in terms of meaninglessness. It threatens man's moral self affirmations relatively in terms of guilt, absolutely in terms of condemnations, The awareness of this three fold threat is anxiety appearing in three forms, that of fate and death (briefly anxiety of death) that of emptiness and loss of meaning. (briefly the anxiety of condemnation). In all three forms anxiety is existential in the sense that it belongs to existence as such and not to an bnormal state of mind as in neurotic (and phychotic) anxiety....... The Anxiety of fate of death is must basic, most universal and inescapable. All attempts to argue it away are futile. Even if the so called arguments for the immortality of the soul had argumentative power (which they do not have) they would not convince existentially.
Sheldon P.Peter fruend } The contemporary philosophy and its
Theodore C. Denise } origins. pp.208,209.

मृत्यु बोध कामू के मन मे निरर्थकता बोध पैदा करता है । उसी प्रकार पोल के मन मे मृत्यु बोध एक वैश्वक सत्य (यूनिवेर्सल ट्रूथ) मे छाया हुआ है । हेडिगर केलिए मृत्यु स्वीकार्य है और सार्त्र केलिए मृत्यु एक अबूझ सीमा है । इस प्रकार हम देखते है कि अस्तित्ववादी चिन्तको को हमेशा मंथित करने वाली एक समस्या थी मृत्यु समस्या । अतः हम आगे इन दोनो दृष्टिकोणो की तुलना करेंगे ।

<u>भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण</u> - हम बता चुके है कि भारतीय दर्शन आध्यात्मिक है और इसी कारण भारतीय दृष्टिकोण किसी बौद्धिकता पर अधिक ध्यान देने के बजाय आन्तरिक शक्ति पर जोर देता । इसलिए भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार 'फिलोसफी' को 'दर्शन' कहा गया है वह एक 'विज्ञन' है जिससे सत्य की जानकारी होती है और तार्किकता केलिए उसमे स्थान नही है[1]। अज्ञेय ने एक जगह लिखा है कि 'पश्चिम अपने सम्मुख पहाड देखता है और शिखर तक काटने लगता है ताकि पर्वत पर जयी हो सके और जान ले कि उसकी दूसरी पीठ पर क्या है जहाँ विस्मय है वहाँ जिज्ञासा है ललकार है । पूर्व के सम्मुख सागर है । वह रस्सी डालकर गहराई नापता है । गहराई जान ली जाती है लेकिन सागर अज्ञान रह जाता है । जहाँ विस्मय नष्ट होता है वहाँ केवल पराजय मिलती है[2] । अतः कह सकते है कि पश्चिम के लिए जो तर्क पूर्ण है, जो वैज्ञानिक है वही सत्य है । एक अर्थ मे पश्चिम का दृष्टिकोण पूर्ण रूप से बौद्धिकता का अनुसरण करता है[3] ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. The Western mind lays stress on science, logic, and humanism. Hindu Thunkers as a class hold with great conviction that we possess a power more interior than intellect by which we become aware of the real in its intimate individuality and not merely in its superficial or discernable aspects. For Hindu a system of philosophy is an insight, a'darsana'. It is a vision of truth and not a matter of logical arguments and proo Dr. S. Radhakrishnan: An idealist view of life. p.127

2 सच्चिदानन्द वात्स्यायन एक बून्द सहसा उछली (प्रथम संस्करण) पृ.322

3. .... the Western systems are generally characterised by a greater adherence to critical intellegence.

Dr. S. Radhakrishnan An idealist view of life. p.229

पश्चिम का दर्शन आध्यात्मिक न होने की वजह से उसमें पवित्रता केलिए स्थान नहीं है । एक और मुख्य बात यह भी है कि पश्चिमी दृष्टिकोण रूढी एवं अनुमान को भी महत्वपूर्ण नहीं मानता और साथ ही साथ हर किसी के प्रति एक तरह से प्रश्न भरी नजर से देखता है । उसका दृष्टिकोण बहुत ही आलोचनात्मक है[1]। अरस्तू के अनुसार तर्क शास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है । इसलिए उनका कथन है मनुष्य एक विवेकपूर्ण ~~मनुष्य~~ जानवर है[2]। पश्चिमी दर्शन डेकार्टे से एक नई दिशा की ओर जोड लेती है । उनके लिए दर्शन अनुमानात्मक न होकर गणित के समान साफ साफ हो । डेकार्टे ने कार्य कारण एक वैश्वक धारणा का निर्माण किया जो तार्किक एवं गणित शास्त्रों के आधार पर स्थित है[3]।

उपर्युक्त विवरण से यह जाना जा सकता है कि पश्चिम एवं पूर्व (भारतीय) से दृष्टिकोण में कौन सा अन्तर है । एक ओर पश्चिम केलिए दर्शन जो जीवन को जानने की एकविधि है वह उनके लिए बौद्धिक कसरत है, लेकिन दूसरी ओर भारत केलिए वह लौकिकता से उपर उठकर उस आत्यन्तिक शक्ति तक पहुँचकर स्वतंत्रता प्राप्त करने लिए है जिससे मृत्यु एवं जन्म के जाल से मुक्त हो सके[4]। पश्चिम का दृष्टिकोण वर्तमान में जीनेवाला है

- - - - - - - - - - - - - - -

1. Nothing is secret in Western philosophy. This means that Western philosophy does not start with dogmas or assumptions, but questions everything. Western philosophy is just a critical of crisis of religion.
Radhakrishnan : Complete studies in philosophy. p.65

2. Aristotle invented the science of logic. For him man is pre-eminently a rational animal.
Dr. S. Radhakrishnan : An Idealist view of life. p.131.

3. For Descartes, with whom European philosophy takes a new direction, and distinctness, whatever can be ex pressed in mathametical form is clear and distinct. Descartes sets-forth a system of universal concept of reason, which are derived a consideration of certain fundamental, logical and mathametical relationship.
Ibid p.131.

4. Thus arises the main fundamental differences between the philosophic out look in India and in Europe : in Europe philosophy is a hard intellectual exercise to understand the world of our everyday life, while in India it is attempt to rise above the shifting scences of this world and attain freedom from the cycles of birth and death.

Radhakrishnan Complete studies in philosophy.p.65

वहाँ भारतीय (पूर्व) दर्शन उस अनन्त काल के बहाव में गोता लगाना चाहती है । यूरोपीय व्यक्ति क्षण में जीता है । अनन्त काल से उसे प्रयोजन नहीं है - इतना भी नहीं है कि/भूत और भविष्य का उपयोग वर्तमान जीवन का संपन्नतर बनाने केलिए करे भारतीय व्यक्ति अनन्त काल में रहता है । उसके लिए वर्तमान काल एक असुविधाजनक धारा है जो भूत और भविष्य को मिलनेवाले उसके बनाए हुए पुल के नीचे से बहती है[1] । भारतीय दृष्टिकोण जहाँ भावात्मक है, रागात्मक एवं आध्यात्मिक है वहाँ पश्चिमी दृष्टिकोण पूर्णतः बौद्धिक एवं तार्किक है । इसी परिप्रेक्ष्य में आधुनिक पश्चिमी दर्शन अस्तित्ववाद का अध्ययन करना पडता है क्यों कि हमें देखना यह है, अस्तित्ववादी दर्शन ने जीवन को किस स्तर रखकर देखा है, नहीं तो अस्तित्ववादी दर्शन के अन्तर्गत जीवन की क्या परिभाषा हो सकती है और मानवता का अर्थ अस्तित्ववादी चिन्तकों केलिए क्या है आदि ।

उपर हमने भारतीय दर्शन एवं अस्तित्ववादी दर्शन को विभक्त रूप में अध्ययन करने के पश्चात् दोनों की तुलना एवं विषमता पर भी विचारा है । अज्ञेय के उपन्यास अपने अपने अजनबी के पात्रों का योके - सेल्मा - अध्ययन केलिए यह आवश्यक भी है क्योंकि पूर्वी एवं पश्चिमी दृष्टियों की अभिव्यक्ति इन दो पात्रों के जरिए हुई है ।

<u>'अपने अपने अजनबी'- आलोचनात्मक मूल्यांकन</u> -- 'अपने अपने अजनबी' एक सीमा तक दार्शनिक उपन्यास (फिलोसफिकल नोवल) का बाना पहनकर सामने आता है । इसकी विषय वस्तु अन्य उपन्यासों की तुलना में एकदम नई एवं अलग बिम्ब प्रस्तुत करती है । आदि से अन्त तक मृत्यु का आतंक छाया हुआ है और दोनों पात्र अपने अपने दृष्टिकोण के मुताबिक इस आतंक का सामना भी कर रहे हैं । 'अपने अपने अजनबी' की पात्र-संख्या बहुत सीमित है । मुख्य रूप से इसके दो ही पात्र हैं । बाकी जितने भी पात्र है - यान, फोटोग्राफर, पोल एवं जगन्नाथन उपन्यास के वातावरण केलिए महत्वपूर्ण योगदान देने के अलावा और कुछ नहीं करते हैं । जगन्नाथन को वस्तुतः एक पात्र के रूप में मानने की आवश्यकता नहीं है ।

उपन्यास का वातावरण अतिरंजित स्थितियों का है । एक काठ के घर में, दो औरतों का - योके और सेल्मा - बन्द हो जाना, जो बर्फ से मढा हुआ है । ऐसी एक कथा की परिकल्पन

---

1 सच्चिदानन्द वात्स्यायन - एक बून्द सहसा उछली - पृ. 32।

करने की प्रेरणा अज्ञेय को स्वीडन की यात्रा के दौरान मिला था । 'अपने पुराने मित्र मार्टिन आलवुड के निमंत्रण पर ये स्वीडन में रहे और वहाँ लैपलैंड में बर्फ में यात्रा करते करते एक बार भटके भी । इसी यात्रा के आसपास स्वीडी लेखिका सारा लीडमैन ने बर्फ में कैद हो जाने की ऐसी परिस्थिति की अन्तिम परिणति घटना सुनाई की और वह यह बतलाने की चेष्टा की थी कि ऐसी परिस्थिति की अन्तिम परिणति असहिष्णुता में होना अनिवार्य है । पर अज्ञेय को यह लगा कि यहीं भारतीय दृष्टि भिन्न है जो पीडा और पीडा के भोग को एक नहीं मानती । केवल पीडा का होना पीडा का भोग नहीं है और पीडा का भोग करते हुए पीडा की प्रतीति अनिवार्य भी नहीं है । असहिष्णुता दोनों के तादात्म्य से ही उत्पन्न हो सकती है'।[1] उपर्युक्त अनुभवपरक कथा का ही परिणाम है प्रस्तुत उपन्यास ।

काठ के घर के भीतर, बर्फ के नीचे बन्द होने की स्थिति से उपन्यास का आरंभ होता है योके, जो युवती है साहसिक मात्रा के लिए निकली थी और अपनी स्वेच्छा से वहाँ आ जाती है और वहीं बन्द भी हो जाती है । सेल्मा एक बूढी है जो पहले से ही वहाँ मौजूद थी ।

पूरा उपन्यास तीन खण्डों में विभक्त है । पहला खण्ड है - 'योके और सेल्मा' जिसमें दोनों के बन्द जाने की स्थिति एवं उनके वार्तालाप को समाहित किया गया है । दूसरा खंड है 'सेल्मा' जिसमें सेल्मा की पूर्व कथा जो तीन जनों का इस प्रकार अकेले होने की स्थिति की कथा है और उसको उत्तरार्द्ध में सेल्मा की मृत्यु एवं मृत्यु के आतंक से उन्माद योके की कथा है । तीसरा खण्ड 'योके' है जिसमें युद्ध की विभीषिका और उस जटिल स्थिति में योके का वेश्या बनकर आना एक अजनबी आदमी जगन्नादन की उपस्थिति में मरना आदि समाहित है ।

काठ के घर का बर्फ के नीचे बन्द हो जाने की स्थिति से सेल्मा आतंकित नहीं है । क्योंकि इसका कारण यही है कि उसने अपने जीवन में पहले भी इस प्रकार की एक घटना का सामना किया था । बाढ के आ जाने के कारण एक धनुसाकार पुल की दुर्घटना हो जाती है और उस पुल में केवल तीन आदमी अकेले पड जाते हैं । एक थी सेल्मा डाल बर्ग जिस की एक चाय की दूकान थी, दूसरा यान एकेलोफ और तीसरा एक फोटोग्राफर । एक अजीब

---

1 विद्यानिवास मिश्र (सं.) आज के लोकप्रिय कवि अज्ञेय (परिचय) पृ.18

अवस्था मे उन तीनो का जीवन गुज़रता है । तीनो एक प्रकार से अजनबी रह जाते है और एक दरार उनके बीच मे उमड आई थी । सेल्मा को छोड़कर बाकी दोनो के हृदय मे मृत्यु की छाया मंडराने लगती है । फोटोग्राफर के पास चाय बनाने केलिए पानी न होने के कारण नदी का पानी टीन का डिब्बा लटकार पानी खीच लेता है । लेकिन सेल्मा उन दोनो से काफी दूरी के साथ रहती थी । बीमार फोटोग्राफर एवं यान एक ऐसी दुनिया मे रहते थे और उस दुनिया से सेल्मा का कोई सबन्ध नही है । 'तब उसे लगता है कि न केवल वह कुछ कर नही सकती या करना चाहती भी नही, बल्कि अगर वह सकती या चाहती ही तो भी उस दूसरी दुनिया तक उसका पहुचना न होता जिसमे वे दोनो है । वे दोनो है ही नही, एक भयानक दुःस्वप्न के अग है और दुस्वप्न मे देखे हुए लोगो तक कैसे जीते-जागते कैसे पहुच सकता है[1] ।

सेल्मा केलिए उसकी दुनिया दुस्वप्न की दुनिया है क्योकि वह मृत्यु की दुनिया है । सब से पहले फोटोग्राफर इस आतंक से उन्माद की अवस्था मे पहुच जाता है । अपनी दूकान को जलाकर फोटोग्राफर उसके सामने आकर खडा होता है, और उन्मादिनी हसी से सन्नाटे को तोड-फोड देता है । और वह एक बार चीखने के बाद नदी के कूद पडता है ।

यान भी इस आतंक से मुक्त नही है । वह अपनी अन्तिम पूजी भी देकर सेल्मा के यहा से गोश्त खरीदकर जाता है और फोटोग्राफर की जली हुई दूकान की आंच मे पकाकर खाना बनाता है । अन्तिम भोजन को वह बटाना चाहता है और सेल्मा की दरवाज़ा खट-खटाता है । एक प्रकार से उन्माद की अवस्था ही उसकी हो जाती है । वह सेल्मा से कहता है - 'मरेगा तो शायद हम दोनो मे से कोई नही - तुम्हारी हरकत के बवजूद अभी तो नही लगता कि मै मरनेवाला हू । लेकिन अगर सचमुच यह बाढ ऐसी ही इतने दिनो रही कि मै भूखा मर जाऊ, तो तुम बचकर कहा जाओगी ? और अगर पीछे ही मरोगी, तो तुम समझती हो कि वैसे अकेले मरने मे कोई बडा सुख है ? बल्कि अकेली तो तुम अब भी हो, जब कि मै नही हू । और शायद मर ही चुकी हो - जब कि मै अभी जिन्दा हू[2] । सेल्मा की सन्तुलित मानसिक अवस्था एवं चुपी को देखकर यान को ऐसा ही लगता है कि सेल्मा मरी

---

1 अज्ञेय - अपने अपने अजनबी (तीसरा संस्करण) पृ.74

2 वही पृ.83

हुई है । लेकिन सेल्मा की दृढता एवं समचित्रता को वह समझ नही पाता है इसलिए सेल्मा पर टूट पडता है । लेकिन इस घटना के साथ दोनो आपस मे बन्ध जाते है । सेल्मा विवाह का प्र स्ताव रखती है । अन्ततः वह सेल्मा को स्वीकार कर लेता है । बाढ के कम होने पर दोनो किनारे की ओर आ जाते है - पति-पत्नीहोकर ।

उपर्युक्त पूर्व घटना मे, जो सेल्मा के जीवन मे घटी थी, उसके हृदय मे तब भी मृत्यु के प्रति कोई ऐसी भावना नही थी कि जिससे आतंकित होकर वह विक्षुब्ध नही हो उठती । एक संतुलित अवस्था का ही चित्र हम सेल्मा मे देखते है ।

योके और सेल्मा शीर्षक परिच्छेद मे योके की विक्षुब्धावस्था का विकास ही हम देखते है । योके के हर व्यवहार मे मृत्यु का डर व्यंजित होता है । लेकिन वह सेल्मा को यह दिखाना न चाहती । वह कहती है 'मै बर्फ से नही डरती । डरती होती, यहा आती ही क्यो । इससे पहले आल्प्स मे बर्फानी चट्टानो की चढाइया चढती रही हू - एक बार हिम नदी से फिसल कर गिरी भी थी । हाथ पैर टूट गए होने बच गई । फिर भी यहा भी तो बर्फ की सैर करने ही आयी थी[1] ।

सेल्मा अब बूढी हो चुकी है । इसलिए बर्फ के नीचे दबकर रहकर भी उसके हृदय मे मृत्यु का डर नही । सेल्मा के हर कथन मे मृत्यु के प्रति एक छिपी हुई स्वीकार्य भावना है जिसका अर्थ समझने मे योके अपने को असमर्थ पाती है । यही असमर्थता एक प्रकार से योके के हृदय मे भय की भावना को और भी बढाती है । 'आण्टी सेल्मा क्या कहना चाहती है या क्या कहना नही चाहती जो बार-बार उनकी जबान पर आ जाती है ? क्या वह उनसे सीधे-सीधे पूछ ले कि उनके मन मे क्या है ? क्या सचमुच आण्टी सेल्मा का अनुमान है कि वे दोनो अब बचेगी नही - यही बर्फ से ढका हुआ काठ का बंगला उनकी कब्र बन जाएगी[2] ? यह उत्कण्ठा का विकास योके मे धीरे धीरे पनपती है । लेकिन वह सेल्मा के मन की बातो को समझ नही पा रही है । इसलिए सेल्मा के दर्शन मात्र से वह कांप सी जाती है । -जिसके चेहरे पर अचानक कभी कभी एक भाव दीखता है जो मानो इस लोक का नही है - और जिसे देखकर मै बेचैन हो उठती हू और मेरा मन हो उठता है कि कुछ तोड-फोड कर बैठू[3] ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अपने अपने अजनबी - पृ.9
2 वही पृ.11 - 3 - वही पृ.15

मृत्यु भय के विकास की एक और सीढ़ी है कि वह अपने चारों तरफ मृत्यु को महसूस करत है और इस स्थिति से एक रिर्थकता छा जाती है वह योके में दिखाई देती है । वह सोचती है 'हमेशा सुनती आयी हूं कि कब्र में बड़ा अंधेरा होता है, लेकिन यहां उसकी भी असंपूर्णता है । शायद यही वास्तव में मृत्यु होती है, जिसमें कुछ भी होता नहीं, सब कुछ होते-होते रह जाता है[1] । निरर्थकता का बोध एक दम योके के हृदय पटल पर व्यापने लगता है योके महसूस करती है - मैं मानो एक काल-निरपेक्ष क्षण में टंगी हुई हूं वह क्षण काल की लडी में से टूटकर कहीं छिटक गया है और इस तरह अन्तहीन हो गया है - अन्तहीन और अर्थहीन[2] ।

सेल्मा के हृदय में मृत्यु के प्रति जो स्वीकार्य भावना है वह पूर्वी दृष्टि का परिणाम है । वह आत्म पर विश्वास रखती है इसलिए उसका जीना समूचे काल के जैसे है । योके के शब्दों में प्रस्तुत उक्ति व्यंजित है 'वह मेरे लिए अंजनबी है, लेकिन लगता है कि उसमें कुछ ऐसा सच है जो मैं ने नहीं जाना है । मेरे सच से बिलकुल अलग और दूसरा सच । सच । .... वह सच भी काल - निरपेक्ष नहीं है - सेल्मा भी काल में ही जीती है जैसे कि हम सब जीते है, लेकिन वह मानो किसी एक काल में नहीं जीती बल्कि समूचे काल में जीती है, उसमें कुछ भी आगे पीछे नहीं है बल्कि सब कुछ एक साथ है[3] । योके सेल्मा को अपने से अलग पाती है इसलिए सेल्मा के पास रहते हुए भी सेल्मा उसकेलिए अजनबी ही है कोरा अजनबी । इसलिए कभी कभी योके के मन में ऐसी भावनाएं उठती है कि सेल्मा से पूछे कि 'तुम कौन हो' और उसकी मुट्ठियां भिंच जाती है । एक अवसर पर सेल्मा के पूछने के कारण योके अपने हृदय की बातें खोल देती है । मृत्यु के बारे में उसका वक्तव्य निम्नस्थ है - - 'वही एकमात्र सच्चाई है - क्योंकि हम सब को मरना है[4] । भविष्य के बारे वह कहती है सभी अपने भविष्य को बहुत अधिक दुर्ज्ञेय और जटिल मानते है उसे जानना चाहते की उत्कण्ठा का ही यह दूसरा पहलू है - जितना ही जानना चाहते है उतना ही उसे दुरूह मानते है[5] । भविष्य को न मानना, मृत्यु को एकमात्र सचाई मानना आदि योके की अपनी मान्यता है । इन बातों से स्पष्ट है कि योके के विचार अस्तित्ववादी चिंतन से अभिभूत है । वह अपने विचारों पर अडिग रहना चाहती है और मृत्यु को महसूस करती रहती है । इसलिए

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - अपने अपने अजनबी पृ.16 -2- वही पृ.17 -3- वही पृ.22
4 वही पृ. 24 -5- वही पृ.26

क्रिसमस केलिए पेड बनाने की या अवतरण गीत गाने की उत्सुकता उसमे नही दिखाई पडती योके के शब्दो मे मृत्यु का विकास देख सकते है - देव शिशु के आसन्न अवतरण का कोई आनन्द, कोई स्फूर्ति मुझ मे नही थी । आसन्न कुछ लगता था तो दूसरा ही कुछ जिसे मै देखना नही चाहती, जानना नही चाहती, नाम देना नही चाहती - पर छाती पर रखे हुए बोझ सी एक बात बार-बार अपनी याद दिला जाती थी और गले की सास गले मे अटक जाती थी - कि वहा सेल्मा और योके के अलावा एक तीसरा भी है और वह अदृश्य तीसरा देव शिशु नही है ... और मानो उसकी धडकन मै वातावरण मे सुन रही थी और इसलिए उठ नही पा रही थी [1] । और मृत्यु का विकास होते ही योके को ऐसा लगता है कि मृत्यु उसके निकट आ गई है और 'वह मेरे कन्धो पर सवार होकर मेरा गला घोट रही है । कैसा बेपनाह है वह पंजा जो छोडेगा नही लेकिन जिसकी उंगलियो की छाप भी नही पडेगी [2] 'ऐसी विकृत कल्पना से योके काप उठती है ।

सेल्मा की भावनाए योके की भावनाओ से एकदम भिन्न है । उसमे एक प्रकार की स्थिरता है जो पहले भी उसमे मौजूद थी । आत्म-परायेपन का बोध उसमे नही है । एक प्रकार की आन्तरिकता उसके चरित्र की एक प्रमुख विशेषता है भीतर की शक्ति पर उसका दृढ विश्वास है और उसके अनुसार वही शक्ति जीवन को नियंत्रित करती है । इसलिए वह कहती है कि जो हमारे भीतर नही है वह हम बहर कैसे दे सकते है – कैसे देना चाह सकते है ? खुली, निखरी हुई, स्निग्ध, हसती धूप – मै बाहर उसकी कल्पना करती हू तो वह मेरे भीतर भी खिल आती है और मै सोच सकती हू कि मै उसे औरो को दे सकती हू [3] । योके का सेल्मा के बारे मे सोचना भी सेल्मा के दृष्टिकोण का परिचय दिलाता है – वह जानतीहै और जानकर मरती हुई भी जिए जा रही है । और मै हू कि जीती हुई भी मर रही हू और मरना चाह रही हू [4] । सेल्मा केलिए मृत्यु एक अन्तिम संभावना की सूचना नही है । उसे मरने के बारे मे सोचकर ऐसी कोई विक्षुब्धता नही आई जो योके के मन मे उद्भूत हुई है इसलिए वह मर कर भी जीती जा रही है वह अपनी मृत्यु को एक दूसरा प्रारंभ मानती है । उसमे विरोध की भावना नही जागती । योके सेल्मा के बारे मे सोचती है - ' न मेरे प्रति, न मेरे हिंस्र भावो के प्रति, न मृत्यु के प्रति । और यह मेरी समझ मे नही आता, मुझे स्वीकार नही होता । कैसे कोई जीता हुआ प्राणी जिजीविषा से परे हो सकता है ।

---

1 अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ.28 –2– वही पृ.29 –3– वही पृ.34

कहीं कहीं ज़रूर बुढ़िया में कोई झूठ है । कोई आत्म-प्रवंचना है । हो सकता है वह गहरे में छिपी हो - लेकिन यह नहीं हो सकता कि वह हो ही न [1] । स्वतंत्रता एवं चुनाव (चोइस) के बारे में उसका विचार योके को भाती नहीं है । सेल्मा जानती है कि वह बीमार है और उसका इस दुनिया में रहना अधिक दिन केलिए नहीं । लेकिन उस का यही दृढ विश्वास है कि उसके चाहने या न चाहने से कुछ नहीं होता है । वह अपनी सारी नियति को अपने नियंत्रण में नहीं करना चाहती । वह कहती है - 'कौन स्वतंत्र है कौन चुन सकता है कि वह कैसे रहेगा, या नहीं रहेगा । मैं क्या स्वतंत्र हूं कि बीमार न रहे - या कि अब बीमार तो क्या इतनी भी स्वतंत्र हूं कि मर जाऊं? मैं ने चाहा था कि अन्तिम दिनों में कोई मेरे पास न हो। लेकिन वह भी क्या मैं चुन सकी [2] ? । सेल्मा की विचार धाराएं एकदम अस्तित्ववादी दर्शन की विचारधाराओं का खण्डन करता है । अस्तित्ववादि का मुख्य नारा स्वतंत्रता का है । सार्त्र, यास्पर्स, हेडिगर, नित्शे, काम्रू आदियों ने उंचे स्वर में स्वतंत्रता की अवाज़ को बुलन्द किया । यहां सेल्मा की न चुन सकने की भावनामें एक तरह से पूर्व का आध्यात्मिक स्पर्श भी है । क्योंकि उसके हृदय में ईश्वर के प्रति भी दृढ विश्वास है । योके अपने आप को स्वतंत्र मानकर चलती है वहां सेल्मा अपने को संपूर्ण रूप से ईश्वर समक्ष समर्पित करना चाहती है । ईश्वर के प्रति जो विश्वास है उसको खुलकर योके को बता देती है - 'हां योके, मैं भगवान को ओढ लेना ही चाहती हूं । पूरा ओढ लेना कि कहीं कुछ भी उघडा रह न जाय । तुम नहीं जानती कि जिसे माला की मणि तक नहीं पहुंचना है उस केलिए एक मनके का रूप कितना दिव्य होता है। देखो योके, मेरी आंखों में देखो क्या तुम्हें नहीं दीखता कि भगवान के सिवा मेरे पास कुछ नहीं है ओढने को [3] । सेल्मा की समर्पण बुद्धि बाह्य सत्ता से बढकर आन्तरिक सत्ता को प्रमुखता देते हुए सब के प्रति (मृत्यु) अनमना रहना पूर्वीय दृष्टिकोण का ही परिणाम है । वह मृत्यु और ईश्वर का सामंजस्य करना चाहती है । उसका यही विचार है कि मन से ईश्वर का तब तक पहचान हो ही नहीं सकते जब तक कि मृत्यु में ही उसे न पहचान ले । जब ईश्वर पहचान से परे है तो कोई भी पहचान भ्रम है । ईश्वर को हम कैसे जान सकते है । जो हम जानते है वे कुछ गुण है - और गुण है इसलिए ईश्वर के तो नहीं है । हम पहचानते है अनिवार्यता, हम पहचानते है अन्तिम और चरम और सम्पूर्ण और अमोघ नकार - जिस नकार

---

1 अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ.35-36 -2- वही पृ.43

3 वही पृ.39

के आगे कोई सवाल नही है और न कोई आगे जबाब ही इसलिए मौत ही तो ईश्वर का एक मात्र पहचाना जा सकने वाला रूप है[1]। सेल्मा के बारे मे योके का कथन बहुत ही सार्थक है। 'वह मै हू को भी जानती है और मै नही हू की अवस्था मे भी जी सकती है[2]। इन दोनो अवस्थाओ मे जीने के कारण उसके स्वर मे जो दृढता है वह योके मे नही उसके चुनने मे जो परिपक्वता है वह योके के लिए असंभव सी लगती है। जब सेल्मा कहती है - तुम जो अपने को स्वतंत्र मानते हो वही सब कठिनाईयो की जड है। न तो हम अकेले है। न हम स्वतंत्र है। बल्कि अकेले नही है और हो नही सकते, इसलिए स्वतंत्र नही है; इसलिए चुनने या फैसला करने का अधिकार हमारा नही है। मै ने तुम्हे बताया था कि मै चाहती थी कि मै अकेली मरू। लेकिन क्या वह निश्चय करना मेरे बस का था ? क्या मै अपनी मन पसन्द परिस्थिति चुन सकी ? और तुम - क्या तुम स्वतंत्र हो कि मुझे मरती हुई न देखो ? ऐसो सब स्वतंत्रताओ की कल्पनाएं निरा अहंकार है - और उसी से स्वतंत्रता को छोडकर कोई दूसरी स्वतंत्रता नही है[3]। सेल्मा के तर्क-वितर्को का असर योके पर पडता नही है। उसका डर विकसित होता ही रहता है। विक्षुब्धवस्था बढती है। वह चाहती है एक बार ऐसी चीखू और सब को तहस-नहस कर डालू। कभी मेरा मन होता है कि चीख पडू, कि अपने बाल नोच लू, कि आइने के सामने खडी होकर अपने को मारू, छोटो कैची उठाकर अपने गालो मे चुभा लू कि नहरने से अपने नाक कान ठोडी पर घाव कर लू अपने प्रतिबिंब के भी जो इतनी बेहयाई से मुझे ताकता है और मेरी सब अराजक जिघासाएं वापस मेरे मुह पर मारता है[4]। वह अपने को होने को बोध को खुद महसूस करना चाहती है। मरकर रहने वाली सेल्मा के होने का बोध उसकेलिए असहनीय बन जाता है। उसके मन मे न मरने की इच्छा है और अपनी इच्छा के अनुसार चुनने का बोध है, फिर भी उसे ऐसा लगता है कि उसके होने का बोध नही के बराबर है। इसलिए वह सेल्मा के कमरे मे जाकर उसके गले को घोटकर मारने को उद्विग्न हो उठती है। वह सेल्मा के अंग अंग का निरीक्षण करते है। लेकिन वह पाती है कि सेल्मा उसको देख रही थी। इस घटना के बारे मे सोचकर उसको दुख नही होता है। सिर्फ उसका शरीर कांप रहा था। वह काठ घर मे मृत्यु गंध का व्यापना महसूस करती है। उसका इस प्रकारम महसूस करना मृत्यु भय के विकास का एक और स्तर है। अपनी दर्दनाक स्थिति मे वह

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय - अपने अपने अजनबी पृ.49 -2- वही पृ.50 -3- वही पृ.55

4 वही पृ.57

अनुभव करती है - 'मै यहा अभी इस क्षण मे जीती हू - मुझ मे स्मृति नही है । मुक्त मुझे होना चाहिए, लेकिन मै इतिहास से क्षयग्रस्त हू और अकेली हू । मरना सेल्मा को है, मरेगी वह, लेकिन मर रही हू मै, अकेली मै[1] । लेकिन इस निर्णय पर वह टिक नही सकती और वह सोचती है कि बुढिया के सारे शब्द बेठी है । सेल्मा की उपस्थिति इसलिए योके केलिए दुख पहुचाती है कि योके के प्रयत्न के बावजूद भी वह यह नही समझ पाती कि सेल्मा मर रही है या जी रही है । योके तो मृत्यु भय से अभिभूत होकर उन्मादिनी सी हो जाती है 'लेकिन उसके चेहरे मे कोई परिवर्तन नही आया है और उसकी आखे बन्द है । सुना है - आखे खुल जाती है लेकिन मै क्यो उसे देख रही हू क्या अपने को यही बोध कराने केलिए कि मै मरी नही हू । जीवन के अनुभव केलिए, अपने जीते होने का अनुभव करने केलिए, अपने मै-पन को पहचानने केलिए ? मै-पन का बोध और जीवन - पन का बोध दोनो का एक साथ अनुभव करने केलिए - दोनो को एक अनुभूति मे ढालकर उस इकाई को भागने केलिए ?[2] वह इन प्रश्नो मे हमेशा जूझती रहती है । इन प्रश्नो को सोचकर बेचैन हो उठती है । कभी ये विचार धोखा समझ कर चैन पाती है । भिन्न भिन्न वाद-विवाद मे अपने को डालकर वह कापती, गिडगिडाती रहती है ।

सेल्मा की मृत्यु हो जाती है । उसके साथ योके पागल सी हो जाती है । मृत्यु गंध को वह महसूस करती है । उसे सहसा लगा कि कमरे की गन्ध बदल गई है - आसन्न मृत्यु की गन्ध उसने कई दिन से पहचान रखी थी, इतनी घनिष्ठता के साथ कि उसकीअ अनुभूति की धार भी कुठित हो गई थी - पर अब उसे लगा कि यह गन्ध कुछ दूसरी है - मानो मृत्यु की सान पर चढकर उसका बोध तीखा हो आया था[3] । वह यही चाहती कि किसी न किसी प्रकार इस मृत्यु गंध को रोक दे । अपने कमरे तक फैलने से पहले इसको वही दफनाना चाहिए नही तो यह फैलते फैलते योके के कमरे तक आ जाएगी और योके को अपने कब्जे मे कर लेगी और उसकी भी मृत्यु हो जाएगी ।

योके के पागल-पन की स्थिति का चित्र अज्ञेय के ही शब्दो मे निम्नस्थ है - वह मृत्यु गंध मानो सर्वत्र भर रही थी । योके ने एक कम्बल और चादर से दरवाजे के जोड और दरारे बन्द

---

1 अज्ञेय - अपनो अपने अजनबी पृ.61 -2- वही पृ.93

3 वही पृ.95

कर देने का यत्न किया, लेकिन उसे लगा कि ये कपडे भी उसी गन्ध से बस गए है । उसकी मुट्ठियाँ बन्ध गई उसने जोर से एक घूंस कम्बल पर मारा, लेकिन मानो चोट न लगने से उसे सन्तोष नही हुआ और वह दोनो मुट्ठियो से दरवाज़े को पीटने लगी । एक कड़ुवा आक्रोश उसके भीतर उमड आया; न जाने कब पुरुषो के झगडो मे सुनी हुई गालियाँ याद हो आई और वह उन्माद की अवस्था मे ईश्वर का नाम ले-लेकर गालियो को दोहराने लगी और साथ-साथ दरवाजे पर घूंसे मारने लगी[1] । लेकिन इतने पर भी उसका कार्य व्यर्थ ही निकाला क्योंकि गन्ध फैल रही थी । उसके कंपन उसे मालूम हो गया कि वह गन्ध और कही से नही आ रही है, उसी मे है - उसी की देह मे से आ रही है वह दरवाज़े से उठ गई और खिडकी के पास गई । फिर उसने एक गिलास उठाकर खिडकी के बाहर से उसमे बर्फ भरी और बर्फ की मुठियाँ बाँध घर उससे अपने हाथ, अपनी बाहे, अपना चेहरा रगडने लगी.... व्यर्थ, वह गन्ध छूटती नही, वह योके मे भीतर तक बस गई है । वह योके की अपनी गन्ध है – योके ही वह गन्ध है उसने एक बार विमूढ भाव से अपने हाथ की ओर देखा, फिर गिलास सूंघा - इफ - बर्फ भी मृत्यु-गन्ध से भरी हुई थी । या कि उसके स्पर्श से ही वह गन्ध बर्फ मे भी बस गई है[2] । जब योके के हृदय का कंपन एक हद तक रुक जाता है । तब सेल्मा के कमरे तक पहुँचकर उसके मुर्दे शरीर को कम्बल से लिपटकर उठा लेती है और बर्फ के भीतर दफनाती है । लेकिन निरर्थकता बोध एवं अकेलापन का भाव हमेशा केलिए उमडता है ।

'योके' शीर्षक परिछेद मे योके की अन्तिम परिणति है । उसका अन्तिम समय जगन्नाथन नामक व्यक्ति के साथ बीतती है । उस घटना स्थल पर जगन्नाथन का कैसे आना हुआ, वह किस देश का आदमी है (योके और सेल्मा विदेशी पात्र है और इस सन्दर्भ मे जगन्नाथन की देशीयता के बारे मे विचार करना अनुचित नही) उसका उपन्यास की चरम-स्थिति उसकी परिकल्पना का अर्थ है आदि बाते विचारणीय है । अज्ञेय का वक्तव्य निम्नस्थ दिया जा रहा है – जगन्नाथन प्रतीक नाम चाहे जिस भाषा मे अनुवाद कर लीजिए । प्रतीक वह भारतीयता का नही, आस्था है - आस्था मे ही पूर्व और पश्चिम की दृष्टि मिल सकती है । यहाँ पश्चिम लौकिक पश्चिम नही रहता जिससे हम 'वेस्ट' कहते है, जो ईसाइयत' का पर्याय हो जाता

---

1 अज्ञेय - अपने अपने अजनबी पृ.95

2 वही पृ.96

है, वह बिलकुल दूसरी चीज है । जगन्नाथन मे अहेतुक करुणा है, दया नही करुणा । जगन्नाथन आस्था का प्रतीक है । आस्था आस्था है, सिद्धान्त नही । यानी अन्ततोगत्वा यह अहेतुक ज्ञान है । इसलिए कारण देकर यह दिखाना कि कैसे एक आस्था दूसरी आस्था मे परिणत हो गई, असंभव है[1] इतना ही है कि वह (योके) एक आस्था तक पहुंचती है जिससे उसको मुक्ति मिली मानी जा सकती है । जगन्नाथन अच्छा आदमी है, यह विश्वास अहेतुक ही योके की आस्था का संकेत है[2] । पतितावस्था मे योके की मुलाकात जगन्नाथन से होती है । वह जगन्नाथन से कहती है कि उसने स्वतंत्रता को चुन लिया है । उसकी चाह के अनुसार उसने चुना है । वह जगन्नाथन के सामने अपनी इच्छा प्रकट करती है 'मै चाहती थी किसी अच्छे आदमी के पास मरूं । क्योंकि मै मरना नही चाहती थी-कभी नही चाहती थी । मुझे माफ कर दो नाथन । तुम जरूर मुझे माफ कर दोगे । तुम अच्छे आदमी हो । बताओ - अच्छे आदमी हो न ?[3] इस प्रकार जगन्नाथन अच्छे आदमी - आस्था के प्रतीक की उपस्थिति मे उसकी मृत्यु हो जाती है । इसलिए वह कहती है कि कह दो सारी हरामी दुनिया से कह दो, अन्त मे हारी नही - अन्त मे मैने जो चाहा सो किया - मरजी से किया । चुनकर किया[4] । मृत्यु के वरण मे उसका अपना चुनाव है । चाहे वह आस्था के प्रतिक जगन्नाथन को उपस्थिति मे या और किसी की उपस्थिति मे । लेखकीय वक्तव्य के अनुसार वह एक आस्था तक संचरण करने की प्रक्रिया है ।

प्रारंभ मे कहा गया है कि योके का दृष्टिकोण पश्चिमी दृष्टिकोण के निकट है । पश्चिमी दृष्टि/सौम्यता के नाम पर राग को नियंत्रित करना चाहती है और जीवन प्रेम के नाम पर मृत्यु की चेतना को दबा देना चाहती है । भारतीय दृष्टि राग को पूजा के आसन पर प्रतिष्ठित करती है और मृत्यु को गहरे एक गहरे सत्य के रूप मे स्वीकार करती है[5] जो हमें सेल्मा के विचारो मे प्रतिफलित पाती है । उपन्यास के अन्त मे अज्ञेय मनुष्य के अपरिहार्य

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 डा. रणवीर रांग्रा - सृजन की मनोभूमि पृ. 129-30
2 वही पृ. 129
3 अज्ञेय - अपने अपने अजनबी पृ. 109
4 वही पृ. 110
5 अज्ञेय - एक बून्द सहसा उछली पृ. 318

अन्त को सामने रखकर उस स्वतंत्रता का निषेध करते है योके जीवन मे वरण रूप पाती है तो केवल मृत्यु का । और मृत्यु की एक आस्थावान की उपस्थिति मे । अतः योके मे अन्ततः आस्था का जागरण होती है ।

अज्ञेय के अनुसार आस्था मनुष्य के विकास केलिए परम आवश्यक केन्द-बिन्दु है । संस्कृति के विकास केलिए आस्था एक आयाम प्रस्तुत करती है । उसका दूसरा आयाम है विद्रोह – मै मानव हूं । मानव का एक आयाम अगर आस्था का है तो एक विद्रोह का भी है । दोनो ही स्वाधीनता के आयाम है जैसे विद्रोह मेरी असमर्थता मे बद्धमूल नही है वैसे ही मेरी आस्था भी मेरी अक्षमता मे बद्धमूल नही है - दोनो मेरे स्वाधीन धर्म है । दोनो स्वाधीन कर्म नही, मेरे स्वाधीन कर्म की दो दिशाएं है वे अलग अलग हो सकती है, पर प्रतीकूल नही होनी चाहिए[2] । संस्कृति का अर्थ है मनुष्य का परम्परार्जित विकासेतिहास का लेखा जोखा और उसकी पुनः प्रगति केलिए मानवीय मूल्यो की, मानवीय इकाई की प्रगति वांछित है । अज्ञेय का यह दृष्टिकोण उनकी परवर्ती रचनाओ मे गुंफित है । इस अर्थ मे अपने अपने अजनबी एवं आंगन के पार द्वार जैसी रचनाएं समान्तर चलती है । वे सृजनात्मकता को आस्थागत अनिवार्यता के बूते पर स्थित करते हैं । यह विकास अज्ञेय के लेखक का ही विकास है ।

<u>निष्कर्ष</u> - 'अपने अपने अजनबी' मे अज्ञेय का उपन्यासकार निरंतर खोज मे रत दीखता है । मनुष्य को एक इकाई के रूप मे न लेकर एक पूर्ण सत्ता के रूप मे स्वीकारा गया है । अतः इस उपन्यास मे पात्र एवं समय का पात्रगत एवं समय गत विशेषताओ से बढकर महत्व प्रदान किया गया है । इस कारण से यहां सृजनात्मकता की पराकाष्ठा तक पहुंचने के लिए सृजन - विधि के सामान्य स्तरो से उपर उठना अनिवार्य हो गया है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 कल्पना (फरवरी - '75) नवल किशोर का लेख – अपने अपने अजनबी पुर्नमूल्यांकन
2 अज्ञेय – अन्तरा –(पहला संस्करण) पृ. 11-12

छठा अध्याय

हिन्दी कहानी - अज्ञेय तक

कथा साहित्य और भारतीय परम्परा - प्राचीन भारतीय साहित्य का जो विराट रूप है वह काव्यों, नाटकादि पुराने साहित्यिक रूपों में बिखरा पड़ा है । यह विदित है कि प्राचीन साहित्य का रूप पद्यमय था । इन काव्यों की विशेषता उसकी कथात्मकता थी । अतः भारतीय अध्येताओं केलिए कथा-साहित्य कदापि एक नई चीज़ नहीं है ।

कथा का प्राचीन रूप वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत आदि सभी युगों में काफी मात्रा में उपलब्ध है । वैदिक ऋचाओं में प्राकृतिक शक्तियों का वर्णन मिलता है । इन प्राकृतिक शक्तियों को कभी-कभी ईश्वरीय प्रभुत्व का प्रतीक मान लिया गया था । जैसे वायु, अग्नि, समुद्र आदि । समय के परिवर्तन के साथ यही शक्तियाँ देवताओं की परम्परा से जुटने लगी । जिन देवताओं के नामों का उल्लेख मात्र वेदग्रन्थों में मिलता है वे ही बाद में विस्तृत कथा ग्रन्थों की परम्परा बनाते हैं । उदाहरण केलिए हम विष्णु, राम और इन्द्र आदि देवताओं का उल्लेख कर सकते हैं । इस परिवर्तन को हम एक प्रकार से कथात्मक काव्यों का विकास भी मान सकते हैं ।

हमारे अतीत - साहित्य में कथात्मक आख्यानों की कमी नहीं रही । पैशाची प्राकृत में रचित गुणाढ्य की बृहत् कथा का महत्वपूर्ण स्थान है । अलावा इसके कथा सरित् सागर, वैताल पंचविंसतिका, पंचतंत्र एवं हितोपदेश आदि संस्कृत कालीन कथा आख्यानों का प्रमुख रूप रहे हैं । इन उपदेश प्रधान या नीतिपरक कथाओं में घटनाओं का सिलसिलेदार कड़ियों आदि से अन्त तक ऐसी पिरोई गई है कि कुतूहलता का अंश सब कहीं बिखरा पड़ा है ।

अपभ्रंश, प्राकृत एवं पालि युग मे बौद्ध-जैन जातक कथाओं की प्रचुरता थी। इन जातक कथाओं की एक लम्बी परंपरा है। बाद मे वह संस्कृत कालीन पद्यमयता हिन्दी साहित्य के आविर्भाव काल से लेकर खडीबोली के आविर्भाव काल तक बनी रही। सूरदास का सूरसागर, तुलसी के मानस आदि इसके उदाहरण है।

सन् 1880 से खडीबोली गद्य का प्रारंभ माना जा सकता है। इसका विकास राजनैतिक एवं सामाजिक कारणों से द्रुतगति से होता रहा और खडीबोली गद्य मे साहित्यिक कृतियों की रचना होने लगी। कथा साहित्य के सन्दर्भ मे कुछ ऐसी रचनाओं का नामोल्लेख किया जा सकता है :-

(1) लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' (2) सदलमिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' (3) ईशा अल्लाखां की 'रानी केतकी की कहानी'

यहां यह सन्देह होना स्वाभाविक है कि उपर्युक्त रचनाओं को हिन्दी कथा साहित्य का आदि रूप मानना है या नही ? इन्हें हिन्दी कथा साहित्य का आदि रूप माने तो आधुनिक कहानी और इन कहानियों के स्तर मे क्या अन्तर है ? यहां पर उपर्युक्त रचनाओं की कुछ पंक्तियां उद्धृत है जिससे उनकी विशेषताये किस दिशा का संकेत देती है यह स्पष्ट हो जाएगा। 'यों तो प्रेमसागर हिन्दू धर्म तथा हिन्दू सभ्यता के आधारभूत स्तंभ, महर्षि व्यास रचित श्रीमद् भागवत् के दसवे स्कन्ध का रूपान्तर है। इसमे भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण की ही लीलाओं का वर्णन है।[1]' इस ग्रन्थ का एक अंश इस प्रकार है - 'इतनी बात सुनी तो बैल सिर झुका - महाराज यह पापरूप काले बरन डरावनी मूरत जो आपके सम्मुख खडा है तो कलियुग है इसीके आने से मै भाग जाता हूं[2]'।

सदलमिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' का अंश इस प्रकार है - 'एक समय राजा जनमेजय गंगा के तट पर बारह बारस यज्ञ करते रहे। एक दिन स्नान पूजा करि ब्राह्मणों को बहुत सा दान दे, देवता, पितरो को तृप्त करके पंडितों को साथ लिए मुनि के पास जा, दंडवत कर खडे हो, हाथ जोड कहने लगे[3]।' 'रानी केतकी की कहानी' का

- -

1 लल्लूलाल - प्रेमसागर (भूमिका से) (1963) पृ.2 —2— वही पृ.2

3 सदलमिश्र - नासिकेतोपाख्यान (सम्पादक श्यामसुन्दर दास) (संवत् 2007) पृ.2

उद्धृत अंश देखिए - 'सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ तुम अपने बनानेवाले सामने जिसने हम सबको बनाया और बात की बात मे वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसीने न जाना'[1] ।

उपर्युक्त तीन उद्धृत गद्यांश खडीबोली के प्रथम कथा-स्वरूप के परिचायक है । लेकिन अब यहा यह प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त रचनाओ को अगर कहानी का प्रारंभिक रूप माने तो तुलसी रामायण और सूरसागर को हिन्दी कहानी की पहली कडी क्यो न मान लिया जाय ? वस्तुतः हिन्दी कहानी उस आधुनिक साहित्य विधा का रूप है जो पश्चिम के प्रभाव मे काफी एकोन्मुख होकर एक नई विधा बन गई । तब भारतीय कथा परंपरा एवं आधुनिक कहानी का क्या संबन्ध है ? यद्यपि भारतीय साहित्य मे कथा आख्यानो की कमी नही रही फिर भी आधुनिक कहानी से उसका संबन्ध नही के बराबर है ।

आलोचक वात्स्यायन प्राचीन भारतीय परम्परा से परोक्ष संबन्ध मानते हुए भी आधुनिक कथा साहित्य का प्रारंभ बीसवी शती से पूर्व नही मानते है । 'हिन्दी मे आधुनिक कहानी की सीधी परंपरा बीसवीं सती से पूर्व नही । प्राचीन कथा साहित्य से वह सम्बद्ध है अवश्य, पर उसके रूप का विकास उस व्यापक पुनरुद्धान का पक्ष है जो उन्नीसवी शती के अंतिम दिनो और बीसवी के पहले दशक मे भारतीय जीवन के हर अंग को प्रभावित करने लगा । और मानना होगा कि इसे पाश्चात्य साहित्य से बहुत कुछ प्रेरणा मिली कुछ तो सीधे, कुछ बंगला से छनकर क्योंकि अंग्रेजो और अंग्रेजो के साथ कलकत्ता के प्राचीनतम परिचय के कारण विदेशी प्रभाव प्रायः सबसे अधिक बंगला मे प्रकट होते रहे'[2] । सीधे हो या छनकर विदेशी प्रभाव आधुनिक कहानी के सन्दर्भ मे प्रकट है ।

आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य के विकास मे पत्रिकाओ का योगदान विशेष स्मरणीय है । उनका उल्लेख भी हम यहा करेंगे । उन पत्रिकाओ मे विशेषरूप से सरस्वती इन्दु पत्रिका आदि मुख्य है ।

<u>सरस्वती पत्रिका</u> - सन् 1900 ई. मे सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन हुआ । जिसके ज़रिए अनेक साहित्यिक विधाओ को पनपने का सुअवसर भी मिल गया । 'सरस्वती' का प्रारंभ

---

1 इंशा अल्लाखाँ रानी केतकी की कहानी(पाँचवा संस्करण) पृ. 1
2 सच्चिदानन्द वात्स्यायन हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य (1967) पृ. 103

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण घटना मानना चाहिए । सवस्वती मे किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा लिखित 'इन्दुमती' नामक कहानी प्रकाशित हुई, प्रस्तुत कहानी शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पस्ट' के इतिवृत से मिलती जुलती है । भारतेन्दु की स्वप्न - कल्पनात्मक शैली मे रचित कहानियो का प्रकाशन भी होता रहा, लेकिन भारतेन्दु की ऐसी रचनाओ का कहानी के शिल्प से सम्बन्ध नही है । डा.श्रीकृष्णलाल ने 'इन्दुमती' को हिन्दी का सर्वप्रथम कहानी माना है[1] । इसी पत्रिका मे श्री.रामचन्द्रशुक्ल की एक कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' भी प्रकाशित हुई । डा.लक्ष्मीनारायणलाल इस कहानी को हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानते है[2] ।

<u>इन्दु पत्रिका</u> - इन्दु पत्रिका के प्रकाशन के साथ हिन्दी कहानी साहित्य का विकास उत्तरोत्तर बढता गया । इसके प्रारंभिक अंको मे प्रसाद की कहानियो का प्रकाशन हुआ । प्रसाद जी की पहली कहानी 'गाव' इसी पत्रिका मे प्रकाशित हुई । अन्य कतिपय कहानियो भी इन्दु के माध्यम से प्रकाश मे आई । बहुत सी बंगला कहानियो का अनुवाद कार्य भी काफी अर्से तक चला आ रहा था । बंग महिला की 'दुलाई वाली' इनमे एक अनन्यतम कहानी है ।

'हरिश्चन्द्रमैगज़ीन', 'जमाना', 'माधुरी', 'चाद' आदि पत्रिकाओ ने भी कहानी के विकास मे योग दिया है । आधुनिक भावबोध की पहचान बाद मे आए प्रेमचंद प्रसाद, गुलेरी जैसे कहानीकारो की कहानियो मे लक्षित होती है । इन तीनो की कहानियो के साथ आधुनिक कहानी के विकास का प्राथमिक चरण आरंभ होता है । प्रकाशन काल के अनुसार इनकी कहानियो का क्रम इस प्रकार है :-

प्रसाद	- पहली कहानी	- 'ग्राम'	- सन् -	1909
प्रेमचन्द	- ,,	- अंधेर	- सन् -	1923
गुलेरी	- ,,	उसने कहा था-	सन् -	1915

इनमे गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' वह प्रथम कहानी है जिसकी रचना के साथ आधुनिक भावबोध और कहानी का पारस्परिक सम्बन्ध अधिक बंध गया । अतः एक

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 डा.श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (चतुर्थ संस्करण) पृ.322

2 डा.लक्ष्मीनारायणलाल : हिन्दी कहानियो की शिल्पविधि का विकास (द्वितीय संस्करण) पृ.57

दृष्टि से 'उसने कहा था' हिन्दी कहानी साहित्येतिहास की प्रथम मौलिक, पूर्ण एवं संवेदनशील कहानी है । इसलिए प्रस्तुत कहानी का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है ।

गुलेरी - उसने कहा था – अमृतसर के चौक की आंचलिक विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए कहानी का आरंभ होता है । वहाँ के इक्केवाले, दूकानवाले आदि के वार्तालाप के माध्यम से चौक का परिचय कराते हुए कहानीकार हमारा ध्यान केन्द्रावस्थित कराने का कार्य करते हैं । गुलेरीजी की सफलता उनकी अकृत्रिमता और लचीलेपन में है ।

दूसरा दृश्य कथानक का वह पहला मोड़ है - एक बारह बरस का लड़का - एक आठ बरस की लड़की, दोनों मिलते हैं । एक साधारण और सीधी बात । बच्चों की खिलवाड़ करने की प्रवृत्ति निम्नांकित शब्दों में प्रकट है । 'तेरी कुड़माई हो गयी क्या'? 'धत्' कहकर भागना । इस प्रकार का खेलकूद रोज़ होना है । एक दिन लडकी का उत्तर लडके को असमंजस में डाल देता है – 'हां हो गयी, देखते नहीं रेशम से कढा हुआ सालू' । लडकी भाग जाती है । लडके का वापस जाना - एक दूसरे लडके को मोरी में ठकेल देना, कुत्ते पर पत्थर फेंकना, वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाना । यह सब एक बाल मन की गहराई में से उद्भूत संघर्ष की झलक उपस्थित करता है ।

लहनासिंह घर आकर वापस जा रहा था । तब सूबेदार हजारासिंह का खत मिला कि जाते वक्त मिलके जाना । हज़ारासिंह के यहाँ लहना की मुलाकात सूबेदारनी से होती है - वही लडकी जिसके साथ खिलवाड किया करता था । उनकी भीख के अनुसार - ' अब दोनों जाते हैं, मेरे भाग । तुम्हें याद है कि न टांगेवाले का घोडा दहीवाले की दूकान के पास बिगड गया था । तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे । आप घोडों की लात में चले गए थे और मुझे उठकर दूकान के तख्त पर खडा कर दिया था । ऐसे ही इन दोनों को बचाना । यही मेरी भिक्षा है । तुम्हारे आगे आंचल पसारती हूं । यही भिक्षा लहना को युद्धक्षेत्र में बुद्धि देती है, उत्तेजना देती है और इसके फलस्वरूप वह हज़ारासिंह और बोधासिंह दोनों को बचाता है अपने प्राण कुर्बान कर देता है - ये सब अन्तिम घडी के स्मृतिचित्र हैं ।

'उसने कहा था' कहानी ने हिन्दी कहानी साहित्य में जिस महत्वपूर्ण स्थान को

अर्जित किया उसे कालखण्ड के सन्दर्भ में मिलाते हुए इन्द्रनाथमदान ने उसकी वास्तविक महत्ता को व्यक्त कर दिया है । उनके अनुसार जब कहानी की अवस्था घुटनों के बल पर चलने को हुई थी तभी । उसने कहा था' की रचना हुई थी । इसलिए यह महत्वपूर्ण बन पाया । लेकिन मेरे विचार में इसकी महत्ता को कालखण्ड के सन्दर्भ में जुटाने की कोई आवश्यकता नहीं बल्कि इसके शिल्पगत सौन्दर्य और भावगत गुम्फन परवर्ती कहानियों से बढ़कर स्वाभाविक है । इसकी रचना प्रक्रिया प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानियों के साथ होड़ लेने में भी समर्थ है । अतः प्रेमचन्द एवं प्रसाद की प्रथम कहानियों की तुलना में, यह अधिक सफल और सुन्दर लगती है ।

आगे अज्ञेय तक के कहानी - साहित्य में विकास क्रम की ओर दृष्टिपात करने केलिए कहानी साहित्य की प्रतिनिधि प्रवृत्तियों को विभिन्न धाराओं में विभक्त करके देखना मुझे उचित लगता है । प्रत्येक धारा के प्रतिनिधि लेखकों की प्रमुख रचनाओं पर प्रकाश डालना हमारा ध्येय है । प्रेमचन्द से अज्ञेय तक के हिन्दी कहानी साहित्य को मुख्य रूप से चार धाराओं में विभक्त कर सकते हैं, वे इस प्रकार हैं :-

(1) सामाजिक धारा - प्रतिनिधि लेखक - प्रेमचंद

(2) ऐतिहासिक - सांस्कृतिक धारा - प्रतिनिधि लेखक - प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा

(3) मनोवैज्ञानिक धारा - प्रतिनिधि लेखक - जैनेन्द्र एवं जोशी

(4) साम्यवादी धारा - प्रतिनिधि लेखक - यशपाल, सांकृत्यायन ।

(1) सामाजिक धारा -

प्रेमचंद - प्रेमचन्द का आविर्भाव हिन्दी कथा-साहित्य की एक महत्वपूर्ण घटना है । कहानी साहित्य में ही नहीं बल्कि समूचे हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द साहित्य ने जिस मानक स्तर का परिचय दिया वह किसी भी हालत में कम महत्वपूर्ण नहीं है । उपन्यास को उन्होंने एक स्थायी रूप प्रदान किया । कहानी के क्षेत्र में उन्होंने एक नया आलोक फैला दिया ।

प्रेमचन्द की महानता का मानक क्या है ? और क्यों है ? इसको कैसे कहानी के सन्दर्भ में परखा जा सकता है । प्रेमचन्द साहित्य का कैनवास् बहुत विस्तृत है । जीवन

---

1 इन्द्रनाथ मदान हिन्दी कहानी - सर्वेक्षणमाला (1968) पृ.81

के प्रति उनका दृष्टिकोण विशाल है । उनका दृष्टिकोण 'डिस्ट्रक्टीव' न होकर ' 'कन्स्ट्रक्टीव' है । यह उनके जीवन-दर्शन का एक पहलु मात्र है । युग सत्य और युग चेतना दोनों को साथ रूप में उन्होंने देखा । युग सत्य वह वास्तविक सत्य है जिसक सम्बन्ध किसी काल खण्ड से मात्र नहीं है । लेकिन युग-चेतना सामयिकता से जुटनेवाली बात है । उस सत्य की परख सभी कलाकारों में नहीं होती है । युग चेतना परिवेश के साथ बंध जाने का आग्रह है और प्रेरणा भी । अब विचारणीय है कि उनकी कहानियों ने जो आलोक विकीर्ण किया है उसमें युग सत्य और युग चेतना का स्वर कैसे गूंज उठा है और वह कहां तक प्रभावकारी है । आधुनिक युग के कहानीकार राजेन्द्रयादव प्रेमचन्द को आधुनिकता के सन्दर्भ में देखते हुए लिखते हैं - 'प्रेमचन्द को अपने आसपास के जीवन और परिवेश के लगाव था और उस परिवेश के साथ प्रेमचन्द की रचनात्मक या साहित्यिक यात्रा बहुत साफ दिखाई देती है[1] । प्रेमचन्द की जीवनयात्रा और साहित्यिक यात्रा एक ही लीक पर समानान्तर होकर चली । इसलिए पूर्वाग्रह से सबन्ध छुडाकर नई नई उर्वरा - भूमियों की ओर वे अग्रसर होते गए । पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्परा से सबन्ध स्थापित करने की कोशिश उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियों में नहीं पाई जाती । इसलिए एक समृद्ध परम्परा प्रेमचन्द के साथ आरंभ होती है ।

कहानी साहित्य के सम्बन्ध में यह निर्विवाद बात है कि उन्होंने रचनात्मकता के सन्दर्भ मे एक उचित मानक स्तर बनाया । इस मानक स्तर की परिणति कहां से उत्पन्न होती है ? यह उस आग्रह की परिणति है जो मानव इतिहास को नए सिरे से आकने के लिए आकुल है । सामन्तवादी परम्परा और सामयिक ब्रिटिश राजनीति के पैरोंके नीचे घुटते हुए आजीवन अन्याय का सहन करते हुए जीवन बितानेवाले एक वर्ग को प्रेमचन्द ने देखा। प्रेमचन्द स्वयं उसी वर्ग में से होकर आनेवाले थे । इसलिए उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की शक्ति उन्होंने पहले पहल हासिल की और उन्होंने अपने को हमेशा अनीति के विरुद्ध लड़नेवाले नायक के रूप में स्वीकार किया ।

प्रेमचन्द का लेखन काल सन् 1900 से लेकर 1936 तक है । एक दृष्टि से उनका साहित्य इन छत्तीस वर्ष के भारतीय इतिहास का चित्र माना जा सकता है । छत्तीस वर्ष

---

1 सम्पादक कमल कोठारी
[illegible] प्रेमचन्द के पात्र' (प्रस्तावना-राजेन्द्रयादव

के मानवीय इतिहास का, भारतीय जनता का चित्र प्रस्तुत किया गया है । अतः हम कह सकते है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ एक बिम्ब प्रस्तुत करती है जो ऐतिहासिकता से संबन्ध रखनेवाला बिम्ब, मानवीय चेतना का बिम्ब है । इस बिम्ब की नींव युग सत्य एवं युग चेतना पर आधारित है ।

मुख्य रूप से प्रेमचन्द की कहानियों मे सामाजिक पक्ष प्रबल है यद्यपि प्रारंभकालीन कहानियों मे कुछ मध्यकालीन वातावरण से संबन्धित कहानियाँ है (उदाहरणार्थ रानी सारंधा, राजा हरदौल आदि) जिनमे सामाजिकता के विभिन्न पक्षों से संबद्ध समस्याओं से उभारकर व्यक्त किया गया है । जिस गाँव मे प्रेमचन्द का जन्म हुआ वहाँ के अनपढ किसानों की कथा, महाजनों का अत्याचार और उनका दृष्टिकोण, अत्याचारों से ग्रस्त नारी वर्ग आदि पर प्रेमचंद ने मनोयोग से प्रकाश डाला है ।

<u>प्रेमचन्द की किसान जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ</u> - प्रेमचंद ने कृषक जीवन और ग्राम्य वातावरण से संबद्ध समस्याओं पर प्रकाश डालने वाली कुछ सुन्दर कहानियों लिखी है । जो विशेष उल्लेखनीय है । प्रेमचन्द को अपने गाँव का जीवन इतना प्रसन्द था कि अंतिम दिनों मे जीवन से उन्हें इतनी नफरत हो गयी कि वे चाहते थे कि गाँव जाकर शेष जीवन बितावे । उनकी रंगों मे गाँव की खून बह रहा था । वे भारतीय कृषक जीवन के पोषक थे । अतः उनकी बहुत सी कहानियाँ और कुछ उपन्यास भी कृषक जीवन पर आधारित है । 'गोदान' उपन्यास को कृषक जीवन का महाकाव्य कहा गया है । अपने गाँव को वर्षों बाद देखकर खुश होनेवाले एक किसान को उन्होंने घरजमाई शीर्षक कहानी मे चित्रित किया है । 'जब वह अपने गाँव की अमराइयोंके सामने पहुँचा तो उसकी मातृ-भावना उषा की सुनहरी गोद मे खेल रही थी । उन वृक्षों को देखकर उसका विह्वल हृदय नाचने लगा । मन्दिर का वह सुन्दर कलश देखकर वह इस तरह दौडा मानों एक छलांग मे उसके ऊपर जा पहुँचेगा । वह वेग से दौडा जा रहा था मानो उसकी माता गोद फैलाए उसको बुला रही हो'[1] । ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ लिखते समय प्रेमचन्द स्वयं अपने गाँव मे पहुँच जाते हैं । आम तौर से उनकी कहानियों मे जो एक

1 प्रेमचन्द मानसरोवर - भाग-1 (1962) पृ.151

ठेठपन है, पाठक के हृदय में अपनी बात को सीधे उतार देने की जो ताकत है, वह उन्होंने हिन्दस्थान के अक्षय ग्रामीण कथा भंडार से सीखी है[1]।

आगे कृषक जीवन संबन्धी कुछ कहानियों पर प्रकाश डाला जायेगा ।

सवा सेर गेहूँ – शंकर एक गरीब किसान था । सीधा-सादा । अपने काम से उसे मतलब था । एक दिन सन्ध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके यहाँ डेरा जमाया । घर में जौ का आटा था । वह महात्मा को कैसे खिलाए, गाँव के विप्र महाराज से सवा सेर गेहूँ उधार लेकर आए और महात्मा को प्रसन्न किया । विप्र ने चुपचाप सात साल तक उस 'सवा सेर अनाज को अंडे की भाँति सेकर' एक दिन 'पिशाच खड़ा कर दिया । इसी दुःख में शंकर का देहान्त हो गया । लेकिन विप्रजी छोड़नेवाले नहीं थे । उन्होंने शंकर के बेटे को पकड़ लिया और गुलामी के जंजीर में बांध दिया । इस कहानी का अन्तिम वाक्य द्रष्टव्य है - 'आज तक वह 'शंकर का बेटा) विप्रजी के यहाँ काम करता है । उसका उद्धार कब होगा होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जाने । पाठक ! इस वृत्तान्त को कपोल कल्पित न समझिए । यह सत्य घटना है । ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है[2]। प्रेमचन्द्र की यह कहानी भारतीय गाँवों की आर्थिक पराधीनता अशिक्षा एवं किसानों की मजबूरी आदि पर प्रकाश डालती है । कहानी के अन्त में प्रेमचन्द के शब्द आक्रोश भरे व्यंग्य में परिणत हो गए है - 'ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है । प्रेमचन्द इस गाँव के जरिए एक पूरे भारतीय ग्राम्य जीवन का चित्र उपस्थित करते है । 'सवा सेर गेहूँ' गाँवों में होनेवाली महाजनी लूट की (जिसे और भी चारचाँद लग जाते हैं जब कि महाजन ब्राह्मण हो) एक बहुत ही भयानक, क्रूर कहानी है, जिसे इतने सादे लिबास में पेश किया गया है, इतने सहज, अनलंकृत ढंग से कि वह क्रूरता और भी उभर आती है[3]।

भारतीय ग्रामीण जीवन की सामाजिकता के ऐतिहासिक पक्ष को भी इस कहानी में उभारा गया है । यहाँ कहानी के बाह्य सौन्दर्य पर बल न देते हुए उन्होंने कहानी के तथ्य को प्रेक्ष्य - बिन्दु बनाया है । यही कहानी की सफलता का प्रमाण है ।

---

1 डा.रामविलास शर्मा प्रेमचन्द और उनका युग पृ.115
2 प्रेमचन्द पचास कहानियाँ (1963) पृ.374
3 अमृतराय प्रेमचन्द कलम का सिपाही (1962) पृ.352

ठाकुर की कुआँ - शिल्प-सौन्दर्य की दृष्टि से यह प्रेमचन्द की विशिष्ट कहानियों में नहीं है। लेकिन किसान जीवन के विशेषकर गांव के निरीह शोषित जनों की मजबूरी का एक ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करने में 'ठाकुर की कुआँ' सफल हुई है।

कहानी में जोखू का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठों मारेंगे, साहूजी एक के पांच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है। हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झांकने नहीं आता। कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएं से पानी भरने देंगे ?[1]

जोखू कई दिन से बीमार है। गंगी रात को घर आई थी तो जो पानी घर में था उससे बदबू आ रही थी। जोखू प्यास से तड़प रहा था। गंगी पानी लेने गई। गंगी सचमुच विद्रोही दिल की औरत थी। वह सोचती है - 'हम क्यों नीच हैं और ये लोग उंच हैं ? इसलिए कि वे लोग गले में तागा डाल देते हैं। यहां तो जितने हैं एक से एक छोंट हैं। चोरी ये करें, जाल फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इसी ठाकुर ने उस दिन बेचारे गडरिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद को उसे मार कर खा गया। इन्हीं पंडितजी के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहुजी तो घी में तिल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजदूरी देते नानी मरती है। किस बात में है हम से उंचे। मुंह में हम से उंचे हैं। हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम उंचे हैं हम उंचे[2]। इतने में किसी की आहट सुनकर उसकी छाती धक-धक करने लगी। वह छिपकर बैठ गई। उन लोगों के जाने के बाद दबे पांव कुएं की जगत पर चढ़ी। विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था। उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दायें बाएं खोज की दृष्टि से देखा। अंत में देवताओं को याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ा कुएं में डाल दिया। ज़रा भी आवाज़ न हुई। घड़ा कुएं के मुंह तक आ गया। एकाएक ठाकुर का दरवाज़ा खुल गया। गंगी के साथ से रस्सी छूट गई और वह भाग चली। जब घर पहुंचकर देखा तो जोखू बदबूदार पानी पी रहा है।

लूट, मार, शोषण, घूस खोरी आदि से घृणित पात्र प्रेमचन्द के ही पात्र हैं। गंगी और गोखू भी उनमें से हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

[illegible] 2. वही पृ 60

पूस की रात - प्रेमचन्द की परवर्ती कहानियों मे 'पूस की रात' महत्वपूर्ण मानी गई है हल्कू पूस महीने की ठंठी रात मे फसल की देखरेख केलिए गया हुआ था । साथ मे उसका कुत्ता जबरा भी था । उसने पत्ते बटोरकर आग लगायी और सर्दी से बचने का प्रयास किय और वह आराम से सोने लगा । तब जबरा के भूकने की आवाज़ सुनाई पडी । हल्कू को मालूम था नीलगायें उसकी फसल चर रही है । जानते हुए भी वह उठना नही चाहता था और वही पडा रहा । जब सबेरे उठकर देखा तो सारे के सारे फसल चर दिए गए है ।

इस कहानी का कथानक या प्लाट बहुत ही संक्षिप्त है । लेकिन इसका वैचारिक क्षेत्र बहुत विस्तृत है । इसमें 'मानवीय अनुभवों का एक अनुक्रम, वैचारिक दृष्टि विकास का अनुक्रम अबाध रूप मे मिलता है[1] ।

हल्कू एक किसान है । लेकिन फिर भी उसे अपने घर बार की देखभाल केलिए मज़दूरी और करनी पडती है । नाम केलिए किसान, पेट भरने केलिए उसे मजबूर भी बनना पड़ता है । इसलिए उसकी बीवी मुन्नी कहती है - 'मै कहती हू, तुम क्यो नही खेती छोड देते ? मर मर कर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई । बाकी चुकाने केलिए हो तो हमारा जनम हुआ है । पेट केलिए मजूरी करो । ऐसी खेती मे बाज आए, तुम छोड दो अब की से खेती । मजूरी मे सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी । किसी की धौंस तो न रहेगी[2] । हल्कू अपनी दीनता पर पानी पानी हो रहा था ।

प्रेमचन्द की कहानियों मे किसान एक मुख्य पात्र है जो कुलमिलाकर भारतीय किसानों का प्रतिनिधित्व करता है । इन्ही का रूप 'कर्मभूमि' और गोदान मे मिलता है । अपनी दीनता केलिए विवश और मजबूर किसान खेती करता है और पेट भरता है किसी दूसरे का । सामाजिक नियम का रूप । इन्ही सामाजिक असंगतियों का यथार्थ वर्णन 'पूस की रात' जैसी कहानियों मे स्पष्ट है । इसलिए प्रकट रूप मे न सही परोक्ष रूप मे एक पूरे नियम को तोड डालने की विद्रोह भावना प्रेमचन्द के वैचारिक क्षेत्र मे प्रतिफलित लगती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 गंगाप्रसाद विमल प्रेमचन्द - आज के संदर्भ मे पृ. 107

2 प्रेमचन्द मानसरोवर (भाग - 1) पृ. 155

कृषक जीवन से सम्बद्ध उपर्युक्त कहानियो के अध्ययन के उपरान्त हम प्रेमचन्द की अन्य कुछ विशिष्ट कहानियो की विवेचना करेगे । हमारे विचार मे प्रेमचन्द की विशिष्ट कहानियो मे कफन, शतरंज के खिलाडि, मनोवृत्ति विशेष उल्लेखनीय है ।

प्रेमचन्द की विशिष्ट कहानियां - कफन - इस कहानी की रचना हिन्दी कहानी साहित्य के संदर्भ मे एक महत्वपूर्ण घटना मान लेनी चाहिए । लगता है, कफन मे प्रेमचन्द के सामाजिक दृष्टिकोण का वैचारिक पक्ष बहुत कुछ क्रान्तिकारी हो गया है । समाज के हितार्थ माता आदर्शवादी कथापात्रो के सृजन से बढकर नैतिक मूल्यो की अंतसत्ता की ओर झांककर कुछ कहने का प्रबल आग्रह जो विद्रोह का परिचायक है 'कफन' मे देखा जा सकता है ।

सामाजिक विधान की अर्थहीनता के ही चित्र नही बल्कि वह समाज की मूल असंगति के प्रति असंतोष का चित्र है । कफन कहानी मे माधव और घीसू एक नियत सामाजिक विधान केलिए चुनौती बनकर सामने आते है । वस्तुतः ये पात्र है तथा वे विसंगत के व्यंग्य के प्रतीक पात्र है । वास्तव मे वे इसी सामाजिक विषमता की देन है[1] । इस कहानी मे प्रेमचन्द का घीसू के बारे मे जो वक्तव्य है वह सामाजिक विधान की चुनौती के रूप मे अभिव्यक्त हुआ है । जिस समाज मे दिन रात मेहनत करनेवालो की हालत उनकी हालत से कुछ अच्छी न थी, और किसानो के मुकाबले मे वे लोग, जो किसानो की से - 'जिसक समाज मे दिन रात मेह दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कही ज्यादा संपन्न थे, ... फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उसे किसानो की सी जी-तोड मेहनत तो नही करनी पडती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा न उठाते[2] ।

घीसू और माधो एक ऐसी मानसिकता की उपज है जो पिछडी सडी हुई सामाजिकत के विरुद्ध उठी हुई भावना के निमित्त है । इसलिए सामाजिक नियति को नकारने की क्ष क्षमता इस कहानी मे है । जिस सामाजिक नियम को घीसू और माधो तोडते है वह एक सूचक मात्र है ।

शतरंज के खिलाडी - इस कहानी के सन्दर्भ मे एक पुरानी घटना का जिक्र करते हुए अमृतराय लिखते है । एक साहित्यिक समारोह केलिए प्रेमचन्द गए हुए थे । वहां के लोग

1 गंगाप्रसाद विमल प्रेमचन्द आज के संदर्भ मे पृ. 106

2 मधुमंजरी (द.भा.हि.प्र.सभा, मद्रास-1964) पृ. 12

प्रेमचन्द को म्यूज़ियम दिखलाना चाहते थे । म्यूजियम देखने चले । हज़ारो वर्ष पुरानी चीज़ो को देखा और वे बोले 'हमे इन समस्याओ की ओर ध्यान देना चाहिए । इन जंगली लोगो को सभ्य बनाना चाहिए । हज़ार वर्ष पहले मिट्टी मे गडी हुई चीज़ो से क्या लाभ हमे तो वर्तमान की रक्षा का प्रश्न हल करना चाहिए[1] । आगे अमृतराय लिखते है - शतरंज के खिलाडी के संग भी यही बात है । नवाबी जमाने की पस्ती के दौर की यह कहानी जो लिखी जा रही है सितंबर अक्तूबर 1914 मे, जबकि भारतीय राजनीति भी ऐसी ही पस्ती के एक लम्बे दौर गुज़र रही है, जबकि लोगो मे उसी तरह राजनीतिक भावो का अधःपतन हो गया है । सब अपने अपने खेल तमाशे मे राग रंग मे लिप्त है, देश की चिन्ता किसी को नही है, राजनीति शतरंज की बिसात होकर रह गई है जिस पर सब लोग, सारे दल और गिरोह, अपनी-अपनी चाले चलने मे लगे हुए है, हिन्दू, मुसलमान को नीचा दिखाना चाहता है, मुसलमान हिन्दू को देना चाहता है, असेंबली म्यूनिसिपालिटी मे यहा वहा सब कही सीटो केलिए गोष्ठिया बैठाई जा रही है, नौकरियो केलिए भी छीना झपटी हो रही है और कम्पनी बहादुर का, गोरी सलतनत का सिकंजा किस तरह कसता चला जा रहा है, इसकी किसी को फिक्र नही[2] ।

उपर्युक्त सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक पृष्ठभूमि को छूनेवाली एक ऐसी मानसिकता को उन्होने ऐतिहासिक कल्पना के माध्यम से - मीर साहब और के माध्यम से, एक पतनशील सामन्ती परिवेश मे उभारकर रख दिया है । इस कहानी का जो व्यंग्य है वह अपने ही समय केलिए उजागर किया गया है ।

<u>मनोवृत्ति</u> - प्रेमचन्द की अन्य कहानियो की तुलना मे 'मनोवृत्ति' का शिल्प एवं वस्तु बिल्कुल भिन्न है । इस कहानी को हम प्रेमचन्द की क्रूर - व्यंग्य कहानियो मे स्थान दे सकते है । इस कहानी का इतिवृत्त भी मूलतः सामाजिकता के इर्द-गिर्द मे ही ठहरा हुआ है ।

इसमे एक सुन्दर युवती को बाग मे सोते हुए देखकर भिन्न भिन्न लोगो की भिन्न भिन्न मानसिकता को चित्रित किया गया है । जो व्यंग्यात्मक शैली के कारण अत्यन्त मार्मि

1 अमृतराय प्रेमचन्द कलम का सिपाही पृ.355

2 वही पृ.355

बन गई है । इस कहानी की विशेषता यह है कि इसमे पात्र मुख्य नही बल्कि मानसिकता या मनोवृत्ति मुख्य है ।

प्रेमचन्द की अन्य कहानियो मे 'अलग्योझा' 'रियासत का दीवान', 'काकी' आदि प्रमुख है । नए अनुभव, नई परिस्थिति एवं नए आलोक मे उन्होने कहानी की रचना की। आधुनिक हिन्दी कहानी को नया आयाम देने मे प्रेमचन्द की कहानियां जितनी सहायक सिद्ध हुई उतनी अन्य लेखको की कहानियां नही है ।

प्रेमचन्द की उपर्युक्त कहानियो की विवेचना के बाद हम उनकी कहानियो के कुछ महत्वपूर्ण नारी पात्रो पर प्रकाश डालेगे । प्रेमचन्द के कहानी साहित्य के अध्ययन की पूर्णता केलिए नारी चरित्रो का अनुशीलन सहायक सिद्ध होगा । उनके प्रभावकारी नारी चरित्रो मे कुसुम, सुनीता और चंपा मुख्य है ।

<u>कुसुम</u> - कुसुम एक लज्जाशील, सुघड़ सलीकदार और विनोद प्रकृति की लडकी थी । लेकिन जब से उसकी शादी हुई है वह अपने पति के दुर्वयवहार के कारण रो-रोकर मर रही है । दो-तीन बार ससुराल गई । लेकिन पति उससे नही बोलता।वह उस की सूरत से बेजार है । कुसुम का पति सरल प्रकृति का आदमी था अपनी पत्नी के प्रति अपने दुर्व्यवहार के बारे मे वह बताता है - इस विवाह से मेरी वह अभिलाषा न पूरी हुई जो मुझे प्राणो से भी प्रिय थी । मै विवाह पर रजामंद न था अपने पैरो मे बेडियां न डालना चाहता था । किन्तु जब महाशय नवीन बहुत पीछे पर गए और उनकी बातो से मुझे यह आशा हुई कि सब प्रकार से मेरी सहायता करने को तैयार है, तब मै राजी हो गया, पर विवाह होने के बाद उन्होने मेरी बात भी न पूछी । मुझे एक पत्र भी न लिखा कि कब तक मुझे बिलायत भेजने का प्रबन्ध कर सकेगे । हालांकि मै ने अपनी इच्छा उन पर पहले ही प्रकट कर दी थी, पर उन्होने मुझे निराश करना ही उचित समझा । उनकी इस अकृपा ने मेरे सारे मनसूबे धूल मे मिला दिए[1] । यह सुनकर कुसुम के पिताजी युवक को पैसा भेजने केलिए राजी हो गए तब कुसुम बीच मे आ गई । उसके अनुसार पैसा देना उस तरह की डाकाजनी है, जैसी बदमाश लोग किया करते है । किसी आदमी को ले गए और उसके घरवालो से उसके मुक्तिधन के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली'[2]।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 प्रेमचन्द मानसरोवर (भाग - 2) पृ 21-22 - 2 - वही पृ 23-24

कुसुम का अन्तिम वाक्य इसप्रकार है जो उसके हृदय की दृढता का सूचक है - 'जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है, उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा । मै कह देती हूं, वहां एप गए तो मै ज़हर खा लूंगी । इसे दिल्लगी न समझना । मै ऐसे आदमी का मुंह भी देखना नहीं चाहती । मै ने स्वतंत्र रहने का निश्चय कर लिया है ।

कुसुम को प्रेचन्द ने दृढ चरित्रवाली आधुनिक नारी के रूप मे चित्रित किया है । वह पति को परमेश्वर के रूप मे मानने केलिए भी तैयार है, यह उसके पत्रों से व्यक्त होता है । लेकिन जो पति अपनी लालच केलिए जीवन के अन्त तक बंध गए बंधन के तार को तोड सकता है, और प्रेम को निराधार समझ सकता है उसके साथ निभ जाने केलिए तैयार नहीं होती । जो कुसुम कहानी के प्रारंभ मे अत्यन्त सरल लगती है वह अन्त तक आते आते विद्रोही बन जाती है । कुसुम की, गबन की जाल्पा या रंगभूमि की सोफिया से तुलना की जा सकती है ।

<u>सुनीता</u> - सुनीता प्रेमचन्द की 'शान्ति' शीर्षक कहानी की नायिका है । सुनीता देवनाथ और गोपा की इकलौती बेटी है । देवनाथ की अकाल मृत्यु के कारण इन दोनों की हालत बुरी हो जाती है । मगर गोपा अपनी बेटी की शादी ऐसे घर मे कर देना चाहती थी जहां वह रानी बन कर बैठे । इसलिए लोभी मदारीलाल के लडके से शादी तय हो जाती है । सुनीता के पति यही चाहता है कि वह चाहे जिस राह जावे, मुन्नी उसकी पूजा करती रहे । लेकिन मुन्नी भी अभिमानिनी थी । भला, वह कैसे यह सब सह लेती ? ~~इसलिए व वह~~ मुन्नी और उसके पति केदारनाथ के बीच अनबन बढती ही गई । जब केदारनाथ गायब हो गया हो मुन्नी अधिक उदास रहने लगी । उसने उसी दिन चूडियां तोड डाली थी और मांग का सिन्दूर भी पोछ डाला था । सास ने जब आपत्ति की तो उनको अपशब्द कहे । ससुर ने समझाना चाहा तो उन्हें भी जली-कटी सुनाई । ऐसा लगता था कि उसके दिमाग मे उन्माद छा गया हो । एक दिन वह के सबेरे उठकर यमुना की ओर गई । देखने पर उसकी लाश मात्र मिली ।

सुनीता की माता गोपा भी अधिक व्याकुल नहीं थी । वह एक स्वाभिमानी पुत्री की मां थी । वह कहती है - 'मुझे तो मुन्नी की मृत्यु से प्रसन्नता हुई । दुखिया

---

1 प्रेमचन्द मानसरोवर (भाग - 2) पृ 24

अपनी मान मर्यादा केलिए संसार से विदा हो गई । नहीं तो न जाने क्या क्या देखना पडता । इसलिए और भी प्रसन्न हूँ कि उसने अपनी आन भी निभा दी । स्त्री के जीवन मे प्यार न मिले, तो उसका अन्त हो जाना ही अच्छा है । ...... मै उसे याद करके रोऊँगी नहीं । लेकिन वह शोक के आँसू न होंगे हर्ष के आसू होंगे-।

चम्पा - चम्पा एक आदर्श नारी पात्र है । वह चन्द्रप्रकाश की पत्नी है । प्रकाश केलिए बी.ए.पास करने पर भी नौकरी ने मिलने पर ट्यूशन करने के सिवा और कुछ चारा न रहा । लेकिन सेठजी चन्द्रप्रकाश को अपने घर के ही एक आदमी मानता था । यहाँ तक अपने बेटे की शादी केलिए सलाह भी चन्द्रप्रकाश से कर लेता था । विवाह केलिए बनाए गए जेवरों की चोरी हो गई । चन्द्रप्रकाश अपनी हरकत पर स्थिर था । लेकिन वह कहने केलिए तैयार भी न था । लेकिन उसने सेठजी के घर पर रहना छोड दिया और दूसरे घर मे रहने लगा । चम्पा ने देख लिया कि प्रकाश उससे छिपाकर सन्दूक मे देख रहा है । जब उसे सन्देह हो गया एक दिन उसने देख भी लिया तो ठाकुर के यहाँ चोरी की हुई जेबरे थी । उस दिन से चम्पा उदास रहने लगी ।

प्रकाश को बैंक मे मैनेजरी मिल गयी । लेकिन ठाकुर साहब की ओर से दस हज़ार को जमानत देने के बाद ही उसे वह नौकरी मिली थी । इस घटना ने प्रकाश के दिन को घेर लिया । नौकरी मिलने की खुशी मे उसने सेठजी के घरवालों को दावत देने का फैसला भी किया और सब लोग आ गए । उसी रात को प्रकाश उस सन्दूक को सेठजी के घर मे रखकर वापस आ गया । सब लोग प्रसन्न हो गए । जब यह खबर चम्पा के कानों मे पडी तो वह जाकर उसके गले मे लिपट गई और न जाने रोने लगी जैसे उसका बिछुडा हुआ पति बहुत दिनों के बाद मिल गया हो ।

चम्पा एक अभिमानिनी नारी है । बैंक मे नौकरी मिलने पर भी वह इतनी खुश न थी, क्योंकि उसका पति चोर था । लेकिन अब उसने चोरी की माल को वापस कर दिया और अपने चरित्र के कलंक को दूर किया तभी चम्पा आनन्दित होती है ।

प्रेमचन्द के दूसरे स्त्री पात्रों मे 'घासवाली' कहानी की मुलिया और 'सुभागी' की सुभागी विशेष रूप से उल्लेखनीय है । मुलिया चमारिन होते हुए भी दृढ चित्त वाली है।

वह चैनसिंह से कहती है - 'बडे बडे घरो का हाल जानती हू । मुझे किसी बडे घर का नाम बता दो, जिसमे कोई रईस, कोई कोचवान, कोई कहार, कोई पाण्डा, कोई महाराज न घुसा बैठा हो । यह सब बडे घरो की लीला है । और वे औरते जो कुछ करती है ठीक करती है । उनके घरवाले भी चमारिनो और कहारिनो पर जान देते फिरते है । लेना देना बराबर हो जाता है । बेचारे गरीब आदमियो केलिए ये बाते कहा ? मेरे आदमी केलिए संसार मे जो कुछ है, मै हू । वह किसी दूसरी मिहरिया की ओर आख उठाकर भी नही देखता ।[1]

'आहुति' नामक कहानी की रूपमति, 'अन्तिमशान्ति' की शान्ति, बेटोवाली विधवा की फूलमती आदि प्रेमचन्द के विशिष्ट नारी पात्रो मे से है ।

इस धारा के अन्य कहानीकार - कौशिक - प्रेमचन्द परम्परा के कहानीकारो मे विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक विशेष उल्लेखनीय है । शिल्प विधान और वस्तु परकता मे प्रेमचन्द की ही लीक पकडकर उन्होने कहानिया लिखी । उनका प्रेक्ष्य-बिन्दु भी सामाजिकता ही रही थी ।

'ताई' कौशिकजी की एक विशिष्ट कहानी है । इसमे एक वंध्या स्त्री के हृदय परिवर्तन की कहानी सजीव ढंग से वर्णित है । वातावरण की सजावट इस कहानी की आकर्षक विशेषता है । कौशिक ने पारिवारिक जीवन के चित्रण मे अधिक रुचि दिखाई है । प्रेमचन्द के ही समान इन्होने भी राष्ट्रीय एवं धार्मिक क्षेत्र से भी प्लाट चुन लिए है ।

सुदर्शन - इसी परम्परा मे आनेवाले एक और कहानीकार है सुदर्शन । सुदर्शन की कहानियो की विशेषता है कि उन्होने सामाजिकता से बढकर चारित्रिक महत्ता पर बल दिया था

सुदर्शन की एक महत्वपूर्ण रचना है 'प्रेमतरु' जो प्रेमचन्द परम्परा मे आनेवाली कहानी भी है । सन्तान हीन होने के कारण घर के पास उगे हुए एक बेर के पौधे को अपना बेटा समझकर पालनेवाले एक निरीह पति-पत्नी की शोक कथा 'प्रेमतरु' का वर्ण्य विषय है । कहानी लेखन मे सुदर्शन प्रेमचन्द के सतत सहचारी है ।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' - अपनी निजी शैली एवं शिल्प-विधान के कारण उग्रजी प्रेमचन्द परम्परा से अलग प्रतीत होते है । उनकी कहानियो मे सामाजिक समस्याओ का जीवन्त चित्र

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 प्रेमचन्द्र मानसरोवर (भाग - 1) पृ.303

है । अतः इन्हें भी इसी परम्परा के अन्तर्गत मानना उचित है । प्रेमचन्द से बढकर इनका दृष्टिकोण क्रान्तिकारी है । 'मो को चुनरी की साध' कहानी क्रान्तिकारी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करती है । बाल-विधवाओं की तीन दशा का चित्रण प्रेमचन्द की कहानियों में कम नहीं है । लेकिन यह एक ऐसी बालिका की कथा है जो बहुत छोटी अवस्था में विधवा हो जाती है और 'मो को चुनरी की साध' मात्र साध रह जाती है । लेकिन बेटी की इच्छा पूर्ति केलिए सामाजिक नियम को तोडनेवाली एक मा की हृदय वेदना भी इसमें ध्वनित है ।

इसी युग के अन्य कहानीकारों में ज्वालाप्रसाद शर्मा, सियाराम शरण गुप्त, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

(2) <u>ऐतिहासिक - सांस्कृतिक धारा - जयशंकर प्रसाद</u> — ऐतिहासिक सास्कृतिक धारा के अन्तर्गत आनेवाले अग्रणी कहानीकार जयशंकर प्रसाद है । प्रसादजी भारतीय संस्कृति के उपासक रहे है । भारतीय साहित्य, कला दर्शन आदि के प्रति उनको बडी आस्था थी एवं गहरा ज्ञान भी था । इसलिए उनकी रचनाओं की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझे बिना उनकी गहराइयों तक पहुंचना कठिन है । उनके व्यक्तित्व में भारत में प्रचलित विभिन्न धार्मिक, दार्शनिक विचार धाराओं का एक सम्यक प्रतिबिम्ब देखने को मिलेगा । लक्ष्मी-नारायण लाल का कथन है - 'प्रसाद के व्यक्तित्व पर बौद्ध-दर्शन और भारतीय संस्कृति का प्रभाव अधिक था । यही कारण है इनकी भावधारा में एक ओर बौद्ध-दर्शन की करुणा, त्याग बलिदान आदि थे तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति की चारित्रिक उदारता और था । इन दोनों आग्रहों से इनका जो जीवन-दर्शन बना, उसमें करुणा, प्रेम, आनन्द और आदर्श की भावना अधिक तीव्र थी'। इसलिए ही उनकी रचनाओं का इतिवृत्त इतिहास से बना और उनमें प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रति अधिक ममता लक्षित होती है ।

प्रसाद की रचनाओं के इतिवृत्त वैदिक काल से लेकर गुप्त-काल तक बिखरे पडे हैं । पुराने आग्रहों की ओर अधिक झुकने के कारण उनका कथ्य काल्पनिक होने, पर भी भारतेतिहास के उदात्त वातावरण में मंडराता लक्षित होता है ।

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 लक्ष्मी नारायणलाल - हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास पृ. 65

<u>प्रसाद की कुछ विशिष्ट कहानियाँ - आकाशदीप</u> — बुद्धगुप्त चम्पा केलिए नए द्वीप की सृष्टि करता है, नई प्रजा खोज लेता है, नए राज्य बना लेता है । लेकिन चम्पा उसे अपने हृदय मे स्थान देने से इनकार करती है । क्योंकि उसके अनुसार चम्पा के पिता की मृत्यु का कारण बुद्धगुप्त ही है । इसलिए वह कहती है - 'मै तुम्हे घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारेलिए मर सकती हूँ, अंधेर है जलदस्यु, मै तुम्हे प्यार करती हूँ[1] । शक और प्रेम का संघर्ष इस कहानी का मूल तंतु है । चम्पा की हमेशा यह चाह रही है यदि मै इसका विश्वास कर सकती बुद्धगुप्त वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय । आह । तुम इस निष्ठुरता मे भी कितने महान होते[2] ।

अपनी जन्मभूमि भारत के प्रति महानाविक के हृदय मे आदर का भाव है । लेकिन वह हृदय से कंगाल है । अतः वह भारत मे एक अपूर्ण मनुष्य के रूप मे वापस जाना पसन्द नही करता । वह चाहता है कि चम्पा के पवित्र प्रेम से उसका शून्य हृदय हिलोलि हो जाय - 'भारत वर्ष से कितनी दूर से इस निरीह प्राणियों मे इन्द्र और शची के समान पूजित है । पर न जाने किस अभिशाप ने हम लोगों को अभी तक अलग किया है[3] ।

आदर्श नारी चम्पा अपने हृदय मे सोई पडी प्रेम - भावना का गला घोटते हुए चम्पा द्वीप मे ही रहना पसन्द करती है । इसलिए वह कहती है - 'बुद्धगुप्त मेरेलिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है; सब पवन शीतल है । सब मिलाकर मेरेलिए एक शून्य है । प्रिय नाविक । तुम स्वदेश लौट जाओ, विषयों का सुख भोगनेकेलिए और मुझे छोड दो इन निरीह भोले - भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा केलिए[4] । प्रेम और शंका दोनों का एक साथ आघात लग जाने के कारण चम्पा अन्ततः एक प्रकार से निर्वेदावस्था तक पहुँच जाती है । इसलिए वह अपनी माता के समान, प्रिय नाविक को पथ दिखाने केलिए आलोक जलाकर जीना चाहती है । और वह खुद उसी मे जलना चाहती है ।

<u>ममता</u> - प्रसाद अपने नारी पात्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के महान आदर्शों पर प्रकाश डालना चाहते है । ममता रोहतास दुर्ग के दुर्गपति चूडामणि की इकलौती बेटी थी और विधवा थी । चूडामणि को यह बात विदित थी शेरशेह रोहतास पर अधिकार जमा लेगा उसके बाद वह कहीं का न रह जाएगा । इसलिए अपनी बेटी केलिए अशर्फियाँ ला

---

1 जयशंकर प्रसाद आकाशदीप (सप्तम संस्करण) पृ.18 -2- वही पृ.19
3 वही पृ.20 -4- वही पृ.26

देता है । लेकिन उसे देखकर वह कांप उठती है और कहती है - 'हे भगवान ! तब केलिए ! विपद केलिए ! इतना आयोजन ! परमपिता के विरुद्ध इतना साहस, क्या भीख न मिलेगी ? क्या कोई हिन्दू भू - पृष्ठ पर न बच रह जाएगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके ? यह असंभव है । फेर दीजिए पिताजी, मैं कांप रही हूँ, इसकी चमक आंखों को अंधा बना रही है[1] ।

युद्ध में चूड़ामणि का निधन हो जाता है । लेकिन ममता गायब हो जाती है । यहां प चवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने केलिए पहले मिले थे, उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन-छाया में एक झोपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी - वह ममता थी ।

शेरशाह से परास्त होकर हुमायूं एक रात ममता की झोपड़ी के सामने आकर शरण की भीख मांगता है । लेकिन एक मुगल को वह कैसे शरण दे । फिर भी ममता कह देती है - 'मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म-अतिथि-देव की उपासना का पालन करना चाहिए, परन्तु यहां ... नहीं । सब विधर्मी दया के पात्र नहीं । परन्तु यह दया तो नहीं कर्त्तव्य करना है तब[2] ?

वह थके हुए हुमायूं को अपनी झोपड़ी में शरण देती है । खुद बाहर चली जाती है और वहीं से ओझल हो जाती है । वर्षों बाद उसी जगह पर एक अकबर ने महल बनाया । उसमें लिखा गया था कि शाहंशाह हुमायूं ने इसी जगह पर विश्राम किया था, लेकिन वहां ममता का नाम तक नहीं था ।

सालवती - प्रसाद की अन्तिम कहानी है सालवती । प्रसाद की अन्य कहानियों की तरह इसमें भी सांस्कृतिक आग्रह प्रबल है । शिल्प की दृष्टि से यह विशेष उल्लेखनीय कहानी है ।

'सालवती' की रचना नाटकीय के आधार पर हुई है । पहला मोड़ सालवती और उसके पिता दार्शनिक धवलयश के वार्तालाप के साथ शुरू होता है । दूसरे मोड़ पर वैशाली के स्वतंत्र नागरिक आमोद प्रमोद केलिए इकट्ठे हुए हैं । वहां उपराजा अभयकुमार और मगा

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 जयशंकर प्रसाद : आकाशदीप (सप्तम संस्करण) पृ.26 -2- वही पृ.28

के मैत्री मणिधर का प्रवेश होता है । वज्जि राष्ट्र के राजनीतिक सिद्धांत सालवती के मुँह से सुनकर सब लोग चकित हो जाते हैं । 'वज्जियों का तो स्थिर सिद्धांत है ही । अर्था वज्जिसंघ के सदस्य है । राष्ट्रनीति में हम लोगों का मतभेद तीव्र नहीं होता ।[1] तीसरा मोड वहाँ जहाँ अनंगपूजा केलिए वज्जियों के संघ से सबसे बडी सुन्दरी को चुननेकेलिए कुलपुत्र सालवती के पास जाते हैं और वह आमंत्रण स्वीकार करती है । सालवती सर्वसम्मति से सबसे बडी सुन्दरी घोषित की जाती है । अभयकुमार संघ के सामने उसके साथ शादी करने का प्रस्ताव रखता है । लेकिन कूटनीतिज्ञ मैत्री ऐसा एक प्रस्ताव रखता है कि राष्ट्र की ऐसी सुन्दरी को स्वतंत्र रहने दिया जाय और वह अपनी एक रात्रि केलिए एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ लिया करे । इस प्रकार सालवती वेश्या बन जाती है ।

चौथे दृश्य में सालवती की प्रतिष्ठा का नाश होता है । मैत्री मणिधर की मृत्यु हो जाती है । नागरिक सालवती पर उँगली उठाने लगते हैं । अभयकुमार सेनापति चुन लिया जाता है । सालवती अपने बच्चे को यौवन का आघात समझकर छोड देती है । पाँचवें दृश्य में फिर वही अनंग पूजा और सौन्दर्य की होड होती है । उस अवसर पर भी सालवती प्रस्तुत होती है और वह यह प्रस्ताव रखती है कि इस प्रथा को रोक दिया जाय । उसके अनुरोध के अनुसार इस प्रथा का अन्त किया जाता है और शेष आठ सुन्दरियों को आठ कुल पुत्र स्वीकार कर लेते हैं ।

नाटकीय शिल्प-सौन्दर्य से सम्पृक्त इस कहानी में भी नारी चरित्र की महानता और तत्कालीन राजवंशों के राजनीतिक सिद्धांतों पर प्रकाश डाला गया है ।

<u>प्रसाद की कहानियों के ऐतिहासिकता</u> - प्रसाद की अधिकतर कहानियाँ इतिहास पृष्ठों से निर्मित है । लेकिन प्रश्न यह है कि इन कहानियों में ऐतिहासिकता कहाँ तक है । प्रसादजी के नाटकों में इतिहास और कल्पना का उद्भुत सम्मिश्रण है । लेकिन कहानियाँ ज्यादातर कल्पना प्रधान है । उसमें ऐतिहासिकता लाने का आग्रह मात्र है । इसी प्रबल आग्रह के कारण बहुतेरी कहानियों में ऐतिहासिकता का उपरी आभास मात्र है । इसलिए प्रसाद की कहानियों को ऐतिहासिक कहानियों की कोटि में रखना असंगत लगता है ।

---

1 मधुमंजरी द.भा. हि.प्र.सभा, मद्रास (1964) पृ.76

लेकिन जिस किसी कहानी में इतिहास का संस्पर्श है उसमें भारतीय इतिहास के किसी प्रबल अंश का उदात्त वर्णन मिलता है । फिर भी लगता है कि प्रसादजी का आग्रह चारित्रिक महानता पर बल देने के साथ भारतीय संस्कृति की ओर भी संकेत करता है ।

प्रसादजी की कहानियाँ इसलिए सांस्कृतिक धारा के अंतर्गत विवेचित है कि ये भरत की पुरानी संस्कृति के विस्तृत फलक के छोटे - छोटे खण्डचित्र प्रस्तुत करती हैं । इन कहानियों के द्वारा हमको भारतीय परम्परा का साक्षात्कार प्राप्त होता है । अतः इनमें प्रेम, त्याग, बलिदान, करुणा आदि उदात्त मानवीय भावों का चित्रण हुआ है । स्वाभाविक रूप से इन कहानियों में भावुकता का रंग अधिक चढा है ।

प्रसाद का कवि उनकी अन्य रचनाओं पर सीमातीत रूप से अधिकार कर लेने में समर्थ हुआ है । लेकिन कहानियों में कवि का ज्यादा और नाटककार का कम रूप में ही सही प्रभाव उभर कर आया है । डा. इन्द्रनाथ मदान का कथन स्मरणीय है -'प्रसाद का कवि जब कहानी पर इस तरह हावी हो जाता है तो इसकी आन्तरिक संगति टूटने लगती है । प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण भी प्रसाद के कवि की देन है जो कहानी पर आरोपित है; लेकिन संवादों की नाटकीयता भी इसमें गुम्फित है'। लेकिन मदानजी का कथन पूर्णतः सत्य नहीं लगता है । क्योंकि प्रसाद के कवि ने कभी भी किसी रचना के निर्माण में रोडा नहीं अटकाया है, बल्कि एक विशेष शिल्प और शैली की संरचना का सौन्दर्य दर्शाया है । एक विशेष रोमान्टिक छाप से पूरित कथा शैली प्रसाद की अपनी है । अतः उनकी भाषा भी उपरोक्त भाव-भंगिमा को बनाए रखने केलिए पूर्ण रूप से उपयुक्त है ।

<u>प्रसाद की कहानियाँ - उपलब्धियाँ</u> – प्रसाद व्यष्टि सत्य के प्रवक्ता है । सामाजिक उद्देश्यों से बढकर वैयक्तिक आग्रहों का स्वर उनकी कहानियों की देन है । जहाँ उनकी कहानियाँ समष्टि सत्य की प्रेरक शक्ति बनती है वहाँ वे अपनी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक उपलब्धियों के गायक भी बने है । समष्टि सत्य में भारतीयता एवं भारत के पुराने मूल्यों की प्रतिस्थापना की गूंज है ।

प्रसाद सौन्दर्य के उपासक है, सौन्दर्य के कवि है । इसलिए उनकी कहानियों में एक रोमान्टिक सौन्दर्य बोध है जो व्यक्ति निष्ठ जीवन दृष्टि से परिपोषित होकर

अभिव्यक्त हुआ है । इन्द्रजाल एवं ग्रामगीत इसकेलिए उदाहरण है । समष्टि सत्य की परछाइयों में निहित सांस्कृतिक अन्तर्धारा आकाशदीप, ममता आदि कहानियों में दर्शनीय है । प्रसाद की कहानियों की आलोचना के प्रसंग में उनपर सामाजिकता के अभाव का आरोप लगाया जाता है । लेकिन जहाँ वे एक विशाल राष्ट्रीयता का प्रवक्ता बनकर सामने आये हैं वहाँ उनकी कहानियाँ सामाजिक समस्याओं की चित्रशाला न रहकर मानवीय संवेदनाओं की पूंजीभूत संगीत बन गयी है ।

वृन्दावनलाल वर्मा - इस धारा के अन्तर्गत प्रसाद के बाद वृन्दावनलाल वर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है । ऐतिहासिक कहानीकार के रूप में वृन्दावनलाल वर्मा ने बड़ा यश पाया है । लेकिन प्रश्न यह है कि उनकी कहानियाँ पूर्णतः ऐतिहासिक है या नहीं । कहा जा सकता है कि उनकी बहुतेरी कहानियाँ अर्ध-ऐतिहासिक हैं । इन कहानियों का उद्देश्य भारतीय इतिहास की झांकियों की ओर इशारा करना भी है । यह भी स्मरणीय है कि उन्होंने कुछ सामाजिक कहानियाँ भी लिखी है ।

सन् सत्तावन की राज्यक्रान्ति के आसपास घटित बहुत सारी घटनाओं को उन्होंने अपनी कल्पना से कहानी के रूप में परिवर्तित किया है । वर्मा जी इस क्रान्ति को अधिक महत्व दे देते हैं । वे लिखते हैं - 'हमारे कुछ इतिहास लेखकों का मत है सन् 1857 का संघर्ष महज सिपाही विद्रोह था । मेरा स्पष्ट मत है कि यह महज सिपाही विद्रोह नहीं था बल्कि क्रान्ति थी'[1]। उपर्युक्त उद्देश्य पूर्ति हेतु उन्होंने एक कहानी लिखी जिसका नाम है - 'अम्बरपुर के अमर वीर' उन्होंने स्पष्ट घोषित किया है कि प्रस्तुत कहानी का आधार मेलिसन्ज़ इण्ड्यन हिस्ट्री से है । अवध के चौतीस किसानों ने अम्बरपुर के किले में छिपकर अंग्रेज़ों का सामना करने का निश्चय किया । यद्यपि अंग्रेज़ों की जीत हुई फिर भी किसानों ने अपने स्थान पर अडिग रहकर उनका मुकाबला किया । 'उन सिपाहियों के संबंध में लेखक का कथन है । 'अस्ताचल गामी सूर्य मानो कह रहा था निस्संदेह वे परमवीर थे इनका नाम अनन्त काल तक मेरी किरणों को जगमगाता रहेगा[2] । इसी प्रकार कोरे इतिहास पर आधारित एक और कहानी है 'अण्णाजी पंत' । औरंगज़ेब के इतिहासकारों में खलीखाँ ने अपने इतिहास में लिखा - उस क्रूर ब्राह्मण अण्णाजी पन्त ने किले के सारे सैनिकों का वध कर डाला । प्रस्तुत कहानी में वर्माजी ने पन्त को एक राष्ट्रप्रेमी के रूप में चित्रित किया है ।

---

1 वृन्दावनलाल वर्मा 1857 के अमरवीर (परिचय)

2 वही पृ.6

वे औरंगजेब के सिपाहियों को मारकर किले के बाहर आए थे । स्पष्ट है कि वर्माजी की ऐतिहासिक कहानियों का उद्देश्य भारतीय वीरों के आदर्श चित्र अंकित करते हुए भारतीय संस्कृति की महत्ता को व्यक्त करना है ।

<u>प्रसाद से प्रभावित अन्य कहानीकार</u> - हिन्दी में भावप्रधान कहानियों की परम्परा के सूत्रपात का श्रेय प्रसादजी को ही देना चाहिए । इनकी श्रेणी में आनेवाले कहानीकारों में रायकृष्ण दास, विनयमोहन शर्मा, और चतुरसेन शास्त्री मुख्य है । रायकृष्णदास की एक कहानी 'अन्तःपुर का आरंभ है । मानवीय संबन्धों का, विशेषकर स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का एक भावमूलक परिवेश में इस कहानी का सृजन हुआ है । पौरुष की आक्रामक शक्ति जो स्त्री के स्नेहपरक संस्पर्श से और भी अधिक मजबूर हो जाती है । इस कहानी का अंतिम भाग उद्धरणीय है -'नारी गुहा द्वार के सहारे खड़े थी । इसका आधा शरीर लता की ओट में था । वहीं से अपने पुरुष का पराक्रम देख रही थी । हां, उसी दिन अन्तःपुर का आरंभ हुआ था'[1] ।

चतुरसेन शास्त्री की कहानियों में भी प्रसाद की कहानियों के समान इतिहास का स्पर्श स्पष्ट है । लेकिन उनकी कहानियां पूर्णतः ऐतिहासिक नहीं कह सकते । 'दुखवा मैं कासे कहूं' उनकी एक सुन्दर कहानी है । इसमें आदि से अन्त तक ऐतिहासिक वातावरण वर्तमान है । प्रेम की तड़प, कसक एवं प्यास की एक रोमानी कथा का चित्र इसमें हमें उपलब्ध होता है । पात्र के अनुकूल भाषा एवं देशकाल का सजीव चित्रण आदि इस कहानी की विशेषतायें है ।

<u>(3) मनोवैज्ञानिक धारा</u> – हिन्दी कहानी साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियों में आत्मविश्लेषणात्मक या मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय है । प्रेमचन्द युग की प्रकट सामाजिकता की प्रतिक्रिया के रूप में यह आग्रह कहानी साहित्य में दृष्टिगोचर होता है ऐसी बात नहीं । इसे कहानी साहित्य के विकास का अगला चरण मान सकते है ।

सन् तीस के आसपास भारतीय साहित्य पूर्णरूप से विश्व साहित्य से परिचित हो गया । उस समय फ्रायड, एडलर, एवं युंग द्वारा निखित मनोविज्ञान का असर हर किसी क्षेत्र में पड़ गया था । साहित्य उससे अछूता नहीं रहा । विदेशी साहित्य के विशेषकर अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव के कारण हिन्दी साहित्य में भी मनोविज्ञान का प्रभाव काफी मात्रा में

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 रायकृष्णदास सुधांशु (तृतीय संस्करण) पृ. 33

पड़ गया । आलोचकों ने प्रेमचन्द एवं प्रसाद की कहानियों में मनोविज्ञान के प्रभाव को देखने का प्रयास किया । व्यावहारिक मनोवृत्तियों से बढकर इनकी कहानियों में आधुनिक मनोविज्ञान का असर बहुत कम दीखता है । मनोवैज्ञानिक कहानिकारों के मुख्य दो शीर्षस्थ रचनाकार है जैनेन्द्रकुमार और इलाचन्द्र जोशी ।

जैनेन्द्रकुमार - जैनेन्द्र की सारी की सारी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक नहीं है । उनकी कहानियों में सामाजिक, ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक आदि प्रवृत्तियाँ भी पायीजाती हैं । लेकिन ज्यादातर कहानियों में मानसिक गुत्थियों के उलझे हुए पक्ष की ओर जाने का प्रबल आग्रह भी मौजूद है । उन्होंने सामाजिक विधि के सामने व्यक्ति को परखा । व्यक्ति मन की अन्तर्धाराओं को पहचानने का भी प्रयास किया । प्रेमचन्द ने सामाजिक समस्याओं को उभारा जबकि जैनेन्द्र एवं अज्ञेय आदि कहानीकारों ने व्यक्ति की अपनी समस्याओं, विकृत भावनाओं, कुंठित इच्छाओं घुटनों को उभारा । इसलिए इनके पात्र कुछ विशिष्ट दीखते हैं । उदाहरण केलिए जैनेन्द्र का जयराज (एक रात) इलाचन्द की प्रमीला (चिठ्ठी पत्री) आदि ।

जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक कहानियाँ - कुछ विशिष्ट पात्र — 'ग्रामफोन का रिकार्ड' जैनेन्द्र की विशिष्ट कहानियों से है । सुखमय जीवन बितानेवाली विजया इसका मुख्य पात्र है । ऐश्वर्य के बीच में रहते हुए भी वह अतृप्ति महसूस करती है । उसके मन को थिरता नहीं थी । वह अपने को कहाँ बाँधे ? लेकिन वह मन अपने को जैसे अस्वीकृत पाता है । किसी ने उसे लिया भी है जिसकेलिए उसका मन रहता भी है तीनों लोकों में जो जो एकमात्र अधीश्वर है वह आदमी तो एकदम उसे सोने में और ऐश्वर्य में डुबा देना चाहती है - वह उसे प्यार करता है । इस प्रेम का क्या वह योग्य है ? क्या वह इतने संयत और कर्मठ प्रेम को भूल सकती है ? जो उसे आलिंगन न देकर आभूषण देता है उसके मन में अव्याहत, अलक्षित कुछ उठता रहता है [1] । मनमोहन जो एक बैरिस्टर है और उनका मिस्टर कपूर के यहाँ खुला आना-जाना है । जब एक दिन ऐसी घटना घटती है कि विजया को मनमोहन अपने अंकों में भर लेता है तब वह चुप रहती है । उन्मादावस्था से जब उसे अपनी साधारण स्थिति की पहचान होती है तब वह उचलकर उठ खड़ी होती है । और माथा पकडकर रह जाती है । उसका चेतन मन कहता है -' चले जाओ, नहीं तो पटककर में अपना सिर यहीं फोड डालूँगी [2] । और अपने पति के आने पर कहती है - 'नहीं मुझे तुम्हारा प्रेम नहीं चाहिए । मैं तुमसे नहीं बोलूँगी । मैं अंग्रेज़ी नहीं जानती है इसीसे तो - मै ने तुम्हें देख लिया [3] ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 जैनेन्द्रकुमार जैनेन्द्र की कहानियाँ (चतुर्थ भाग) (तृतीय संस्करण) पृ.82-83

2 वही पृ. 91 —3— वही पृ.91

विजया यौन कुण्ठा से पीडित नारी है । एक पत्नी होते हुए भी पति से उसे प्यार नही मिलता था । उसे ऐश्वर्य मे डुबो देती है लेकिन आलिंगन मे भर लेने केलिए वह तैयार नही है । इसलिए विजया दिन भर घर पर ही घुटती रहती है । उन्मादावस्था एक प्रकार से अचेतन (अणकोन्शियस) मन की प्रक्रिया है । व्यक्ति बाहरी परिस्थितियो से एकदम कट जाता है । भीतरी आवेग से घुल मिल जाते है । इसलिए जब अपने साजन की गोद मे पडकर मिलन श्रृंगार मे रत नारी का साक्षात्कार करनेवाली विजया बैरिस्टर मनमोहन की चेष्टाओ को प्रारंभ मे स्वीकार करती है ।

'एक रात' जैनेन्द्र की लम्बी कहानियो मे है । इसके दो पात्र है - जयराज और सुदर्शना और दोनो एक ही विकृत भावना से पीडित है । अपनी अपनी विशिष्टता के कारण कुछ असाधारण भी कहा जा सकता है ।

'जयराज की तीस वर्ष की अवस्था होगी । घुन मे बंधा हुआ, सदा कामकाज मे रहता है । अपने प्रान्त के कांग्रेस के वही प्राण है । लोग उसे बहुत मानते है । उन्हे छोडकर वह रहता किस केलिए ? अविवाहित और उसके विवाह करने की हिम्मत किसी को नही होती । जैसे उसे विवाह क्या मौत की फुरसत नही है[1] । हरिपुर गाव के कांग्रेस परिषद् जयराज को सभा मे बोलने केलिए ले जाना चाहता है । लेकिन वह जानेकेलिए तैयार नही होता । फिर भी बिना सूचित किए ही वह हरिपुर पहुंचता है और भरी सभा मे सन्निविष्ट हो जाता है ।

'सुदर्शना देवी ने जयराम के गले मे माला डाली, स्वागत गान पढा, उसको चरणो मे चढा दिया और उन चरणो को प्रणाम कर जगह पर आ बैठी ... सुदर्शना उसे सुनती रही । देखती रही और नही भी देखती रही[2] । वह घर आकर पति के सामने यह प्रस्ताव रखती है कि वह पतिव्रता नही है - 'आज से पहले मै नही जानती थी । आज जानी हूं, तो तुमसे कहने आई हूं ... तुमसे बहुत प्रेम पाया है, बहुत आदर लिया है । वह सब मै ने चोरी की है । ठगी की है । मै उसकी बननेवाली कोई न थी । मै अपात्र थी । आज मुझे पता चला कि अपना सब कुछ मै तुम पर नही वार चुकी । भीतर

1 जैनेन्द्र कुमार जैनेन्द्र की कहानियां (पांचवां भाग) (तृतीय संस्करण) पृ.17
2 वही पृ.25

ही भीतर कुछ बच गया था । जो आज देखती हूं, तुम्हारे चरणों में मैं अर्पण नहीं कर सकी थी[1]

स्टेशन जाते वक्त जयराज के साथ सुदर्शना भी मिली और दोनों बारिश में भीगकर ही चले । सुदर्शना का व्यवहार ऐसा था कि उसका जयराज के साथ वर्षों से संबन्ध हो । स्टेशन के बेंच में पडकर सुदर्शना जयराज की गोद में सोती रही । न जयराज कुछ बता सका न कुछ कर सका ।

सुबह जयराज के सामने हंसमुख खडी सुदर्शना को देखकर वह चकित रह जाता है । जाती हुई सुदर्शना जयराज से कहती है - 'मैं जानती हूं, तुम में मेरेलिए अपेक्षा नहीं है । यही अनपेक्षा सब कुछ है मैं जानती हूं मेरा प्रणाम लो जयराज और मेरे आशीर्वाद लो । क्योंकि एक बात मैं तुम्हें बताती हूं इस वर्ष माता हो जाऊंगी । प्रभु तुम्हें सदा सुखी रखे'[2] । जयराज की बातें अनसुनी करके वह चली जाती है ।

जयराज एक कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति है । वह अपने अहं की खोज करता है । अहं की तितृक्षा से वह परिचित है और अपनी तितृक्षा के उपर मुखौटा पहनता है । वह मुखौटा पहनता है कि वह राष्ट्र का प्रतिनिधि है । राष्ट्र की सेवा के नाम पर उसका 'व्यक्ति' भटकते हुए नज़र आता है । क्योंकि उसके व्यक्ति की लालसाओं और वासनाओं का अधिपत्य उस पर ज्यादा है । एक ओर उसका बाहर्मुखी व्यक्तित्व है तो दूसरी ओर उसका अन्तर्मुखी व्यक्तित्व है । लेकिन उसका बाहुर्मुखी व्यक्तित्व मात्र एक पहनावा है, दिखावा है । सुदर्शना के दर्शन होने के साथ साथ वह अपने व्यक्ति को काबू में नहीं रख पाता है । वहां से जल्दी ही बच निकलता है । सुदर्शना भी एक विकृत पात्र है लेकिन वह अपनी मानसिक उत्तेजना की हामी भी है । इसलिए वक जयराज के साथ आ मिलती है और अपने आवेगों को उसी रात में कम कर देती है । लेकिन वह हमेशा केलिए चली भी जाती है । जयराज की तुलना में सुदर्शना एक विकृत पात्र है ।

'दृष्टिदोष' सुभद्रा नामक एक युवती की कहानी है जिसके 'सूपर ईगो' की बात ही इसमें कही गई है । केदार नामक व्यक्ति ने अपने बचपन में सुभद्रा के सामने प्यार का

---

1 जैनेन्द्र कुमार जैनेन्द्र की कहानियां (पांचवां भाग) पृ. 36-37
2 वही पृ. 62

प्रस्ताव किया था । लेकिन सुभद्रा इस बचपन को स्वीकारती नहीं है । और उसकी शादी हो जाती है । लेकिन वर्षों बाद आँखों की खराबी को दूर करने के बहाने वह (सुभद्रा) आँखों का विशेषज्ञ केदार के पास आती है । सुभद्रा के कथनों से ऐसा आभास होता है कि वह अपने वर्तमान पारिवारिक जीवन से भी अतृप्त है - 'मैं यहाँ बिल्कुल अकेली हूँ डाक्टर साहब और हाल ही में मेरा पाँच वर्ष का एक बच्चा भी मर गया है । यहीं के अस्पताल में वह मरा है । उसके बाप को छुट्टी नहीं मिल सकी और वे नहीं आ सके । और बच्चे बाप के पास हैं । उनको देखने को मेरा बहुत जी है । पर वह, वह कहाँ है और मैं कहाँ हूँ ?..[1] यह स्पष्ट है कि सुभद्रा की आँखों में खराबी नहीं बल्कि वह अपने को अपने अहं को केदार के सामने प्रकट करना चाहती है । वह पुरानी बातों को फिर से दुहराती है - 'केदार तुम्हारे पत्र मुझे नहीं मिले, यहीततुम समझो । बताओ, उनमें मूर्खता के सिवा कुछ था ? और प्रेम मूर्खता है[2] । उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुभद्रा केदार के जीवन के बारे में सब जानती रही है । वह प्रकट रूप से केदार के प्यार को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं । लेकिन वह कहीं अपने अन्तर्मन में अपने को नियंत्रित कर न सकने की स्थिति में ही वहाँ ~~अपने को नियंत्रित कर न सकने की स्थिति~~ प्रस्तुत होती है ।

रत्नप्रभा प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीनिवासजी के तीसरा विवाह की नवोढा है । वह नियमित रूप से गाडी में आती है । आसपास सडक से जाते हुए या घाट पर के लोग गाडी और सेठानी को देखते रह जाते हैं । वह परदा नहीं करती । रूप अनिद्य सुंदर है । ~~आसपास का वातावरण भरकर~~ उनके व्यक्तित्व की शालीनता और अभिजात्य से आसपास का वातावरण भरकर उन्नत होता हुआ मालूम होता है[1] ।

घाट पर पुस्तकें बेचनेवाले एक लडके पर रत्नप्रभा की निगाह पडती है । गन्दी पुस्तकें बेचनेवाले लडके को कोसती है और सारी पुस्तकों को पैसा दे मँगवाकर उससे, इस काम को छोड देने केलिए कहती है । जब लडके ने अपने काम को जारी रखा तो एक दिन रत्नप्रभ ने लडके को पिटवाया, लेकिन लडका चुपचाप पिटता रहा । दूसरे दिन से लडके ने गाना गाते हुए भीख माँगना शुरू किया । उस कम बोलनेवाले लडके को रत्नप्रभा ने

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 जैनेन्द्रकुमार जैनेन्द्र की कहानियाँ (चौथा भाग) पृ.-[illegible]

घर मे नौकरी केलिए रख लिया । शिमला जाते वक्त उसे भी ले जाती है । लडका वहाँ की एक पहाडी लडकी केलिए गाना सुनाता है और उसके सामने हँसता है । यह देखकर ज्यादा गुस्से मे आती है । इतने पर भी लडका चुप रहता है और कम सवालो का जवाब देता है । अन्त मे जब रत्नप्रभा ने उसे आज़ाद किया तब पहली बार लडके ने मुस्कुराकर बाँसुरी बजाई । यह सुनकर रत्नप्रभा बेसुध हो जाती है और जब आँखे खुलती है तब तक लडका जा चुका था । 'रत्नप्रभा' जैनेन्द्र की विशिष्ट कहानियो से है । वह अपने कुंठा ग्रस्त अहंकार को लडके के उपर उंडेल देती है । लेकिन यह मात्र अहंकार न होकर विकृत यौनाचार ही है । वह अपनी यौन कुण्ठा को लडके के माध्यम से सुला देना चाहती लेकिन विफल हो जाती है ।

जैनेन्द्र की अन्य महत्वपूर्ण रचनाओं के नाम है 'पत्नी', 'जहनवी' 'बिल्ली' का बच्चा', 'बाहुबली', प्रुवयात्रा' आदि । जैनेन्द्र के पात्रो मे एक सहज उन्मुक्तता है, एक स्वाभाविकता है । जिस सहजता एवं स्वाभाविकता से उन्होंने 'पत्नी' की सुनन्दा को प्रस्तुत किया उसी सहजता के साथ 'ग्रामफोन' के रिकार्ड 'की विजया को प्रस्तुत नही कर पाये है' ।

जैनेन्द्र इस विश्लेषणात्मक कथा परम्परा का वह पहला प्रवर्तक है जिन्होने परम्परागत शिल्प विधान का तिरस्कार किया, आदर्शवादी प्रतिपादन को नकारा और विशिष्ट पात्रो की कल्पना की । नई शैली का प्रवेश जैनेन्द्र के साथ होता है । उनकी शैली कही विश्लेषणात्मक है तो कही अचेतन के ऊहापोहो के निमित्त है । कही प्रतीकात्मक है तो (तत्सत्) कही स्वप्न कल्पनात्मक या फैन्टसी पर आधारित है (नीलम देश की राजकन्या) कही नाटकी शैली है तो (परदेशी) कही पत्रात्मक शैली (रत्नप्रभा) है ।

<u>इलाचन्द्र जोशी</u> - हिन्दी कहानी की मनोवैज्ञानिक - धारा के प्रतिष्ठापक लेखको मे इलाचन्द्र जोशी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है । जैनेन्द्र की तुलना मे जोशी के पात्र अवश्य विशिष्ट है । लेकिन जोशी के पात्र प्रायड की चिन्तनधारा के निकट है । समाज की परिचालिका शक्ति मात्र उसकी आर्थिक व्यवस्था पर आधारित नही रहती बल्कि व्यक्ति की अहंमूलक प्रवृत्तियो का भी महत्वपूर्ण स्थान है । जोशी ने इस मत को विभिन्न स्थानो मे व्यक्त किया है ।

यह हम बता चुके है कि जोशी फ्रायड के मनोविज्ञान से काफी प्रभावित है । अतः प्रायः उनके सभी पात्र अत्यन्त विशिष्ट प्रकार के है । ये पात्र किसी - न - किसी मानसिक विकृति के कारण आचरण और व्यवहार में भी सहजता से बहुत दूर है और कम खुलेपन का आभास देनेवाले है ।

चौथे विवाह की पत्नी - प्रस्तुत कहानी मे एक ऐसी लडकी की बात कही गई है जो अपने अचेतन मन मे दब कर रखी हुई भावनाओं को आगत पाकर अन्त मे पागल हो जाती पढते वक्त अपनी सहेलियों की शादी होते देखकर उसे अपनी नियति पर दुःख होती है । लेकिन यही दुःख बाद में ईर्ष्या के रूप में परिणत हो जाता है और वह अपनी सहेली के पति को कुरूप साबित करना चाहती है । आखिर उसकी शादी हो जाती है - एक कुरूप, कंजूस आदमी के साथ । इस शादी के साथ उसका अहं ईर्ष्यागत वेदना में परिणत होकर विद्रोहात्मक हो जाता है और उसे पति से निभना भी असंभव हो जाता है । हर जोड पर वह अपने पति से टकराती है और यही टकराव पति और बच्चे के मर जाने पर पागलपन में परिणत हो जाता है ।

ईर्ष्याजनित निराशा पर जब बार - बार आघात लग जाते है तो एक प्रकार से मानसिक अवरोध (मेंटल डिप्रेशन) होते है । इस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है प्रस्तुत कहानी । इसी से मिलती - जुलती घटना का वर्णन 'प्रेतात्मा' शीर्षक कहानी में भी मिल जाता है ।

चिट्ठी पत्री - उपर्युक्त कहानी से मिलने-जुलने वाले कथानक के ताने-बाने से चिट्ठी-पत्री' शीर्षक कहानी का सृजन हुआ है । प्रमीला एक पढी-लिखी लडकी है जो कैम्ब्रिज से पास होकर आई थी । लेकिन अपने पति के घर आकर उसे उन पुरानी प्रथाओं को अपनाना पडता है जो वस्तुतः उसकी इच्छा के विरुद्ध थी । लेकिन प्रमीला में वह क्षमता थी कि वह पुरानी प्रथाओं की लीक पकडकर चलने लगी । लेकिन फिर भी उसे पति की लात मार मिलती है और आखिर उसकी मृत्यु हो जाती है । प्रस्तुत कहानी 'केस हिस्टरी के रूप में प्रस्तुत है । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार उपर्युक्त पात्र के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि उसके व्यवहार में 'रियाक्शन-फोरमेशन' या 'ओवर कोम्पनसेशन' देखा जा सकता। अचेतन मन की इच्छा के विरुद्ध घटनाओं का घटना और उसका हामी होने पर जो अवरोध मन केलिए होता है उसे उपर्युक्त शब्द से अभिहित किया जा सकता है ।

क्रान्तिकारिणी महिला - विजया उसका नाम है । वह कांग्रेस के विरुद्ध अपने दल का संगठन करती है । उसका उद्देश्य बुर्जुवा नीति के विरुद्ध लड़ना है । वह इतनी क्रान्तिधारिणी बन जाती है कि यह भी भूल जाती है कि वह एक स्त्री है । लेकिन श्यामसुन्दर और उसकी पत्नी से मिलने के बाद वह खुश नज़र आती है कि वह अन्तर्मन में छिपी साधारण एषणाओं को छिपाने में असमर्थ पाती है । इसलिए श्यामसुन्दर की पत्नी से कहती है - 'बहिन आप समझती होंगी कि किस पागल स्त्री से पाला पड़ा है, पर सच कहती हूँ, ऐसा सुन्दर बच्चा मैं ने पहले कभी देखा नहीं'[1] । वह श्यामसुन्दर से कहती है -'भूल भूल । मेरा सारा यौवन भूल में बीत गया । आप को खबर है कि सी.आई डी. वाले रात-दिन मेरे पीछे लगे हैं और बहुत शीघ्र मैं गिरफ्तार हो जाउंगी । किस अपराध में हत्या में । एक वृद्ध महाजन के घर डका डालकर हम लोगों ने उसे भी मार डाला, आज पांच महीने बीत चुके है, पर इसमें मुझे लाभ क्या हुआ । अपने स्त्री - जीवन का सारा रस सुखाकर अन्त को अब अपने होश में आई हूँ[2] ।

आखिर वह अपने को खुश समझती है । लेकिन उसे अपना जीवन असफल दीखता है । कुछ भी हो, यह जन्म मेरा केवल भ्रम और संशय में बीता है । इस जीवन में जानवी नहीं राक्षसी सिद्ध होकर रह गई । पर बस अब मैं प्रसन्न हूँ । केवल एक बार अपना हाथ सिर पर रखकर आशीर्वाद दीजिए कि अगले जन्म में मेरा नारी जीवन सार्थक हो[3] । इस कहानी के माध्यम से जोशी यह कहना चाहते हैं कि मानव जीवन को नियंत्रित करने वाली शक्तियाँ ऐषणिक प्रवृत्तियाँ ही है । यही बात 'रेल की रात' 'दुष्कर्म' आदि कहानियों में भी लक्षित होती है । इस प्रकार की अनेक मनोविश्लेषणवादी कहानियों के द्वारा जोशी ने कहानी साहित्य की इस विशेष धारा को समृद्ध किया है

(4) साम्यवादी धारा - यशपाल - प्रेमचंद और यशपाल दोनों का दृष्टिकोण क्रान्ति से ओतप्रोत था । लेकिन यशपाल की विशेषता इस बात में है कि वे मार्क्सवादी दर्शन से काफी प्रभावित है । इसलिए वे वर्गपरक क्रान्ति की प्रेरक शक्ति के उद्घोषक भी रहे । यशपाल आतंकवादी व्यक्तित्व के धनी साहित्यकार है उन्होंने अपने जीवन को विस्फोटनात्मक क्रान्ति के लिये समर्पित किया था । इसलिए उसकी दृष्टि मे गांधीजी के अंहिसावाद का

---

1 इलाचन्द्र जोशी दीवाली और होली (संशोधित संस्करण) (1965) पृ.193
2 वही पृ.194
3 वही पृ.195

न कोई महत्व था न कोई मूल्य । इसलिए उन्होंने लिखा कि 'गांधीवादी परलोक के लोभ या अध्यात्म के नाम से जिस विचारधारा से शाश्वत सत्य अहिंसा का उपदेश देता है, इसका प्रयोजन वर्तमान सामन्तवादी और पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था की पैदावार के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार की प्रणाली की रक्षा करता ही है[1] । इसलिए वे कांग्रेस की नीति के भी विरुद्ध थे । इसी क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का पूर्णरूपेण प्रतिफलन उनकी साहित्यिक रचनाओं में से हमें प्राप्त होताहै । वह अपनी साहित्य साधना को किसी संकुचित परिवेश में परखना और आत्मसात् करना नहीं चाहते थे । उन्होंने लिखा - 'कला को कला के निर्लिप्त क्षेत्र में ही सीमित न रखकर मैं उसे भावों या विकारों का वाहक बनाने की चेष्टा क्यों नहीं करता हूं ? क्योंकि जीवन में मेरी साध केवल जीवन यापन नहीं बल्कि जीवन की पूर्णता है'[2] । यह पूर्णता उन्होंने सामाजिक परिवेश में केन्द्राविस्थत होकर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया ।

प्रतिष्ठित मूल्यों (नैतिक मूल्यों एवं आध्यात्मिक मूल्यों) का यशपाल ने स्पष्ट रूप से खण्डन किया । झूठी नैतिकता के विरुद्ध उनकी वाणी एकदम कठोर है । इसी विचारधारा से प्रभावित उनकी एक कहानी है 'ज्ञान दान' ।

आत्मा का हनन करके मुक्ति का स्वांग रचनेवाले भारतीय सिद्धांतों पर व्यंग्य करना लेखक का उद्देश्य मालूम होता है । उपर्युक्त कहानी में ब्रह्मचारी नीडक अन्त में सिद्धि से पूछता है - 'सच कहो अनेक वर्ष समाधि द्वारा परमसुख में तल्लीन होने और आत्मविस्मृति में संसार को भूल जाने की चेष्टा में क्या कभी तुम तृप्ति में इतनी आत्म-विस्मृत हो सकती थी जितनी इस संपूर्ण रात्रि में ?[3] —— महर्षि दीर्घलोम के आश्रम में चतुर्मास के आरंभ होने पर तापसियों का आगमन शुरू हुआ । त्रिकालज्ञानी महर्षि नीडक भी आया था जो कम उम्र में ही ज्ञानी बन चुका था । आश्रम में दीर्घलोम की पुत्री सिद्धि भी थी जो अपने को मुक्ति मार्ग में समर्पित की हुई थी । नर्मदा में स्नान करके आनेवाली सिद्धि की ओर से आंखें बचाना जब असंभव हो गया तब दीर्घलोम तापस कन्या को बुलाया और ज्ञान के द्वार इन्द्रियों के बारे में जहां से चेतना का विकास होता है

---

1 यशपाल गांधीवाद की शव परीक्षा पृ.20
2 यशपाल दादा कामरेड (भूमिका से) (1959)
3 यशपाल ज्ञानदान (छठा संस्करण) पृ 20

बताया और पूछता है - 'ब्रह्मचारिणी, क्या तुम हृदय मे कामना के रूप मे जीवन की शक्ति को अनुभव नही कर रही हो ? क्या तुम हृदय मे द्वन्द्व अनुभव नही कर रही हो ?[1] ब्रह्मचारिणी के उत्तर भी उसी के अनुसार है - 'अन्तद्रष्टा ज्ञानी आपका वचन सत्य है । मै निर्मल आत्मा हू । इन्द्रियो का निग्रह मै अभी तक नही कर पाई हू[2] । और उसी रात मे दोनो ने उस अद्भुत अनुभूति का आनन्द पाया ।

नैतिकता के सम्बन्ध मे भी उनके शब्द बहुत ही तीव्र एवं स्पष्ट है । साहित्य मे नैतिकता पर यशपाल अपना मंतव्य इस प्रकार व्यक्त करते है 'हमारे चरित्रवान पूर्वजो के सुसंस्कृत साहित्य मे नारी के मोहिनी, सुमुखिनी और नितंबिनी संबोधन करना शालीनता थी । आज हमारे हीन चरित्र समाज मे किसी स्त्री को उसके मुख पर सुन्दरी जूतो की मार का निमंत्रण देना है । महाकवि कालिदास का नारी की रोमांचिक जंघा का वर्णन करना हर और सती की रतिक्रिया का चित्रण न अश्लील समझा गया न वासनात्मक, परन्तु यदि आज किसी लेखक नारी के वस्त्रो के भीतर दृष्टिमात्र पहुंचाने का प्रयत्न करता है तो भी वह नैतिकता का शत्रु समझा जाता है[3] । एक दूसरे स्थान यशपाल लिखते है - मेरेलिए विचार कर पाना कठिन है कि आज का समाज अतीत की सभी मान्यताओ मे भावात्मक और रागात्मक सौन्दर्य की अनुभूति कर सकता है । मै आज पति के वियोग मे पत्नी के चितारोहण मे सौन्दर्य नही विभीषिका ही अनुभव करता हू । मै उस आदर्श को सुन्दर बनाने का यत्न नही कर सकता । मै राजा हरिश्चन्द्र द्वारा ऋण शोध केलिए पत्नी को बाजार मे बेच डालने की कर्तव्य परायणता केलिए भी आदर की अनुभूति उत्पन्न नही कर सकता, उसे भी धर्म नही समझ सकता । आज की परिस्थितियो मे स्वामी भक्ति केलिए आदर भाव उत्पन्न करना मुझे मानव की समता, अपमान और अन्याय को प्रतिष्ठा देने का यत्न ही जान पडता है[4] ।

'ओ भैरवी' उनकी ऐसी कहानी है जिसमे उन्होने आध्यात्मिकता के सिद्ध-पक्ष पर कटाक्ष किया है । युवा कलाकार माहुल ने कई वर्ष के कठिन परिश्रम से नगर के प्रमुख कला गुरु विश्वा से चित्रण और तक्षण की कला सीखी थी । यद्यपि महाविहार के नियामक

- -

1 यशपाल ज्ञानदान पृ.20 -2- वही पृ.21

3 यशपाल भस्मावृत चिनगारी (1956) पृ.6

महास्थविर संप्रत ने माहुल को शरण दी थी । माहुल अपने हृदय की कामना की यातना और पाप के बोध के कारण दुखी ही रहता था ।

जीमूत अपनी सिद्धियों केलिए प्रसिद्ध था । उसने माहुल का स्मरण किया । माहुल की भेंट वहां एक नवयुवती से हुई और उसने कहा 'कलाकार तुम्हें देवी तारा के एक शरीर परिमाण की मूर्ति बनानी होगी, यह सिद्ध का आदेश है ।' लेकिन माहुल को देवी तारा का साक्षात्कार न हुआ था । अतः वह उसी युवती की मूर्ति बनाने केलिए तैयार था यह सुनकर युवती निराश होती है और कहती है - 'कलाकार सिद्ध कहते हैं, मैं सुन्दर हूं, परन्तु मेरे सौन्दर्य का मोह त्याज्य है वैसे मदिरा का उन्माद त्याज्य है । मेरे सौन्दर्य में लिप्त होना आसक्ति है, मेरा भोगकर वैराग्य की विजय पाते हैं । कलाकार क्या मेरा शरीर और सौन्दर्य मिट्टी में मिला देने केलिए ही है । मेरी इच्छा कोई वस्तु नहीं है । भिक्षु यदि अनासक्त रहकर भोग कर लेना तप है तो क्या विरक्ति अनुभव करके भी भोग को सह लेना उससे भी बडा तप नहीं है ?'[1]

माहुल युवती को सिद्ध से मुक्त होकर पलायन किए छः मास बीत चुके थे । तांत्रिक अपने कुछ शिष्यों, श्रेष्ठी के अनुचरों और राज्य के धर्मस्थान के सैनिकों को लेकर पलायन कर जानेवाली भैरवी को पकड लाने केलिए रथों और घोडों को लेकर निकल पडे । अनुचरों ने सिद्ध को माहुल और भैरवी को खडे दिखाया । लेकिन सिद्ध की आंखें यह मानने केलिए तैयार नहीं थी कि सामने दिखाई पडनेवाली स्त्री अपनी भैरवी है । तब राजपुरुष ने अपनी मुस्कान को छिपाकर कहा 'सत्य है, सिद्ध अलौकिक सिद्धि को ही पहचानते हैं, सिद्ध ने नारी को नहीं पहचाना, परन्तु यही नारी ही सिद्धि की भूखी थी, यह भी सत्य है, यदि सिद्ध नारी को पहचानते तो भैरवी नर पुरुष के बाह घडी के संग से सिद्ध का आंगन न त्याग आती ।[2]

कांग्रेस कमटी के मंत्री बनकर वे 'देवदा' पुकारे जाने लगे । और वह अछूतोद्धार में लगे हुए थे और हरिजनों की सेवा में व्यस्त थे । आर्य समाजी प्रचारकों से उत्साह पाकर हरिजनों ने दिनों के समान व्रतबंध स्वीकार कर अपनी हीनता त्यागने और सवर्ण द्विज बन जाने का निश्चय किया था । लेकिन ठाकुरों और ब्राह्मणों ने अपने एकमात्र अधिकार से

- - - - - - - - - - - - - - - - -
1 यशपाल ओ भैरवी पृ.16 -2- वही पृ.22

वंचित होते देखकर विरोध करना शुरू किया । हरिजनों ने यह तय किया कि एकदम इकट्ठा होकर सामूहिक रूप से यज्ञोपवीत हो गए । देवदा भी वहां पहुंच गए । लेकिन प्रारंभ में लोग उनको मानने केलिए तैयार नहीं थे । लेकिन उन्होंने कहा - 'आप के दिल में यह क्यों बैठ गया कि ब्राह्मण, ठाकुर, बड़े हैं या उनके जनेउ बड़े है ? आप ब्राह्मण ठाकुर बनकर बड़ा बनना चाहते है ? पर अभी आप क्या उनसे छोटे है और वह धागे की लगाम लगाकर बड़े हो जाएंगे ? देवदा एक जनेउ पहननेवाले नहीं थे और वे बचपन से उसका विरोधी भी थे । इसी घटना के साथ देवदा को ऐसा लगा कि पूर्वजों द्वारा बने-बनाए नीड से मुक्ति पाई है ।

प्रस्तुत कहानी वस्तुतः एक गहन व्यंग्य कहानी है जिसमें यशपाल देवदा बनकर अपना अभिमत प्रस्तुत कर रहे है ।

यशपाल की कहानियों का शिल्प एवं शैली प्रेमचन्द स्कूल के कहानीकारों की जैसी है । लेकिन यशपाल का व्यक्तित्व नैतिक सिद्धांतों को नकारने में रत रहा है । अतः उनकी ज्यादातर कहानियां व्यंग्यात्मक है । जिन पक्षों को प्रेमचन्द ने बड़े ही भव्य रूप में चित्रित किया और भव्य रूप देना चाहा, उसी रूप से यशपाल ने उदात्तीकरण वाले पद को एकदम निकाल दिया और साथ ही साथ अपने आतंकवादी व्यक्तित्व की छाप छोड दिया है ।

<u>निष्कर्ष</u> - उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी कहानी साहित्य में अज्ञेय के पदार्पण के पूर्व, सामाजिक धारा, ऐतिहासिक-सांस्कृतिक धारा, मनोवैज्ञानिक धारा, साम्यवादी धारा, इन धाराओं में हिन्दी कहानी साहित्य पर्याप्त विकसित हो चुका था हिन्दी कहानी साहित्य ने प्रेमचन्द, प्रसाद, जैनेन्द्र, यशपाल जैसे महान कहानीकारों की अमर कृतियों से समृद्धि पायी थी ।

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 यशपाल धर्मयुद्ध पृ.27-28

सातवाँ अध्याय

अज्ञेय की कहानियाँ एक अध्ययन

अज्ञेय पूर्व कहानियाँ - यह विदित है कि कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन के साथ हिन्दी कहानी साहित्य के रूप एवं भाव बदल गए । भाव एवं वस्तु की दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियाँ अत्यन्त तीव्र एवं गहन रही है । उनका प्रेक्ष्य-बिन्दु समाज के सपाट पर केन्द्रित रहा । प्रेमचन्द के रचनाकाल के मध्य में ही कहानी के क्षेत्र में शिल्प एवं भाव की नवीनता लिए कुछ ऐसे कहानीकार अवतरित हुए जिनमें जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी का विशेष ऐतिहासिक महत्व है । एकदम सामाजिक समस्याओं में न घिसकर वैयक्तिक अनुभूतियों को महत्व दिया गया है । अज्ञेय इसी स्कूल के कहानीकार माने जा सकते हैं । लेकिन इसी स्कूल के कहानीकार होते हुए भी अज्ञेय का वैचारिक पक्ष उपर्युक्त दोनों लेखकों से अलग है । जहाँ एक ओर जैनेन्द्र और जोशी के पात्र वैयक्तिक सीमाओं के ऊपर उठना असंभव पाते हैं वहाँ अज्ञेय के पात्र खुद अपने वैचारिक क्षेत्र के अन्तर्गत क्रान्तिकारी हैं, आतंकवादी हैं ।

अज्ञेय की कहानियों का वर्गीकरण ऊपर बताया जा चुका है कि अज्ञेय की अधिकतर कहानियाँ प्रत्यक्षतः अहंवादी प्रतीत होती है । अज्ञेय का दृष्टिकोण हमेशा व्यक्तिवादी रहा है । यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने राजनीति से संबद्ध कुछ कहानियाँ लिखी और वे कहानियाँ प्रेमचन्द की समस्या प्रधान कहानियों के करीब आकर खड़ी रहती हैं । लेकिन उनमें प्रेमचन्द की स्थूलता नहीं और पूर्णरूप से पात्र बद्ध भी हो गई है । उनकी कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें भावों का धरातल एकदम कविता के धरातल से जुट जाता है । इन्द्रनाथ मदान कहानी की लय बद्धता और कविता की लय बद्धता की एकरूपता को मानते हुए लिखते हैं, कविता और कहानी के स्तर एक दूसरे से अलग रहकर समानान्तर चलते हैं [1] ।

---

1 इन्द्रनाथ मदान हिन्दी कहानी अपनी जबानी पृ. 105

अज्ञेय की समग्र कहानियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है ।

(1) राजनीतिक आन्दोलन संबन्धी कहानियाँ

(2) अहंवादी कहानियाँ

(3) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

उपर्युक्त वर्गीकरण कहानी के वस्तुगत आधार पर किया गया है । यद्यपि अज्ञेय की कहानियों मे सामाजिक गतिविधियों एवं समस्याओं को एक नए दृष्टिकोण से आकने का प्रयास है फिर भी उनमे वैयक्तिक (व्यक्ति के आधार पर) धरातल पर परखने का आग्रह ही प्रकट होता है । इसलिए वैयक्तिक दृष्टिकोण के आधार पर उन्होंने कैसे स्थूल भावों को उतारा यही दिखाना इस वर्गीकरण का उद्देश्य है । अज्ञेय की कहानियों का सूक्ष्म व्यक्ति और स्थूल समाज समान गति से अग्रसर होते है । और ये दोनों एक दूसरे का पूरक बनकर कहानियों के अन्तिम बिन्दु तक आ गए है ।

<u>(1) राजनीतिक आन्दोलन सम्बन्धी कहानियाँ</u> अज्ञेय का रचनाकाल राजनीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल रहा है । भारतीय राजनीति के इतिहास में अज्ञेय का रूप एकदम आतंकवादी है । अज्ञेय का प्रारंभिक जीवन क्रान्तिकारी दल के साथ व्यतीत हुआ है । 'इनके क्रान्तिकारी जीवन की अवधि 1929 से प्रारंभ होकर 1936 तक है । इस अवधि का अधिकांशतः इतिहास देश के इतिहास से संबद्ध है । अज्ञेय और उनके साथियों का पहला कार्यक्रम भगत सिंह को छुड़ाने केलिए आयोजित था । दूसरा कार्यक्रम 'दिल्ली हिमालय टोयलट्स् फैक्टरी' के बहाने बम बनाने का काम कायम करने का था । उस फैक्टरी मे अज्ञेय वैज्ञानिक सलाहकार थे । तीसरा कार्यक्रम, अमृतसर मे ऐसी फैक्टरी कायम करने का शुरु हुआ और यहीं वे देवराज और कमलकृष्ण के साथ 15 नवंबर 1930 को गिरफ्तार हुए[1] । अज्ञेय के यौवन का अधिकांश समय इस प्रकार जेल जीवन और क्रान्तिकारी सहयोगियों के बीच गुज़र गया और उनका अनुभव इसी अन्तराल मे विस्तार पाता है । इसी विस्तार की अभिव्यक्ति हम उनकी कुछ कहानियों मे देख सकते है । क्रान्तिकारी पात्रों के जीवन की दुष्कर पहलुओं का चित्र स्वाभाविकता के साथ तथा समय के सत्य के साथ खींचा है । आगे हम अज्ञेय की ऐसी

1 विद्यानिवास मिश्र : आजके प्रियकवि अज्ञेय (भूमिका से)

कुछ राजनीतिक आन्दोलन संबन्धी कहानियों का अध्ययन करेंगे ।

कड़ियाँ सत्य को तीन साल की सज़ा मिली थी । जेल से रिहा होकर वह वापस जा रहा है । लारी में बैठकर वह एक ऐसा दृश्य देखता है कि उसका मन क्रोध एवं ग्लानि से भर जाता है । 'एक अधेड उम्र का आदमी, नंगे बदन, हाथ में लाठी लिए दौडा जा रहा है । बीच बीच में एक बीभत्स हंसी हंसकर कहता जाता है, वह पाया तेरी - । और उससे कोई आठ-दस गज आगे एक देहाती युवती - भय-पीडा, लज्जा, करुणा और एक अवर्ण्य भावना - एक बलिदान या अभिमान या दोनों की मुद्रा का एक जीवित पुंज लहंगे की परिमा में सिमटकर भागा जा रहा है । भागा जा रहा है जान लेकर[1] । लारी आगे निकल गई और सत्य देखता रहा ।

सत्य को लेने बहुत सारे मित्र आए । लेकिन सत्य अपना रास्ता चुन लेता है । सत्य उसी जगह की ओर गया जहाँ उसने एक अमंगल घटना देखी । उस स्थान पर सत्य एक बूढे से मिलता है और उससे सत्य सब कुछ जान लेता है । 'हमारे गांव में एक ही बडे किसान है बाकी सब गरीब लोग हैं । ये आस पास के खेत उनके ही है । हमारे तो कहीं एक आध खेत होगा । जब बाढ आई तो हम सब अपने अपने छप्पर सडक पर लाए । एक गरीब का छप्पर भी बह गया था । वे रात भर भीगते बैठते रहे थे । उसके घर में एक लडका बेराम था । उसकी मां रोती थी । बाप तो कहीं काम को गया हुआ था । घर में मर्द कोई नहीं था, एक बहु अकेली थी - उससे यह रोना देखा नहीं गया । वह सास से बोली कि मैं थोडे झाडू और नरसल ले आती हूं बच्चे केलिए छप्परिया छा लेंगे ..... हमने थोडी देर बाद सुना कि उसकी चौधरी के बेटे से रार हो गई है वह पूछ रहा है कि मेरे खेत से मकई काट रही है ? तो वह जवाब देती है कि मैं नरसल काटने आई हूं । वह गाली देता है कि साली झूठ बोलती है, तो वह कहती है जबान संभल कर बात करो वह और गाली देता है तो वह मां बहिन की याद दिला देती है[2] । चौधरी गरम हो गया और उसने मारने केलिए पीछा किया । उसने लाठी मारी लेकिन वह बच निकली । बाकी जो कुछ हुआ सत्य ने भी देख लिया है

- -

1 अज्ञेय कडियाँ और अन्य कहानियाँ (1957) पृ.11

2 वही पृ.21

वह बेचारी भागते भागते झाडी मे डूब गई और जब निकाली गई तब उसका बचना भी संभव नही था । उसी प्रान्त मे किसान विद्रोह हुआ था । सत्य उसी विद्रोह मे मारा गया ।

सत्य नामक पात्र विद्रोही रहा था । भारत मे जो प्रसिद्ध किसान विद्रोह हुआ उस घटना को एक प्रेरणा-बिन्दु के रूप मे लेकर इस कहानी की वस्तु का निर्माण हुआ है । कहानीकार के अन्तिम संकेत से किसान विद्रोह का एक विस्तृत फलक उतर आता है और साथ ही वहा के बडे बडे किसानो ने सत्ताधारी ब्रिटीश लोगो के साथ मिलकर हत्याकाण्ड किया था वह दृश्य भी कौंध जाता है ।

छाया - इसमे एक विद्रोही भाई-बहिन को कहानी को बहुत ही भावुकता पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है । यह कहानी सुषमा और अरुण नामक भाई - बहिन के क्रान्तिकारी जीवन से संबद्ध है । सुषमा, शारदा की कहानी याने अपनी कहानी के बारे मे लिखती है । 'उस दिन जब तुम और शारदा नाव मे बैठकर झील के किनारे की गुफा मे सामान छिपाने को घुसे थे उसके बाद नाव उलट गई और तुम बाहर आई तो देखा शारदा का कोई पता नही है वह सब मै यहा स्मृतिपटल पर देख सकती हू, पर शारदा नही डूबी थी उसी टूटी नाव के एक तख्ते पर बहती हुई वहा से दस-बारह मील दूर किनारे लगी तीसरे दिन वहा से चलकर अपने घर पहुची । अभी घर के बाहर थी कि उसने घर से बहुत से व्यक्तियो के रोने की आवाज़ सुनी । एकाएक किसी भयंकर आशंका से वह कांप गई, कही अरुण का कुछ अनिष्ट तो नही हुआ पर रोने वालो मे उसने अरुण का स्वर सुना और शान्त होकर सोचने लगी - क्या यह रोना मेरे लिए तो नही है ? कैसी विचित्र दशा थी वह । शारदा जीती जागती बाहर खडी रही और अन्दर लोग उसकी मृत्यु पर रो रहे थे फिर, जैसा कि उसकी आदत है, उसने एकाएक निर्णय कर लिया । मुह मोडकर वही से लौट गई । शारदा अपने कार्य क्षेत्र मे लौट आती और अरुण से दूर होने केलिए वह वहा से हटना चाहती है लेकिन अपने कर्तव्य का पालन भी करना चाहती है 'इसी दृढ निश्चय से वह कलकत्ता गई । वहा उसने एक छोटी सी समिति स्थापित की और काम करने लगी । वह जो मोटर मे से एक स्त्री और दो युवको ने गोली चलाकर तीन चार पुलीस वालो को घायल किया था,

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

। अज्ञेय कडियां और अन्य कहानियां पृ.49- 50

उसकी नेत्री शारदा ही थी । उसके बाद कलकत्ते के पास ही एक बम दुर्घटना हुई थी, उसमें भी शारदा बाल - बाल बच निकली थी । फिर पटना में रात में थाने में बम गिरा था, वह भी उसी का काम था । पर उस के बाद न जाने कैसे, पुलीस को पता लग गया, उसके वारंट निकल गए - दो तीन विभिन्न नामों से[1] ।

सुषमा के, शारदा के नाम पर किए गए क्रान्तिकारी कार्यों का ही परिचय उपर दिया गया है । अरुण को पकडे जाने के कारण सुषमा अपने उपर और भी कार्य भार ले लेती है । समितियाँ बनाना, पढाना, मुहल्लों में वलंटियर-दल बनाना आदि । वह अरुण केलिए लिखे खत में लिखती है - 'जब हमारा संगठन पर्याप्त हो गया, तब हमने कुछ और अस्त्र मांगने का विचार किया । इसलिए धन की आवश्यकता थी, और वही प्राप्त करने केलिए मैं यहाँ आई थी स्टेशन के पास पुलीस से सामना हो गया । मेरे पास दो रिवाल्वर थे और छत्तीस गोलियाँ । मैं ने सोचा आज पुराने अरमान निकाल लूं । दो - दो बार मैं ने रिवाल्वर खाली किये तीसरी बार भरने का समय नहीं मिला पर मुझे दुखं नहीं है, मेरे वार खाली नहीं गए[2] ।

अन्तिम अनुरोध के रूप में सुषमा अपने भाई के लिए लिख भेजती है - 'तुम इस कहानी को सुनकर दुखित होओगे पर विचलित नहीं' सुषमा की फांसी में लकते देखकर उसका मन और दृढ होता है । मगर एक छाया जलते हुए स्फुलिंग का राख बनकर अरुण पर छाई है ।

द्रोही - प्रस्तुत कहानी वस्तुतः एक विद्रोही की कहानी है । उसने देश के विरुद्ध बयान दिया । इसमें प्रयश्चित् करनेवाले नायक का चित्र उपलब्ध होता है । यद्यपि वह अपने को सच्चा साबित करने केलिए अपनी ओर से बहुत कुछ तरकीबें निकालता है फिर भी यह धारणा बनी रहती है कि वह द्रोही था ।

रघुनाथ उसका नाम था । वह सोचता है कि वह अपनी ही आँखों के सामने क्यों पतित होता जा रहा है । संसार के प्रति उसकी चेतावनी है - 'संसार मुझ पर हंसता है, मैं, संसार पर हंसूंगा । वह मेरी उपेक्षा करता है, मैं उसकी उपेक्षा करूंगा ।

- -

1 अज्ञेय कोठरी और अन्य कहानियाँ पृ.51 —2— वही पृ.52

इतनी महती शक्ति मुझे आश्रय दे रही है, मेरी रक्षा कर रही है, फिर मुझे किस बात का डर? मै कायर पुरुष नही हूं । जिस शक्ति ने मुझे शरण दी है, उसके प्रति मेरा जो प्रण है - उसे पूर्ण करूंगा[1] । लेकिन इतने पर भी उसका हृदय नही मानता है और वह अपने हृदय की गहराई की बाते करता है, जिसमे पश्चाताप है - 'मै ने एक बार, अस्थार्य जोश मे आकर राजद्रोह करने का और करवाने का बीडा उठाया था । और फिर मै उसका समुचित प्रायश्चित भी कर रहा हूं[2] । रघुनाथ यही चाहता है कि वह सच्चे अर्थ मे एक देशभक्त हो, दिखाने केलिए नही और जो दिखाने केलिए करता है उनके प्रति घृणा भी प्रकट करता है । आगे वह कहता है - देश भक्त? नही, हमे देश भक्त कहलाने की चाव नही है । देश भक्ति उन्ही को मुबारक हो जो पिकेटिंग करके जेल मे काट आते है और फिर आयु भर उसकी याद इठलाते फिरते है - अजी जेल की क्या पूछते हो, हमने जो देखा सो हमी जानते है[3] ।

एक सच्चे विद्रोही का पतन इस कहानी की वस्तु है अपनी पतित अवस्था से उठने का उसका मन नही है वह उसी अवस्था मे रहना चाहता है । तब एक कुण्ठा ग्रस्त विद्रोही का रूप कारण कर लेता है । उसका अन्तिम कथन इसका साक्ष्य है - मेरा निर्णय हो गया, मेरा इस प्रवाह के विपरीत चलने की स्पर्धा करना बेवकूफी है । मै कुछ नही करूंगा, वह जाऊंगा क्यो? मै द्रोही हूं, दोही ही रहूंगा[4] ।

यद्यपि इस कहानी मे पात्र के विद्रोही जीवन का राजनैतिक परिप्रेक्ष्य मे चित्रण उपलब्ध नही है फिर भी पतन की ओर उन्मुख एक विद्रोही का चित्र होने के कारण इस प्रकारण मे प्रस्तुत कहानी आलोच्य बनाई गई है ।

कोठरी की बात - दो भावुक युवको का चित्र इस कहानी से मिलता है । एक हद तक दोनो विद्रोही है । लेकिन विद्रोह भावना से बढकर उनमे भावुकता ही अधिक झाकती है ।

जो स्वभावतः विद्रोही होते है उनकी विद्रोह चेष्टा बौद्धिक नही होती उसका उद्भव एक भावुकता से होता है । कभी वह भावुकता बौद्धिक विद्रोह से परिपुष्ट

- - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय कडियां और अन्य कहानियां पृ.98 -2- वही पृ.99

3 वही पृ.99 - 100 -4- वही 123

भी होती है तब वह विद्रोही अपनी छाया देश और काल पर छोड़ जाता है पर बहुधा ऐसा नही होता । भावुक विद्रोही समय के किसी बवंडर मे फंस जाते है - क्योंकि भावुकता स्वयं एक बवंडर है ।

सुशील केलिए और कोई रास्ता नही था । उसकी यह प्रकृति है, इसलिए अगर उस प्रकृति से देश को कुछ लाभ हो तो अच्छा ही है । उसकी 'जीवनी शक्ति की वही निष्पत्ति' है । सुशील क्यों विद्रोही हो गया ? उसका कारण उसके घर का वातावरण है। एक ऐसी घटना, एक ऐसी प्रतिस्पर्द्धा जिसकी वजह से सुशील को विद्रोही बनने को मजबूर किया गया । 'एक वह क्षण जब वह उसकी बहिन पास पास लेटे हुए किसी विचार मे निमग्न है - शायद अपने उस समीपत्व के पवित्र, रहस्यमय सुख मे और जब उसके पिता एकाएक आकर उसे उठा देते है फटकारते है कि वह अपनी बहिन के पास क्यो लेटा है, और क्रुद्ध, सन्देहपूर्ण, जुगुप्सा - मिश्रित ईर्ष्यावाली और इतनी विषाक्त दृष्टि से उनकी ओर देखते है[1] । एक ओर सुशील अति-भावुक युवक है । इसलिए वह विद्रोह को एकमात्र रास्ता चुन लेता है । जेल की एकान्त परिस्थिति मे अपनी बहिन की स्मृति को रूपायित भी करना चाहता है । वह कहता है - 'मै निहिलिस्ट नही हूं, मै रोमान्टिक नही हूं, मुझे गौरव का उन्माद नही हुआ है । पर मेरी परिस्थिति एक ऐसी अपरिवर्त, तुषारमय, अमोघ अनिवार्यता है कि मुझे और कोई उपाय सूझता ही नही, जिससे कुछ लाभ हो सके'[2]।

'शेखर' उपन्यास के शेखर और 'कोठरी की बात' के सुशील मे समानता देखते हुए इन्द्रनाथ मदान लिखते है कि इस कहानी मे वेदनावाद ही हुआ है शेखर का सुशील ही के रूप विद्रोही व्यक्तित्व है, सुशील की बहिन से वही मधुर सबन्ध है, जो शेखर का सरस्वती से है[3]। दोनो का अपनी बहिनों से संबन्ध होने के कारण समानता देखना समीचीन नही लगता । सुशील का विद्रोही होना उसकी अपनी अन्तिम निष्पत्ति है । वह खुद स्वीकार करता है कि उसकेलिए और कोई उपाय नही था । लेकिन शेखर की बात ऐसी नही । उसका विद्रोही होना अहं की अनिवार्यता नहीं बल्कि विभिन्न अनुभवगत

- -

1 अज्ञेय कड़ियाँ और अन्य कहानियाँ पृ.132 -2- वही पृ.138

3 इन्द्रनाथ मदान • हिन्दी कहानी, पहचान और परख (प्रथम संस्करण) पृ.28

सत्यो के मध्य मे एक विद्रोही व्यक्तित्व का विकास होता है । अतः मदान का कथन हमे उचित नही लगता । सुशील का मानसिक ऊहापोह शेखर मे नही । शेखर मे जो नकारात्मकता है वह सुशील मे नही है । 'कोठरी की बात' कहानी का एक और पात्र है दिनमणि जिसने झूठे समाजिक मुखौटो को तोडना चाहा । लेकिन अपने को असमर्थ पाया । वह राजनैतिक खून के मामले मे जेल मे डाला गया । उसकी आत्मा ने कभी हिंसा नही की, कभी अत्याचार नही किया, यद्यपि उसके हाथो अवश्य ही कई मृत्युएं हुई होगी और जैसे शक्तिमति घृणा का अनुभव करने वाले कम ही होगे ।

प्रस्तुत कहानी के दोनो पात्र भावुक ही है । सुशील पारिवारिक कुण्ठा की वजह से विद्रोही बन जाता है जो उसकेलिए अन्तिम निष्पत्ति है । लेकिन सामाजिक घेरे मे पडकर झूठे सामाजिक वातावरण मे जीकर दिनमणि की विद्रोही भावना कुंठित हो जाती है ।

इसी प्रकरण के अन्तर्गत हम कुछ ऐसी कहानियो को भी ले सकते है जिन्हे राजनैतिक आन्दोलन सम्बन्धी कहानियो के अन्तर्गत मानना उचित नही है । लेकिन इसके पात्र विद्रोह भावना से संचालित है । जीर्ण सामाजिकता के सामने एक प्रश्न चिह्न बन कर खडे होते है । 'पगोडा वृक्ष' की 'सुखदा' 'शत्रु' का 'ज्ञान' जैसे पात्र इसके उदाहरण है

'पगोडा वृक्ष' - सुखदा विधवा थी 'जब से उसका विवाह हुआ था तब से वह उस झोपडी मे रहती थी । उसके विवाह को आज बारह वर्ष हो चुके थे, विधवा होने के बाद भी उसने वह नही छोडा - छोडकर कही जाने का स्थान नही था । वह समाज की नही व्यक्ति मात्र की परित्यक्ता थी[1] । सुखदा का पति देहली मे काम करता था । वर्षो भर उसके साथ रहकर भी पति-पत्नी मे मानसिक सम्बन्ध नष्टप्राय सा ही रहा उसका और उसके पति का जीवन मानो दो अलग और समानान्तर दिशाओ मे बह रहा था[2] । पति की मृत्यु के बाद भी सुखदा की स्थिति मे कोई परिवर्तन नही आता और वह अपने एकान्त मे ही जीवन बिता रही थी ।

वह रात सुखदा के जीवन मे अभूतपूर्व परिवर्तन लाती है रात के सन्नाटे मे किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी । वह एक अजनबी युवक था । कपडे मैले और फटे हुए थे ।

---

1 अज्ञेय अमरवल्लरी और अन्य कहानियां (1954) पृ. 121 -2- वही पृ. 121-2

वस्त्रों से वह बिलकुल एक गंवार लगता था लेकिन उसका चेहरा मानो कह रहा था कि वह पढा-लिखा है, सभ्य एवं सुसंस्कृत है । युवक का नाम दिनेश था । वह क्रान्तिकारी होने के कारण मारा मारा फिर रहा है । वह सुखदा से कहता है 'मैं दो-तीन साल से इसी प्रकार मारा-मारा फिरता हूं । आम तौर पर तो अपना कुछ न कुछ प्रबन्ध रहता ही है और काम चल जाता है । किन्तु कभी कभी हमारी दशा बहुत बुरी हो जाती है - हमारे लिए इस विराट ब्रिटिश साम्राज्य में कहीं पैर रखने को स्थान नहीं रहता।[1]

दिनेश के हाथ में रिवाल्वर देखकर सुखदा उद्विग्न हो जाती है । किसी बाहरी प्रेरणा और आन्तरिक उद्वेग से सुखदा दिनेश से बाहर जाने को कहती है । सुखदा ने बिना कुछ पूछे उसे खाना, गरम कपडे आदि दी थी । दिनेश अपनी सज्जनता का परिचय देता है और बिना किसी झिझक वह बाहर जाता है । सुखदा का अन्तर्मन उसे कोसता है और वह दिनेश को वापस बुलाती है । तरह तरह के विचार उसके मन को उद्वेलित कर रहा था । एक ओर डर दूसरी ओर विद्रोह भावना से प्रेरित होकर वह ऐसी दुविधा में पड जाती है और अन्त में ऐसी एक धारणा पर पहुंच जाती है । वह सोचती है - 'यह कैसा अत्याचार - कैसे बन्धन ? वह क्या मेरा बन्धु नहीं ? वह क्या मानव नहीं ? अगर मैं विधवा हो गई हूं, समाज ने मुझे जूठन की तरह अलग फेंक दिया है, तो मैं समाज के एहसान से मुक्त हूं । मैं अपना कर्तव्य जो समझूंगी करूंगी ।[2]

दूसरे दिन पुलिस उसको बताती है कि सुखदा ने एक मफरूर आदमी की मदद की थी और डाकू एवं खूनी है । मगर सुखदा का मन यह मानने केलिए तैयार नहीं होता । पुलिस के पूछने पर भी वह दिनेश के बारे में कुछ नहीं बताती । जब उसे स्टेशन जाने को कहा गया तब उन लोगों से दो मिनिट का समय मांगकर झोपडी के अन्दर चली गई । उसने पति का चित्र उठाया । उसे फ्रेम से निकालकर क्षण भर देखती रही, फिर धीरे धीरे उसे फोडने लगी ...... फिर एकाएक प्रार्थना केलिए झुक गई । अपने देवता के आगे नहीं, अपने पति के फटे हुए चित्र के आगे नहीं, किन्तु उस चौकी के आगे, जिस पर दिनेश - या सूर्यकान्त बैठे, बैठे सो गया था उसने घुटने ज़मीन पर टेक दिए और सिर को धीरे से चौकी पर नवा दिया ।[3] जब वह बाहर आई तो सुखदा

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय अमरवल्लरी और अन्य कहानियाँ पृ. 126 -2- वही पृ. 138
3 वही पृ 142 - 43

को ऐसा प्रतीत हुआ उसका वर्षों का वैधव्य समाप्त हो गया है और वह आज एक नई स्त्री, एक नई शक्ति हो गई है[1] ।

प्रस्तुत कहानी में मानसिक ऊहापोह से बढ़कर कहानी उचित सामाजिक धरातल का स्पर्श करती है । इसका कारण यह है कि सुखदा अपनी सामाजिक प्रेरणाएं समझती है और इसलिए वह समाज केलिए जो सृजनात्मक (कन्स्ट्रटीव) कार्य है उसी में लग जातीहै और उसके साथ वह अपने मानसिक परिष्कार एवं मुक्ति का भी प्रयत्न करती है ।

'शत्रु' - प्रस्तुत कहानी एक सामाजिक व्यंग्य कहानी है और इसका पात्र ज्ञान एक विद्रोही ही है । ज्ञान की पात्र सृष्टि भी व्यंग्य के धरातल पर हुई है । अतः स्थूल दृष्टि से ज्ञान मात्र एक कल्पना रह जाता है । लेकिन इस पात्रसृष्टि को अन्तर्धारा विद्रोह तक जाती है और उसके प्रस्फुटन ने एक ओर व्यंग्य का रूप कर दिया है और दूसरी ओर सामाजिक संकीर्णताओं की ओर संकेत भी किया है ।

पहले पहल शत्रु इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि मानव जाति की सबसे बड़ा शत्रु है धर्म और उसी से लड़ना है । क्योंकि ज्ञान ने ऐसा एक दृश्य भी देखा कि एक औरत जो विधर्मी से विवाह करने के कारण उसे अपनी जाति भी खोना पड़ा और समाज से भी निकाल दिया । ज्ञान ने यह तय किया कि सबसे पहले धर्म से ही लड़ना चाहिए । ज्ञान के अनुसार धर्म झूठा बन्धन है । परमात्मा एक है अबोध और धर्म से परे है । धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है । परमात्मा से अलग करता है, अतः हमारा शत्रु है[2] । लेकिन लोगों के ज्ञान को समाज से ही बहिष्कृत किया । तब ज्ञान के समक्ष वह समाज या जहां अपरिष्कृत लोग है, जो झूठे विश्वासों के बोझ से दमित है । ये धर्मध्वामी ये पोंगे पुरोहित - मुल्ला ये कौन है ? इन्हे क्या अधिकार ? आओ इन्हे दूर कर दें, एक स्वतंत्र समाज की रचना करें[3] । यह उसका पैगाम था । लेकिन लोग उसको सुनने केलिए तैयार न थे और ज्ञान के विरुद्ध भी थे । इसलिए उन्होंने ज्ञान को काली कोठरी में बन्दकर दिया । जब बाहर आकर देखा तो सचमुच यहां देशी - विदेशी का प्रश्न नहीं ।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय अमरवल्लरी और अन्य कहानियां पृ. 144 -2- वही पृ. 116

3 वही पृ. 116

आखिर लड़ना हो तो मुझ से लड़ना है । जो पेट-भर खाना न मिलनेके कारण दर-दर भटकते है उन्ही को एकत्रित करके एक दल बनाना है । इस पर लोगो ने क्रुद्ध होकर उसे पहाडी किले पर बन्दकर लिया । वहा बैठकी खाई मे उसने अपना प्रतिबिम्ब देखा और वह मानो कह रहा था कि क्या तुम अपने आप से लड चुके ?

समाज रूपी चहार दिवारी के भीतर धर्म, वर्ग, जाति आदि कुत्सित गुटो का प्रभाव ज्यादा है जो मानवता के प्रगतिपथ पर रोडा अटकाते है । इसका प्रभाव हर व्यक्ति पर होता है और व्यक्ति अपने आप मे कुछ नही कर सकता । अगर कोई व्यक्ति इसके विरुद्ध खडा होना चाहता है तो उसे समाज बहिष्कृत करना भी चाहता है । ज्ञान का अनुभव भी इससे भिन्न नही । प्रस्तुत कहानी की एक और विशेषता है कि इसका पात्र बिना किसी संगठन के विद्रोह करना चाहता है जो अपने आप मे विफल होकर रह जाता है । विद्रोह एवं क्रान्ति केलिए जिन जिन साधनो को जरूरत है उसके बिना समान मे परिवर्तन लाना मुश्किल है । इसलिए ज्ञान का कार्य-व्यापार संपूर्ण रूप से फूलतू बनता है अतः इस कहानी से एक ओर समाज के प्रति क्रूर व्यंग्य है तो दूसरी ओर ज्ञान की विद्रोही भावना के प्रति व्यंग्य किया गया है ।

इसी प्रकरण मे कुछ ऐसी कहानियो को भी आलोच्य बनाया जा सकता है जिनमे अज्ञेय ने भारतीय समाज मे धर्मो के बीच, एवं धर्मो के अन्तर्गत होने वाली झूठी नकाबो को उठाने का प्रयत्न किया है । वस्तुतः ये कहानिया पूर्णतः सामाजिक समस्याओ से ओतप्रोत है ।

<u>'शरणदाता'</u> - वकील रफीकुद्दीन अपने दोस्त देवेन्दरलाल को मुहल्ले से जाने से रोक लेता है, यद्यपि वहा के सारे हिन्दु मुहल्ला छोड जा चुके थे । रफीकुद्दीन अपनी दोस्ती का फर्ज, एवं वैयक्तिक संबन्ध को महत्व देने वाले थे । इसलिए उन्होने कहा -'नही साहब, हमारी नाक कट जाएगी, कोई बात है भला कि आप घर बार छोडकर अपने ही शहर मे पनाहगज़ी हो जाएं ? हम तो आप को जाने न देंगे - बल्कि जबरदस्ती रोक लेगे[1] रफीकुद्दीन का आश्वासन पाकर देवेन्दरलाल रुक गया था । सारा हिन्दु परिवार जा चुका था । आखिर देवेन्दरलाल भी मजबूर था । लेकिन कहा जाऊं अकेले, यही सवाल था उसके सामने । रफीकुद्दीन के यहा शरण से पाकर देवेन्दर लाल आश्वस्त हो गया कि

1 अज्ञेय ये तेरे प्रतिरूप (प्रथम संस्करण) पृ 47

कुछ दिन केलिए शेख अताउल्लाह खा के अहाते के अन्दर पिछली तरफ पेडो के झुरमुट की आड मे बनी एक गैरज की बगल की कोठरी मे रहेगे । वहा उनकेलिए खाना आता रहता था । एक दिन खाने केलिए बैठा तो फुलको को लेने हो वाला था, तीन एक फुलको के तह के बीच एक कागज़ की पुडिया सी पडी थी । और उसमे लिखा था - खाना कुत्ते को खिलाकर खाइएगा । देवेन्दरलाल ने बिला को खिलाया थोडी देर बाद बिलार चोखता, कूदता गुरीता हुआ कराहने लगा और फिर चुप हो गया । इस घटना ने देवीन्दरलाल को वहा से बल निकलने की प्रेरणा दी ।

कई दिनो के बाद देवीन्दरलाल को एक चिट्ठी मिली जो लाहौर की मुहरवाली थी उसमे लिखा था - आप बचकर चले गए, इसकेलिए खुदा का लाख शुक्र है । मै मानती हू कि रेडियो पर जिन के नाम आपने अपील की है, वे सब सलामती से आपके पास पहुच जाए । अब्बा ने जो किया या करना चाहा उसकेलिए मै माफी मागती हू सिर्फ यह इल्तिज़ा करती हू आप के मुल्क मे अकलीयत का कोई मज़लूम हो तो याद कर लीजिएगा । इसलिए नही कि वह मुसलमान है, इसलिए कि आप इनसान है । यह चिट्ठी उस जैबू की थी जिसको देवीन्दरलाल ने देखा तक नही था ।

लेटर बक्स - यह शरणार्थी समस्या को लेकर लिखी गई एक कहानी है । यद्यपि प्रस्तुत कहानी मे किसी अमुक धर्मावलबी लोगो को बीच की लडाई की बात नही बल्कि हिन्दु और मुसलमान की पारस्परिक पाशविकता एवं मंद-बुद्धि का परिचय मिलता है ।

रोशन अपने पिताजी को खत लिखकर बक्से मे डालना चाहता है । लेकिन उसे यह मालूम नही कि खत किस पते पर लिखा जाय । उसकी कहानी उसके ही शब्दो मे इस प्रकार है - 'घर से वह और मा और चाचा के साथ चला था लाहौर जाने केलिए । जितने भी गाव से शेखपुरे तक साथ साथ आए थे, वहा से अलग हो गए थे, एक दूसरे गाव मे जाने केलिए जहा से रोशन की बुआ और फूफा को लाना था लाहौर मे आ मिलने को कह गए थे । लाहौर की तरफ जाते - जाते और भी कई लोग उनके साथ हो गए थे, लेकिन रास्ते मे कुछ लोगो ने बन्दूको से बहुत सी गोलिया चलाई और कुछ साथ मारे गए - चाचा भी मर गए । पर साथियो ने रुकने नही दिया, बहुत जल्दी

1 अज्ञेय ये तेरे प्रतिरूप पृ.62

जल्दी बढते गए । लाहौर से बाबूजी से मिलने की बात थी, पर वे लोग लाहौर गए ही नहीं । रास्ते में बहुत से लोग मिले थे, उन्होंने कहा कि लाहौर जाना ठीक नहीं इसलिए रास्ते में मुड गए । दूसरे दिन फिर दो चार लोग गोलियों से मर गए, फिर एक जगह बहुत से लोगों ने लाठी और कुल्हाडी लेकर वार किया । वे लोग औरतों को पकडकर जाने लगे । माँ को भी उन्होंने पकड लिया । माँ चिल्लाई, पर जिसने पकडा था, उसने जोर से उनका मुँह अपने कन्धे से दाब दिया । तब माँ ने कन्धे में बडे ज़ोर से काट लिया और उस आदमी को झटके के साथ अलग करके ज़मीन पर पटक दिया, और कुल्हाडी की उल्टी तरफ से मुँह पर वार किया - माँ चिल्लाई तो रोशन ने आँखें बन्द कर ली, खोली तो माँ का मुँह, नाक, जबडा कुछ नहीं था[1] । - रोशन यही चाहता था किसी न किसी प्रकार पिताजी के पास पहुँच जाए ।

प्रस्तुत कहानी एक प्रकार से धर्मान्धता की पाशविकता की कहानी है । मानवीय इतिहास में कितनी बार रक्त रंजित क्रान्तियाँ हुई हैं लेकिन धर्म के नाम पर एक दूसरे को मारने वाले धर्मान्धों की यह कलंक कथा है । इसमें रक्त की लालिमा के बदले कलंक की कालिमा ही दृष्टिगत होती है ।

मुस्लिम - मुस्लिम भाई-भाई – धार्मिक कट्टरता मनुष्य को अंधा बनाती है । लेकिन यह धर्मान्धता के पीछे कुछ स्वार्थ होता है जो कुछ इने गिने लोगों का होता है और वे अपनी स्वार्थपरता की रक्षा केलिए साधारण लोगों को कठपुतला बना देते हैं । जब यह स्वार्थ और भी अधिक विकसित होता है तब उसके सामने न धर्म रह जाता है न जाति ।

प्रस्तुत कहानी में शरणार्थियों की एक ऐसी मजबूरी का चित्र है कि वे अपनी आकांक्षा का नाश अपनी आँखों से ही देखते हैं । रेलवे स्टेशन पर शरणार्थियों की भीड थी । सुबह एक गाडी चल चुकी और रात को एक गाडी जाने वाली है । सकीना, अमीना और जमीला पाकिस्थान जाने वाली स्त्रियों में से हैं । रात को जानेवाली गाडी में अफसर जा रहे थे । इन्हें शक था कि उसमें जाने केलिए जगह मिलेगी नहीं फिर भी उनका आशावाद उन्हें आश्वासन देता है कि 'आखिर तो मुसलमान होंगे बैठने क्यों न देंगे ... हाँ आखिर तो अपने भाई हैं'[2] । गाडी स्टेशन पर रुक गई । ये तीनों जिस

---

1 अज्ञेय , ये तेरे प्रतिरूप - पृ.63 - 64 –2– वही पृ.68

जनाने डिब्बे की ओर लपकी वह सेकड क्लास का था और उन्हे उत्तर मिला - 'हटो, यहा जगह नहीं' । आमिना की मजबूरी - 'बहिन हम नीचे ही बैठ जाएगे - मुसीबत मे है । जमीला केलिए उत्तर मिला - जाना हो तो जाओ, थर्ड मे जगह देखो, बडी आई है हमे सिखाने वाली । सकीना ने भद्र महिलाओ की चेतावनी का सामना किया - तो बुला लो गार्ड को, आखिर हमे बिठाएगे' । झगडा खत्म होनेवाला नही था तो बीच मे भद्राओ के एक भाइजान ने हिस्सा लिया - 'क्यो जी तुम लोग जाती क्यो नही, यहा जगह नही मिल सकती कुछ अपनी हैसियत भी तो देखना चाहिए[1] जमीला कुछ तेज थी 'क्यो हमारी हैसियत को क्या हुआ, हमारे घर के इमान की कमाई खाते है । हम मुसलमान है पाकिस्थान जाना चाहते है और[2] । आमिना की तेजी खासी मे बदल जाती - 'मुसीबत के वक्त मदद न करे, तो कम से कम और न सताए, हमे स्पेशल ट्रेन से क्या मतलब ? हम यहा से जाना चाहते है, जैसे भी हो । इस्लाम मे सब बराबर है इतना गरूर या अल्लाह[3] । झगड आगे बढता गया । भीतर से अवाज आई - खबरदार हाथ बढाया तो, बेशर्मी हयाशर्म छू नही गई इन निगोडियो को आखिर क्रोध का प्रस्फटन इस प्रकार था - बडी पाक दमन बनती हो । और हिन्दुओ के बीच मे रही हो और उनके बीच से भागकर जा रही हो आखिर क्रोध कैसे ? आखिर क्या यो ही छोड दिया होगा ? सौ सौ हिन्दुओ से ऐसी - तैसी कराके पल्ला झाड के चली आई पाक दमनी का दम भरने[4] । सकीना, आमिना और जमीला को छोडकर वह स्पेशल ट्रेन दहाडती हुई चली गई । उनके मुह मे एक ही शब्द निकला 'थू' । इस 'थू' के भीतर एक क्रोध छिपा, एक विवशता छिपी, एक गहरी वेदना छिपी है जो औसत आदमी की अपनी है जिन्हे न धर्म के स्वीकारा और न जाति ने ।

धर्मान्धता की समस्या को लेकर अज्ञेय की और भी कहानिया है जिनमे 'रमन्ते तत्र देवता' , 'बदला' आदि विशेष उल्लेखनीय है ।

इसी प्रकरण मे कुछ और कहानियो का उल्लेख करना उचित है जिनके पात्र क्रान्तिका जीवन से संपर्क रहते है । इन कहानियो की यह भी एक विशेषता है कि इनका पूरा

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय ये तेरे प्रतिरूप पृ.70 —2— वही पृ.70

3 वही पृ.70 —4— वही पृ.70

परिवेश विदेशी है, पात्र भी विदेशी है । यहाँ मुख्यतः तीन कहानियाँ आलोच्य है ।

विपथगा - प्रस्तुत कहानी मे मेरिया इवानोव्ना की क्रान्तिकारी जीवन गाथा चित्रित है । वह दानवी या मानवी है इसका निर्णय कर लेना बहुत कठिन है 'उसके शरीर मे लावण्य की दमक थी; मुख पर सौंदर्य की आभा थी, किन्तु उसकी आंखे, उसमे अनुराग, विराग, क्रोध, विनय, प्रसन्नता व्यथा कुछ भी नहीं था । थी केवल एक भीषण, तुषारमय, अथाह ज्वाला[1] । क्रान्ति के सम्बन्ध मे वह अपना विचार रखती थी । अहिंसात्मक क्रान्ति पर उसका विश्वास न था । वह कहती है - अहिंसात्मक क्रान्ति । जो भूखे, नंगे, प्रपीड़ित है, उनको जाकर कहोगे, चुपचाप बिना आह भरे मरते जाओ । रूस की भयंकर सर्दी मे बर्फ के नीचे दब जाओ रोते हुए बच्चो से कहोगे माता की छातियों की ओर मत देखो, बाहर जाकर मिट्टी - पत्थर खाकर भूख मिटाओ । और अत्याचारी शासक तुम्हारी ओर देखकर मन ही मन हंसेगे और तुम्हारी अहिंसा की आड मे निर्जनो का रक्त चूसकर ले जाएंगे । यही है तुम्हारी शान्तिमय क्रान्ति, जिसका तुम्हे अभिमान है[2] ।

इवानोव्ना का क्रान्तिकारी जीवन बहुत ही कठोर एवं प्रतिकूल परिस्थिति को पार करता हुआ आगे बढा । उसके पिता पीटर्स दुर्ग मे पुलिस विभाग के सदस्य और प्रति राजनैतिक विभाग मे काम करते थे । लेकिन मेरिया का जीवन इनसे भिन्न था । क्रान्तिकारी दल के लोग उसे शक की दृष्टि से देखते थे । इसलिए उसे एक प्रकार से अग्निपरीक्षा से गुज़रना पड रहा था । क्रान्तिकारी दल के सदस्यों को बन्दी बनाकर ले जानेवाले पुलिस दल पर वार करने का कार्य उस पर सौंपा गया । बन्दियो को मुक्त किया गया । दूसरे दिन अखबारों मे से इसका पता चला कि बन्दियों को ले जाने वाले पुलिस अफ़सर खुद मेरिया के पिताजी थे ।

पुलिस ने क्रान्तिकारी दल के प्रधान मइकिल क्रेस्की को गिरफ्तार किया । लेकिन इसका पता पुलिस को नहीं है कि वह क्रान्तिकारी है या नहीं । मेरिया एक साधारण गंवारिन स्त्री का वेश धारण करके विभाग के दफ्तर गई । जनरल कोप्लिन से बाते की । मइकिल क्रेस्की को छुडाने केलिए मेरिया को अपनी इज्जत बेचनी पडी गोरोवस्की का यही शर्त था । लेकिन इज्जत लूटने का बदला भी तो उसने ले लिया । ~~अब उसका~~ गोरोवस्को की हत्या उसने की । अब उसका एकमात्र उद्देश्य जनरल कोप्लिन को मारना

- - - - - - - - - - - - - - - - - -
1 अज्ञेय अमर वल्लरी और अन्य कहानियाँ पृ 64 —2— वही पृ 69

रह गया । वह गोरोवुस्की से मिले रिवाल्वर से कोप्लिन की भी हत्या करती है और आखिर खुदखुशी कर लेती है ।

पूंजीवादी शासन सत्ता के विरुद्ध शासित वर्ग की लडाई की पृष्ठभूमि में लिखित इस कहानी को पढने के बाद लेखक के स्वर से स्वर मिलाना पडता है मेरिया इवानोवना तुम मानवी थी या दानवी या स्वर्गभ्रष्टा विपथगा देवी[1] ।

'हारिति' - हारिति नाम मात्र के लिए स्त्री थी । लेकिन जब से उसने होश संभाला, जब से उसने अपने चारों ओर चीन से प्राचीन देश का विस्तार देखा, जब से उसने अपनी सभ्यता का तत्व समझा, तबसे उसके जीवन में कितनी दुखमय घटनाएं हुई थी । जब वह छः वर्ष की थी तभी उसके पिता को जर्मन सेना ने तोप के मोहरे से बांधकर उडा दिया, क्योंकि वे 'बाक्सर' गुप्तसमिति के सदस्य थे । उसके बाद 1900 वाले बाक्सर विप्लव में, जब उसकी अवस्था 11 वर्ष की भी नहीं हुई थी, जर्मन और अंग्रेज़ सेना ने उसके छोटे से गाव में आग लगा दी थी । वहां के स्त्री पुरुष सब जल गए - उनमें उसकी विधवा मां भी थी ..... आज वह युवती थी । अभी अविवाहिता थी, पर कुमारियों के जीवन में जो आनन्द होता है, वह उसने अपने निर्दय जीवन में कभी नहीं पाया अब वह कैंटन सेना में जासूस का काम करती थी[2] । इसलिए उसके मन में जो कल्पना उठी थी वह अपने बारे में न होकर देश के विषय में थी ।

उन दिनों चीन का बहुत बुरा हाल था । एक ओर सन्यातसेन अपनी सेना का संगठन कर रहे थे मंचूरिया में भी सम्राट युवान शिकाई अपनी ओर से सेना की सज्जा कर रहे थे । इन दिनों सेनाओं में यह फर्क था कि कैंटन सेना स्वयं सेवी थी; युवान शिक की सेना वेतन पाकर काम कर रहे थे । कैंटन की सेना विश्वास के कारण लडती थी औ युवान शिकाई की सेना लोभ के कारण । कैंटन सेना के सामने जो आदर्श था, जो दीप्ति थी, वह उन्हें प्रोत्साहित करती, उन्हें शक्ति प्रदान करती उन्हें विमुख होने से बचाती थ 'पर सभी के हृदय में वह आदर्श - वह दीप्ति नहीं थी । कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे,

----

1 अज्ञेय : अमरवल्लरी और अन्य कहानियां पृ.84 —2— वही पृ.29-30

कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे, जिनके हृदय में दूसरी इच्छाएं, दूसरी आशाएं दूसरी स्मृतियाँ बस गई थी। उनका ध्यान युवान शिकाई की प्रगति की ओर नहीं प्रणय की प्रगति की ओर था। उनके मन में दृढ विश्वास का आलोक नहीं विरह का पज्ज्वलन था।[1] लेकिन हारिति इन सब से मुक्त होकर सर्वथा अपनी जान को प्रजातंत्र की जय केलिए अर्पित करने केलिए तुली हुई थी।

बहुत दूर तक की यात्रा के बाद हारिति आई हुई थी। लेकिन तुरन्तु उसे और काम मिला। कर्नल का एक खत पहुँचाना। करीब नब्बे मील की यात्रा फिर से करनी थी। हारिति और उसका साथी क्वानियन और नौ साथियों के संग यात्र शुरु होती है। उन्हें मालुम था कि बीच में युवान शिकाई की सेना के साथ मुठ भेड होगी। प्रतीक्षा के मुताबिक मुठ भेड होती है। उनके साथी सब मारे गए और अन्त में क्वनियन भी मारा गया। हारिति का घोडा घायल होकर गिर पडा और हारिति नदी में कूद पडी। उसका अध मरा शरीर पानी में बह गया। नदी के किनारे मछुए लोग बैठे थे। हारिति का अध मरा शरीर बह आ रहा था और मछुओं ने उसे उठाया। उसकी जबान से एक ही शब्द निकला - कैंटन का लाल मकान - डाइना पेड्कु के मकान वे हारिति को लेकर मकान गए। डाइना पेड्कू से मुलाकात हुई। डाइना पेड्कु केलिए एक प्रेम सन्देश था और मुँह से लज्जा के साथ एक शब्द निकला 'प्रियतम'। यह देखकर हारिति के नेत्रों का तेज बुझ गया। उसने आँखें मूंद ली 'दो तीन शब्द उसके आगे दौड आए - दो-तीन स्मृतियाँ वे मरते हुए बन्धु - वह दीन घोडा क्वनियन और उसके शब्द हारिति हमारी जीत होगी, हारिति क्या यह विदा है? जाओ हारिति, जाओ, तुम वीर हो, मैं भी अधीर नहीं होऊँगा। व्यथा की एक रेखा मुख पर दौड आई। यही था काम, जिस केलिए इतनी मेहनत की, यही थी सेवा जिसकेलिए उसने इतना बलिदान किया।[2] वास्तविक विद्रोह को स्वार्थों के लिए मिटाना पडता है। इसके प्रति कहानीकार का वेदना से अभिभूत आक्रोश भी है।

अकलंक - मार्टिन नामक एक सच्चे वीर योद्धा की निस्वार्थ सेवा की कथा इसमें वर्णित है। चीनी प्रजातंत्र के लोग अपने घरों को भी नष्ट करके शत्रुगण को पराजित करना चाहते है। लेकिन सेना नायक अपना विशाल भवन छोडने केलिए तैयार नहीं। सब लोग यही समझते है कि मार्टिन अपनी स्वार्थ प्रेरित इच्छापूर्ति केलिए पूरे प्रजातंत्र को खतरे में डालना चाहता है। यहाँ तक मार्टिन की प्रेमिका क्रिस भी ऐसा विश्वास करती है कि मार्टिन

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय अमरवल्लरी और अन्य कहानियाँ पृ.31 —2— वही पृ.46-47

अपने स्वार्थ को ही अपना सब कुछ मानता है । देश केलिए उसके मन मे कुछ नही । मार्टिन यह नही चाहता था कि अपनी राज़ किसी को बताए । वह क्रिस को भी बताना नही चाहता । वह कहता है - 'क्रिस अभी तुम्हे नही/समझा सकूँगा कि क्या चाहता हूँ, किन्तु जो करना चाहता हूँ वह देश को भला है । तुम इतना विश्वास नही करती ।[1] लोगो का मार्टिन पर जो विश्वास था वह उड गया । वे तरह तरह की बाते करने लगे उस समय मार्टिन का साथ देने कोई न था ।

मार्टिन सीधे अपने विशाल भवनमेघुसकर कुदाली से फावडा निकालकर खोदने लगा । कमरे के बीच काफी बडा गड्डा खोदने के बाद उसने वहा कुछ ऐसी चीजे रख दी कि किसी को पता न चला और वह बाहर चला आया । क्रिस के दुबारा मिलने पर भी मार्टिन ने राज़ नही बताया । बहुत तंग करने पर भी उसने कुछ कहा नही बल्कि इतना बताया कि क्रिस, मुझे अधिक पीडित न करो । मै विवश हूँ, इतना मान लो और क्रिस की नाराज़गी भी मोल ली । जब मार्टिन को लोगो ने बन्द कर दिया तब क्रिस दिल से रो रही थी । क्रिस उस भवन के पिछवाडे खडी होतीहैजिसको मार्टिन नही छोडना चाहता था । तभी बन्दीगृह से लिखे मार्टिन का खत पहरेदार पहुँचाता है । लिखा था - सुनो क्रिस्टाबेल, जाते हुए एक बातकहे जाता हूँ । मै कायर नही हूँ, इस बात का विश्वास मै तुम्हे उसी समय दिला सकता था, पर तुम विश्वास न कर सकी । मुझे तुमसे विश्वास की - सहज - स्वाभाविक, अटल विश्वास की - आशा थी[2] । क्रिस के खत पढने के पहले ही एकाएक मार्टिन का भवन भूतल से उड गया जहाँ शत्रु सेना का अड्डा जमा हो गया था । यह प्रबन्ध मार्टिन का था और वह यही करके दिखाना चाहता था ।

क्रिस केलिए यह बिलकुल एक आघात था । वह कुछ कहने लायक भी न रह गई थी । मार्टिन सफाई देने केलिए भी तैयार न था । उसका उत्तर था 'मै सैनिक हूँ, सैनिक स्वभावतः विश्वास का पात्र होता है । मै सफाई देकर विश्वास मोल नही लेना चाहता[3] । किस के पहुँचते ही उस पर गोलियाँ पड चुकी थी और क्रिस सच्चाई को बताने मे भी नाकामयाब हुई ।

----

1 अज्ञेय अमरवल्लरीऔर अन्य कहानियाँ पृ.86 -2- वही पृ.100
3 वही पृ.100

उपर जितनी कहानियो का उल्लेख हुआ उसको 'राजनीतिक आन्दोलन सबन्धी कहानियो' के वर्ग मे रखी गई है । शरणदाता, हिन्दु-मुस्लीम भाई भाई; '... रमन्ते तत्र देवता' आदि कहानियो को छोडकर बाकी सारी कहानियो के पात्र या तो क्रान्ति है, या क्रान्तिकारी बनने की इच्छा रखनेवाले है । विदेशी परिवेश मे लिखी हुई कहानियो मे भी कुछ ऐसे पात्रो की सृष्टि हुई है जो क्रान्तिकारी जीवन पूर्ण रूप से जी कर अपने जीव को एक ट्रैजडी तक ले जाते है । उपर कहा जा चुका है कि अज्ञेय का प्रारंभिक जीवन क्रान्तिकारियो के संग बीत गया था । इसलिए अगर अज्ञेय मे इस तरह का आग्रह प्रबल वह बिल्कुल स्वाभाविक है । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम मे अज्ञेय ने गांधीवादी न रह कर क्रान्तिकारी रहना पसंद किया था । अतः बहुत सारी कहानियो हमारे राष्ट्र की राजनैतिक हलचल की पृष्ठभूमि मे लिखी हुई है । इसीलिए राजनैतिक कहानियो के अन्तर्गत रखकर उनका अध्ययन किया गया है । 'लेटर बक्स', शरणदाता, हिन्दु मुस्लीम भाई-भाई जैसी कहानियां एक अर्थ मे सामाजिक है लेकिन भारतीय विभाजन से मनुष्य और मनुष्य के ब जो विघटन हुआ, धर्म और धर्म के बीच जो पाशविकता फैल गई उसी अन्तराल की कहानियां है । अतः परोक्ष रूप से सही ये कहानियां हमारे राजनैतिक स्थिति से उत्प्रेरित भावनाओ को लिपिबद्ध करनेवाली कथाएं है । यद्यपि अज्ञेय का दृष्टिकोण किसी न किस रूप मे इनमे वर्तमान है फिर भी वह राजनैतिक परिस्थितियो का प्रभाव इन सब की सर्जना के मूल मे काम कर रहा है । इसीलिये हमने उपर्युक्त कहानियो के राजनीतिक आन्दोलन संबन्धी कहानियो की कोटि मे रखा है ।

(2) अहंवादी कहानियां - अज्ञेय का पूरा साहित्य व्यक्ति पर केन्द्रित है । आत्म केन्द्रि अज्ञेय साहित्य को अहंवादी साहित्य की कोटि मे रख सकते है । 'नदी के द्वीप' नामक उपन्यास की एक परिचर्चा के दौरान उन्होने यह स्पष्ट लिखा - मेरी रुचि व्यक्ति मे रही है और है।[2] अनुभूत सत्य एवं कालानुभव को वे व्यक्ति के माध्यम से देखने का प्रयास करते है ।

इन अहंवादी कहानियो के अन्तर्गत आत्मकेन्द्रित पात्रो पर विचार किया जाएगा । यहां एक विशेष बात व्यक्त करता हू कि आगे मनोवैज्ञानिक कहानियो के अन्तर्गत जितने पात्र आते है वे भी एक प्रकार से आत्मकेन्द्रित ही है । लेकिन विश्लेषणात्मक ढंग से उनकी जटिल मानसिकता पर ज़ोर देने के कारण मै ने उन्हे मनोवैज्ञानिक कहानियो के अन्तर्गत रखा है ।

- - - - - - - - - - - - - - - -

दुख और तितलियाँ : प्रस्तुत कहानी में मृत्यु के बीभत्सक रूप एवं वैयक्तिक संबन्धों की निरर्थकता और साथ ही उसके सार्थकत्व का परिचय स्वतः मिल जाता है । शेखर की माँ की मृत्यु हो चुकी है ..... यद्यपि वह अपनेपन में से उसे स्वीकार कर रहा था, तथापि उसके भीतर कहीं, उसकी आत्मा के छिपे से छिपे स्तर में लिपटी हुई कहीं इस बात की पूर्ण अनुभूति थी कि वह व्यर्थ जा रही है कि उसकी माँ मर चुकी है, कि अब डाक्टर आकर कुछ नहीं कर सकता[1] । लेकिन उसे लगा कि वे व्यर्थ ही मृत्यु को इतना तूल देते हैं ।

मृत्यु की छाया सब कहीं छाई हुई थी । उसे ऐसा भी जान पड़ने लगा 'मृत्यु में एक भयंकर यत्परोनास्तित्व है, जो क्षुद्र हो ही नहीं सकता, जो एक व्यक्ति के जीवन से संबद्ध होकर भी व्यापक रूप से सर्वत्र छाई है[2] । चिता जल रही थी । शेखर याद करने की कोशिश कर रहा था कि माँ का रूप कैसा था । लेकिन उसकी कोशिशें विफल होती जा रही थीं । 'उन लपलपाती जिह्वाओं में, उन असंख्य रक्त मुकुरों में, उसे माँ की साधारण सौम्य मूर्ति प्रतिबिम्बित नहीं दीखी । दीखा मृत के चित्र, वार्तालाप, भाव, जो थोड़ी देर में एक भयंकर स्मृति में परिणत हो जाए एक स्मृति, जो साकार उसके आगे नाचने लगी और हटाए नहीं हटी[3] । सब लोग जा रहे थे । कुछ देर चलने के बाद अपनी अपनी राह पकड़ लेंगे । उसे दुख महसूस नहीं हुआ । शेखर ने अपने आप से एक प्रश्न किया 'यदि तुम्हारा दुख इन से भिन्न है, यदि तुम्हारी अनुभूति उनसे तीखी उनसे गहरी है तुम क्यों नहीं रोते? या तुम्हारे दुख रोने से परे हैं तो तुम वज्राहत की तरह पड़े हो[4] ? जब दो तितलियाँ चिता की ज्वाला के पास मँडराते हुए उस पर गिर पड़ीं तो शेखर ने सोचा, -इनके मर जाने पर, इनका क्या रह गया होगा ? घर-बार ? यश ? कीर्ति ? कृतियाँ ? स्मृतियाँ सन्तान रही होगी, किन्तु उस मस्तिष्क हीन, ज्ञान शून्य सन्तान को इससे क्या कि किसे पैदा हुई थी । कितना साधारण, कितना निरर्थक, किसी क्षुद्र प्रकृतिगति में कितनी नगण्य घटना है मृत्यु[5] । तब शेखर की आँखों में आँसू की धाराएँ फूट पड़ी और केवल एक शब्द निकला 'माँ' ।

मृत्यु प्रकृति में घटित होने वाली एक साधारण घटना है । लेकिन वैयक्तिक संबन्धों की जटिलता ने उसको और जटिल और भयंकर बना दिया है वहाँ व्यक्ति और

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय : कड़ियाँ और ~~xxxx~~ अन्य कहानियाँ पृ.151 —2— वही पृ.155
3 वही पृ.159 —4— वही पृ.163 —5— वही पृ.164

व्यवित के बीच की कडी आसानी से टूट जाती है । इस कडी के टूटने से व्यवित का अस्तित्व भी मिट जाता है । मृत्यु व्यवितयों के बीच, उनके पारस्परिक संबन्धों के बीच एक दरार पैदा करती है । शेखर का निर्वेद अपने अस्तित्व से चिन्ताग्रस्त मानव का निर्वेद है जो मृत्यु की वजह से उत्पन्न होता है ।

देवी सिंह प्रस्तुत कहानी में वर्ग संघर्ष एवं समाज - हित पर बल देने वाले सिद्धांत के विरुद्ध व्यवित और व्यवित के अपने संघर्ष की तुलना करने का प्रयास किया गया है । कहानी का मिस्टर आस्थाना भिखारियों को पैसा देने के विरुद्ध है । उनका सिद्धांत है कि यह दया-वया की भावना गलत चीज़ है और भिखारियों को बढावा देना वर्ग-संघर्ष को कमज़ोर बनाना है[1] । लेकिन लेखक केलिए ऐसी अकलमन्दी बडी चीज़ नहीं है और मानव के प्रति आद्रता दिखाना ही उनकेलिए महत्व की बात है ।

देवीसिंह बचपन से भिखारी था । पोलियो रोग से आक्रान्त होने के कारण वह लोगों से पैसा मांगकर गुजारा कर लेता था । एक दफे लेखक से उसने एक चौवन्नी मांग लिया । वह किसी एक व्यवित से सप्ताह में एक बार पैसा लिया करता था । देवीसिंह को जीवन के प्रति अधिक रुचि थी - अपार रुचि - वह हारा हुआ भिखारी नहीं बन सका था[2]

कोई डेढ वर्ष बाद फिर से देवीसिंह से मुलाकात हुई । वह मैगज़िन बेच रहा । पूछने पर मालूम हुआ कि उसने पैसे जुटाकर अपने इलाज का प्रबन्ध किया था, पोलियो रोग के एक विदेशी विशेषज्ञ के पास छः महीने बिताए थे और अब वह अपने भविष्य के बारे में आस्वस्त था ..... अब जो हो वह भीख नहीं मांगेगा और मैगज़िनों की बिक्री के सहारे पढ लिख भी लेगा[3] ।

वर्ग - संघर्ष पर बल देनेवालों का यह दृढ विश्वास है, वर्गों के बीच के संघर्ष से समाज का कल्याण संभव है । व्यवित का संघर्ष कुछ नहीं है । अगर व्यवित संघर्ष ही क्यों न करें वह उनकेलिए पलायन है । वर्ग-संघर्ष के बीच व्यक्ति नगण्य समझा गया । इन दो विचार धाराओं का संघर्ष ही कहानी का मुख्य केन्द्र है ।

हजामत का साबुन प्रस्तुत कहानी में एक अहंवादी का विद्रोह प्रतिपादित है । एक व्यवित का विद्रोह, अज्ञेय का मौन विद्रोह है - व्यक्ति केलिए व्यवित का विद्रोह है ।

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय ये तेरे प्रतिरूप पृ.22 —2— वही पृ.24 —3— वही पृ.25

लाला अपने नौकर को पीट रहा था । जब लला दूकान पर आए तो नौकर को ललाइन की सेवा और उनके बच्चे की देखभाल केलिए छोड आये थे । इस बीच ललाइन ने नौकर को हुक्कुम दिया कि चावल ले आए । बच्चे को घर पर छोडकर नौकर चला आया बीच मे बच्चा पडोसी लाला के यहाँ पहुचा । इसी को लेकर लाला नौकर हीरू को पीट रहा था ।

लाला की इस हरकत पर व्यवित की प्रतिक्रिया थी - ओ हीरू तू भी इनसान है । मार लाला के बच्चे को एक थप्पड[1] । लेकिन हीरू मार खाता जा रहा है । कोई प्रतिक्रिया नही । 'अबे हीरू एक थप्पड मार दे लाला के बच्चे को चाहे धीरे से ही - चाहे असफल ही[2] । हीरू कह रहा है - 'मालिक आप माई-बाप है आप का लडका मेरे अपने बच्चे के बराबर है और उसपर जान देने केलिए तैयार हूँ[3] । लाला का उठा हुआ हाथ रुक गया । लडाई खत्म हुई । —— लेखक की प्रतिक्रियाएं - व्यवित की - प्रतिक्रियाएं ही कहानी मे उपलब्ध है ।

<u>वे दूसरे</u> - हेमन्त और सुधा के बीच एक दूसरा आ गया या एक दूसरा था जिसका फिर से बाना हुआ और वह संबन्ध - पति और पत्नी का आपसी संबन्ध टूट गया । तलाक हुआ लेकिन उसे भी सौन्दर्य के साथ परिणत करने की चाह मे हेमन्त बैठा है । लेकिन जो कुछ हेमन्त कहता है वह हेमन्त का स्वर न होकर और किसी का है । वह कहता है - 'सुधा मै नही कह सकता कि मेरे मन मे कितनी ग्लानी है और मै जानता हूं कि वर्षो तक मुझे खाती रहेगी - मुझे लगता है कि अनुताप का यह बोझ मै सारा जीवन ढोता रहेगा । लेकिन ..... मै नही चाहता कि कटुता का बोझ तुम्हे भी ढोना पडे या कि तुम उसे याद भी रखो[4] । आगे भी हेमन्त अपने को झुठलाता जाता है क्योंकि वह कहता है '-और अगर तुम इतना भूल सको - याने मेरे साथ की कटुता को दोबारा विवाह की बात तुम्हारे मन मे उठे, तो मुझे बडी स्वान्तना मिलेगी[5] । लेकिन सुधा अपने मे प थी और उसका स्वर खुला था - मेरे विवाह की बात सोचने की तुम्हे जरूरत नही, हाँ उससे तुम अपने को अधिक स्वतंत्र महसूस कर सकोगे, यह तो मै समझ सकती हूं[6] ।

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय ये तेरे प्रतिरूप पृ.36 —2— वही पृ.37 —3— वही पृ.38
4 अज्ञेय जयदोल (1951) पृ.61-62 —5— वही पृ.63
6 वही पृ.63

विवाह के बाद सुषा के नाम पर 'उस दूसरे' की चिट्ठी आई । सुषा इस पर अनमना थी । पर दो-तीन के बाद सुषा ने खत के बारे में बातें छेड़ी । लेकिन हेमन्त भी अनमना था या अनमना बनने का बहाना किया । लेकिन हेमन्त के भीतर जो हेमन्त था वह स्वस्त नहीं था । उसने धीरे से कुछ एक शब्द पहचान लिया - कुछ एक वाक्यों पर उसकी नज़र फिसलती गई - और मैं सोचता हूँ कि तुम शीघ्र ही उसके बच्चे की माँ भी होगी - उस बच्चे की सूरत उस जैसी होगी, लेकिन तुम्हारा वह देह[1] वहीं से संबन्ध टूट गया - दूसरे के आगमन की परछाई स्पष्टतर होने का आभास होने लगा ।

लेकिन हेमन्त का दूसरा हेमन्त कह रहा था - सुषा मैं सच कहता हूँ - सागर की कसम खाकर - मेरे मन में कोई कटुता नहीं है । जो कुछ था, या होना चाहा या जब मिटा दिया तो कटुता क्यों अनिवार्य है ? मेरा अपराध का बोध नहीं मिटा, न मिटेगा - पर तुम जाओ तो क्षमा करके जाओ - सागर की तरह[2] । सुषा की मुस्कान तीखी थी । वह चली गई पहले अकेली फिर हेमन्त ने पहचान लिया एक और व्यक्ति उसके साथ हो लिया और क्षण भर बाद कदम से कदम मिलाकर चलने लगा ।

इस कहानी के द्वारा व्यक्ति-मन के तनाव, उससे उत्पन्न एक संवेदनशीलता को उभारा गया है । व्यक्ति की अनुभूति खुद व्यक्ति की अनुभूति है । वह अपने में आनन्द पाता है । वह दूसरे से मिलती नहीं । इसलिए जब वह प्रकट होकर टकराती है तब से संबन्धों के शिथिल होने का आभास होता है । 'अपने संबन्धों - अनुभवों से सहसा टूटकर उन्हें बाहर से देखते ही यह अनुभूति अत्यन्त आधुनिक है । इस तरह कहानी का यह बोध कि संबन्ध जोड़ते ही नहीं - अकेला और नंगा भी कर देते हैं । संबन्धों के प्रति यह तटस्थ विश्लेषण-भाव आधुनिक कहानियों की भावभूमि का निर्माण करता है[3] । व्यक्तियों के तनाव के चित्रण में परिवेश का चित्र जब ठीक तरह से जोड़ दिया जाता है तब तनाव का उभरता भाव कहानी के पूरे परिवेश में स्पष्ट होता है ।

(3) <u>मनोवैज्ञानिक कहानियाँ</u> प्रेमचन्द युगीन स्थूल सामाजिकता के आगे, जैनेन्द्र की कहानियों का एक विशेष स्तर, मनोवैज्ञानिक गुत्थियों के सुलझाने का विशेष आग्रह के साथ प्रकट हुआ । अज्ञेय ने अपनी कहानियों में किसी विशेष स्तर को परिभाषित करके सामान्य

1 अज्ञेय : जयदोल पृ.71 // 2 // वही पृ.73
3 विजयमोहन सिंह : अज्ञेय कथाकार और विचारक पृ.73

स्तर पर ही बौद्धिक कुशलता एवं मनोवैज्ञानिकता के शास्त्रीय पक्ष का प्रतिपादन किया। अज्ञेय की कहानियों में बौद्धिकता तथा मनोविज्ञान का गहरा पुट है और उसका स्वरूप सुगम संगीत का न होकर, शास्त्रीय संगीत का है, मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों पर आश्रित है।

आगे हम उनकी कुछ महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक कहानियों का विश्लेषण करेंगे। 'कोठरी की बात' शीर्षक कहानी को राजनीतिक आन्दोलन संबन्धी कहानियों के परिच्छेद में सामाहृत किया गया है क्यों कि इसका सुशील नामक पात्र विद्रोही है। लेकिन इसमें विद्रोही परिकल्पना के बावजूद भी मनोवैज्ञानिक जटिलताओं की ओर ध्यान गया है।

सुशील और उसकी बहिन के बीच के संबन्ध की एक जुगुप्सापूर्ण परिभाषा जब कल्पित की गई, पिताजी के इस व्यवहार पर बालक सुशील रोने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता था। इसलिए उसने स्वयं प्रतिज्ञा की, आगे बहिन के पास खड़ा भी नहीं हो पाऊँगा।

बच्चों के व्यक्तित्व विकास में माता पिता और बच्चों के आपसी संबन्ध का बड़ा हाथ है। वह घर से अपने भविष्य की परिकल्पना करता है[1]। बच्चों के जीवन-इतिहास में आनेवाले परिवर्तनों के मूल में पारिवारिक वातावरण और पारिवारिक संबन्धों का प्रभाव लक्षित होता है क्यों कि बच्चों के सन्दर्भ में परिवार एक प्रकार का माध्यम है।

सुशील के बचपन से ही दूसरों के प्रति उसके परिवार का संबन्ध ढीला पड़ गया। लेकिन उसकी बहिन का रूप (इमेज) उसके हृदय में अस्पष्ट नहीं हुआ था। वह स्वप्न के तरीके से कल्पना करता है और हृदय को दिलासा पहुँचाता है। क्योंकि उसके मन में बहिन का जो 'इमेज' थी, वह मनोवैज्ञानिक शब्दावली में 'इडिपस काम्प्लेक्स'[2] कहा जाता है।

'पगोडा वृक्ष' की सुखदा की मानसिक कुण्ठा एवं घुटन का भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन अपेक्षित जान पड़ता है। वर्षों से वह ऐसी प्यास का अनुभव करती है जो बुझती नहीं है

---

1 Thompson: Child psychology. p.622

2 'इडिपस काम्प्लेक्स' के संबन्ध में विस्तार के साथ शेखर के बाल जीवन के विश्लेषण के दौरान कहा गया है।

वह विधवा है । जब उसका पति जीवित था तब भी उसकी प्यास जैसी की तैसी बनी रही । 'जब वह घर मे होता, तब सुखदा के हृदय मे उसके प्रति एक उद्वेग, एक प्रकार की झुझलाहट के अतिरिक्त कोई भावना नही होती थी'[1] ।

अचानक उसके जीवन मे ऐसी घटना घटी थी जो उसकेलिए सर्वदा अप्रत्याशित थी । दिनेश का आ जाना और उसकेलिए स्वागतपूर्ण व्यवहार करना सुखदा अपने हृदय से न चाहते हुए भी, वह कर रही थी । सुखदा जब खाना लेकर दिनेश के पास गई तब दिनेश सो रहा था । उसे जगाना पडा । युवक ने सोते ही सोते कहा 'उमा क्या है । उस एक ही शब्द ने उसके मन मे खलबली मचा दी । इसलिए खाना एवं कपडा देने के बाद वह शिकायत करती है और दिनेश बाहर जाने को बाध्य होता है । उमा को लेकर उसके मन मे संघर्ष पैदा होता है । वह यह नही चाहती थी कि दिनेश का सम्बन्ध किसी दूसरे व्यक्ति से हो । संघर्ष बराबर चलता रहा है - 'अगर क्या ? अगर उमा उसकी प्रेमिका रही हो । सुखदा को यह विचार असह्य प्रतीत हुआ । वह तीव्र गति से इधर उधर टहलने लगती है ..... यह कभी नही हो सकता - उसकी प्रेमिका नही हो सकती - वह ऐसा नही हो सकता[2] । दिनेश के प्रति उसके हृदय मे प्रेम पैदा होता है । लेकिन बीच मे उमा के आने के कारण उसका मन उद्वेलित हो उठता है । उसे ऐसा लगता है कि उसके कुछ सपने टूट गए हैं, कुछ सुन्दर महल खण्डहर बन चुके है । एक प्रकार की प्रतिशोध भावना, कुछ देर केलिए ही सही मन मे उठती है । दिनेश के हाथ मे रिवाल्वर होने के कारणउसे अपने यहाँ ठहराने की सुविधा वह नही दे सकती - जाने केलिए कहती है । वास्तविक रूप से इसका कारण दिनेश के मुह से 'उमा'शब्द सुनने के कारण ही है । लेकिन वह इस बात को सूचित नही करना चाहती और दूसरी ओर हत्यारा होने का कारण बताकर उससे जाने केलिए कहती है । मनोवैज्ञानिक शब्दावली मे कहे तो यह एक प्रकार से 'डिस्प्लेसमेंट' की प्रवृत्ति है[3] । लेकिन जब सुखदा यह जान जाती है कि उमा, दिनेश की बहिन है तो उसे पश्चाताप होती है । वह दिनेश को वापस बुलाती है । दिनेश को समीप मे पाकर वह अपनी कुण्ठा से मुक्त हो जाती है अनबुझी प्यास से हमेशा केलिए मुक्त हो जाती है ।

- - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय अमरवल्लरी और अन्य कहानियाँ पृ. 122 -2- वही पृ. 137

3 Gerald S. Blum Psychodynamics: The Science of unconscious mental force. p.38

'अछूते फूल' शीर्षक कहानी मे मीरा नामक युवती के उच्च अहं (सुपर ईगो) को विश्लेषण पद्धति द्वारा विश्लेषित किया गया है । सभ्य समाज मे समस्त स्तरों पर मीरा ने अपना स्थान बना लिया था 'कहा जा सकता था कि उसने अपने समाज मे सफलता प्राप्त की थी । पुरुषों पर प्रभाव डालने की उसमें विशेष शक्ति थी । उस शक्ति को प्रतिभा कहें तो अनुचित न होगा । मीरा के हम जोली सभ्यों की भाषा मे कहा करते थे - 'शी हेज़ ए वे विथ मेन'[1] । उसके पास कोई पुरुष झुककर आता है, कोई अकडकर, कोई लोलुप भाव से कोई कठोर अपेक्षा से लेकिन मीरा ने उनसे एक विशेष दूरी कायम की थी ।

मीरा हवा खाने निकली थी । वह खुद अपने आप कुढ रही थी 'उसके मन मे बार-बार खुजली सी उठती थी कि किसी से कठोर व्यवहार करे, किसी से लड़े, बुरी तरह पेश आए, किसी को चोट पहुँचाए, किसी चीज़ को बिगाडे । क्यों, किसे, कैसे यह सब उसके सामने स्पष्ट नहीं था, पर उसका मन मनुष्य मात्र के प्रति एक तीखी अप्रीति से लबालब भर रहा था और छलक पड़ता था[2] । उसने देखा कि सामने एक साइकिल वाला आ रहा था । उसने पथ पर से एक छोटी डाल उठा ली । तब एक दम से उसने वा छोटी सी डाल साइकिल के पहिए की ओर फेंक दी और साइकिल वाला एकदम लडखड़ाकर गिर पडा । लेकिन वह उसे लेकर अस्पताल पहुँची । डाक्टर ने कहा कि डरने की कोई बात नही है फिर भी उससे उस आदमी चेहरा भूलना असंभव सा हो गया । वह याद जब वह भूल न पाई तो एक उदासी उसके अन्दर फूट पड़ती है ।

सभ्य समाज मे एक संभ्रात महिला के रूप मे जीवन बिताने के कारण उसे हमेशा आदर मिलता था और पुरुषो के साथ एक विशेष दूरी रखने के कारण उन लोगो से भी आदर एवं सत्कार प्राप्त था । इसलिए वह अपने अहं को विकसित करने मे सफल रही । साहसिक वृत्ति की कमी उसमे नही थी । जब खुद उसका ही आलोचक बनता है तब उसका मानसिक नियंत्रण भी टूट जाता है । उसका उच्च अहं[3] जब उस पर हावी होता है तब उसका मानसिक नियंत्रण टूट जाता है ।

---

1 अज्ञेय अछूते फूल और अन्य कहानियाँ पृ. 113 —2— वही पृ. 115

3 Gerald S. Blum : Psychodynamics The Science of unconscious mental force 6

'कविता और जीवनी' शीर्षक कहानी एक ऐसे आदमी के शिव सुन्दर के अवचेतन मन के उहापोहों और उससे संबन्धित मानसिक उलझन की कथा है । शिवसुन्दर कविता लिखना चाहता था । लेकिन उसे कविता लिखने केलिए उचित स्थान की खोज थी इसलिए वह हरद्वारा चला गया और एक एकान्त कमरे में रहने लगा । जैसे उसे लगता था कि उसका जीवन नीरस है और उसे चाहिए था सौन्दर्य । कविता जीवन केलिए सौन्दर्य प्रदान कर सकती थी, ऐसा ही उसका दृढ विश्वास था ।

आधी रात के वक्त जैसे वह अकस्मात् कोई शब्द सुनकर जाग पडा । वह समझ नहीं पा रहा था कि कहाँ से यह शब्द आ रहा है । वह शब्द था - नूपुरों की ध्वनि । शिव सुन्दर सोचता है -लेकिन कौन है यह स्त्री और इतनी रात वहाँ क्यों है और इतना हौसला उसको कैसे है[1] । अचानक उसके हृदय में एक स्मृति चित्र सा दौड आता है - 'शाम को उसने हलवाई से दूध लिया था, तब हलवाई की लडकी भी बैठी थी । शिवसुन्दर एकटक उसकी ओर देख रहा है, सहसा यह जानकर वह शर्म से लाल हो गई और भीतर चली गई[2] । शर्म क्या है ? पुरुष को आकर्षित करने का एक साधन है । उसके मन में और भी रूप उभरते है - 'वह मांगने वाली औरत - ऐसी उसने कभी नहीं देखी थी जब वह साधारण अपील से आकृष्ट नहीं हुआ तब बोली - तेरा धोवन पी लूं बाबू, एक पैसा दे, तेरा थूक चाट लूं बाबू, जब इससे भी उसे ग्लानि ही हुई तब, तेरे गुलाबी गाल पे मरुं बबु एक पैसा दे, तेरी दाढी को हाथ लगाउं बाबु .... और बैठकर उसकी ठोडी ही तो पकड ली थी उसने।[3] इन्हीं विचारों से वह बाहर आया और आवाज दी उसने - कौन है ? लेकिन कोई नहीं था । अन्त में वह जान गया कि न वह नूपुर की ध्वनि थी, न कोई अप्सरा । वह था एक पौधा जो हवा में डोलकर नुपुर की सी ध्वनि निकालती थी ।

शिवसुन्दर यौन कुंठा से पीडित एक व्यक्ति है । वह अपनी कुण्ठाओं को उदात्तीकृत करके सौन्दर्य में बदल लेना चाहता है । इसलिए वह कविता करने केलिए एकान्त स्थान में चला जाता है । एक नुपूर की ध्वनि सुनने पर वह हलवाई लडकी के बारे में सोचता है, उस भिखारिन की कल्पना करता है जिसने पैसा मिलने केलिए मीठी मीठी बातें

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 अज्ञेय जयदोल पृ.98 —2— वही पृ.99 —3— वही पृ.100

की थी । कविता उसका एक बहाना मात्र है । एक रुग्ण मानसिकता का उदात्तीकृत बहाना है । उदात्तीकरण का प्रयत्न पराजय में बदल जाता है । मनोविज्ञान यह बताता है कि अचेतन[1] (अनकानसियस्) मन की प्रक्रियायें चेतन मन[2] (कानसियस्) से भी ज्याद गहरी है । शिव सुन्दर का अवचेतन यौन-कुण्ठा से पीडित है । लेकिन वह दूसरों के सामने उसे दिखाना नहीं चाहता । इसलिए स्वाभाविक रूप से किसी दृश्य, या शब्द मात्र सुनने पर यह भाव मन को उद्वेलित करता है । क्योंकि वह स्त्रियों से सम्बन्धित बातें ही सोचता रहता है । अन्य जितने भी भाव उसके हृदय में दमित रूप में स्थित रहते हैं ।

अज्ञेय की कुछ विशिष्ट कहानियाँ वर्गीकरण के अन्तर्गत जितनी कहानियों की चर्चा संभव हो सका है । इससे अधिक महत्व पूर्ण अज्ञेय की दो - एक कहानियाँ यहाँ विशेष उल्लेखनीय है और यहाँ उनका विवेचन उचित समझता है ।

'गैग्रीन' या 'रोज़' अज्ञेय की बहु चर्चित कहानियों में से है । इस कहानी में कुण्ठा और घुटन का परिवेश सत्य के साथ उभरता हुआ चित्र हमें मिलता है । इसके 'ट्रैजिक सेनस्' पर कुछ आलोचकों ने जोर दिया[3] तो और कुछ आलोचक परिवेश से कट जाने का ठण्ठा एहसास की स्थिति देखते हैं[4] । मालती, पति महेश्वर और उनके छोटा बच्चा बिट्टी एक पर्वतीय इलाके में रहते हैं जहाँ महेश्वर डाक्टरी करता है । कहानी इनके घर के इर्दगिर्द एक तनावपूर्ण वातावरण में निर्मित हुई है । मालती अपनी घुटन व्यक्त

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 - 2 Sigmund Freud General Psychological theory. pp.49-50.

3 यह अज्ञेय की सर्वाधिक चर्चित कहानी है क्यों कि इसमें सबन्धों की वास्तविकता को एकान्त वैयक्तिक अनुभूतियों से अलग ले जाकर सामाजिक सन्दर्भ में देखा गया है मध्यवर्ग की पारिवारिक एक रसता को जितनी मार्मिकता से व्यक्त कर सकी है ।
विजयमोहन सिंह : अज्ञेय कथाकार और विचारक पृ.73

4 जो विषाद और बोरियत की गहरी छाया है, परिवेश से कट जाने का ठण्ठा एहसास है, इसमें आधुनिकता है, एक स्तर पर उजागर होती है । कहानी में छाया शब्द को अनेक बार दुहराने से गहराया गया है और हर बार इसका नया आयाम खुलता है ।
डा. इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी कहानी पहचान और परख पृ.230

करती है - 'हां, केस बनाते देर क्या लगती है ? कांटा चुभा, इस पर टांग काटनी पड़े, यह भी कोई डाक्टरी है ? हर दूसरे दिन किसी की टांग, किसी की बांह काट आते हैं, इसी का नाम अच्छा अभ्यास है मैं तो रोज़ ऐसी बातें सुनती हूं । अब कोई मर - मिट जाएं तो ख्याल ही नहीं होता[1] । यहां रिश्ते के कट जाने का एहसास स्पष्ट मिलता है । मालती और माहेश्वर के बीच का संबन्ध शिथिल हो गया है । अज्ञेय ने इस शिथिलता को बड़े ही सांकेतिकता से व्यंजित किया है । रोज़ टैप में पानी का रुक जाना, पानी आ जाने पर बड़ी उत्सुकता से मालती का जाना, बच्ची के पलंग से गिरने के बारे में मालती कहना आदि । मालती कहती है - इसके चोटें लगती ही रहती है रोज़ ही गिर पड़ती है[2] । सचाई यह है कि उनका संबन्ध भी रोज़ चोटें खाकर गिरता जा रहा है । आखिर उनके जीवन में रह गये हैं बोरियत भरे निर्मम और तनाव पूर्ण क्षण ।

'पठार का धीरज' भी अज्ञेय की श्रेष्ठतम कहानियों में से है । इस में एक फैंटसी और वास्तविकता को - उसके भिन्न स्तर को एक वस्तु सत्य पर स्थित करने का प्रयास है प्रमीला और किशोर दोनों प्रेमी हैं । एक पठार का इतिहास है । उस इतिहास में एक राजकुमार है और राजकुमारी हेमा भी है । दोनों प्रेम करते थे और उनका प्रेम एक विफल प्रेम था । कुंवर को प्यार था - 'अपनी छाया को । चन्द्रोदय होते ही वह कुण्ठ पर आता था, हाथी पर सवार उसकी अपनी छाया कुण्ठ के एक ओर से बढ़कर दूसरे किनारे नहाती हुई राजकुमारी की जुन्हाई की देह को घेर लेता थी । उस लम्बी, बढ़ने वाली छाया से कुंवर को प्रेम था । राजकुमारी यों ही उसकी लपेट में आ जाती थी[3]'। राजकुमारी हेमा एक वास्तविकता है । वास्तविकता का एक स्तर है । लेकिन वास्तविकता के कई स्तर हैं । धीरज हमें एक साथ ही अनेक स्तरों की चेतना देता है, अधैर्य एक प्रकार का चेतना का धुआं है जिससे बोध का एक स्तर मिटता जाता है और अन्त में हमारी आंखें कड़ुआ जाती है हमें कुछ दीखता नहीं[4] । प्रमीला और किशोर वास्तविकता का एक दूसरा स्तर है । 'पठार की अपनी एक वास्तविकता है, उनकी अपनी एक वास्तविकता है वास्तविकता के अलग अलग स्तर कहीं भी एक दूसरे को काटें । जो बोध स्वयं ही हो, चेतना स्वतः उभरकर-फैलकर जिस स्तर को छू भी आवे, चेतन स्वच्छन्द रहे, निर्धूप रहे, क्योंकि धीरज उनमें है, उनमें रहेगा[5] ।

- -

1 अज्ञेय जिज्ञासा और अन्य कहानियां (1965) पृ.17 -2- वही पृ.21

3 अज्ञेय जयदोल पृ.13 -4- वही पृ.19 -5- वही पृ.20

हमारे जीवन के वास्तविक सत्य हमेशा एक ही रास्ते पर चले, यह संभव नहीं। वास्तविकता के भी अनेक सत्य बोध है। इसलिए तब हमारे लिए तीव्र अनुभूति जागी मिलती है - जो वास्तविकता का एक और सत्य है - वास्तविक सत्य है।

'कहानी मे इन विभिन्न स्तरो को वास्तव और अवास्तव के बोध को पठार के माध्यम से जगाने की कोशिश की गई है।[1] कहानी के विभिन्न स्तरो पर प्रकाश डालते हुए डा.नामवर सिंह लिखते है - 'कहानी मे घटनाओ का वर्णन चाहे जिस क्रम से किया हो - क्रम विपर्यय हो, अथवा बीच बीच मे अन्य अवान्तर प्रसंगो के शाखा सूत्रो का भटकाव, कोई न कोई एक बिन्दु होता है। जिसकी ओर सारा वर्णन संकेत करता है। .... जिसपर कहानी की सारी किरणे मिलती है, अथवा जहा से सारी किरणे निकलती है और इसकी व्याख्या स्वयं उस कथावृत्ति की समग्रता के द्वारा ही हो सकती है। इसमे कहानी की संश्लिष्टता पुष्ट होती है। जो कहानी जीवन के किसी गूढ एवं गहन सत्य की अभिव्यक्ति करती है।[2]

<u>अज्ञेय की कहानियां उपलब्धियां और संभावनाए</u> - अज्ञेय की कहानियो के रचनाकाल का आरंभ सन् 1930 से माना जा सकता है। इस समय तक आते आते प्रेमचन्द की कहानियो मे भी वस्तु पक्ष और शिल्प पक्ष की दृष्टि से तीसरे आयाम का अन्वेषण करती दीखती है। अज्ञेय का कहानी क्षेत्र मे इसी समय पादार्पण हुआ था।

सन् तीस से लेकर पैतालीस का समय अज्ञेय के सन्दर्भ मे सक्रिय राजनीतिक जीवन का काल था। उनका ज्यादत्तर समय जेल एवं नज़रबन्दी जीवन मे बीत रहा था। वास्तव मे अज्ञेय भी प्रेमचन्द युग से ही लिखने वालो मे से है। लेकिन अज्ञेय अपने व्यक्तित्व के एक मात्र अधिकारी थे। इसलिए अज्ञेय की रचनाओ के साथ हिन्दी कथा साहित्य मे कुछ नवीन प्रवृत्तियो की अवतारणा होने लगी। एक दम स्थूल सामाजिकता से परे होकर स्थूल समाज की बातो का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने की प्रवृत्ति का प्रोद्घाटन अज्ञेय ने किया।

रचनाकार और रचना का एक प्रकट सम्मिलन होता है - दोनो पूर्णता के बिन्दु पर सम्मिलित होते है। वस्तुतः रचना का युग-सापेक्ष्य होना अपेक्षित है। प्रेमचन्द का

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 डा.इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी कहानीः अपनी जबानी पृ.104

2 डा.नामवर सिंह कहानी नई कहानी (द्वितीय संस्करण) पृ.138-140

साहित्य और उनके रचना काल के इतिहास के समवर्ती होकर चलता है । उस समय की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक गतिविधियों का उन्होंने अध्ययन किया और उनक अभिव्यक्ति दी । इसी प्रकार अज्ञेय का जीवन आतंकवादियों का जीवन था । अपने जी के अनुभूतियाँ ग्रहण करते हुए उन्होंने नए साहित्य की संरचना का भार अपने ऊपर ले लिया लेखकीय उपलब्धि से मतलब लेखक की रचना की आत्यन्तिक संभावना से है 'उपलब्धि का अर्थ बोध उसकी संपूर्णता में निहित है - जिस में एक ओर रचना के अनेकानेक तत्त्व मिले रहते हैं और दूसरी ओर एक निश्चित इतिहास चक्र का परिप्रेक्ष्य है[1]। यहाँ इतिहास का सम्बन्ध राष्ट्र के समकालीन - इतिहास से है । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास सन् 1950 तक की कहानी साहित्य में व्यक्त है । प्रेमचन्द की ऐतिहासिक उपलब्धि भी इसके साथ जुटी हुई है और अज्ञेय की भी । लेकिन अज्ञेय की नई संरचना शक्ति, नई सर्जनात्मक ऊर्जा ने कहानी के रूप एवं भाव को बदला । नए जीवन के आग्रह के साथ उनकी कहानियाँ उभरी । अपने अनुभव के दायरे में अज्ञेय ने परखा - व्यक्ति की समस्याओं को जाना, व्यक्ति की सीमाओं की परिकल्पना की । एक विद्रोही व्यक्ति की सीमाएँ उनकी हमेशा रही है । 'कड़ियाँ' शीर्षक कहानी इसका उदाहरण है । सत्य, क्रान्तिकारी दल का सदस्य है । कहानी में किसान आन्दोलन की चिकनी रेखा मात्र हमें परिलक्षित होता लेकिन वह आन्दोलन ही कहानी का कथ्य-पक्ष है । जिन विषमताओं को पार कर एक विस्तृत आन्दोलन की भूमिका तैयार की गई थी और जिस पृष्ठ भूमि में आन्दोलन ने रूप धारण किया था उसके प्रेरणा बिन्दू के रूप जो क्रान्तिकारी विचारधाराओं को उन्होंने 'कड़ियाँ' कहानी के माध्यम से उतारा है वह ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ही बल देता है । सत्य विद्रोह की श्रृंखला की कड़ियों में एक अनजान कड़ी मात्र है । अज्ञेय का अनुभव ज्ञान इसमें मिला हुआ है । यह कहा जा चुका है कि अज्ञेय की कहानियों की पृष्ठभूमि भारत की स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि है । स्वाधीनता संग्राम की तैयारी कई प्रकार से हो रही थी । कोई नरम दल के थे, कोई गरम दल के । अज्ञेय ने क्रान्तिकारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को वैयक्तिक धरातल पर देखा। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के आधार स्तंभ तत्कालीन क्रान्तिकारियों के वैयक्तिक जीवन का सामाजिक सन्दर्भ में कितना यथार्थ स्वाभाविक एवं कलापूर्ण चित्रण अज्ञेय ने किया है[2] उतना और किसी ने नहीं किया । छाया शीर्षक कहानी इसका एक ज्वलंत उदाहरण है ।

- -

1 देवीशंकर अवस्थी : नई कहानीः सन्दर्भ और प्रकृति (प्रथम संस्करण) पृ. 212

2 गंगाप्रसाद विमल : अज्ञेय का रचना संसार पृ. 116

अज्ञेय की कहानियों का मूल स्त्रोत विद्रोह है । उनका विद्रोह दर्शन सभी कहानियों का प्रेक्ष्य-बिन्दु है । समाज के मिथ्या मूल्यों के प्रति अज्ञेय के कहानी-चरित्रों की अहं प्रेरित विद्रोही - भावना वास्तव में आत्मविश्वासयुक्त दृष्टिकोण का ही प्रतीक है । अहं प्रेरित विद्रोह की अभिव्यक्ति 'पगोडा वृक्ष' शीर्षक कहानी में हुई है - सुखदा के माध्यम से ।[1]

अज्ञेय की कहानियाँ अधिक आत्म केन्द्रित होने के कारण उसमें सामाजिक परिवेश को नकारा गया है, ऐसा आरोपण नया नहीं है । लेकिन यह धारणा आधार विहीन जान पडती है । उनकी शरणार्थी जैसी कुछ कहानियाँ उदाहरण स्वरूप हम ले सकते हैं । यहाँ उनका दृष्टिकोण बहुत ही स्थूल समस्याओं की ओर झुका हुआ है ।

अज्ञेय कहानियों की उपलब्धि में बाधा के रूप में उनका रोमानी दृष्टिकोण खडा होता है । रोमानी वातावरण का अंश कहीं कहीं सीमातीत रूप में प्राप्त होता है । कहानी का कथ्य पक्ष चाहे विद्रोह को लेकर हो, चाहे मनोविज्ञान से संबन्धित । सभी कहानियों में रोमानी वातावरण का विस्तृत माहौल है।उदाहरण केलिए 'कडियाँ', 'पगोडा वृक्ष', 'हारिति', 'अकलंक' 'छाया', 'अमरवल्लरी' आदि कहानियाँ । पात्रों की चरित्र परिकल्पना में उन्होंने आदर्शपरक दृष्टिकोण अपनाया है और इसी कारण कहानी का शिल्प बहुत ही शिथिल हो गया है ।

वस्तुतः इस युग में कहानियों के माध्यम से एक नए वर्ग का आना हुआ - मध्यवर्ग । स्वाधीनता संग्राम ही इसका प्रमुख कारण है । अज्ञेय ने भी इसी वर्ग को प्रश्रय दिया है । डा.भगवानदास वर्मा के अनुसार 'आधुनिक जीवन की विकासोन्मुख प्रवृत्ति, पारम्परिक संस्थाओं का नित नया विघटन और विकास, शिक्षा दीक्षा का बदलता प्रभाव इन सब चेतन शील जीवन तत्वों का जितना प्रभाव मध्यवर्ग के मानस को झकझोर दिया, शायद उच्च और निम्न वर्ग को नहीं ।[2] प्रेमचन्द जैसे कथाकारों ने पूर्ण रूप से इस वर्ग को उभारा नहीं क्योंकि उनका दृष्टिकोण निम्न वर्ग की ओर अधिक रहा । अज्ञेय जैसे कहानीकारों के साथ मध्यवर्ग का जागरण जो हुआ वह एक प्रकार से उपलब्धि ही है । डा.वार्ष्णेय के

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 गंगाप्रसाद विमल : अज्ञेय का रचना संसार पृ.116

2 डा.भगवानदास वर्मा : कहानी की संवेदनशीलता सिद्धांत और प्रयोग (प्र.सं)पृ.15

अनुसार, एक वर्ग तो उनकी कहानियो का, जिनमे उनमे सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन करने और मानव मूल्यो को स्पष्ट करने की चेष्टा की है[1]।

उपलब्धि के अर्थ बोध तक रचनाकार की रचनाओं की सर्जनात्मक शक्ति जब संचरण करती है तब कुछ संभावनाएं भी प्रस्फुटित होती ही है । रचना की संभावनाएं आनेवाले युग का मार्ग निर्देशन करती है - नए युग केलिए द्वार खुल जाता भी है ।

प्रेमचन्द्र ने अपना एक युग बनाया । उनकी कुछ एक कहानियों से आधुनिकता क पहला दौर शुरू होता है । अज्ञेय इस दौर की दूसरी सीढी है । आधुनिकता का पहला संकेत तब प्रेमचन्द मे होता है उसका दूसरा स्तर अज्ञेय से है । लेकिन अज्ञेय की कहानियों मे आधुनिकता के विभिन्न स्तर एक साथ प्रकट हुए । कहानी के आभ्यन्तर पक्ष से लेकर भाषिक स्तर पर उनका विकास दिखाई देता है । 'अज्ञेय की कहानी मे आधुनिकता की चुनौती को वैयक्तिक धरातल पर ही स्वीकारने का प्रयास 'है । व्यक्ति सत्य के स्तर ही जीवन की जटिलता तथा उसके मूल्यो को व्यक्त करने का प्रयास है । यह कहना असंगत लगता है कि इनकी कहानी मे सामाजिक चेतना का नितान्त अभाव है । इसके बजाय यह संगत होगा इनका कहानीकार जीवन तथा जगत का चित्रण एवं मूल्यांकन वैयक्तिक संवेदना के धरातल पर करता है और सामाजिकता को भी इसी कसौटी पर परखता है[2]।

<u>निष्कर्ष</u> - नई कहानी हिन्दी कहानी साहित्येतिहास मे एक आन्दोलन के रूप मे आ गई जिनमे बदलते परिप्रेक्ष्य को सच्चाई के साथ उभारने की कोशिश बहुत ही सजीव ढंग से प्रस्[तुत] हुई है। लेकिन यह आन्दोलन एक विशेष घडी मे उद्भूत नही हुआ बल्कि उसके पीछे नि[रन्तर] बदलते रहने वाले मूल्यो का प्रभाव भी है और उसे रूपायित करनेवाले रचनाकारो का परिश्रम भी। नए कहानीकार प्रेमचन्द को नही भूल सकते है, उनके अनुभव बोध के वे ऋणी ही है उसी प्रकार कहानी के रूप को और विकसित करने मे अज्ञेय जैसे कहानिकार का योगदान भी कम महत्व का नही है । नए सन्दर्भ को नए अर्थ मे तलाशने का कार्य अज्ञेय ने अपनी कह[ानियों] के माध्यम से किया । आधुनिक जटिलता का संकीर्ण रूप जिसके विभिन्न आयाम अज्ञेय की कहानी मे उपलब्ध है । अतः उनकी कहानियों से हिन्दी कहानी एक प्रौढ परंपरा के रूप मे विकसित होती है और नए अर्थ - संकेतो का ग्रहण करने की प्रक्रिया भी शुरू होती है ।

---

1 डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी कहानी का परिपार्श्व (प्र.सं.) पृ.80-81

2 डा.इन्द्रनाथ मदान हिन्दी कहानी : पहचान और परख (प्र.सं.) पृ.19

आठवाँ अध्याय

अज्ञेय के कथा साहित्य की शिल्पविधि

प्रस्तुत प्रकरण मे हमारा ध्येय अज्ञेय के उपन्यासो और कहानियो की शिल्पगत विशेषताओ को एक नये दृष्टि कोण से अध्ययन करना है । हम शिल्प को रचना की आभ्यंतर स्थिति मानते है जिससे रचना पूर्ण होती है । अतः जिस रचना का शिल्प शिथिल है वह अपूर्ण रह जाती है । तब शिल्प कृति का बाह्य अवयव ही न रहकर उसकी आन्तरिक स्थिति बन जाता है जहाँ लेखक, उसका परिवेश, रचना का सामान्य तत्व आदि आलोचना के केन्द्र हो जाते है । अध्ययन की सुविधा केलिए अज्ञेय के कथा साहित्य के शिल्प का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है - (1) उपन्यासो का शिल्प (2) कहानियो का शिल्प ।

शिल्प - स्वरूप और परिभाषा - अंग्रेज़ी के टेक्नीक शब्द के समानार्थक शब्द के रूप मे हिन्दी मे शिल्प शब्द प्रचलित है । लेकिन अंग्रेज़ी मे 'टेक्नीक' शब्द के बदले फार्म, क्रैफ्ट, स्ट्रक्चर आदि भी प्रयुक्त है । पर्सी लुब्बक' के लिए वह 'क्रैफ्ट' है 'एड्विन म्युर' के लिए 'स्ट्रक्चर' है और अलनेटट केलिए वह टेक्नीक है । हिन्दी मे शिल्प शब्द ही अधिक उपयुक्त दीखता है । लेकिन हिन्दी के कुछ आलोचको ने इस शब्द का अर्थ बहुत ही सतही तौर पर समझा है और इसका प्रयोग शैली विशेष के लिए प्रयुक्त भी किया है । शिल्प का संबन्ध कृति की रचना प्रक्रिया से है इसलिए उसका अर्थ जितनी व्यापकता से ले उतना ही उचित है । क्योंकि रचना प्रक्रिया के भीतर न केवल भावना, कल्पना, बुद्धि और संवेदनात्मक उद्देश्य होते है, वरन् वह जीवनानुभव होता है जो लेखक के अन्तर्जगत का अंग है, वह व्यक्तित्व होता है जो लेखक का अन्तर्व्यक्तित्व है, वह इतिहास होता है जो लेखक का अपना संवेदनात्मक इतिहास होता है[1] । हिन्दी के एक

1 गजानन माधव मुक्तिबोध : नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र (1971) पृ.82

कवि आलोचक ने टेक्नीक या स्ट्रक्चर के लिए 'रूपबन्ध' शब्द का प्रयोग किया है और उनके मन में उपन्यास एक स्वतंत्र कलाकृति है, अतः उसका विवेचन समग्रता से करने पर ही उपन्यास का विवेचन हो सकता है । वे लिखते है -'यदि हमें उपन्यास को एक स्वतंत्र कला रूप की समीक्षा करनी है तो हमें उसे वर्गीकरण अथवा अवयवपरक विवेचन पर संतोष नहीं करना होगा । जैसा कि हम देख चुके है, प्रत्येक औपन्यासिक कृति में इस सामग्री का अपने निजी और स्वच्छन्द ढंग से प्रयोग होता है । उनका प्रका अनुपात और स्वरूप लेखक के जीवनानुभव के वैशिष्ट्य और अभिव्यक्ति के उद्देश्य के अनुरूप होता है[1] । कहानी विधा की टेकनिक के सिलसिले में परिचर्चा प्रस्तुत करते हुए डा.देवीशंकर अवस्थी लिखते है - 'कहना न होगा कि टेकनिक पर बहुत ज़ोर देनेवाले समीक्षक कहानी में रचे बसे यथार्थ को अनदेखा कर उसे रूप वाद की ओर ही ले जाएंगे[2] । नामवरसिंह भी इस मंतव्य पर बल देकर लिखते है - कहानी की शिल्पसंबन्धी आलोचनाओं ने कहानी की जीवनी शक्ति का अपहरण कर उसे निर्जीव शिल्प ही नहीं बनाया, बल्कि उस शिल्प को विभिन्न अवयवों से काटकर निर्जीव शिल्प बनाया है । इस धारणा का यह असर पडा कि लोगों ने कहानी में जीवन सत्य एवं भाव सत्य को देखना छोडकर उसे कहानी की पारिभाषिक संज्ञाओं के रूप में देखना शुरू कर दिया[3] । उपर्युक्त दोनों मंतव्यों में एक सत्य प्रकट है कि दोनों शिल्प पर अधिक ज़ोर देनेवाले आलोचक है । ये दोनों, शिल्प को महत्व देते हुए उस पर समग्रता से दृष्टिपात न करनेवाले आलोचकों और आलोचनात्मक ग्रन्थों पर वार करते है । क्योंकि ऐसे ग्रन्थों पर शिल्प का ऐसा कटा छटा अवयवीकृत दृष्टिकोण मिलता है जो कृति के बहुत दूर का होता है । इसी कारण रचना सत्य का फीका एवं बलहीन तथ्य ही प्रकट होता है ।

आगे हम विद्वानों की शिल्प संबन्धी धारणायें एवं उनकी अपनी मान्यताओं पर वि करेंगे । औपन्यासिक शिल्प संबन्धी एक बहुचर्चित किताब है पर्सी लुब्बक द्वारा रचित क्रैफ्ट आफ फिक्शन । उनका चिन्तन द्रष्टव्य है - उपन्यास के दृश्य एवं रूप जिन बिम्बों की रचना करता है उन्हें अनदेखा कर ही लोग कृति का अध्यय करते है । हम

---

1 भारत भूषण अग्रवाल हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव (प्रथम संस्करण)पृ.35
2 डा.देवीशंकर अवस्थी नई कहानीःसन्दर्भ और प्रकृति (भूमिका से) पृ.23
3 वही (नामवरसिंह का लेख) पृ.64

यह भूल जाते है कि अमुक रचना एक कलाकृति है । जब हमारी मानसिकता इन सबका पुनरवलोकन एवं परिचिन्तन करती है तब ये सब हमारे हृदय पटल पर पुनः प्रतिष्ठित हो जाते है । तब रचना हमारे सामने एक कलाकृति के समान प्रकट होती है । लेकिन वह रचना लेखक ने जो देना चाहा उससे अधिक महत्वपूर्ण होकर सामने आती है । उपन्यास हमारे सामने अपनी कल्पना केलिए एक नई दुनिया का पर्दाफाश करता है, कुछ उपन्यास ऐसे भीहोते है जिनमे हम खुशी से डूब जाते है । ऐसी अवस्था मे कुछ ढूढने या कुछ आत्मसात् करने का अवसर प्राप्त नही होता । इस प्रकार डूबने के बदले उसे कुछ दूर से देखना है, तभी - रचना की आन्तरिकता तक पहुंच सकते है[1] । उपन्यास के पाठक के लिए यह वांछनीय है कि वह रचना मे पूर्णतः रमकर एक हद तक अलगाव रखते हुए उसमे निहित बिम्बों एवं रूपों को देखे । तभी वह कह सकता है कि उपन्यास को देखे । ~~तभी कह कह सकल~~ मै ने पढा है । पर्सी लुब्बक आगे लिखते है - 'एक कृति का एक शिल्प होता है । इससे हम सब सहमत है । यह शिल्प किस प्रकार का होना है, अच्छे या बुरे, ये बाते परिचर्चा केलिए उपयुक्त है । लेकिन यह निर्विवाद है किसी भी रचना का एक शिल्प होता है   शिल्प आंशिक रूप मे नही बल्कि गत्यात्मक प्रवाह के समान हर एक पृष्ठ के बद पूरी रचना मे व्याप्त होकर हमारे सामने प्रस्तुत होता है नही तो बिम्बों के जुलूस के समान हमारे सामने से गुज़र जाता है[2] । स्पष्ट है लुब्बक की दृष्टि रचना को काट-छाट कर नही अपितु उसकी व्यापकता मे देखना चाहती है ।

उपन्यासकार के लिए अनुभवगत सत्य एक महत्वपूर्ण पक्ष है । लेखक का अनुभवात्मक सत्य उनके ही संवेदनात्मक सत्य से सामान्यीकरण करके अभिव्यक्त होता है ।

- -

1. Percy Lubbock   The Craft of Fiction(17th Edition) p.6
2. A book has a certain form , we all agree, what the form of a particular book may be, whether good or bad, and whether it matters - these are points of debate; but that a book has a form, this is not disputed........ not as a single form, however, but as a moving stream of impressions paid out of the volume is a slender thread as we turn the pages - that is how the book reaches us, win another image it is a procession that passes before us as we sit and watch.
   Ibid pp.14-15

अतः उपन्यासकार जिस जगत का निर्माण करता है वह हमारे वास्तविक जगत् के रूप में ही होता है । लेकिन उस जगत् में लेखकीय व्यक्तित्व भरा हुआ रहता है । अपने अनुभवों से पाये हुए सत्यों का जो उसके हृदय में एक तरह से विलीन हो चुके होते हैं उनका चित्रण वह करता है । लेखक की कल्पना यथार्थ से समन्वित होकर एक नये दर्शन के रूप में विकसित होती है । लेकिन कलाकारों में इन में से किसी एक पक्ष का विकास मात्र होता है[1]। फ्लेबेयर का कहना है 'कथा विन्यास की जो प्रक्रिया है वह फूलों को सजाने के जैसे इधर से उधर या उधर से इधर करने से नहीं या कुछ पत्तों को थोडा खींचने या मरोडने के समान नहीं बल्कि एक बच्चे को जन्म देने के समान है[2]। उपर्युक्त दोनों विद्वानों के विचारों से यह स्पष्ट है कि रचना प्रक्रिया एक आभ्यन्तरीकृत संवेदना की अभिव्यक्ति है और शिल्प का संबन्ध उसी से है । विल्यम् वान ओ कोनर का मत है कि फार्म एक प्रतीकात्मक रूपबन्ध है, लेकिन जीवन का लिखित रूप नहीं, वह एक ऐसा प्रतिनिधित्व करनेवाला रूप है जो कृति के बाहर खडे होकर हमें पूर्ण रूप से समझने में उपादेय हो सकता है । फार्म धारणाओं का वस्तुनिष्ठ रूप है लेकिन धारणाओं की उपादेयता पर आधारित है[3] मार्कशोरेर के अनुसार आधुनिक आलोचना ने कला में निहित सौन्दर्य और सत्य को एक कर दिया है । कीट्स युगीन इन शब्दावलियों को अगर सौन्दर्य के लिए फार्म और सत्य के लिए वस्तु (कन्टेंट) रख दिया जाय तो समस्या का हल हो जाएगा । अगर इसको और भी संकीर्ण रूप से देखा जाय तो हम इसे 'टेक्नीक' और 'सब्जेक्ट मैटर कह सकते हैं । आधुनिक आलोचना ने वस्तु को अनुभव से जोड दिया है जब हम अनुभूत वस्तु (अचीवड कन्टेंट) की बातें करते हैं तभी हम कलाकृति तक पहुँचते हैं । वस्तु, अनुभव और अनुभूत वस्तु या कला को जोडनेवाली कडी है टेक्निक याने शिल्प[4]। मार्क शोरेर आगे लिखते हैं, शिल्प के बारे में बताते वक्त हम करीब सब के बारे में

- - ---------- --------

1. Robert Liddll A treatise on the noval (1949) p.38
2. Ibid pp.85-86
3. The form is a sympolic structure, is not a transcript of life, it is a representation which equips us to understand more fully aspects of existence outside art. Form is the objectifying of idea and it excellence, it would seem depends upon its appropriatness to the idea. Ed. William Van O'Connor : Forms of modern fiction (1948) p.3
4. Ibid. p.9

कह रहे है । लेखक का अनुभव उसका वस्तुपरक तथ्य है और शिल्प उसे इस तथ्य पर जोर देने के लिए विवश करता है । शिल्प ही एक मात्र माध्यम है जिसके द्वारा वह तथ्य मे अन्वेषण करता है, विकास पाता है और उसके अर्थ का संप्रेषण भी करता है, अंत मे परीक्षण-निरीक्षण भी करता है । कुछ शिल्प बहुत ही तेज होते है जिनके माध्यम से वह और अधिक अन्वेषण कर सकता है और इस शिल्प सामग्री से उसे सन्तोषप्रद वस्तुपरक तथ्य को अर्थ पुष्ट और मार्मिक बनाने का साधन भी मिलता है[1]। शौरेर का यह भी मत है कि शिल्प ही कला को संप्रेषित करने का मुख्य माध्यम है । शिल्प ही कला के साधनो को वस्तुपरकता प्रदान करता है । अतः शिल्प ही इन साधनो का निरीक्षण करता है । आधुनिक कथा साहित्य के लिए शिल्प दूसरी श्रेणी का माध्यम नही जैसे कोई बाहरी यांत्रीकरण हो, कोई यांत्रिक प्रवृत्ति हो बल्कि एक गहरी प्रक्रिया है और शिल्प के अन्तर्गत बौद्धिक एक नैतिक संश्लेषण ही नही उसका अन्वेषण भी है[2]। स्पष्ट है कि मार्क सौरेट उपन्यास एवं कहानी के लिए शिल्प को आत्यन्तिक रूप से प्रमुख अंग मानते है । 'अलन टेट' भी इसी मत के समर्थक है[3]।

कलाकार की मानसिक निहिति को ठीक तरह से समझने के लिए शिल्प बहुत ही सहायक है - जे.डब्ल्यू.बीच का मत है यह और वे आगे लिखते है - हम बार बार देखते है कि शिल्पविधि कलाकार के चेतन और अचेतन उद्देश्यो को किस प्रकार देखा-परखा गया है, इसकी सूचना भी देती है[4]। आधुनिक अंग्रेजी उपन्यासकारो मे 'फ्रैंको मोरियाक्' और ज्योस् कैरी अधिक प्रमुख है । मोरियाक् का यह मत है कि उपन्यासकार बिना किसी रुकावट के अपने इच्छित शिल्प का निर्माण करता है जो उसकी प्रकृति के अनुकूल हो[5]। प्रसिद्ध उपन्यासकार वर्जीनिया वुल्फ का मत यह है कि किसी भी प्रकार का माध्यम या रास्ता वांछित है । जिस किसी माध्यम का प्रयोग करे, वह पाठको को जीवन के निकट लाकर खड़ा करता है[6]। क्योकि रचनात्मक माध्यम ही रचनात्मक शिल्प है । शिल्प इन

---

1. Ed. William Van O' Connor Forms of modern Fiction. p.10
2- Ibid. p.16
3. Allan Tate Technique of Fiction. p.31
4. J.W. Beach The Twentiath Century Novel (1965) p.3
5. Ed. Malcom Cowley Writers at work.(1962) p.38
6. Virginia Woolf The common reader (1962) p.192.

सारी वस्तुओं को एक सूत्र में बाँध लेता भी है । शिल्प की अर्थ-व्यापकता को समझाते हुए रिचार्ड चर्च लिखते हैं कि 'उपन्यास शिल्प की उपमा एक जालीदार थैली से की जा सकती है, जिसमें उत्सुक तार्किक अपने रुढियों , पूर्वाग्रहों, आधुनिक आविष्कारों, भविष्य संबन्धी उहापोहों को भर सकते हैं[1] । मतलब यह हुआ कि शिल्प की अर्थ - व्यपकता उपन्यास में इस प्रकार आच्छादित है कि बाद में उपन्यास के बाहर कोई चीज़ न रह जात है । केवल विषय से कोई रुप न बनता न कोई शिल्प बनता है । वस्तुपरक तथ्य और शिल्प या अर्थ और शिल्प एक दूसरे से द्वन्द्वात्मक रुप से मिले हुए है । विषय को वस्तुपरक तथ्य तक ले जानेवाला अंश लेखकीय मानसिकता है । वस्तुपरक तथ्य से मतलब क्या कहा गया है नहीं, अपितु कैसे कहा गया है और किस संदर्भ में कहा गया है एवं वैयक्तिक और सामाजिक बोध का कहाँ तक रुपायन हुआ है[2] । अतः स्पष्ट है कि शिल्प या 'फार्म' विषय को कलात्मक रुप में प्रतिष्ठित करने का और सामाजिक अर्थ काफी देते हुए कला में पूर्णता प्रदान करने का माध्यम भी है ।

आगे हम हिन्दी के कुछ आलोचकों के शिल्पसम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालेंगे । औपन्यासिक शिल्प सम्बन्धी एक रचना है डा. गोपालराय द्वारा रचित 'उपन्यास का शिल्प' लेकिन इस ग्रन्थ का मुख्य आधार पर्सी लुब्बक कृत क्रैफ्ट आफ फिक्शन' नामक ग्रन्थ है । इसमें लेखक ने अपनी आलोचनात्मक क्षमता का कम परिचय दिया है । वे लुब्बक के मतव का यत्र-तत्र अनूदित रुप ही देते है । उदाहरणार्थ वे शिल्प के संबन्ध में लिखते है – 'उपन्यासका रुप (फोम) वस्तुतः ऐसी वस्तु है, जिसका मानसिक प्रत्यक्षीकरण संभव नहीं । यह थोडा थोडा करके, पृष्ठों पर पृष्ठ, उद्घाटित होने के साथ ही विलीन भी होना जाता है[3] । सत्यपालचुघ ने अपने शोध प्रबन्ध 'प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. The form of the novel henceforth must again can be linked to that of a string bag, with which the zealous contraversast could thrush his packs of dogma, prejudice, recent dis-oovery, speculation on the future, regardless of the final shape incongnity of the parts of the swollen fardel. Richard Church : The Growth of the English Novel (1968) p.150
2. Ernst Fischer : The necessary of art - A Marxist Approach (1963) p.131.

3 डा. गोपालराय : उपन्यास का शिल्प (प्रथम संस्करण) पृ.29

शिल्प विधि' से सामग्री लेकर 'अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि' नामक एक अलग ग्रन्थ की रचना की है । बदलती परिस्थितियों के साथ साथ लेखक के दृष्टिकोण भी बदलते जाते है और यह वांछित भी है । इसलिए चुघ की राय है कि कई नई शिल्प विधियों की निरं सर्जना उपन्यास की अपनी प्रकृति की उस पर डाले गए उत्तरदायित्व की मांग भी है[1] । औपन्यासिक शिल्प मे परिवर्तन क्यो होता है, लेखक नए नए शिल्प की खोज मे क्यो लगे हुए है । इसका कारण बताते हुए सत्यपाल चुघ लिखते है[2] ।

(1) रूपाकारो की अपेक्षाकृत परम्परा मुक्तता ।

(2) महान लेखकों, यानी प्रतिभावान कलाकारो की नवोन्मेषशाली/शक्ति तथा अपना अपना स्वभाव ।

(3) नए परिवर्तित विषय का प्रोद्दीपन तथा उसके सुचारु निर्वाह की सहज प्रयत्नशीलता ।

(4) युग-धर्मी उपन्यास की यथार्थोन्मुखता ।

उपर्युक्त विवेचन से यह पता चल जाता है कि शिल्प, रचना के आन्तरिक एवं बाहरी विशेषताओं का सम्मिलित रूप है जिसमे विषय को उसकी संपूर्णता मे परखने का, कार्य संभव होता है । आगे वे उपन्यास का शिल्पगत वर्गीकरण इस प्रकार करते है - कथानक प्रधान, अन्तरंग चरित्र प्रधान, बहिरंग चरित्र प्रधान, देश प्रधान, देशकाल-प्रधान, उद्देश्य प्रधान, शिल्प प्रधान । चरित्र प्रधान उपन्यासो के दो भेद किये गये है । क्योंकि बहिरंग चरित्र प्रधान उपन्यास मे चरित्रों से सामाजिक जीवन की व्यंजना होती है या सामयिक प्रेरणा से उनका परिवर्तन होता है, और अन्तरंग चरित्र प्रधान मे मूल प्रेरणा भीतरी रहती है । इसमे मनोवैज्ञानिक उपन्यास आते हैं । आंचलिक उपन्यास, देश प्रधान और ऐतिहासिक उपन्यास देश-काल प्रधान के अन्तर्गत आते है । समस्या मूलक अभिप्राय प्रधान, विचार प्रधान और मतवादी जोश से लिखे गए प्रचार प्रधान उपन्यास उद्देश्य - प्रधान वर्ग मे आते हैं । शिल्प प्रधान वर्ग उपन्यास के किसी तत्व के आधार पर नहीं, अतएव यह उपर के अन्य उपन्यासो के भेद के सामान्य आधार से भिन्न है, यह भेद अपेक्षतया परम्परा - भिन्न नए प्रयोगो के समादार के लिए किया गया है । इसमे

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 डा. सत्यपाल चुघ अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्प विधि (प्रथम संस्करण) पृ.21

2 वही पृ.10

वस्तुतत्व क्षीण भी हो सकता है, नही भी, किन्तु अभिव्यंजना की नव्यता की विशेष आकर्षण, सौष्ठव, अथवा चौकानेवाली परम्परा - मुक्तता अवश्य होगी । इस तरह के शिल्प प्रधान उपन्यासो को अभिव्यंजनात्मक भी कहा जा सकता है[1] । यद्यपि उपर्युक्त वर्गीकरणो के अन्तर्गत कम से कम हिन्दी के समूचे उपन्यास समाहीन हो सकते है फिर/भी इस वर्गीकरण का आधार बहुत ही सतही है क्योकि इसमे विश्लेषणात्मक दृष्टि गायब हो जाती है चाहे वह पाठक का हो या आलोचक का हो या शोधक का हो । इस वर्गीकरण का एक और दोष यह भी है कि इसके अन्तर्गत जितने तत्व है, या इसके जितने प्रतिमान है उनमे पाठक उलझ जाते है और इसलिए नामवरसिंह जैसे आलोचक यह बताने को बाध्य हो गये कि शिल्प के आग्रही आलोचक रचना की जीवनी शक्ति का अपहरण करते है[2] । जब रचना की जीवनी शक्ति का अपहरण होता है तब रचना के सौन्दर्य बोध से आलोचक कोसो दूर जाते है और रचना को परखने के लिए जिस समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है वह पर्दे के पीछे रह जाता है । और तब रचना की उपलब्धियां एवं कमियों पर इनकी दृष्टि नही जाती ।

हिन्दी उपन्यास के बदलते परिप्रेक्ष्य नामक ग्रन्थ के लेखक डा.प्रेम भटनागर की शिल्प सम्बन्धी धारणा इस प्रकार है । उनका औपन्यासिक वर्गीकरण निम्नस्थ है[3] ।

(1)	वर्णनात्मक शिल्प विधि	डिस्क्रिप्टीव
(2)	विश्लेषणात्मक शिल्प विधि	अनालिटिकल
(3)	प्रतीकात्मक शिल्प विधि	सिंबोलिकल
(4)	नाटकीय शिल्प विधि	ड्रमाटिक
(5)	समन्वित शिल्प विधि	मिक्सेड

डा.प्रेमभटनागर का वर्गीकरण मात्र उपन्यासकार के बहिरंग चित्रण की ओर प्रकाश डालता है और इसलिए यह भी एक प्रकार से सतही है तथा औपन्यासिक उपलब्धि की ओर ध्यान नही देता है । हिन्दी के कुछ आलोचको को उपन्यास के उन्ही पुराने तत्वो के प्रति प्रबल आग्रह अब भी है । वे इन्ही तत्वो को शिल्प मानते है । एक ओर इन्ही तत्वो के आधार पर जब उपन्यास का विश्लेषण होता है तब वह इतना अकार्यात्मक रह

---

1 डा.सत्यपाल चुघ : अज्ञेय के उपन्यासो की शिल्प विधि पृ.70

2 देवीशंकर अवस्थी नई कहानी सन्दर्भ और प्रकृति पृ.64

3 डा.प्रेमभटनागर : हिन्दी उपन्यास शिल्प - बदलते परिप्रेक्ष्य (प्र.सं.) पृ.39

जाता है कि पाठक उपन्यास के करीब पहुंचते ही नही है ।

उषा सक्सेना का शिल्प-संबन्धी विचार उपन्यास के उन्ही पुराने तात्विक विश्लेषण पर आधारित है जो शिल्प सम्बन्धी अध्ययन के सन्दर्भ मे इतना अवैज्ञानिक प्रतीत होता है उनका वर्गीकरण निम्नस्थ है[1] ।

(1) कथानक शिल्प (2) चरित्र शिल्प (3) कथोपकथन शिल्प (4) परिप्रेक्ष शिल्प (5) प्रस्तुतीकरण शिल्प ।

ऊपर हिन्दी के कुछ आलोचको के शिल्प संबन्धी विचार प्रस्तुत किए गए है । उनका दृष्टिकोण पूर्वाग्रह से आक्रान्त लगता है । कही बहुत सतही लगता है । इसलिए यहा शिल्प और औपन्यासिक कृति के संबन्ध मे निष्कर्ष रूप से कुछ बताना आवश्यक जान पडता है । हिन्दी मे शिल्प संबन्धी अध्ययन का अभाव है । शिल्प को सामाजिक बोध (सोश्यल कोनशियसनेस) से जोडने का काम भी हुआ नही है । उपन्यास को उसकी पूर्णता मे देखने के लिए जिस माध्यम की आवश्यकता है वह शिल्प के अन्तर्गत आते ही है, तब शिल्प से बाहर उपन्यास की किसी ऐसी वस्तु छूट नही जाती बल्कि सारी वस्तुये जुट जाती है ।

किसी एक औपन्यासिक कृति का आंशिक विश्लेषण से उसकी उपलब्धियां सामने नही आती है । उपन्यास के शिल्प से तात्पर्य उपन्यास के आभ्यन्तरीकृत विशेषताओ से है जो उपन्यास का समग्र रूप ही है । उपन्यास के पात्र, लेखकीय दृष्टिकोण, समकालीन स्थिति बोध, लेखक का व्यक्तित्व, पात्रो का विकास, उपन्यास की अन्तिम परिणति, लेखक की संवेदना आदि बाते इस शिल्प के अन्तर्गत आती है । लेखक का दृष्टिकोण औपन्यासिक शिल्प का मुख्य पक्ष है । लेकिन मात्र दृष्टिकोण के अध्ययन से औपन्यासिक शिल्प का अध्ययन पूरा नही होता । कार्ल ग्रेबो का मत द्रष्टव्य है 'उपन्यास के रूपाकार मे दृष्टिकोण का प्रमुख स्थान है । लेखक के दृष्टिकोण से ही कथानक या पात्र चित्रण, स्थिति आदि का निर्णय होता है[2] । स्पष्ट है कि दृष्टिकोण उपन्यास के अन्य अंगो की निर्मिति मे बहुत सहायक होता है । यही दृष्टिकोण - पोइंट आफ व्यू - बाद मे

---

1 उषा सक्सेना हिन्दी उपन्यासो का शिल्पगत विकास (प्रथम संस्करण) पृ.7।

2 Carl. Grabo The technique of the novel (1928) p.81

लेखक के दर्शन के रूप मे विकसित एवं परिणमित होना है । एक दर्शन के बिना औपन्यासिक कृति अपूर्ण रह जाती है । यह दर्शन समकालीन स्थिति बोध से उत्पन्न है । सामाजिक गति विधियो के सामने एक साधारण नागरिक के नाते वह आखे मून्द नही सकता लेकिन लेखक के नाते इन गतिविधियो की जाच - पडताल सूक्ष्म रूप से इसे करना पडता भी है । अतः लेखक के दर्शन का उत्स समकालीन स्थिति बोध से है जो सिर्फ समकालीन स्थिति बोध से है और भिन्न (कोन्टेम्परी) न होकर एक ऐतिहासिक तथ्य से जुटा हुआ है लेखक के दर्शन का निर्माण करने मे लेखक के अपने व्यक्तित्व का भी हाथ है, जो एक अलग इकाई नही है बल्कि साथ जुडा हुआ एक अंग है । तब स्थिति जन्य प्रेरणा लेखक के लिए पात्र सृष्टि मे सहायक होती है । यही प्रेरणा पात्रो के विकास मे मदद पहुचाती है । पात्रो को व्यक्तित्व प्रदान करने मे लेखक की संवेदना का प्रमुख हाथ है । यही संवेदना रचना की अन्तिम परिणति की ओर ले जाती है । अतः औपन्यासिक शिल्प के अन्तर्गत सारी बाते समाहित हो जाती है । निष्कर्ष रूप से हम शिल्प की परिभाषा इस प्रकार दे सकते है कि औपन्यासिक शिल्प औपन्यासिक कृति का वह आकलन है जिसमे समकालीन स्थिति बोध से जनित लेखक के दर्शन की संवेदनाजन्य परिणति है जो पात्रो के रूप मे, कथांश के रूप मे औपन्यासिक स्थिति के रूप मे परिवर्तित होकर कृति की निर्मिति मे सहायक होती है । इस बिखरे रूप का जब एकसूत्रता मे बाधकर अध्ययन होता है तब हम कह सकते है कि उपन्यास का पूरा अध्ययन हो चुका है ।

अज्ञेय के उपन्यासो एवं कहानियो के शिल्प के सम्बन्ध मे विचार करने के पहले संक्षिप्त रूप से उसके ऐतिहासिक विकास पर दृष्टिपात करना भी उचित है । क्योंकि उन्नीसवी शती से बीसवी शती तक के उपन्यास का विकास शिल्प सम्बन्धी विकास ही है । बीसवी शती मे पाश्चात्य उपन्यास अपने चरम उत्कर्ष तक आ गया है और यही स्थिति हिन्दी मे भी देखने को मिलती है । बीसवी शती को पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्य मे आधुनिक युग के नाम से अभिहित किया जा सकता है । नई नई प्रवृत्तियो का समावेश पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्य मे दृष्टिगोचर होने लगा । प्रयोगो की एक नई परम्परा का विकास इसी युग मे हुआ था । जहा तक बीसवी शती के पाश्चात्य उपन्यास का सम्बन्ध है सामाजिक गतिविधियो के परिवर्तन के साथ औपन्यासिक दृष्टिकोण मे भी

परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ । 'व्यापार के विस्तार के उपरान्त जब उपनिवेशों की, औद्योगिक क्रान्ति आई और वर्ग संघर्ष तीव्र हुआ तथा पूंजीवादी अन्तर्विरोधों ने सिर उठाना शुरू किया जीवन का यथार्थ जटिल हो गया और साथ ही उपन्यास के यथार्थ-वाद भी[1] ।

विश्व युद्धों ने सामाजिक मूल्यों का विघटन किया । इसलिए विश्वयुद्धोत्तर उपन्यास का यथार्थ खण्डित यथार्थ है । उपन्यास साहित्य समष्टि सत्य से व्यष्टि सत्य की जटिलताओं की ओर उन्मुख होने लगा । समूहगत परम्परा को स्थानान्तरित कर व्यक्तिगत अनुभवों को अधिक महत्व दिया गया[2] । आरनोल्ड केटिट्ल का यह मत है कि बीसवीं शती के मध्यवर्गीय लेखक की यही स्थिति थी कि वह या तो अपने आप संकीर्ण हो जाते थे और पूर्ण रूप से अपनी संकीर्ण दुनिया में स्वस्थ पाते थे[3] । इस युग के इस खण्डित यथार्थ की अभिव्यक्ति एक ऐसी विविधता तक पहुंच गई जिसे ऊपरी दृष्टि से अराजकता कहा जा सकता है । पर उपन्यास के कला रूप की रक्षा करने का कदाचित् लेखक के पास और कोई उपाय भी नहीं है । जब जीवन के मूल्य बिखर चुके हो तो कलाकार अपने भोगे हुए अनुभव और अपने देखे हुए सत्य को अपने निजी आत्मीय और विशिष्ट रूप में अभिव्यक्त करने के अतिरिक्त कर भी क्या सकता है[4] । इस युग में हमे वर्जीनिया वूल्फ, जेम्स ज्योस्, डी. एच.लारेन्स्, डोरोथी रिचार्डसन् आदि उपन्यासकार मिलते हैं । इन्होंने उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में नए शिल्प एवं नये दर्शन की स्थापना की । वाल्टर अलेन उपर्युक्त उपन्यासकारों के शिल्प के सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'इनके जो शिल्पपरक आविष्कार है, वे इनकी प्रकृति के अनुकूल ही है[5] ।

जहां तक हिन्दी उपन्यास का सवाल है बीसवीं शती से ही उपन्यास का प्रादुर्भाव होता है जिसकी एक पुष्ट-परम्परा प्रेमचन्द से प्रारंभ होती है । प्रेमचन्द ने उपन्यास को

1 डा. भारत भूषण अग्रवाल : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव - पृ.28

2 Ian Watt The Rise of the Novel (1967) p.14

3 Arnold Kettle An introduction to the English Novel:Vol.II (1969) p.349

4 डा.भारत भूषण अग्रवाल : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्र भाव - पृ 60

5 Walter Allan: The English Novel (1963) p.343

यथार्थ के धरातल पर लाकर खडा कर दिया । अतः हम कह सकते है कि हिन्दी के जितने भी उपन्यासकार है सब प्रेमचन्द के ऋणी है । लेकिन प्रेमचन्द ने जो शिल्प बनाया वह सुदृढ न था । इसका एक प्रमुख कारण हिन्दी उपन्यास की प्रारंभिक दशा ही थी । कोई भी साहित्यिक विधा पूर्ण विकास के साथ अवतरित नही होती । प्रेमचन्द का औपन्यासिक शिल्प सुदृढ न होने के कारण कही वे पात्रों के प्रति न्याय नही कर सके, कही वे पात्रों के आगे बढकर बोलते हुए नज़र आते है । ऐसे प्रसंगो मे लेखकीय हस्तक्षेप सीमा का उल्लंघन करता रहा है, कही समस्याओं का ढेर बनाकर उपन्यास को भुला देता रहा है । लगता है, प्रेमचन्द का औपन्यासिक शिल्प एक नैतिक बोध से ग्रस्त है । यह नैतिक बोध परिवर्तन के मार्ग मे बाधा बनकर खडा होता है और रचना को संवेदन शून्यता की ओर ले जाता है । नरेन्द्र मोहन का कथन ठीक ही है - एक रूढ नैतिक बोध जहां अनुभव की क्रिया शीलता और प्रकृति को तय करने लग जाय यहां उपन्यास के आधुनिक होने का प्रश्न ही नही उठता । आधुनिक उपन्यास की संरचना के मूल मे भी किसी नैतिक आग्रह को मान्यता नही दी जा सकती ।[1] अतः प्रेमचन्द के उपन्यास को हम पूर्णतः आधुनिक नही कह सकते है ।

ऊपर हम ने उपन्यास के इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा की ओर दृष्टिपात किया । साथ ही अज्ञेय के कथा साहित्य मे आने के पहले पिछले युग के शीर्षस्थ उपन्यासकार के रूप मे प्रेमचन्द की उपलब्धियों पर भी विचार किया है । अज्ञेय के कथा साहित्य के शिल्प के अध्ययन के लिए यह अवश्यक है ।

(1) <u>अज्ञेय का औपन्यासिक शिल्प</u> - प्रेमचन्दोत्तर साहित्यकारो मे अज्ञेय का स्थान निर्विवाद रूप से ऊंचे स्तर का है । अज्ञेय का पूरा साहित्य पढने के उपरान्त पाठक यह अनुभव करता है कि उन्होने अपने आप को बहुत समृद्ध किया है । इसका कारण यही है कि अज्ञेय के रचना संसार की जो नवीनता है वह एक विशाल परिकल्पना की उपज है । यही उनके रचना-शिल्प की विशिष्टता है ।

'शेखर एक जीवनी' उनका बहुचर्चित उपन्यास है, इसमे कोई सन्देह नही है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 डा. नरेन्द्रमोहन आधुनिक हिन्दी उपन्यास (प्रथम संस्करण) पृ.2

वर्गीकरण प्रिय आलोचकों ने इसको मनोवैज्ञानिक उपन्यास[1] की कोटि में एवं व्यक्तिवादी उपन्यास[2] की कोटि में रखा है । लेकिन इस प्रकार के वर्गीकरणों के अन्तर्गत आकर उपन्यास का अध्ययन एवं आलोचना अपूर्ण रह जाती है । गोदान के उपरान्त 'शेखर' का स्थान उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में उसके शिल्पगत नव्यता के कारण अत्यंत ऊँचा ही है

'शेखर एक जीवनी' एक क्रान्तिकारी नायक शेखर की क्रान्ति की परिकल्पना है । वह अपने संचित अनुभव के प्रकाश में अपने को अन्वेषण कर रहा है । यह अन्वेषण खण्ड रूपों में उपन्यास के दोनों भागों में बिखरा हुआ है । तब हमारे सामने शेखर के बाद शशि, शेखर का परिवार, मदनसिंह आदि पात्र स्पष्ट हो जाते हैं । उसके जीवन के विभिन्न मोडों पर हर एक पात्र की उपस्थिति हुई है । तब इस उपन्यास का कथांश क्या है ? - एक व्यक्ति की जीवन - गाथा । यही उपन्यास का 'प्लाट' है । लेकिन 'प्लाट' पर आधारित अध्ययन शिल्प-गत अध्ययन के लिए स्वीकरणीय नहीं है । एलिज़बेथ डिप्पिल् ने 'प्लाट' के लिए एक वैज्ञानिक परिभाषा प्रस्तुत की है जैसे - 'थोडी सूक्ष्मता से समझा जाय तो यह (प्लाट) एक ऐसा शब्द है जो अध्येता एवं साहित्यिक रचना के बीच का संपर्क सूत्र है जो पाठकों से रचना के मुख्य तत्व को ग्रहण करने का मांग करता है । दूसरे शब्दों में यह एक ऐसा शब्द है जो रचना के हर रूप बंध के साथ मिलने की मांग करता है और इस प्रकार की एक संयोजना से पाठक स्वयं एक आलोचक बन जाता है[3]। यद्यपि एलिज़बेथ डिप्पिल की परिभाषा 'प्लोट' को समग्रता से लेने को विवश करती है फिर भी प्लाट उपन्यास के मुख्य तन्तुओं का मात्र स्पर्श करता है और उसमें छिपे हुए दर्शन को अनदेखा करता है । प्रस्तुत उपन्यास में - शेखर की आत्मकथा में आनेवाले पात्रों का - जिनके माध्यम से लेखक अपनी अन्तिम परिणति पर पहुँचता है - अध्ययन एक सीमा तक वांछनीय है । क्योंकि पात्र लेखक की सृष्टि होते हुए भी अपना अस्तित्व अलग रखते हैं । इसी कारण 'एडविन म्युर' चरित्रात्मक उपन्यासों को प्रमुखता देते हैं । उनका कथन है कि चरित्रात्मक उपन्यास गद्यात्मक कथाओं में मुख्य है । वस्तुत अंग्रेज़ी साहित्य में इसका सुदृढ उदाहरण 'वानिटी फेयर' है । पात्रों को प्लाट' के उप-

1 डा. धनराज मनधाने हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास (प्र.सं.) पृ.167
2 डा. पुरुषोत्तम दुबे व्यक्ति चेतना और हिन्दी उपन्यास (प्र.सं.) पृ.222
3 Elizabeth Dipple Plot (The critical idoms) General Editor : John D Jump. (1970) p. 16

भागो के रूप मे नही ग्रहण किया जाता है बल्कि वे अपने अस्तित्व के साथ स्वतंत्र भी है और घटनाये उन्हे आगे बढाने की सहायता पहुचाती है[1]। लेखक, जो पात्रो के माध्यम से जीने के कारण अपनी प्रकृति की अनावश्यक बातो का त्याग कर आवश्यक बातो को साधारण से अधिक मात्रा मे पात्रो से उभारता है - 'उनके अच्छे पात्र अपने अर्जित शक्ति के चित्र भी हो सकते है[2]। इस अर्थ मे शेखर अज्ञेय की सम्पूर्ण आर्जित उर्जा का रचनात्मक रूप है जिनके माध्यम से अज्ञेय ने अपने दर्शन को प्रस्तुत किया है । आधुनिक उपन्यासो की यह विशेषता है कि पात्र एवं 'प्लाट' समवर्ती होकर चलते है । दोनो के बीच मे एक रेखा खीचना कठिन है । प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासो मे घटनाओ का ऐसा उभरना हुआ विवरण था, वर्णनात्मकता उसकी सीमा पार कर चुकी थी । कथांश से घटनाये अलग दीख थी । अज्ञेय के अवतरण के साथ इस पुराने शिल्प का अन्त होता है । जैनेन्द्र के त्याग-पत्र' से होकर अज्ञेय के 'शेखर' मे यह शिल्प अपनी पूरी सजगता के साथ रूपायित होने लगा । 'आधुनिक उपन्यास मे कथा और चरित्र की पूर्व निर्धारित ठोस रेखाये नही रहती आधुनिक उपन्यासकार इन तत्वो का नए ढंग से संयोजन करता है । वह कथावस्तु और चरित्र को परस्पर घुला देने या संतुलित करने का प्रयत्न करता है । उसका काम परिवेश या परिस्थिति का महज चित्रण करना नही है बल्कि चरित्र से परिवेश या परिस्थिति के टकराव के स्वरूप को प्रत्यक्ष करना या किसी मानव स्थिति से उसके संबन्ध को रेखांकित करना है । इस तरह आधुनिक उपन्यासकार परिस्थिति को चरित्र मे, और चरित्र को परिस्थिति के उद्घाटन मे अन्तर्बद्ध करते है[3]। पात्रो को उपन्यास से लेकर अलग इकाई के रूप मे चर्चित करना हास्यास्पद लगता है । आखिर उपन्यास हमारे अनुभूत जगत के व्यक्तियो और उनके सन्दर्भो के समान्तर रूपायित होनेवाला एक कृत्रिम रूपाकार ही है[4]। डब्ल्यू.जे.हारवे पात्रो को एक अलग इकाई के रूप मे चित्रित करने के विरुद्ध है । उपन्यास के पात्र हमारे सामने एक ललकार के साथ खडे होते है । वह ललकार एक मानवीय स्थिति से संबन्धित है । मानवीय स्थिति पात्रो से उद्भूत होकर विकास पाती है और पात्रो को खुद विकास पाने की प्रेरणाये प्रदान करती है । तब दोनो एक ही केन्द्र

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 Edvin Muir The structure of the Novel (1928) p.24

2 Rebert Liddel A treatise on the novel. p.103

3 डा.नरेन्द्र मोहन आधुनिक हिन्दी उपन्यास पृ.।

4 W.J. Harvey Character and the novel (1966) p.32

से विकसित होकर वे विभागों में और अधिक विकासमान होकर फिर से एक ही केन्द्र बिन्दु पर आ टिकते है । वस्तुतः 'शेखर' का केन्द्र पात्र एक विद्रोही है । पूरा उपन्यास उसका आत्मकथन है - 'एक रात में देखे हुए 'विज़न' को शब्द बद्ध करने का प्रयत्न है अज्ञेय का अनुभूत सत्य - क्रान्तिकारी जीवन के निमित्त से - जनित उनका दर्शन - 'क्रान्तिकारी अन्ततोगत्वा एक प्रतिक्रियावादी और नियतिवादी होता है '¹ लेकिन अज्ञेय इस नियतिवाद को कर्मवाद की अगली सीढी मानते है । अतः वे 'कर्ता' को निरा निमित्त नहीं बना देते । कर्मण्यता की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देते है । शेखर नियतिवादी होते हुए भी कर्म पर - विद्रोह - क्रान्ति पर उसका अटल विश्वास है और उसी में वह अपने को संपूर्ण पाता है । फांसी मे लटक जाने की प्रतीक्षा मे युवक शेखर बैठा है - वह अपने जीवन की ओर मुडकर देखता है । तब हमारे सामने शेखर 'मै'और 'वह' बनकर प्रस्तुत होता है । अज्ञेय का यह आग्रह रहा है कि शेखर का व्यक्तित्वपूर्ण हो । इसके लिए उन्होने शेखर के जीवन का चित्रण बचपन से शुरू किया । विद्रोही शेखर के बालमानस को चित्रित करने के लिए लेखक ने मनोविज्ञान का सहारा लिया । आग्रहों का जब निग्रह होता है तब उसमें आग्रह और अधिक पनप उठता है । पिता के साथ मां का व्यवहार, नए बच्चे को आने पर उसकी व्यग्रता, आदि बातों के चित्रण केलिए फ्रायड के 'लिबिडो थियरी का सहारा लिया गया है । और जहां भी उपन्यासकार ने मनोविज्ञान का पक्का पकडा है वहां एक प्रकार की अस्वाभाविकता प्रकट हुई है ।

शेखर मे विद्रोह के साथ एक अदम्य प्रेम भावना वर्तमान है जो शारदा, शान्ति आदि लडकियों को छूकर बहती है । अज्ञेय में यह प्रेमभावना चित्रित करने में जितनी एकाग्रता है उतनी ही रोमान्टिक आग्रह भी मौजूद है । शारदा के साथ शेखर का संबन्ध एक प्रकार से रोमान्टिक आग्रह के सीमित दायरे मे सिमटकर शेखर के विकास पथ पर खडा है - शेखर और शशि का एकमात्र संबन्ध उपन्यास के अन्त तक विकसित होता है । शशि शेखर के विकास मे बाधा न बनकर उसके विकास मे योग देती है । इसलिए शेखर का यह कथन संगत लगता है - 'मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है'। लेकिन शेखर के बनाने मे वह टूट गई । शशि का जीवन उपन्यास मे एक ट्रेजेडी बन पडी है और उन दोनों का संबन्ध राग के मोह से बढकर अधिक वास्तविकता पर आधारित है

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या पृ.83

इस सम्बन्ध का स्तर बौद्धिकता के स्तर पर देखा गया है । शेखर पहले शशि का 'आदि बहन' कहकर नमन करता है । उसके स्त्रीत्व को आदर देता है । 'यथार्थ से दूर हटी यह परम्परागत चिन्तन पद्धति किसी भी मौलिक और सर्जनात्मक चिन्तन का निषेध करती है; उसका एक ही उद्देश्य है, सारी स्थितियो को यथावत् बनाए रखना । इसलिए प्रत्येक दृष्टि संपन्न और क्रान्तिकारी रचना को यथार्थ के उपर जमी हुई इन अनेक परतो को सबसे पहले तोडना होता है । आधुनिक हिन्दी साहित्य के ऐसे विद्रोही और तेजस्वी रचनाकारो की परम्परा मे निराला के साथ अज्ञेय का नाम आएगा'[1]। लेकिन इसी बात पर दूसरे आलोचक 'शेखर' के समूचे शिल्प पर भी आक्रमण करते है । डा.विजय मोहन सिंह शेखर की प्रेम सम्बन्धी बातो पर लिखते है - 'शेखर का प्रेम एक पलायन है या आश्रय है । उसका उग्र असमझौतावादी स्वभाव जो हर जगह हारता है, थकता है, उबता है, प्रेम मे इन सबसे नजात पडना चाहता है । इसलिए प्रेम उसके लिए केवल ग्रहण करने की प्रक्रिया है इस प्रेम की चरम अभिव्यक्ति शशि के प्रेम मे होती है, जो उसे लगातार आश्रय देती - देती छूट जाती है, चुक जाती है और शेखर का उग्र समझौतावाद इस बलिदान की जुगाली करता हुआ तुष्ट होता रहता है'[2]। लेकिन शशि के सन्दर्भ मे यह ठीक नही है । क्योकि शेखर का पूरा व्यक्तित्व और इसके व्यक्तित्व के पूरक के रूप मे शशि का शेखर से प्रेम और शेखर का शशि से प्रेम पूर्णता की ओर प्रसार करता है ।

अज्ञेय पीडा या वेदना को अधिक महत्व देते है । यह वेदनावादी दर्शन शेखर और शशि के सबन्ध की उपज है । यही पीडा या वेदना शेखर को अन्तर्मुखी भी बना देती है । शशि मे भी यह पीडा वर्तमान है लेकिन वह आत्मपीडन या रोमान्टिक कुण्ठा तक सीमित नही । उसमे रोमान्टिक दायरे से उपर उठने का आग्रह भी प्रबल है । जब शेखर अपने कार्यक्रमो से एक प्रकार से निकम्मा बनकर बैठने लगता है तब शशि बहुत दुख का अनुभव करती है । शेखर के जीवन के अभावो की पूर्ति करते हुए और शशि शेखर के समीपत्व से अपने खण्डित व्यक्तित्व को पूर्ण बनाती हुई चल बसती है ।

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी अज्ञेय और आधुनिक रचना का समस्या पृ.83

2 डा.विजयमोहन सिंह : आधुनिक हिन्दी उपन्यासो मे प्रेम की परिकल्पना (प्र० सं..) पृ.252

शेखर की परिकल्पना राजनीतिज्ञो की भांति एक सीमित क्षेत्र की नही है वह अपनी क्रान्तिकारी कल्पना का जीवन के विस्तृत फलक पर उतारना चाहता है । बचपन मे उसने मां से जो अविश्वास किया, उसी से प्रारंभ होकर अपने ही आसपास की घटनाओ को नकारता हुआ वह आगे बढता है । उसकी कल्पना का पूर्ण रूप सब से पहले 'ऐन्टिगोनम् क्लब' से, जो शेखर और उनके साथियो का एक सार्वजनिक संगठन था, प्रारंभ होता है । आधुनिक जीवन की संकुचित राजनीति एवं उनके खोखलापन को शेखर नकारता है । यद्यपि उपन्यास मे विद्रोह को व्यक्ति के माध्यम से दिखाया गया है फिर भी भारतीय परिवेश का चित्र भी खूब दर्शाया गया है । शेखर किसी संकुचित राष्ट्रीयता के आधार पर केन्द्रित रहना नही चाहता । वह अन्तराष्ट्रीयता के आधार पर एक समूची मानवता को समग्रता से देखना चाहता है । वह किसी अमुक समाज का, या अमुक प्रान्त का न होकर प्रारंभ मे भारतीय होने की प्रक्रिया मे लगे रहता है ।

अज्ञेय के अनुसार विद्रोह अनन्त है । एक 'प्रखी तथा शीतल बौद्धिक घृणा' की बात अज्ञेय करता है । इस बौद्धिक घृणा को एक विस्तृत अर्थ मे समझना और परखना है । राजनीतिज्ञो का विद्रोह एक कार्यक्रम से बढकर विकास प्राप्त नही करता है, क्योकि विद्रोह को आत्मसात् करने की ललकार उनमे नही होती । लेकिन जो असल मे क्रान्तिकारी है उनमे एक बौद्धिक घृणा बीज का बीजावाप पहले से ही होता है । यह बौद्धिक घृणा किसी एक समाज मे, किसी एक संगठन मे विद्रोह न चाहकर मानवीय मूल्यो मे परिवर्तन चाहती है, परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु मात्र सामाजिक न होकर राजनैतिक एवं सांस्कृतिक भी है । शेखर इस बौद्धिक घृणा का सात्मीकरण कर लेता है ।

'शेखर' का शिल्प एक आत्मकथा का शिल्प है । इसलिए लेखक परिवेश एवं समकालीन जीवन को अधिक निकट से देखता है । समकालीन जीवन की जटिलता को सूक्ष्मता से दर्शाने मे अज्ञेय का शिल्प सक्षम बन पडा है । अपने व्यक्तित्व के विकास मे शेखर हमेशा पराजय का सामना ही करता है । समाज उसका साथ देता ही नही है । मानवीय व्यक्तित्व के पूर्ण विकास मे सहायक समाज की परिकल्पना को कार्यान्वित करने मे शेखर पराजित हो जाता है । क्योकि वह अकेला हो जाता है । 'शेखर एक जीवनी'

के शिल्प की एक और विशेषता है कि अज्ञेय का लेखक और व्यक्ति उपन्यास से बाहर है। घटनायें इसमें घटती नही बल्कि चरित्र के साथ घटित होती है । इसलिए डा. मदान का कथन संगत दिखाई पडता है - 'शेखर के विधान में आत्मकथात्मक शैली के प्रयोग के कारण लेखक को यह सुविधा रही है कि वह कथा के केन्द्रीय चरित्र को उसके सारे संघर्षों, घात-प्रतिघातों और संकल्पो के बीच ठीक-ठीक देख पाया है'[1] । वर्गीकरण से उपर उठकर 'शेखर' के संबन्ध में यह कहा जा सकता है कि 'शेखर एक जीवनी' हिन्दी की एक अन्यतम रचना है । 'शेखर' की तुलना में 'नदी के द्वीप' एक सुदृढ शिल्प का परिचय देता है । इसमे एक प्रेम कथा को गूंथ दिया गया है जो भुवन एवं रेखा के बीच उत्पन्न होकर अन्त में भुवन और गौरा के बीच समाप्त होती है । 'नदी के द्वीप' का शिल्प उसकी असाधारणता के कारण ही विशिष्ट है ।

'नदी के द्वीप' का शिल्प चार पात्रों के इर्द-गिर्द में ही घूमता दिखाई पडता है । अतः इसमें स्थूलता की जगह सूक्ष्म भावांकन हुआ है और ये चार पात्र लेखक के अनुसार चार संवेदनायें है । जिसे हमने (1) स्वाधीन आत्मान्वेषी नारीत्व की सूक्ष्म संवेदना (रेखा) (2) पुरुष की नैसर्गिक प्रेम संवेदना (भुवन) (3) समर्पित प्रेम संवेदना (गौरा) (4) वैयक्तिक सुखभोग की स्वच्छन्द संवेदना (चन्द्रमाधव) आदि चार संवेदनाओं के अंतर्गत कर लिया है ।

भुवन और रेखा की प्रणय कथा को अज्ञेय ने एक विशिष्ट प्रकार से, एक विशेष स्तर पर देखा है । अज्ञेय की रोमान्टिकता शून्य बौद्धिक स्तर तक आने के कारण इसकी भावुकता नष्ट होगई है । गौरा एवं भुवन के प्रेम का सम्बन्ध और गौरा तथा रेखा का संबन्ध सतही ढंग का संबन्ध नही, बल्कि एक दुहरे प्रकार का संबन्ध है । इसलिए प्रेम का त्रिमानात्मक रूप सामने उभरता है ।

इस उपन्यास का सबसे विशिष्ट पात्र याने एक विशिष्ट संवेदना रेखा ही है जिसका प्रेम राग के स्तर से उठकर एक बौद्धिकता के स्तर तक पहुंच जाता है । औपन्यासिक उपलब्धि के रूप में इस उपन्यास को प्रमुख स्थान प्रदान करते हुए भी

---

1 डा. इन्द्रनाथ मदान हिन्दी उपन्यास पहचान और परख (प्र.सं.) पृ. 159

एक सीमित अर्थबोध और संकीर्ण कैनवास मे चित्रित होने के कारण, मानवीय मूल्यों को अस्वीकार करने के कारण, डा.रामस्वरूप चतुर्वेदी 'नदी के द्वीप' मे 'मौलिक विज्ञान' न मिलने का असन्तोष प्रकट करते है । उनका कथन है - 'एक सूक्ष्म और सामान्य संवेदना, उसका बौद्धिक और अपेक्षाकृत तटस्थ रागात्मक दृष्टि से चित्रण तथा व्यापक सन्दर्भो मे मानव - जीवन के प्रतिमानों की व्याख्या आधुनिक कथा साहित्य की विशेषतायें मानी जा सकती है'[1] । चतुर्वेदी के अनुसार 'नदी के द्वीप' मे इसका अभाव है । इसलिए भाषा की वर्जना के स्तर पर इस उपन्यास का ऐतिहासिक महत्व होते हुए भी औपन्यासिक शिल्प मे कमियां ही ज्यादा नज़र आती है । यह सही है कि 'नदी के द्वीप' मे व्यापक सन्दर्भो को अनदेखा कर दिया गया है । उसमे सामाजिकता का एकदम अभाव है, सामयिक स्थिति-बोध को अस्वीकार कर दिया गया है । इसलिए इसके औपन्यासिक शिल्प का एक अंग प्रायः मौन है या मौन साधने को बाध्य है क्योंकि अज्ञेय का यह विश्वास है कि हर एक उपन्यास मे सामाजिक स्थूलता को अपनाने की कोई आवश्यकता नही है । अतः अज्ञेय के हाथो से सामयिक स्थिति - बोध यो ही छूट तो नही गया बल्कि उन्होने अपनी ओर से छुडा दिया और संवेदनाओ के संघात से व्यक्तित्व की पूर्णता की खोज भी की है । इस अर्थ मे फिर से 'नदी के द्वीप' का औपन्यासिक शिल्प पूर्णता प्राप्त करता है । लेकिन शिल्प की पूर्णता तभी होती है कि जब उसमे सामयिक स्थिति - बोध से जनित एक दर्शन हो, एक व्यापक संदर्भ मे लेखक ने जीवन को निकटता से देखा हो । 'नदी के द्वीप' के शिल्प का व्यवधान व्यक्तियों के बीच से संगठित हुआ है और व्यक्ति के सम्बन्धो के बीच वह रचनात्मक स्तर का अन्वेषण करताहै

अज्ञेय की संवेदना का मुख्य केन्द्र रेखा ही है और रेखा अज्ञेय के अन्वेषण की एक उपज है । उसके माध्यम से उन्होने उपन्यास के दर्शन को रूपायित किया है । वेदना रेखा को दृढता प्रदान करती है और अपने व्यक्तित्व के विकास के पथ पर ले चलती है । वह अपनी ही लीक पर चलना पसन्द करती है । रेखा के व्यक्तिगत जीवन मे दुर्भाग्य का एक मंडल है उसमे वह किसी को आने नही देती । यह उसके दुःखवाद का ही उदाहरण है । उसके चारो ओर के दुःख के घेरे के भीतर वह अपने अहं के साथ रहती है प्रत्येक व्यक्ति को रेखा प्रत्येक सनातन क्षण के रूप मे स्वीकार करती है । अपने पति

---

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी :, हिन्दी नवलेखन (प्रथम संस्करण) पृ.

हेमेन्द्र से सम्बन्ध तोडने के बाद वह इस क्षणवादी दर्शन को अपनाती है । अतः उसका भुवन से, चन्द्रमाधव से या गौरा से जो संबन्ध रहता है वह उस क्षणवादी दर्शन के आग्रह पर टिकता है । क्षणवादी दर्शन की पूर्णता वह भुवन मे पाती है और भुवन केलिए समर्पित हो जाती है । भुवन के माध्यम से वह पूर्ण प्रेम को आत्मसात् करती है । इसलिए वह बार बार कहती है कि मै 'फुलफिल्ड' हूं । इसको लेकर बहुतेरे आलोचकों ने 'नदी के द्वीप' की पूर्ण रूप से या रेखा की अलग रूप से कटु आलोचना की है । नैतिकतावादी अलोचकों को यह पचता नही है, किन्ही नए आलोचकों के लिए यह रेखा की अतृप्ति है । डा.विजय मोहन सिंह के अनुसार रेखा की व्यथा तथा अवसाद वृत्ति मे घिरे व्यक्तित्व का एक प्रश्न और पक्ष है, यह भुवन के सामने अतृप्ति न व्यक्त कर पाने की व्यथा है । वह जिस बौद्धिकता तथा गंभीर वयस्कता के वातावरण मे रहती है उसमे अतृप्ति के संकेत ही हो सकते है[1] । 'फुलफिलमेंट' के सन्दर्भ मे डा.विजयमोहन सिंह का मंतव्य है यह एक विभाजित चेतना का आत्म स्वीकार है । रेखा केलिए फुलफिलमेंट यहां चरम अनुभूति है । वहीं वह भुवन केलिए चरम अनुभूति दे सकने का निमित्त मात्र है । यह केवल प्रेम को अनुभव कर पाने की असमर्थता का बौद्धीकरण है[2] । यह आलोचना रेखा की पात्रता को समग्रता से देखने केलिए हिचकती है अपनी ध्वंसक प्रवृत्ति के कारण उसकी पात्रता को नकारती है । यह बात ठीक ही है कि रेखा मे अतृप्ति है - हेमेन्द्र के साथ के जीवन की पराजय, स्त्रीत्व की अवहेलना का पात्र बनकर वह उसकी खोज मे निकलती है । तब उसका भूतकाल हमेशा केलिए अस्त हो चुका होता है । उसके सामने वर्तमान मात्र है । भविष्य को वह मानती तो वह उसकी स्थिति से न्याय नही कर सकती । क्योंकि भविष्य उसके लिए एक कुहरामय सपना है । इसलिए वह क्षण को सनातन मानकर दुख से निवृत्ति पाकर, सबको अपने दुख से दूर रखकर अपने व्यक्तित्व के आलोक को बिखेरती रहती है । तब एक सामाजिक अवहेलना से जनित वेदना रेखा मे उमडती हुई हम देखते है । इसलिए वह सबको मुक्त रखना चाहती है यहां तक भुवन को भी । उसके गर्भवती होने के कारण भुवन उसे स्वीकार करने केलिए तैयार होता है । लेकिन एक सामाजिक विषमता या एक नैतिक बोध भुवन मे वह देखती है, और इसी कारण वह उसे ठुकराती है ।

---

1 डा.विजयमोहन सिंह आधुनिक उपन्यासो मे प्रेम की परिकल्पना पृ.270

2 वही पृ.271

'नदी के द्वीप' में रेखा के माध्यम से जिस पिट-पिटाये रागात्मक सम्बन्धों को तोडने केलिए अज्ञेय विवश हुए, और चार संवेदनाओं के माध्यम से जिस जटिल मानसिकता को उभारा गया है वह आधुनिकता की ही पहचान को स्पष्ट कर देती है। आधुनिकता को पहचानने का विभिन्न ढंग भी होता है और अज्ञेय ने उसके एक ही मार्ग को अपनाया है। अज्ञेय का अन्तिम उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' अन्य दोनों उपन्यासों से बढकर एक सुगठित शिल्प का परिचय देता है। इसमें दर्शन का ऐसा उलझा हुआ रूप सामने आता है और हमें इन-गिने औपन्यासिक दायरे से उपर उठने को विवश भी करता है। अपने नवीन चिन्तन को अज्ञेय ने परिपक्वता के साथ जिस आधुनिक परिवेश के साथ जोड दिया है वहां उपन्यासकार सफल भी हुए हैं।

अगर पारिभाषिक शब्दावली में बांध दे तो 'अपने अपने अजनबी' एक दार्शनिक उपन्यास है -'फिलासफिकल् नोवल' जैसा सार्त्र का 'नौसिया' है। अपने अपने अजनबी का मुख्य संकट-बिन्दु मृत्यु बोध है। 'शेखर' की परिकल्पना में भी एक प्रकार का मृत्यु ब था। लेकिन इसमें जो मृत्यु बोध है वह मानव की स्थिति को समझने एवं उसकी आत्यन्तिक आस्था को पहचानने में अधिक सहायक है।

'अपने अपने अजनबी' में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप दो पात्रों - सेल्मा और योके - को माध्यम बनाया गया है लेकिन इसमें पात्रों का कोई महत्व नहीं है जैसे शेखर या रेखा के महत्व है। क्योंकि इसमें जो सत्य है - क्षण का सत्य है वह सामाजिक सत्यों के आगे खडे होकर अनुभूत सत्य के रूप में परिवर्तित होकर कालातीत हो जाता है। क्योंकि 'काल केवल अस्तित्व के क्षण में ही जीवित है, सत् है, विज्ञान का काल जड पदार्थ है जिसे हम बराबर खण्डों में बांटते रहते हैं। अनुभव को भी हम खण्डों या वर्गों में बांटते हैं'।

मृत्यु के सामने खडे होकर 'अपने अपने अजनबी' के पात्र काल (टाइम) को देखते हैं। उनकेलिए काल वह वर्तमान है - वह क्षण है जिसमें उनका जीवन बीत रहा है। क्योंकि एकमात्र क्षण का सहारा ही उन्हें है। उनका अनुभव उसी क्षण के चारों ओर है। सेल्मा और योके केलिए भूतकाल इतना अधूरा हो जाता है, इतना नगण्य

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

। अज्ञेय अन्तरा (प्रथम संस्करण) पृ 28 - 29

हो जाता है कि उनकेलिए भविष्य एक अंधेरा है । इसलिए वर्तमान स्थिति वर्तमान क्षण को ही महत्व देते हैं ।

सेल्मा और योके कालातीत एक खास कालगत अनुभव के क्षण मे जीते हुए भी दोनो के अनुभूत सत्य भिन्न है । योके का सोचना ठीक ही है कि सेल्मा भी काल मे जीती है लेकिन वह समूचे काल मे जीती है । मगर योके एक समूचे काल का अंग नही बन सकती है । यही उसकी विडम्बना है । सेल्मा केलिए कोई बिडम्बना उपस्थित नही होती है । जहा योके अपने को मृत्यु को सामने पाकर इतनी डर जाती है वहा सेल्मा योके समझाती है कि 'बात को पहचान लेना, इससे आगे हम कुछ नही जानते'। इसलिए सेल्मा मे जो वरण की स्वतंत्रता है वह योके आत्मकार नही कर सकती ।

उपन्यास के अन्त मे योके मृत्यु का वरण करके भी मृत्यु को पहचानने की क्षमता का अभाव उसमे दीखता है, मृत्यु को काल के साथ जोडने की शक्ति उसमे नही है । अतः योके द्वारा गुंफित विचार पद्धति पूर्णतः अस्तित्ववादी भी नही बन पाती है । क्योंकि निरपेक्ष अस्तित्ववादी एक ऐसे युग का विद्रोह करते हुए जो नियतत्ववाद से प्रभावित है, मनुष्य की पूर्ण स्वतंत्रता करता चाहता है और उनका यह दृढ कथन है कि वह स्वयं का निर्माण कर सकता है[1]। इसमे उन्हे किसी दूसरे की मदद नही लेनी पडती सेल्मा मे जो स्वतंत्रता थी उसे वह कालगत अनुभव से न जोडकर एक नैरन्तर्य से जोडना चाहती है । सेल्मा मे एक प्रकार का आत्मतत्व प्रबन है । इसलिए सेल्मा का विचार एवं चिन्तन अज्ञेय के अपना चिन्तन है । इसलिए वे काल को जगत मे प्रवाहशील स्वीकार करते है[2] ।

अज्ञेय ने अनोखी स्थिति से परिवेश जुटाया है । यहा अनुभूत सत्य एक दार्शनिक सत्य है - मानवीय सत्य है । इसलिए एक नए शिल्प को आत्मसात् किया गया है । समय को किसी कालानुसार रूप मे न देखकर एक स्थिति के रूप मे देखा गया है । विभिन्न

1 पोल रुबिचेक अस्तित्ववाद - पक्ष और विपक्ष (1973) पृ.120
अनु.डा.प्रभाकर माचवे
2 डा.शशिभूषण सिंहल हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ (प्र.सं.) पृ.170

कालो मे घटित घटनाओ को व्यक्तित्वो मे एकत्रित करके उनके आचरण एवं धारणाओ के माध्यम से प्रकट किया गया है । पात्र मृत्यु के समक्ष अपने व्यवहार और काल को पहचानते है । ऐसा एक शिल्प हिन्दी साहित्य केलिए एकदम नवीन है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासो मे सब से प्रथम अज्ञेय के उपन्यास नवीन शिल्प-पद्धति को उद्घाटित करते है । शेखर विकास-पथ का पहला मोड है । जहाँ आलोचक शिल्प को खण्ड-खण्ड करके उसी पुरानी औपन्यासिक तत्वों के दायरे मे बल पूर्वक बाँधते रहना चाहता है उनके हाथो मे इस प्रकार के उपन्यास पूर्ण रूप से आते ही नही है । 'शेखर' एक व्यक्तित्व के विकास की विभिन्न परिणाम दशा को सूचित करता है तो 'नदी के द्वीप' विभिन्न व्यक्तित्वो के मिलने के बाद व्यक्तित्वो की स्वतंत्रता पर बल देता है । अपने अपने अजनबी उन दोनो से भिन्न एक विचार पद्धति को अपनाता है और इसी कारण एक बृहत् दार्शनिक संवेदना को रूपायित करता है ।

अज्ञेय के उपन्यासो के शिल्प की उपलब्धि निर्विवाद है । आधुनिक संकेतो का पूर्ण तया ग्रहण करने वाले उनके उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास मे अपना प्रभाव छोड कर ही गये है । परवर्ती उपन्यासो मे इसका प्रभाव भी हम देखते है ।

(2) कहानियो का शिल्प - रचना-क्रम के अनुसार अज्ञेय की प्रथम कहानी सन् 1935 मे लिखी गई थी । (इस कहानी का मूल रूप 1929मे तैयार हुआ था) अतः अज्ञेय का रचनाकाल प्रेमचन्द के बाद ही शुरू होता है । सन् 1935 से लेकर करीब 1950 तक के कालखण्ड के बीच उन्होने कहानियो लिखी । वस्तुतः इस काल खण्ड के अन्तर्गत कहानी के शिल्प मे कई परिवर्तन हुए है जिनका साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व निस्संदेह सराहनी है । लेकिन हमे सिर्फ यह देखना है कि अज्ञेय ने कहानी के शिल्प का कैसा परिवर्तन कि और अज्ञेय की कहानियो के शिल्प की कौन सी विशिष्टता है ।

शिल्प की दृष्टि से प्रेमचन्द अपनी अन्तिम कहानियो मे पूर्णतः सफल हुए है ।

1 Proceedings of a seminar - Modernity and contemporary Indian literature (1968) - Vatsyayan's talk. p.377.

2 अज्ञेय छोडा हुआ रास्ता (अज्ञेय की संपूर्ण कहानियां - 1) (प्र. स.)पृ.435

यह प्रेमचन्द के लेखक का विकास है, उनकी रचनात्मकता की प्रगतिका परिचायक है । लेकिन उनकी आदर्शवाद की स्थापना एवं 'मानसिक परिवर्तन' ने कहानी के शिल्प को शिथिल कर दिया है । अज्ञेय की कहानियों में यह मानसिक परिवर्तन एक प्रकार का रोमान्टिक बोध के रूप में दर्शित होता है और यह रोमान्टिक बोध व्यक्तिवादी परिप्रेक्ष्य में इतना निखर आता है कि कहानी में पठनीय ज़रूर रहता है । लेकिन शिल्प के सन्दर्भ में रोमान्टिक बोध कहानी केलिए बाधाएं उत्पन्न करता रहता है । उदाहरणार्थ 'कडियां' 'पगोडा वृक्ष' आदि को ले सकते हैं । विदेशी वातावरण में लिखित 'विपथगा', 'हारिति' एवं 'अकलंक' जैसी कहानियों की सृजन प्रेरणा पूर्णतः क्रान्तिकारिता होते हुए भी रोमान्टिक बोध से ग्रस्त है ।' विपथगा' और 'हारिति' में उनका शिल्प प्रसाद के बहुत निकट पहुँच गया है । लेकिन कहानी का अभिव्यक्ति पक्ष प्रसाद से बिलकुल अलग है । प्रेम एवं भविष्य को ठुकराकर हारिति बलिदान करती है । इस कहानी के अभिव्यक्ति पक्ष का महत्व होते हुए भी उसका पूरा परिवेश रोमान्टिक ही है ।

आदर्शवाद की स्थापना अज्ञेय की कहानियों में भी उपलब्ध है । रमन्ते तत्र देवता' का बिशनसिंह, 'शरणदाता' की जैबू 'बदला' का सरदार जी आदर्शवाद को अपनाए हुए हैं । लेकिन प्रेमचन्द जहाँ आदर्शवाद की स्थापना करना चाहते थे वहाँ उन्होंने घटनाओं को एकदम पलट दिया है, समय और काल को भी भुला दिया है । अज्ञेय में कहानी के पात्रों में आदर्शीकरण है । मगर वहाँ लेखक ने कहानी को इसकेलिए न तोडा है न मरोडा है । विभाजन की विभीषिका से जुटे हुए कथांश को लेकर शरणदात मुस्लीम-मुस्लीम भाई-भाई' शीर्षक कहानियां सृजित हुई हैं और उसमें स्थिति, बोध एवं अनुभूत सत्य को सहबोधता के रूप में चित्रित किया गया है, अतः वह संवेदना जन्य है ।

किसी भी साहित्यिक विधा में यथार्थ की रूपानुकूल स्थापना होती है । चाहे वह निरे यथार्थ हो या चाहे फैंटसी के रूप में । यथार्थ इकहरा नहीं होता, क्योंकि यथार्थ स्तर होते हैं । कला में यथार्थ वस्तु सत्य नहीं होता - रिपोर्ट नहीं होता । अर्थात् कथ्य की अर्थ-वत्ता के साथ जुटा हुआ रहता है । कला के यथार्थ में विषयी द्वारा उसके स्वायत्त किए गए होने की गूंज होती है । उस गूंज के सहारे ही हम यथार्थ के निरे बयान से रचना की अलग पहचान करते हैं, क्योंकि हम परख सकते हैं कि वह केवल बाहर का यथार्थ है या रचनाकार ने उसे आत्मसात् करके ही लिखा है । मैं

सत्य का, बाहरी यथार्थ का, खरापन होना चाहिए साथही आत्म संबोध की, अभ्यन्तर यथार्थ की, अर्थवत्ता भी होनी चाहिए[1]। अज्ञेय की कुछ एक कहानियों में इसी आभ्यन्तरी यथार्थ की खोज के परिणाम देख सकते हैं - रोज़ और 'पठार का धीरज' ऐसी कहानियों में से है। बाकी बहुत सारी कहानियों में भी अर्थवत्ता की खोज जारी है, फिर भी अन्वेषण में आधुनिक संकेत ढीला है। उपर्युक्त दोनों रचनाओं का शिल्प इतना नवीन है, इसमें यथार्थ को समग्रता के साथ पहचाना गया है - एक व्यापक सामाजिक उच्छृंखलता के साथ। आधुनिक कहानी के शिल्प की यह विशिष्टता होती है कि पात्र हमारे सामने ऐसे खड़े होते हैं कि हम उनके परिवेश के सहभोक्ता बनने में लाचार होते हैं। 'रोज़' में मालती का जीवन कहीं रुकी हुई है। उसकी गति कहीं कटी हुई सी लगती है। आज के मध्यवर्गीय जीवन की क्षुधा इस कहानी में व्यक्त है। 'पठार का धीरज' एक नए शिल्प का उद्घाटन करती है। काल्पनिक ऐतिहासिकता के हाथ एक निरे यथार्थ का समीपवर्ती होके चलना इसके शिल्प का वैशिष्ट्य है।

अज्ञेय की कहानियाँ व्यक्ति के माध्यम से एक व्यापक सत्य को पहचानने की कोशिश करती है। लेकिन उनकी कहानियाँ पूर्ण रूप से रोमान्टिक वातावरण से मुक्त नहीं है। यहाँ तक कि क्रान्तिकारी जीवन को एक रोमान्टिक भावुकता प्रदान करने के कारण व्यापकता कहीं कहीं लुप्त हो जाती है।

<u>भाषा की सर्जनात्मकता</u> - अज्ञेय के औपन्यासिक एवं कथात्मक शिल्प की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि भाषा की सर्जनात्मकता है। भाषा रचनात्मक समवर्ती होकर शिल्प-सौन्दर्य का एक विशेष अंश बनती है। भाषा वह माध्यम है जिसमें संवेदना की उत्पत्ति होती है।

अज्ञेय भाषा को सर्वाधिक महत्व देने वालों में हैं। 'त्रिशंकु' नामक निबन्ध में उन्होंने व्यक्त किया है - 'संस्कृति का मूल आधार भाषा है, और भाषा का चरम उत्कर्ष साहित्य में प्रकट होता है। अतः साहित्य का पतन संस्कृति का और अन्ततः जीवन का पतन है[2]।

- -

1 अज्ञेय : छोड़ा हुआ रास्ता (भूमिका से) पृ. 14

2 अज्ञेय : त्रिशंकु (1973) पृ.23

समय के बदलने के साथ पुरानी रुढ़ियाँ नष्टप्राय होती चलती है और नए मूल्यों की अर्थवत्ता का अन्वेषण होता रहता है । हर नया साहित्य नए मूल्यों की स्थापना करता है । भाषा में अर्थवत्ता की विकास होता है । इसलिए नया साहित्यकार यह अनुभव करता है नए मूल्यों की स्थापना केलिए पुरानी भाषा अपर्याप्त है क्योंकि उसमें उतना व्यापकत्व नहीं रहता । भाषा संवेदनीय (सजेस्टीव) होना है तभी तो उसमें वह शक्ति बनी रहेगी कि पाठक जटिल स्थितियों के साथ तादात्म्य प्राप्त कर सके । कविताओं में अज्ञेय की भाषा उत्तरोत्तर संवेदनीय होती गई । कथा साहित्य (उपन्यास एवं कहानी) के क्षेत्र में भाषा की दृष्टि से जब उनके उपन्यास एवं कहानी का अध्ययन होता है और प्रेमचन्द से तुलना की जाती है तब हमें यह अनुभव होता है कि प्रेमचन्द की भाषा उतनी संवेदनीयता नहीं रखती थी यद्यपि उन्होंने अपने औपन्यासिक शिल्प के लि एक मंजी हुई भाषा का स्तर स्थापित किया हो । लेकिन जैसे अज्ञेय ने अपने विश्वासों और मूल्यों के लिए एक नया भाषिक स्तर बनाया । 'शेखर' की भाषा प्रेमचन्द के सपाट भाषिक स्तर से एक दम भिन्न है । कहीं कहीं छायावादी गद्य की रमणीयता ने अर्थ व्याप्ति में कमी दिखाई है । लेकिन भाषा की दृष्टि से नदी के द्वीप की भाषा उसके शिल्प के अनुकूल है । इस उपन्यास तक आते आते अज्ञेय की औपन्यासिक भाषा एवं तीव्र हो गई । हर शब्दों के अर्थों का इतना अधिक उपयोग अज्ञेय ने किया है कि इच्छित अर्थ विकास जाकर शिल्प की रचनात्मकता में सहायक हो गया है । भाषा की संवेदनीयता अधिकतर कविता में फलीभूत होती है । लेखक के अभ्यन्तर की अनुगूंज से गूंजित हो उठती है । 'अपने अपने अजनबी' की भाषा बाह्य रूप से खण्डित एवं कृत्रिम लगती है । लेकिन कथ्य की विशिष्टता ही इसका कारण है ।

<u>निष्कर्ष</u> - हम ने शिल्प को मात्र बाह्य तत्व न मानकर रचना की सर्जनात्मकता की आत्यन्तिक परिणति मानते हुए अज्ञेय के उपन्यासों एवं कहानियों का अध्ययन किया है । इसलिए समूची कृतियों को एक साथ आलोच्य नहीं बनाया है बल्कि लेखक की सर्जनात्मक ऊर्जा की संवेदनीयता को ही प्रमुख मानकर शिल्प को पहचानने का प्रयत्न किया है । अज्ञेय ने अपने उपन्यासों और कहानियों में कथ्य के अनुरूप शिल्प को अपनाया है । कथ्य और शिल्प का अभिन्नत्व मानते हुए कथ्य की सशक्त अभिव्यक्ति केलिये शिल्प-रचना में सदैव सजग रहनेवाले हिन्दी के महान लेखकों में अज्ञेय का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

उपसंहार

पिछले अध्यायों में हम ने अज्ञेय के व्यक्तित्व की विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए उनके उपन्यासों और कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । उनके उपन्यासों और कहानियों की आलोचना करते हुए हमने एक नए कोण से उनपर प्रकाश डाला है । प्रस्तुत अध्याय में उपर्युक्त अध्ययन से उपलब्ध निष्कर्षों के आधार पर उपसंहार के रूप में अपने विचारों को व्यक्त करना उचित समझते है ।

साहित्यिक रचनाओं के अध्ययन के सन्दर्भ में लेखकीय व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण स्थान है । क्योंकि व्यक्तित्व का ही प्रस्फुटन रचना होता है । लेकिन व्यक्तित्व या अहं को क्यों व्यक्त किया जाता है । इसलिए कि व्यक्तित्व या अहं के प्रस्फुटन से सब से पहले खुद की पहचान होती है[1] । स्वयं पहचाने बिना अनुभूतियों और संवेदनाओं का विलयन संभव नहीं है । इस विलयन का संबन्ध एक अन्वेषण से है । मानवीय मूल्यों का अन्वेषण लेखकीय व्यक्तित्व की आत्यन्तिक उपलब्धि है और अन्त में वह रचना की उपलब्धि के रूप में परिणत होती है । लेकिन यहाँ उपलब्धि को उसको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जानना है, क्योंकि वह इतिहास सत्यों से सम्पृक्त है । 'सृजन बराबर मूल्यपरक होगी । मूल्य का निषेध करके भी वह उसीका अन्वेषण करता है । उसीका अन्वेषित सत्य युग चेतना के अन्तरंग सत्य को प्रायः अज्ञातः और कभी कभी सज्ञातः उजागर करती है[2] । रचना के कटे-छटे रूप के अध्ययन से हम रचना से न्याय नहीं कर पाते । क्योंकि समग्र उपलब्धि उसके बाह्य रूप में नहीं बल्कि लेखक के मूल्यान्वेषण पर स्थित है जो रचना की आत्यन्तिक स्थिति है । प्रस्तुत प्रबन्ध में हमने अज्ञेय के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन इस दृष्टि से किया है ।

अज्ञेय के उपन्यासों और कहानियों में आधुनिकता का एक दौर शुरू होता है । यहाँ

- - - - - - - - - - - - - - - -

1 F.E. Sparshott - The structure of Aesthetics (1965) p.235

2 डा. मुकुन्द द्विवेदी : हिन्दी उपन्यास युग चेतना और पाठकीय संवेदना (प्र.सं.)

आधुनिकता के संबन्ध मे थोडा विस्तार के साथ विवेचन करना आवश्यक प्रतीत होता है। आधुनिकता को इतिहास विश्लेषक दृष्टिकोण के अनुसार मानकर किन्ही नई प्रवृत्तियो से जोडना असंगत लगता है। भारतेन्दु मे हम आधुनिकता का संकेत नही पा सकते, मैथिली शरण गुप्त मे इसका संकेत नही है। इसलिए डा.नरेन्द्रमोहन लिखते है - छायावाद पूर्व रचित साहित्य आधुनिकता की पृष्टभूमि मे पडा है और उसकी मध्यकालीनता का पलडा भारी है[1]। दिनकर के अनुसार आधुनिकता समय सापेक्ष धर्म है। उनका कहना है कि नैतिकता, सौन्दर्य बोध और आध्यात्म के समान आधुनिकता कोई शाश्वत मूल्य नही है। सच पूछिए तो वह मूल्य ही नही, केवल समय सापेक्ष धर्म है[2]। आधुनिकता को समकालीनता से जोडकर परखना वैज्ञानिक दृष्टिकोण नही है। क्योंकि आधुनिकता से मतलब साहित्यिक प्रवृत्तियो से नही है बल्कि साहित्यिक मूल्यो से है। अगर प्रवृत्तियो से है तो हम भारतेन्दु को भी आधुनिक मान सकते है। यहाँ हमारा तात्पर्य साहित्य मे निहित उन मूल्यो की ओर है जो मानव विकास केलिए नए नए आयाम को खुला देते है। आधुनिकता के संबन्ध मे विस्तार के साथ विमर्श करते हुए रमेश कुन्तल मेघ ने लिखा है कि आधुनिकता को वह विचारविधि माना जा सकता है जो क्लासिकल दर्शन के इतिहास मे विच्छेद करके नए दर्शन के इतिहास से गूंथती है[3]। डा.मेघ केलिए आधुनिकता दिमाग मे उपजी सूक्ष्म दर्शन के प्रयोग नही बल्कि सामाजिक संबन्धो और सामाजिक परिवर्तन की विचार-विधि भी है। अतः आधुनिकता को काल सापेक्ष्य या समय सापेक्ष्य धर्म के रूप मे मानना अधूरे दृष्टिकोण का ही परिचय है। आधुनिकता साहित्य के सिलसिले मे वह मूल्यो के अन्वेषण मे निहित है। अज्ञेय को इसी सन्दर्भ मे जानना और पहचानना है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि अज्ञेय के कथा साहित्य मे आधुनिकता को किस स्तर पर आंका गया है। संक्षेप मे वह इस प्रकार है —

> अज्ञेय के उपन्यासो एवं अधिकतर कहानियो मे कोई नैतिक आग्रह नही है।
>
> शाश्वत मूल्यो की स्थापना के आग्रह के कारण अज्ञेय ने परंपरा को खण्डित किया है।

---

1 डा.नरेन्द्रमोहन : आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ (प्र.सं.) पृ.11

2 रामधारीसिंह दिनकर : आधुनिक बोध (प्र.सं.) पृ.5

3 रमेश कुन्तल मेघ : आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण (प्र.सं.) पृ.314

रोमान्टिक वातावरण से मुक्त होने का आग्रह अज्ञेय में प्रबल है ।

पात्रों के आपसी संबन्ध एवं उनका दृष्टिकोण विशेष स्तर का है जिसकी नई अर्थ व्यंजना स्पष्ट होती है ।

भाषिक स्तर पर अज्ञेय का कथा साहित्य एक व्यापक सन्दर्भ केलिए भाषा का प्रयोग करते है ।

उपन्यासकार के रूप में अज्ञेय प्रेमचन्द्रोत्तर काल के सशक्त लेखक है । कहानीकार के रूप में भी उनका वही रूप है । 'गोदान' के बाद 'शेखर एक जीवनी' ही एकमात्र उपन्यास है जो एक साथ ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व के साथ लिखा गया था । शेखर पर कई प्रकार के आरोप-प्रत्यारोप लगाए गए । श्रीकान्तवर्मा अज्ञेय के पात्रों के बीच के संबन्ध को लेकर लिखते है – अज्ञेय के उपन्यासों के स्त्री और पुरुष 'भोगते' है, इसलिए नहीं कि उनका अस्तित्व है बल्कि इसलिए कि अस्तित्व है ही नहीं । दूसरे शब्दों में उनका अस्तित्व काल्पनिक है और उनकी पीडा भी काल्पनिक है[1] । इस कथन से उनका मतलब शेखर और शशि के प्रेमसंबन्ध से है, साथ ही साथ भुवन और रेखा के प्रेमसंबन्ध से भी है । इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि 'शेखर एक जीवनी' में शेखर का रूप एक निषेधी जैसा विकसित होता है । प्रारंभ में पारिवारिक परिस्थितियों में उसका विकास दिखाया गया है । जब उसकी दृष्टि सबसे पहले सामाजिक कार्रवाइयों पर पडती है सब उसे जिन अनुभवों से गुज़रना पडा उनसे शेखर का अहं कुण्ठित हो जाता है । शशि और शेखर के सम्बन्ध के उद्घाटन और शशि के चरित्र निरूपण में अज्ञेय की रचनात्मकता ने पूर्णता प्राप्त की है । शशि अपने पारिवारिक जीवन में यह अनुभव करती है कि उसके आस्तित्व की नींव शिथिल हो रही है तब वह बिना किसी हिचक के शेखर के साथ रहना पसन्द करती है । श्रीकान्तवर्मा के उपर्युक्त कथन में 'भोगने' की बात का उल्लेख है । लेकिन शेखर-शशि के संबन्ध में यह कथन निराधार लगता है । 'नदी के द्वीप' के भुवन-रेखा के संबन्ध पर भी विचार करें तो मालूम होगा कि श्रीकान्त वर्मा का कथन ठीक नहीं है । क्योंकि रेखा को अस्तित्वहीन कहना असंगत ही है । उपर्युक्त दोनों प्रबन्धों में लेखक का कोई नैतिक आग्रह नहीं है । लेकिन अगर इन्हीं संबन्धों को साधारण तौर पर ही समझा जाय तो वह छिछला प्रेम-व्यापार

---

1 श्रीकान्तवर्मा जिरह (प्र.सं.) पृ.101

ही लगेगा । नए सन्दर्भ में, परम्परा के पूर्वाग्रह के बिना उस पर विचार करने पर उसकी विशेषता स्पष्ट होगी । चन्द्रकान्त महादेव बाँदिवडेकर ने ठीक ही कहा है 'नदी के द्वीप' कविता और उपन्यास भी प्रायः व्यर्थ ही कटु आलोचना का कारण बना । इसका मूल कारण उसके प्रतीकों को सतही पर ग्रहण करने में निहित है[1]। अज्ञेय ने अपनी कुछ कहानियों में भी प्रेम को नए कोण से देखा है - 'रोज' की मालती और माहेश्वर का दाम्पत्य प्रेम, 'पठार का धीरज' की प्रमीला और किशोर का प्रेम सम्बन्ध और 'पगोडा वृक्ष' में सुखदा के हृदय में उत्पन्न प्रेम आदि उल्लेखनीय है । लेकिन अज्ञेय के कथा-साहित्य को आधुनिक सन्दर्भ में देखने का कार्य बहुत कम ही हुआ है । प्रस्तुत प्रबन्ध में हम ने यथा संभव इस दिशा में चलने का प्रयत्न किया है ।

~~अज्ञेय ने अपनी कुछ कहानियों में~~ अज्ञेय के समूचे साहित्य में जीवन के प्रति एक आस्था जनित आसक्ति उत्तरोत्तर विकास पाती है । जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही सृजनात्मक है । एक तरह से यह दृष्टिकोण भारतीय दर्शन का ही बदला हुआ रूप है । भारतीय दर्शन आध्यात्मिक अनुभूति से ओत प्रोत है । लेकिन साथ ही उसमें कर्मवाद को भी प्रमुखता दी गई है जो विकासोन्मुख है । अज्ञेय ने इसी दार्शनिक चिन्तन धारा की अभिव्यक्ति की है अपने अन्तिम उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' में । जीवन के प्रति जो आस्था है वह अज्ञेय के अन्य दोनों उपन्यासों में है - 'शेखर' में मदन सिंह का सूत्र - 'पर दर्द से भी बड़ा एक विश्वास है', इसी दर्शन का परिचायक है । उसका एक दूसरा रूप 'नदी के द्वीप' में भी है । रेखा जब भुवन से कहती है कि जो कुछ सुन्दर है उसे सुन्दर ही रह देने दो' । यह रेखा के जीवन के प्रति जो ममत्व भाव है उसी की अभिव्यक्ति है ।

'अपने अपने अजनबी' में अज्ञेय इसी दर्शन को अतिरंजित स्थितियों के बीच जानने का प्रयत्न करते हैं । इस उपन्यास की यह विशेषता है कि अन्य दोनों उपन्यासों से बढ़कर इसका शिल्प बहुत ही गठित है - सूक्ष्म दर्शी है । यह आधुनिक उपन्यासों की

- - - - - - - - - - - - - - - - -

1 चन्द्रकान्त महादेव बाँदिवडेकर अज्ञेय की कविता का मूल्यांकन (प्र.सं.) पृ.72

कोटि मे आ जाता है । इसकी एक और विशेषता यह भी है कि अतिरंजित स्थितियों का चित्रण होते हुए भी इसमें दर्शन की बोरियत नही है । अस्तित्व वादी दर्शन आधुनिक पश्चिमी जीवन की पृष्ठभूमि मे विकसित एक विशेष चिन्तन धारा है । कुछ विद्वानों ने इसे पूर्णरूप से एक दर्शन माने बिना परम्परा वादी चिन्तन प्र णालियों को नकारनेवाली एक विशेष चिन्तन पद्धति माना है[1]। फिर भी जीवन के प्रति इस चिन्तन पद्धति का अपना एक दृष्टिकोण है । 'अपने अपने अजनबी' में अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन से एकदम विपरीत दृष्टिकोण को अपनाया गया है । योके का स्वतंत्रता से न चुन सकने की स्थिति और वहीं सेल्मा का अर्पित दृष्टि से मृत्यु का इन्तजार करना आदि बातें लेखक के अपने दृष्टिकोण की द्योतक है ।

अज्ञेय ने एक प्रकार से इसी दृष्टिकोण को 'जीवनी शक्ति' शीर्षक कहानी में भी व्यक्त किया है । लेकिन उसमें दार्शनिक पृष्ठभूमि विद्यमान नही है । इसमें आस्था का स्वर मुखरित है । कभी न नष्ट होनेवाली जीवनी - शक्ति जीवन को सार्थकता प्रदान करती है ।

अज्ञेय के साथ यह शिकायत की जाती है कि उन्होंने अपने उपन्यास एवं कहानियों में समाज की उपेक्षा की है और समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाया नही है । व्यक्ति - सत्य पर अज्ञेय का अटल विश्वास है । क्रान्ति की आत्यन्तिक संभावनाएं समाज में प्रकट होने पर भी वह व्यक्ति सत्य की उपज है । 'शेखर' की रचना इसी विचार धारा का परिणाम है ।

शेखर व्यक्ति-पक्ष का सुलगता हुआ पुंज है । टूटी नैतिक रुढियों के मध्य में वह अकेला खड़ा होता है । बचपन में उसकी खोज पराजय में परिणत होती है । समाज की खोखली मान्यताओं के प्रति जब शेखर ने उंगली उठाई तो वह अकेला रह गया । पिटी-पिटाई लीक पर न चलने के कारण वह ढोंगी ठहराया गया है । वास्तव में शशि के साथ उसका जो संबन्ध दिखाया गया है वह एक अप्रत्याशित घटना नही है बल्कि एक संभावना है । शेखर का शशि के साथ जो संबन्ध चित्रित हुआ है उसे सहज स्त्री-पुरुष संबन्ध की

- - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Walter Kaufman - Existentialism : Dostovesky to Sartre (1965) p.12

सीमाओं के अन्दर रखकर ही परखना है । लेकिन लगता है कि वहाँ हमारे आलोचक अपने नैतिक बोध का परिचय देते हैं । रेखा भी अज्ञेय के इसी दृष्टिकोण का परिचायक है । वह न बनी-बनाई लीक पर चलती है, न चलना पसन्द करती है । भुवन के साथ मिलकर भी वह अपने व्यक्तित्व को नष्ट नहीं करना चाहती ।

अज्ञेय की मनोवैज्ञानिक कहानियों को छोडकर बाकी सारी कहानियों में उनका कहानीकार रूप नया है । मानवीय संवेदना और यथार्थ बोध के व्यापक क्षितिजों को ग्रहण करने का सफल प्रयास उनकी कहानियों में लक्षित होता है । उन्होंने व्यक्तियों से माध्यम से विस्तृततर परिप्रेक्ष्य के सही अर्थ बोध कराने कार्य किया है । कहानियों के क्षेत्र में अज्ञेय को पूर्ण सफलता तो नहीं मिली । लेकिन सफलताओं की शुरु आत अज्ञेय से ही माननी चाहिए । इतना सब कुछ होते हुए भी हम यह बता सकते है कि अज्ञेय के रचना-संसार में कहानियां एक क्षीण पक्ष ही है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अज्ञेय का उत्तुंग सारस्वत व्यक्तित्व सदैव आकर्षक और प्रेरणादायक रहा है । उनकी बहुमुखी प्रतिभा की उपलब्धियों से हिन्दी साहित्य अवश्य समृद्ध हुआ है । अपने उपन्यासों और कहानियों के द्वारा उन्होंने आधुनिकता के नए आयाम की ओर संकेत किया है । उपर्युक्त दोनों विधाओं में रचनारत उनकी महती प्रतिभा ने विश्व साहित्य की अनेक आलोक किरणों को आत्मसात्कर हिन्दी साहित्य पर आधुनिक विश्व-साहित्य की चेतना की छाप छोड दी है ।

—

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

(क) आलोचनात्मक साहित्य

1 अधूरे साक्षात्कार - नेमीचन्द्र जैन - अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
2 अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - रामस्वरूप चतुर्वेदी - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
3 अज्ञेय कथाकार और विचारक - डा. विजयमोहन सिंह - पारिजात प्रकाशन, दिल्ली
4 अज्ञेय का रचना संसार - गंगाप्रसाद विमल - सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली
5 अज्ञेय के उपन्यासों की शिल्पविधि, डा. सत्यपाल चुघ - दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली
6 अज्ञेय की कविता का मूल्यांकन - चन्द्रकान्त महादेव बांदिवडेकर - सरस्वती प्रेस, वाराणसी
7 अस्तित्ववाद पक्ष और विपक्ष - पालरुबिचेक (अनु प्रभाकर माचवे) - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
8 अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर साहित्य - डा. श्यामकुमार मिश्र - विद्याप्रकाशन मन्दिर, दिल्ली
9 अस्तित्ववाद - महावीर दधीच - शब्दलेखा, बिकानेर
10 आधुनिकता और आधुनिकीकरण - रमेशकुन्तल मेघ - अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
11 आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ - डा. नरेन्द्रमोहन - आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
12 आधुनिक कहानी का परिपार्श्व - डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - साहित्य भवन इलाहाबाद
13 आधुनिक हिन्दी साहित्य - नन्ददुलारे वाजपेई - भारतीय भण्डार, इलाहाबाद
14 आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - डा. श्रीकृष्णलाल - हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग
15 आधुनिक हिन्दी उपन्यास - डा. नरेन्द्र मोहन - मैकमिल्लन, दिल्ली
16 आधुनिक परिपेश और अस्तित्ववाद - डा. शिवकुमार मिश्र - नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
17 आधुनिक उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना - डा. विजयमोहन सिंह - रचना प्रकाशन, इलाहाबा
18 आधुनिक बोध - रामधारी सिंह दिनकर - पंजाबी पुस्तक भण्डार, दिल्ली
19 आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - डा. इन्द्रनाथ मदान - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
20 उपन्यास का शिल्प - डा. गोपाल राय - बिहार हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, पटना

21 कहानी की संवेदन शीलता सिद्धांत और प्रयोग - डा. भगवानदास - ग्रंथम, कानपुर

22 कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

23 कहानी नई कहानी - नामवर सिंह - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

24 कलम का मज़दूर प्रेमचन्द - मदन गोपाल - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

25 गांधीवाद की शवपरीक्षा - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनउ

26 जिरह - श्रीकान्त वर्मा - संभावना प्रकाशन, हापुड

27 त्रिशंकु , सच्चिदानन्द वात्स्यायन - सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बिकानेर

28 द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय -
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

29 नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - अक्षर प्रकाशन, दिल्ली

30 नई कहानी सन्दर्भ और प्रकृति - देवीशंकर अवस्थी - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

31 नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र - गजानन माधव मुक्तिबोध - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

32 नया साहित्य नए प्रश्न - नन्ददुलारे वाजपेयी - विद्य मन्दिर, वाराणसी

33 निरीश्वरवाद एक अध्ययन - सत्यवान प. कनल - देव समाज प्रकाशन, पंजाब

34 पूर्व और पश्चिम - डा. एस. राधाकृष्णन - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

35 प्रयोगवाद और अज्ञेय - शैल सिंहा - अशोक प्रकाशन, दिल्ली

36 प्रेमचन्द आज के सन्दर्भ मे - गंगाप्रसाद विमल - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

37 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास - डा. कैलास प्रकाश - हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली

38 प्रेमचन्द और उनका युग - डा. रामविलास शर्मा - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

39 प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासो की शिल्प विधि - डा. सत्यपाल चुघ - लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली

40 प्रेमचन्द कलम का सिपाही- अमृतराय - हंस प्रकाशन, इलाहाबाद

41 भारतीय दर्शन की रूपरेखा - एम. हरियन्ना - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

42 भारतीय दर्शन - उमेश मिश्र - साहित्य समिति, सूचना विभाग, लखनउ

43 भारतीय नवजागरण - गौरी शंकर भट्ट - साहित्य सदन, देहरादून

44 मानवीय मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - ज्ञानपीठ, दिल्ली

45 विषाद योग - कुमार नाथ योग - नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

46 विचार और अनुभूति - डा. नगेन्द्र - नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

47 वैचारिकी - शचीरानी गुर्टू - आत्माराम एण्ड सन्ज़, दिल्ली

48 समांतर - रमेशचन्द्र शाह - सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

49 सहचिन्तन - अमृतराय - सर्जना प्रकाशन, इलाहाबाद

50 सृजन की मनोभूमि - डा.रणवीर रांग्रा - वाणी प्रकाशन, दिल्ली

51 साहित्य और आधुनिक युग बोध - देवेन्द्र इस्सार - कृष्ण बदेर्स, अजमेर

52 हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव - डा.भारत भूषण अग्रवाल - ऋषभ चरण जैन एवं संतति, दिल्ली

53 हिन्दी उपन्यास मे चरित्र चित्रण का विकास - डा रणवीर रांग्रा - भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली

54 हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - डा.सुरेश सिंहा - अशोक प्रकाशन, दिल्ली

55 हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ - डा.लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

56 हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ - डा.शशि भूषण सिंहल - विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

57 हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य - डा.प्रेम भटनागर - अर्चना प्रकाशन, जयपुर

58 हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास - डा.उषा सक्सेना - शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद

59 हिन्दी उपन्यास पहचान और परख - डा.इन्द्रनाथ मदान - लिपि प्रकाशन, दिल्ली

60 हिन्दी उपन्यास युग चेतना और पाठकीय संवेदना - डा.मुकुन्द द्विवेदी - सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद

61 हिन्दी कहानी पहचान और परख - डा.इन्द्रनाथ मदान - लिपि प्रकाशन, दिल्ली ।

62 हिन्दी कहानी अपनी जबानी - डा.इन्द्रनाथ मदान - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

63 हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - डा.परमानन्द श्रीवास्तव - ग्रन्थम, कानपुर

64 हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - डा.लक्ष्मीनारायणलाल - साहित्य भवन, इलाहाबाद

65 हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - सच्चिदानन्द वात्स्यायन - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल

66 हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - नागरी प्रचारिणी सभा,- काशी

67 हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा.नगेन्द्र - डा.सुरेशचन्द्र गुप्त - नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

68 हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - (सं.) डा.विनयमोहन शर्मा - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

69 हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डा. गणपती चन्द्र गुप्त - भारतेन्दु भवन, दिल्ली
चंडीगढ

70 हिन्दी साहित्य का नया इतिहास - रामखेलावन पाण्डेय - अनुपम, पटना

71 हिन्दी नवलेखन - रामस्वरूप चतुर्वेदी - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

(ख) सृजनात्मक साहित्य

72 अपने अपने अजनबी - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

73 अन्तरा - अज्ञेय - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

74 अमर वल्लरी और अन्य कहानियाँ - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

75 अरे यायावर रहेगा याद - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

76 आकाशदीप - जयशंकर प्रसाद - भारती भण्डार, इलाहाबाद

77 आज के प्रिय कवि अज्ञेय - विद्यानिवास मिश्र - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

78 आँगन के पार द्वार - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

79 आत्मनेपद - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

80 आदर्श दम्पति - मेहता लज्जा रामशर्मा - बम्बई - 1904

81 आहुति - इलाचन्द्र जोशी - नाशनल इन्फरमेशन एण्ड पब्लिकेशन, बम्बई

82 ओ भैरवी - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनउ

83 एक बूँद सहसा उछली - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

84 इन्द्र धनु रौन्दे हुए थे - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

85 कड़ियाँ और अन्य कहानियाँ - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

86 गबन - प्रेमचन्द - हंस प्रकाशन, इलाहाबाद

87 गोदान - प्रेमचन्द - सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

88 छोडा हुआ रास्ता - अज्ञेय - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

89 जयदोल - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

90 जैनेन्द्र की कहानियाँ (भाग - 4) - पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

91 जैनेन्द्र की कहानियाँ (भाग - 5) - पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

92 तारसप्तक - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

93 तारा व क्षत्रकुलकामिनी - किशोरी लाल गोस्वामी - वृन्दावन 1915

94 तीसरा सप्तक - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

95 त्याग पत्र - जैनेन्द्र कुमार - पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

96 दादा कामरेड - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनउ

97 दीवाली और होली - इलाचन्द्र जोशी - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

98 दूसरा सप्तक - अज्ञेय - भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली

99 जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

100 नदी के द्वीप - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

101 नासिकेतोपाख्यान - सदल मिश्र - [illegible]

102 निर्मला - प्रेमचन्द्र - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

103 धर्मयुद्ध - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनउ

104 नूतन ब्रह्मचारी - बालकृष्ण भट्ट - साहित्य भवन, प्रयाग

105 पच्चास कहानियाँ - प्रेमचन्द - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

106 परख - जैनेन्द्र कुमार - पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

107 पर्दे की रानी - इलाचन्द जोशी - भारती भण्डार, इलाहाबाद

108 परीक्षा गुरु - श्रीनिवास दास - मोतीलाल लाट, कलकत्ता

109 पूर्वा - अज्ञेय - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

110 प्रेम सागर - लल्लूलाल - [illegible]

111 भक्ती - अज्ञेय - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

112 भस्मावृत चिनगारी - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनउ

113 अछूते फूल और अन्य कहानियाँ - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

114 मधु मंजरी - दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

115 मानसरोवर - I - प्रेमचन्द - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

116 माधवी माधव वा मदन मोहिनी - किशोरी लाल गोस्वामी - वृन्दावन 1919

117 मेम की लाश - गोपाल राम गहमरी - काशी

118 मुक्ति पथ - इलाचन्द्र जोशी - हिन्दी भवन, इलाहाबाद

119 ये तेरे प्रतिरूप - अज्ञेय - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

120 रानी केतकी की कहानी - ईशा अल्लाखाँ -

121 लज्जा - इलाचन्द जोशी - भारती भण्डार, इलाहाबाद

122 लालयीन , ब्रजनन्दन सहाय - काशी 1905

123 रंग भूमि - प्रेमचन्द - सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

124 शेखर एक जीवनी - 1 - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

125 शेखर एक जीवनी - 2 - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

126 सब रंग और कुछ राग - सच्चिदानन्द वात्स्यायन - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

127 समरयात्रा - प्रेमचन्द्र - सरस्वती प्रेस, वाराणसी

128 सन्यासी - इलाचन्द जोशी - भारती भण्डार, इलाहाबाद

129 सुनीता - जैनेन्द्र कुमार - पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

130 सुलताना रज़िया वा रंग महल मे कोलाहल - किशोरी लाल गोस्वामी - वृन्दावन - 1904

131 सेवासदन - प्रेमचन्द्र - सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

132 ज्ञानहीन - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनउ

(ग) आलोचनात्मक साहित्य (अंग्रेज़ी)

133 Abnormal Psychology and Modern life - James Coleman and William Brover - D.P. Taravala Sons and Co.P.Ltd. Bombay.

134 An advanced History of India - R.C. Majumdar - Firma.K.L. Mukhopadhyaya, Calcutta.

135 A General introduction Bsycho Analysis - Sigmund Freud - Washington Squire Press, Newyork

136 An idealist view of life - Dr. S. Radhakrishnan - London 1932

137 Age of Reason - Jean Paul Sartre - penguin books.

138 An introduction to the study of literature - William Hentry Hudson - George G. Harrap & Co.Ltd., London

139. A Hand book of Abnormal Psychology - Richard W. Nin a Philosophical library, Newyork.

140 Aspects of the Novel - E.M. Forster - Edward Arnold Ltd. London

141 An Introduction to the English Novel - Arnold Kettle - Hutchinson University Library, London

142 A Tn the novel - Robert Liddel - Jonathan Cape, London

143 Baslogy - A perceptual Homeostatic approach - Ros: and Charles M. Solley - Tata Mac grawhill Pubompany, Newyork.

144 Beithing Ness - Jean Paul Sartre - Washington Squ Newyork.

145 Cam King - Oliver and Boyd - Edin Burgh and Londo

146 Chibment the emerging self - Don C Dinkmeyar - Pred of India, Delhi.

147 Chilogy - Growth treands in Psychological adjust- mentge G. Thompson - Prentice Hall of India, Delhi.

148 Chad the Novel - W.J. Harvey - Chatto & Windus, London

149 Cont Indian Philosophy - Ramashankar Srivastava - Munanoharlal, Delhi.

150 Cont philosophy and its origins - S.P. Perter - FreuC. Denice - D Van Nostrand Co. Canada.

151 Encya of Religion and ethics - James Hastings - T &- Edinburgh.

152 Essata - Shri Aurobindo - Aurobindo Ashtram, Pondicherry

153 Exism : Dostovesky to Sartra - Walter Kaufman - The i Publishing Company, Newyork.

154 Forern Fiction - Willaim Van O'Connor - Minesotta Uniwress.

155 Freuams and sex theories - Pocket books Newyork

156 Genaological Theory - Freud - Collierbooks, Newyo

157 Histdian philosophy - S.N. Das Gupta - Kitab Maha Allahabad.

158 Histestern Philosophy - Bertrand Russel - Simon a Schuttar, Newyork

159 Histdian National Congress - Pattabi sita Ramayy S. Chand and Co. Delhi

160 Indbm movement - Shiva Rao - Orient Longman, Del

161 Kiel Thoughts - Gregor Malantschuk - Prinston Uni sity Press.

162 Ma and Marxism - Lenin - Pregress publisher, Moscow.

163 Ma Organisational Behaviour - Utilizing Human Re Paul Hercy & Kenneth Blanchard - Prentice Hall of India, Delhi.

164 On - Lunacharsky - Progress publishers, Moscow

165 Pe n experimental approach - Robert W. Lundine - Maw york

166 Pr General Psychology - George A. Kimple, Norman Gad Press, Newyork.

167 Pe Social development - psychology of effective be ouis S. Levine - Holt Rinehart & Winston

168 Ps personality - Hubert Bonner - Ronald Press, Newyork.

169 Ps types on Psychology of Individuation - C.J Rlagan Paul, London.

170 Ps George A. Millen - Penguin Books.

171 Pl eth Dipple - Matheun & Co. Ltd., London

172 Ps study of Mental life - Donald G.Marqu Bodworth - Mathuen & Co.Ltd. London

173 Ni ntury British Novelists onthe Novel Ed Barnett - Appleton Century Crofts

174 Ra comparative study of philosophy Re e etc. - George Allen & Unwin Lt

175 Ra An Anthology - Ed. Dr. K.M. M Bhavan, Delhi.

176 Si alistic Thinkers - H.J. Blac Ke ndon

177 Sy heories of psychology - J. Ri nston.

178 Te Fiction - Allen Tate -

179 Th ta - Swami Chidbhavan sh Thirupparaithurai.

180 Th ings of C.J. Jung Mo , Newyork.

181 Th iction - Percy Lu

162 Ma Engl and Marxism - Lenin - Pregress publisher, Mosc

163 Management of Organisational Behaviour - Utilizing Human Resorses - Paul Hercy & Kenneth Blanchard - Prentice Hall of India, Delhi.

164 On Literature - Lunacharsky - Progress publishers, Moscow

165 Personality an experimental approach - Robert W. Lundine - Macmilan, New york

166 Princples.of General Psychology - George A. Kimple, Norman Games - Ronald Press, Newyork.

167 Persal and Social development - psychology of effective behavour - Louis S. Levine - Holt Rinehart & Winston

168 Psychology of personality - Hubert Bonner - Ronald Press, Newyork.

169 Psychogical types on Psychology of Individuation - C.J.Jun Rautlge & Kagan Paul, London.

170 Psychogy - George A. Miller - Penguin Books.

171 Plot Elizebeth Dipple - Matheun & Co. Ltd., London

172 Psychogy A study of Mental life - Donald G.Marquis, Rober S. Woodworth - Mathuen & Co.Ltd. London

173 Ninetnth Century British Novelists onthe Novels - Ed. Orge L. Barnett - Appleton Century Crofts, Newyork.

174 Radharishnan comparative study of philosophy - Ed. The ver Rev..R. Inge etc. - George Allen & Unwin Ltd., Newyork.

175 Radharishnan An Anthology - Ed. Dr. K.M. Munshi - Bharath Vdya Bhavan, Delhi.

176 Six istentialistic Thinkers - H.J. Blackham - Routledge KegaPaul, London

177 Systs and theories of psychology - J.P. Chaplin - Holt Rineart & Winston.

178 Techques of Fiction - Allen Tate - Swallow Press, Newyo

179 The agavat Gita - Swami Chidbhavananda - Thapovanam publ shin House, Thirupparaithurai.

180 The asic writings of C.J. Jung - Ed.Violet Staub De Laz Moden Libfary, Newyork.

181 The raftof Fiction - Percy Lubbock - Jonathan Cape,Lon

182 The ommon Reader - Virginia Woolf - The Hogarath Press London.

183 The English Novel - Walter Allan - Penguin books

184 The Growth of English Novel - Richard Church - Mathuen & co. Ltd.London

185 The Necessary of Art - Ernest Fisher - Penguin books.

186 The Pelican Guide to English Literautre - Modern Age - Ed Boris Ford - Penguin books.

187 The psycho dynamics - The Sciance of unconscious mental force Gerald S. Blum - Prentice Hall of India, Delhi.

188 The philosophers of science - Saxe Commins and Robert Linscot Modern pocket Library,Newyork.

189 The Rise of the Novel - Ian Vatt - Chatto & Windus, London

190 The structure of the novel - Edwin Muir - Hogarath Press, London.

191 The structure of Aesthetics - F.E. Sparshott - Rout ledge and Kegan Paul, London.

192 The techniques of the novel - Carl H. Grabo - Charles Scribners Sons, Newyork.

193 The twentieth Century Novel - J?W. Beach - Lyall Book Depot, Ludhiana

194 Writers at Work - Malcom Cowley - Mercury books, London